दोहा-कोश

[हिन्दी-छायानुवाद-सहित]

ग्रन्थकार
सिद्ध सरहपाद

सम्पादक, पुनरनुवादक
महापंडित राहुल सांकृत्यायन

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना—३

प्रथम संस्करण, शकाब्द १८७९
विक्रमाब्द २०१४, ख्रीष्टाब्द १९५७

मूल्य बारह रुपये, सजिल्द तेरह रुपये, पचीस नये पैसे

मुद्रक
मोहन प्रेस
पटना—३

वक्तव्य

इस ग्रन्थ के सम्पादक महापण्डित श्रीराहुल साकृत्यायन के महत्त्वशाली शोधकार्यो से हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे जो क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हुए है उनसे हिन्दी-जगत् भलीभाँति परिचित है। साहित्यिक गवेषणा के क्षेत्र मे उनके अनुसन्धानो ने जो प्रकाश फैलाया है उससे युगो का घनीभूत अन्धकार तिरोहित हुआ है। यह ग्रन्थ इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

हिन्दी-ससार मे साहित्यिक शोध के छोटे-मोटे काम बहुत दिनो से होते आ रहे है। परन्तु, जब से काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने प्राचीन हस्तलिखित पोथियो की खोज करके उसका विवरण प्रकाशित किया और 'सभा' के ही उद्योग से भारतीय विश्वविद्यालयो मे हिन्दी-साहित्य का अध्ययन-अध्यापन तथा अनुसन्धान-अनुशीलन होने लगा, तब से शोध के काम मे विद्वानो की दिलचस्पी बढने लग गई। किन्तु, शोध-सामग्री की अपर्याप्तता के कारण इस दिशा मे विशेप प्रगति नही हुई। सच तो यह कि बहुत-सी शोध-सामग्री पाश्चात्य जगत् के सग्रहालयो मे सुरक्षित है, जिसका उपयोग करने के लिए योरप-यात्रा करना अनिवार्य है। विदेश-यात्रा करना सब शोधको के लिए सभव नही। फिर भी, हमारे कुछ शोधको ने विदेश जाकर वहा की सचित सामग्री से लाभ उठाया, पर उससे प्राचीनतम हिन्दी-सम्बन्धी खोज मे कोई उल्लेखनीय सहायता नही मिली। जब राहुल जी ने अत्यन्त प्राचीन हिन्दी की प्रचुर शोध-सामग्री का उद्धार ऐसे दुर्गम स्थान से किया, जहाँ आधुनिक युग के शोधको की पहुँच नही हो सकती थी, तब हिन्दी-भाषा के साहित्य की शोध-दिशा बदल गई। अत इस ग्रन्थ के प्रकाशन से शोधकर्त्ता सज्जनो को नई प्रेरणा मिलने की सभावना है।

श्रीराहुलजी की तरह 'मिशनरी स्पिरिट' से काम करनेवाले यदि और भी दो-चार व्यक्ति हिन्दी मे होते, तो साहित्यिक शोध के क्षेत्र मे आज अनेक विस्मयजनक कार्य हुए रहते। यद्यपि हिन्दी के साहित्यसेवियो मे अब शोध करने की प्रवृत्ति धीरे-धीरे जाग रही है, तथापि राहुलजी को सच्चे अनुयायी के रूप मे अभी तक निष्ठावान् सहायक नही मिले है। राष्ट्रभाषा हिन्दी आज

उस स्थिति मे पहुँच गई है जब उसको अनेक श्रद्धालु साधको की आवश्यकता है। हमारी धारणा है कि सच्ची लगन और पक्की धुन के अमायिक व्यक्ति ही खोज के काम के लिए फकीर हो सकते है। प्रपञ्च-मुक्त हुए बिना शोध-कार्य को निर्विघ्नता के साथ सम्पन्न करना कठिन है। शोध की दिशा मे राहुलजी के भगीरथ-प्रयत्नो को देखकर ऐसा अनुभव होता है कि जग-जजाल से छुटकारा पाकर शोध-तत्पर होने से ही भाषा और साहित्य का वास्तविक उपकार हो सकता है।

इस ग्रन्थ मे सिद्ध सरहपाद की कविता भोट-भाषा मे रूपान्तरित है, जिसकी अविकल छाया प्राचीन हिन्दी म स्वय राहुलजी ने प्रस्तुत की है। मूल और छाया के साथ कही-कही जो पाद-टिप्पणियाँ है और ग्रन्थ के अन्त मे जो परिशिष्ट है, उनसे राहुलजी के कठोर परिश्रम तथा अथक अध्यवसाय का अनुमान किया जा सकता है। उनकी विस्तृत भूमिका के अध्ययन से भी, प्राचीन हिन्दी के सम्बन्ध मे अनुसन्धान करनेवालो को, काफी प्रकाश मिलेगा। आशा है, शोध-सलग्न सज्जनो को ऐसा प्रतीत होगा कि यह ग्रन्थ वस्तुत हिन्दी को राहुलजी की एक अपूर्व देन है।

वैशाखी पूर्णिमा, बुद्ध-जयन्ती
शकाब्द १८७९, विक्रमाब्द २०१४

शिवपूजन सहाय
(सचालक)

विषय-सूची

१ (क) दोहाकोश-गीति

[हिन्दी-छायानुवाद-सहित]

पृष्ठ

परिशिष्ट

चित्र-परिचय

मेरी पत्नी कमला सांकृत्यायन

को

उनकी सहायताओं के लिए

भूमिका

§१. सरह की दुनिया

सरहपाद का काल (ईसवी आठवी सदी), भारतवर्ष के इतिहास मे कई दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस महान् विचारक कवि और सन्त-सिद्ध के प्रादुर्भाव से एक नये युग की सूचना मिलती है।

(१) राजनीतिक स्थिति

पुष्पभूति या वर्धन-वश के राजा हर्षवर्धन प्राचीन भारत के अन्तिम दिग्विजयी सम्राट् थे। ४२ वर्ष (६०६–६४८ ई०) के सुदीर्घ, शान्त और समृद्ध शासन के बाद जब ६४८ ई० मे उनका निधन हुआ, तो उनका साम्राज्य जल्दी ही छिन्न-भिन्न होकर इतना कमजोर हो गया, कि अपने अपमान का बदला लेने के लिए चीनी राजदूत ने थोडी-सी तिब्बती और नेपाली सेना की मदद से हर्ष की राजधानी पर अधिकार जमानेवाले अर्जुन को न केवल हराया ही, वल्कि उसे बन्दी बनाकर चीन ले गया। आगे सौ साल का समय टुकडे-टुकडे मे बँटे कान्यकुब्ज-साम्राज्य के पारस्परिक कलह और पतन का इतिहास हमारे लिए अत्यन्त अपरिचित-सा है। एक शताब्दी बीतने पर हम भारत मे तीन महाशक्तियो का उदय होते देखते हैं (१) पूर्व मे यशस्वी पाल-वश हर्ष के साम्राज्य के पूर्ववाले भू-भाग पर अपना दृढ शासन स्थापित करता है, और वहाँ मत्स्य-न्याय का अन्त कर हिन्दूकाल के अन्त तक रहनेवाले एक राजवश की नीव डालता है। (२) दक्षिणापथ—जिसे जीतने का असफल प्रयत्न हर्ष ने किया था—मे और भी प्रचड राष्ट्रकूटो का शासन देखने मे आता है और (३) राजपूताने के भिन्नमाल या श्रीमाल के गुर्जर-प्रतिहार अपनी शक्ति बढाते यमुना और गगा के किनारे तक पहुँचने की कोशिश करते हैं।

कान्यकुब्ज के भाग्य का फैसला अभी नही हो पाया था, जब कि सरहपाद ने

कार्यक्षेत्र मे पैर रखा। इन्ही तीनो शक्तियो के हाथ मे भारत का भाग्य था। इनके मैदान मे आने से पहिले ही भारत से बाहर अपने प्रभाव को फैलाती एक विश्व-शक्ति पश्चिम की ओर से भारत की ओर बढती चली आ रही थी। यह थी अरब या इस्लाम की शक्ति। अभी प्रतापी हर्ष कान्यकुब्ज मे विराजमान ही थे, जब कि ६३९ ई० मे अरब-सेना ने महावन्द के युद्ध-क्षेत्र मे ईरान के प्रतापी सासानी राजवश का उच्छेद किया। अगले तेरह वर्षो मे विजयिनी अरब-सेना ख्वारेज्म और तुखारिस्तान [मध्य आमू (वक्षु) उपत्यका] तक पहुँच गई। अरब केवल अपने शासन की ही स्थापना के लिए दिग्विजय नही कर रहे थे, बल्कि साथ ही वह विजित देशो की सस्कृति और प्राचीन विश्वासो को ध्वस्त कर एक नया रूप देने का प्रयत्न कर रहे थे। इसीलिए, उनके प्रतिवन्दी भी आसानी से हथियार डालने के लिए तैयार नही थे। तुखारिस्तान मध्य-एसिया मे बौद्धधर्म का गढ था, जहाँ दत्तामित्रि—आधुनिक तेर्मिज—और बलख (वाह्लीक) अपने महान् बौद्ध-विहारो तथा विद्वानो के लिए मशहूर थे। मिहिरगुल के ध्वसक कार्यों के बाद पेशावर से हटाकर तथागत के भिक्षापात्र को बलख मे ले जाकर रक्खा गया था, इसी से बौद्धधर्म के लिए इस स्थान का महत्त्व मालूम हो सकता है। तुखारिस्तान की भूमिका मे इस्लाम और बौद्धधर्म के लिए जो खूनी सघर्ष हो रहे थे, उससे भारतीय शासक चाहे अप्रभावित रहे, पर बौद्ध-जगत् के महान् शिक्षा-केन्द्र नालन्दा और दूसरे विहारो मे तो सैकडो भुक्तभोगी मध्य एसियाई भिक्षु अध्ययन करते थे, इसलिए वह सारी घटनाओ मे पूरी तौर से अवगत थे। यद्यपि वहाँ भारत से कोई सहायता नही पहुँच सकती थी, पर भारतीय बौद्धो की सहानुभूति तुखारिस्तानियो के साथ थी।

आठवी सदी के साथ इस्लाम की विजयिनी ध्वजा सिर और सिन्धु महानदियो के किनारे फहराने लगी। आज से १२४५ वर्ष पहिले ७११ ई० मे उमैया खलीफा वलीद अब्दुलमलिक-पुत्र के सेनापति मुहम्मद बिन-कासिम ने आपसी फूट से लाभ उठाकर सिन्ध को अरब-साम्राज्य मे मिला लिया और सिन्ध हमेशा के लिए इस्लाम का विजित देश हो गया। उधर वलीद के दूसरे महान् सेनापति कुतैब बिन-मुस्लिम ने वक्षु और सिर के बीच के भूभाग मे इस्लाम और इस्लामी शासन स्थापित करने मे

सफलता पाई। ७०६ ई० मे बुखारा—बौद्ध विहार के कारण पडे इस नामवाले महानगर—को अन्तिम सघर्ष के बाद आत्मसमर्पण करना पडा और वह आगे चलकर बौद्ध की जगह इस्लाम की काशी बना। ७१४ ई० मे पूर्वी तुर्किस्तान मे भी इस्लाम की विजय-वैजयन्ती पहुँच गई, जब कि काशगर और खुतन ने घुटने टेक दिये और सैकडो वर्षो से बौद्धधर्म-प्रधान इस देश के हजारो सघारामो को लूटकर नष्ट कर दिया गया, भारी सख्या मे भिक्षु तलवार के घाट उतारे गये। यह सारी घटनाएँ भारत के बौद्ध आचार्यो के लिए अपने सामने घटित-सी मालूम होती थी।

भारत मे पाल, राष्ट्रकूट और प्रतिहार अपनी स्थिति को दृढ और परिसीमित करने मे आठवी सदी के अन्त मे सफल हुए, जब कि सरहपाद शायद इस दुनिया मे नही रह गये थे। पर इनके समय मे ही मगध ने उत्तरी भारत मे प्रमुख स्थान ग्रहण कर लिया था। गोपाल ने सरहपाद के सामने ही ७६५ ई० के करीब पाल-वश की स्थापना की। वह बिल्कुल साधारण कुल का आदमी था, जो अपनी योग्यता और सर्वप्रियता के कारण पूर्व-भारत का अधीश्वर बनाया गया। उसके पुत्र धर्मपाल ने तो, एक बार मालूम हुआ, हर्षवर्धन के प्रताप को दुहराके रहेगा। पर, राष्ट्रकूट और प्रतिहार उसके रास्ते मे बाधक हुए। अरबो को आगे बढने से रोकने मे, पाल-वश का उतना हाथ नही था, जितना कि, उसके दोनो प्रतिद्वन्द्वियो का। गोपाल धर्मपाल का राज्य अरब-साम्राज्य की सीमा से बहुत दूर पडता था, इसलिए वह बहुत पीछे ही इस्लाम के आक्रमणो की आखेट-भूमि बना। तो भी मगध-भूमि बौद्धधर्म का केन्द्र थी, वही बडे-बडे बौद्ध-विद्या-केन्द्र थे, जहाँ दूर-दूर के विद्यार्थी ही पढने नही आते थे, बल्कि जहाँ के विद्वान् धर्म-प्रचार के लिए नाना देशो मे जाया करते थे। सरहपाद के दर्शन के परम गुरु महान् विद्वान् शान्तिरक्षित स्वय इसी उद्देश्य से तिब्बत गये और वही अपने बनवाये तिब्बत के सर्वप्रथम सघाराम—सम् ये—मे अपना शरीर तिब्बती सम्राट् (श्री स्रोङ दे-चन् (७५५—७८० ई०) के राज्यकाल मे छोडा। इस प्रकार मगध का बौद्ध जगत् से घनिष्ठ सबध होने के कारण वह सभी बातो से अवगत था। यहाँ यह बात भी स्मरण रखने की है, कि पाल-राजा अन्त तक अपने को परम सौगत घोषित करते रहे।

२ धार्मिक स्थिति

सरहपाद का प्रादुर्भाव जिस आठवी सदी के पूर्वार्ध मे हुआ, वह धर्म की दृष्टि से भी एक नये युग का सन्धिकाल था। इससे एक ही शताब्दी पहले वसुबन्धु, दिङ्नाग और धर्मकीर्त्ति के महायान-धर्म और दर्शन का चरम उत्कर्ष हुआ था। बौद्धधर्म अपने हीनयान और महायान के विकास को चरम सीमा तक पहुँचा कर अब एक नई दिशा लेने की तैयारी कर रहा था, जब उसे मत्रयान, वज्रयान या सहजयान की सज्ञा मिलनेवाली थी, और जिसके प्रथम प्रणेता स्वय सरहपाद थे। हीनयान (स्थविरवाद) ने शील-सदाचार तथा वैयक्तिक निर्वाण पर अधिक जोर दिया था। उसने बुद्ध के दर्शन और शिक्षा को यथाशक्ति मूलरूप मे रखने की कोशिश की थी। महायान ने भी थेरवाद के शील-सदाचार, भिक्षुचर्या को बहुत-कुछ स्वीकार किया था। वस्तुत. महायानी भिक्षु उन्ही विनय-नियमो को मानते थे, जो कि सर्वास्तिवादी हीनयान के विनय-पिटक मे है। हाँ, महायानी आदर्श और उद्देश्य मे वह हीनयान के के वैयक्तिक निर्वाण को हीन, स्वार्थपूर्ण मानते थे, और वैयक्तिक मुक्ति की जगह प्राणिमात्र को दु ख से मुक्त करने के लिए अपने अनत जन्मो का उत्सर्ग करना एक मात्र परमलक्ष्य मानते थे। बौद्ध क्षणिक और अनात्म-वादी दर्शन को और आगे बढाते हुए उन्होने नागार्जुन के माध्यमिक या शून्यवाद दर्शन एव असग के योगाचार या विज्ञानवादी दर्शन तक पहुँचाया। अब वह समय आ गया था, जब कि शील, समाधि और प्रज्ञा-संबधी पुरानी परपराओ और धारणाओ का पुन. मूल्याकन किया जाय, और उनमे से कितनो को साफ व्यर्थ की रूढि घोषित किया जाय। यह काम हम स्वय सरह को करते देखते है। वह सहज जीवन के पक्षपाती है, और भक्ष्य-अभक्ष्य, गम्य-अगम्य की पुरानी धारणाओ पर सीधी चोट करते है। हरेक क्रान्तिकारी या उग्र सुधारक को अपने काम में जनता से ही सहायता लेनी पडती है। बुद्ध और महावीर को भी यही करना पडा था। जनता को उसकी भाषा द्वारा ही अपनी ओर खीचा जा सकता है, यह उन्हे मालूम था। यही कारण था जो बुद्ध और महावीर ने जन-भाषा का सहारा लिया। पर, उनके समय की भाषा अब स्वय मृत भाषा

थी, जिसे साहित्य के रूप में ही पढा-समझा जा सकता था। सरहपाद ने सस्कृत के पडित होते भी तत्कालीन 'भाषा' को अपना माध्यम बनाया।

बौद्ध ही नही, ब्राह्मण-धर्म मे भी अब नये धार्मिक और दार्शनिक सप्रदाय उपस्थित होनेवाले थे। पाशुपत-धर्म अब भी उत्तर और दक्षिण मे प्रभावशाली था। गुप्तकालीन वैष्णव-धर्म ह्रासोन्मुख था। अब दक्षिण के शकर का मायावादी अद्वैत विज्ञानवाद दर्शन प्रकट हो रहा था। शकराचार्य सरहपाद के समकालीन थे। वह असग के योगाचार दर्शन को नई बोतल मे पुरानी शराब डालने की उक्ति के अनुसार एक नया रूप दे रहे थे। यह बात लोगो से छिपी नही थी। उनके प्रतिद्वद्वी शकराचार्य को 'प्रच्छन्न बौद्ध' कहा करते थे। शकर ने यद्यपि इस बात को छिपाना चाहा, कि उनका दर्शन योगाचार की देन है, पर उनके मान्य आचार्य और परपरा के अनुसार परमगुरु गौडपाद बुद्ध को नमस्कार करते अपनी कारिकाओ मे उनके ऋण को स्वीकार करते हैं। शकर मुँह से न कहते भी आचरण से बौद्ध और ब्राह्मण-दर्शनो के सबध मे समन्वयवादी हैं। धार्मिक मान्यताओ मे भी वह समन्वयवादी थे। शिव, विष्णु या शक्ति—सभी को वह परमदैवत और आराध्य मानते थे। यद्यपि यही बात वैष्णव आलवारो के सबध में नही कही जा सकती, पर उनके द्वारा वैष्णव-धर्म भी उस रूप को ले रहा था, जो आज उत्तर और दक्षिण मे देखा जाता है, और जिसका सबसे अधिक जोर भक्ति पर है। बौद्धधर्म की तरह ब्राह्मण धर्म के लिए भी यह काल एक नये सदेश का वाहक है। जैन-धर्म के बारे मे यह बात उतने जोर से नही कही जा सकती, पर वहाँ भी योगीन्दु, रामसिह—जैसे सन्तो को हम नया राग अलापते देखते है, जिसमे समन्वय की भावना ज्यादा मिलती है।

सरह के साथ एक नये धार्मिक प्रवाह को हम जारी होते देखते है, जो आज भी सन्त-परम्परा के रूप मे हमारे सामने मौजूद है। इसके बारे मे हम आगे कहनेवाले हैं। सन्तो के साथ जिस योग और भावनाओ का सबध है, वह भी इसी समय अपने नये रूप मे प्रकट होते है। उनकी भावना या योग वही नही है, जिसे पतजलि के योगदर्शन या पुराने बौद्ध-सूत्रो मे देखते हैं। इस ध्यान और भावना के लिए यम-नियमो की उतनी आवश्यकता नही मानी जाती थी और न उसके ढग उतने रूढ थे।

इसमे गुरु का वचन सर्वोपरि माना जाता था, जिस पर सरहपाद ने अपने दोहाकोश मे जगह-जगह जोर दिया है। यह स्मरण रखना चाहिए, कि तिब्बती शब्द लामा गुरु का ही पर्याय है। वहाँ 'बुद्ध शरणं गच्छामि' से भी पहले 'गुरु शरण गच्छामि' कहते त्रिशरण की जगह चतुःशरण लिया जाता है। इसके प्रवर्त्तक सरहपाद है, इसमे कोई सन्देह नही। तिब्बत का आज का प्रचलित धर्म बुद्ध से अधिक सरहपाद की शिक्षा को मानता है।

(३) भाषा का संक्रातिकाल

भाषा की दृष्टि से देखने पर भी यह एक नये युग का सधिकाल है। छान्दस (वैदिक भाषा) के बाद ईसा-पूर्व पाँचवी-छठी सदी मे भाषा ने नया रूप लिया, जिसके नमूने बुद्ध-वाणी और अशोक की धर्मलिपियो की भाषा मे मिलते है, और जिसे आसानी के लिए हम जनपदीय पालियाँ कह सकते है। यह सारी एक ही तरह की नही थी। पालियो के अवसान के बाद ईसवी-सन् के आरभ के आस-पास प्राकृत अस्तित्व मे आई, जो ईसा की पाँचवी सदी के अन्त तक प्रचलित रही। छान्दस्, पाली और प्राकृत भाषाओ मे आपस मे काफी भेद थे, पर अब भी उनकी एक विशेषता कायम थी, अर्थात् यह तीनो भाषा-कुल उस रूप को अपनाये हुए थे, जिसे भाषाविद् 'श्लिष्ट' (synthetic) रूप कहते है। द्विवचन को हटा देने तथा कुछ विभक्तियो को कम कर देने पर भी अभी सुबन्त और तिङन्त के सैकडो और हजारो रूप प्रचलित थे—दसो (विधि और आशी मिलाकर ग्यारह) लकारो, आत्मनेपद-परस्मैपद रूपो, णिजन्त, सन्नन्त, यङन्त, यङलुगन्त आदि स्वरूपो को उन्होने मान्य रक्खा। अब प्राकृत का स्थान उसकी जिस पुत्री ने लिया, जो विश्लिष्ट नही अश्लिष्ट भाषा थी। धातु-रूपो और शब्दरूपो की पुरानी परिपाटी अब बहुत-कुछ खत्म-सी कर दी गई। लकारो की प्रचुरता समाप्त करके भूत-काल के लिए निष्ठा-प्रत्यय का प्रयोग होने लगा। श्लिष्ट से अश्लिष्ट रूप मे भाषा का परिवर्तन एक बडी क्रान्ति थी, जो कि प्राकृत की उत्तराधिकारिणी भाषा में देखा गया। इस भाषा का स्मरण सबसे पहिले हर्ष के समकालीन (६०६–६४८ ई०) महाकवि बाण के 'हर्षचरित' मे मिलता है।

वहाँ इसका आज का रूढ नाम 'अपभ्रश नही मिला है, बल्कि केवल 'भाषा' कहकर पुकारा गया है । 'भाषा' से हमेशा वर्त्तमान भापा का ही अर्थ लिया जाता रहा है । पाणिनि वैदिक (छान्दस) भापा से भिन्न भाषा को 'भाषा' कहते है, यद्यपि पाणिनि के समय——ईसा-पूर्व चौथी सदी मे——प्रचलित भाषा वह अवैदिक सस्कृत भापा नही थी, जिसे पाणिनि 'भाषा' कहते है । गोस्वामी तुलसीदास जिसे 'भाषा भणिति' कहते है, वह निश्चय ही उनके समय की प्रचलित भापा थी । आज भी उत्तरी भारत मे 'भाखा' से अभिप्रेत है, वर्त्तमान भापा । वाण ने जिस मित्रमडली के साथ घुमक्कडी की थी, उसमे 'भाषाकवि ईशान पर मित्र' भी था। भाषा से वाण का अभिप्राय प्राकृत भापा नही था, क्योकि 'हर्षचरित' मे वही अपने साथी——'प्राकृतकृत् कुलपुत्रो वायुविकार' का नाम लिया है । प्राकृत के कवि वायु-विकार से भापा-कवि ईशान का नाम अलग देना ही बतलाता है, कि वाण के समय प्रचलित भाषा प्राकृत नही थी । नई भाषा का नाम अभी अपभ्रश रूढ नही हो पाया था, पर वाण का भापा से मतलब अपभ्रश से ही है ।

अपभ्रश नाम पतजलि (ईसा पूर्व १५५) के महाभाष्य मे भी आता है, पर वहाँ वह वैदिक और लौकिक सस्कृत से भिन्न तत्कालीन भापा है, जो कि पालि-समूह की थी । सरहपाद के ग्रथो मे भी अपभ्रश नाम नही मिलता।

अपभ्रश सस्कृत-पालि-प्राकृत के श्लिष्ट-भापा-कुल से उत्पन्न, पर अश्लिप्ट होने से एक नये प्रकार की भाषा है। वह उक्त तीनो भाषाओ से दूर तथा हमारी हिन्दी आदि आधुनिक भापाओ की माता-मातामही ही नही, वल्कि उसी प्रकृति की भापा है ।

'हर्षचरित' के कथन से सिद्ध है, कि सातवी सदी के पूर्वार्द्ध मे अपभ्रश का ईशान कवि हुआ था, जिसकी योग्यता इसीसे सिद्ध है, कि वाण उसे केवल मित्र नही, बल्कि 'पर मित्र' कहता है । दसवी सदी के अन्त के अपभ्रश के महाकवि पुप्पदन्त ने अपने काव्य 'महापुराण' मे "चौमुह सयम्भू सिरिहरिसु, दोणु । णालोइउ कई ईसाणु वाणु कहते जिस ईशान कवि का स्मरण किया है, वह वाण का परम मित्र ईशान था, यह डॉक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल का मत ठीक जान पडता है । वाण के

परम मित्र ईशान अकेले ही अपभ्रंश के कवि नही रहे होगे, और भी कितने ही भाषा-कवि तब तक हो चुके होगे, इस प्रकार सरहपाद को हम अपभ्रंश का प्रथम कवि नही कह सकते। पर सरह से पहिले के किसी कवि की कोई कृति या पद्य हमारे पास तक नही पहुँचा, इस प्रकार अपभ्रंश की सर्वप्रथम कृति सरह के दोहो के रूपो मे ही आज मौजूद है, इसलिए अपभ्रंश के आदि कवि के तौर पर सरहपाद का ही नाम लिया जा सकता है।

जिस प्रकार अपभ्रंश के रूप मे एक नये प्रकार की अश्लिष्ट भाषा इस समय हमारे सम्मुख उपस्थित होती है, उसी प्रकार दोहा, चौपाई, पद्धरी के नये छन्द इसी समय हमारे साहित्य मे देखे जाते है। ये छन्द प्राकृत या दूसरी पूर्ववर्त्ती भाषाओ में नही मिलते। इन नये छन्दो को पहिले-पहिल हम सरह की कृतियो मे ही देखते है। जिस तरह आर्या-गाथा प्राकृत-साहित्य की अपनी विशेषता है, उसी तरह दोहा-चौपाई-पद्धरी अपभ्रंश की अपनी विशेषता है, जो उसके वश की हिन्दी आदि भाषाओ मे अब भी मौजूद है और अपभ्रंश की तरह हिन्दी को भी आज दोहा-चौपाईवाली भाषा कह सकते है। अपभ्रंश वैसे केवल हिन्दी की अपनी चीज नही है, उसपर उत्तर भारतीय या भारत की हिन्दू-आर्य सभी भाषाओ का एक समान अधिकार है। वह मराठी, गुजराती, पजाबी, हिन्दी क्षेत्र की भाषाओ—राजस्थानी, मालवी, बुन्देली हरियानी, कौरवी (मूल हिन्दी), पहाडी, व्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली, मगही, असमिया, बगला, उडिया—की अपनी निधि है। इन सभी भाषाओ के क्षेत्र मे अपभ्रंश-साहित्य की रचना हुई, उसको अपना समझा गया और वह सभी को अपने साहित्यिक दाय-भाग के रूप मे मिली। आज दोहा-चौपाई का कुछ भाषाओ से उठ जाना एक खटकनेवाली बात है।

इन सारी बातो को देखने से मालूम होगा, कि सरह जिस भाषा के आदि कवि है, वह कई दृष्टियो से एक नये युग की भाषा है। कोई भी नया युग—जो इतने महान् परिवर्त्तनो का वाहक हो—एकाएक एक निश्चित मास या वर्ष मे तो क्या, निश्चित शताब्दी मे भी आन उपस्थित नही होता। प्राकृत ने किस शताब्दी मे अपभ्रंश के लिए अपना स्थान छोडा यह बतलाना बहुत मुश्किल है। वर्त्तमान शताब्दी के आरभ तक

तो हमारे बहुत कम ही विद्वान् उसके अस्तित्व को जानते थे। बहुतेरे तो हमारी आधुनिक आर्यभाषाओ को सीधे सस्कृत से जोडते थे। उनको यह पता नही था, कि सस्कृत को हमारी आधुनिक भाषाओ से मिलानेवाली कडी पालियाँ, प्राकृत और अपभ्रश है। आज इसे माना जाने लगा है, पर अब भी बहुत लोग यह निश्चय नही कर पा रहे है, कि अपभ्रश का स्थान आधुनिक भाषाओ के बीच मे है या पालि-प्राकृतो मे ?

अस्तु, अपभ्रश के जन्म-दिन का पता लगाना सभव नही है। सभवत· यह परिवर्त्तन कुछ समय तक बहुत धीरे-धीरे होता रहा, फिर एकाएक गुणात्मक परिवर्त्तन होकर श्लिष्ट की जगह अश्लिष्ट भाषा आन उपस्थित हुई–वह वही (प्राकृत) न होने पर भी कितनी ही बातो मे वही (प्राकृत) थी। अपभ्रश का सारा शब्द-कोश और उच्चारण-क्रम प्राकृत का था, पर व्याकरण की अन्य विशेषताएँ आधुनिक अवधी-व्रज-भोजपुरी-जैसी। यह घटना छठी शताब्दी के अन्त मे किसी समय घटी। इस सारी शताब्दी को हम प्राकृत और अपभ्रश की सीमा-रेखा मान सकते है, उसी तरह, जिस तरह ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दी को पालियो और प्राकृतो की सीमा-रेखा, तथा ईसा पूर्व सातवी सदी को छान्दस और पालियो की सीमा रेखा।

इस प्रकार सरहपाद नई भाषा और नये छन्दो के युग के आदि-कवि है। इतना ही नही, सन्त-सिद्ध परम्परा के आदि-सिद्ध होकर वह आध्यात्मिक तौर से भी नई दिशा दिखलानेवाले है। शायद उन्हें द्वितीय बुद्ध कहकर लोग अतिशयोक्ति से काम नही लेते। प्रमाण-शास्त्र मे उनके परम गुरु शान्तरक्षित को, द्वितीय धर्मकीर्त्ति कहा जाता था। सरह की परम्परा मे ही सिद्ध शान्तिपा (रत्नाकरशान्ति) हुए, जिन्हे 'कलिकाल-सर्वज्ञ' कहा गया, जो जैन 'कलिकाल-सर्वज्ञ' हेमचन्द्र से एक शताब्दी पहले हुए थे।

§२. सरह का व्यक्तित्व

१ जीवनी

सरहपाद की जीवनी के सबध मे बहुत-थोडी-सी सूचना तिब्बती अनुवादित ग्रंथो से मिलती है और वह सबसे प्रामाणिक है, इसमे सन्देह नही।

'चतुरशीतिसिद्धप्रवृत्ति' (स्तन् ग्युर, ग्युद्, ८६ । १) मे एक तरह सिद्धो की सूची-भर दी गई है । यद्यपि भारतीय भाषा से अनुवादित यह एक ही पुस्तक है, पर सिद्ध-युग मे (आठवी से ग्यारहवी सदी तक) तिब्बत और भारत का घनिष्ठ सवध रहा, वहाँ से अनेक जिज्ञासु भारत मे आकर दीक्षा लेते थे । तिब्बत के सबसे बडे सिद्ध (द्वितीय सरहपा) जे चुन् मि ला रेस् पाके गुरु मर्.वा लो च ग ने विक्रमशिला मे तत्कालीन महासिद्ध नारोपा से दीक्षा ली थी । तिब्बती सन्तो और महात्माओ के ग्रथों मे मौखिक गुरु-परम्पराएँ भारतीय सिद्धो के बारे मे उद्धृत है, जिनसे भी कुछ प्रकाश पड सकना है, पर अभी तक उन परम्पराओ को जमा करने की कोशिश नही की गई है ।

सरहपाद पूर्व दिशा के राज्ञी नामक कस्बे मे पैदा हुए थे । पूर्व दिशा से कौन-से प्रदेश का अभिप्रेत है ? आमतौर से मगध से पूर्व वाले प्रदेश पूर्व दिशा कहे जाते थे, जिसमे बगाल—विशेषत. वारेन्द्र—आ सकता है । पर, वारेन्द्र का उल्लेख करते पूर्व-दिशा वारेन्द्र देश एक ही साथ कहा जाता था । इसलिए हम वहाँ वारेन्द्र को नही ले सकते । इसके बाद भगल (भागलपुर) और पुड्रवर्धन (उत्तरी बगाल) ही रह जाते है, जहाँ सरहपाद की जन्मनगरी राज्ञी रही होगी । कामरूप (असम) का उल्लेख करते पूर्व-दिशा के साथ कामरूप भी जरूर आता है ।

राज्ञी बहुत बड़ा नगर नही रहा होगा । उसी के एक ब्राह्मण-परिवार मे सरह का जन्म हुआ । उनसे एक शताब्दी पूर्व पैदा हुए बाण के राजसी वैभव को हम जानते है, जिसके घुमक्कडी जीवन मे भी कवि, पडित, कलाकार, संगीत-नृत्यकार, भिक्षु, परिव्राजक, वैद्य, तान्त्रिक, धूर्त्त, परिचारक आदि ४४ आदमियो की पलटन साथ रहती थी । सरहपाद का कुल बाण की तरह वैभवशाली था, इसे जानने का हमारे पास कोई साधन नही है पर इतना हमे मालूम है, कि सातवी-आठवी सदी मे अभी सामान्य तौर से ब्राह्मण अच्छी स्थिति में थे । उनमे विद्या का प्रचार था । बौद्ध और जैनधर्म ने ऊँच-नीच जाति (वर्ण)—व्यवस्था पर प्रहार किया था, जिससे नीच कुल में जन्मे होनहार पुरुषो के आगे बढने का रास्ता निकल आया था, पर ब्राह्मणो को समुदाय के तौर पर आर्थिक हानि उठानी पड़ी हो, इसका हमें पता नही । पाल-वंश सदा बौद्ध रहा, पर उसके

प्रधान-मत्री प्राय ब्राह्म ही होते थे और साथ ही ब्राह्मण-धर्म के अनुयायी भी, जैसा कि एक पाल-महामत्री के नारायण-मदिर के निर्माण से मालूम होता था। उस समय, विशेषकर पूर्व (मगध आदि) मे आस्तिक ब्राह्मणो के हृदय मे भी बुद्ध और उनके शिष्यो, बोधिसत्त्वो के प्रति श्रद्धा थी, यह वाण के वर्णनो से मालूम होता है। यह भी नही कहा जा सकता, कि कि सरह का कुल बौद्ध था या ब्राह्मण-धर्मी। सरहको जहाँ सिद्ध और योगीश्वर कहा जाता है, वहाॅ वही एक सन्त है, जिन्हे 'महान् ब्राह्मण' (तिब्बती—ब्रम् से छेन् पो) की उपाधि से विभूषित किया गया है। यह जातिवाद के खयाल से नही, वल्कि 'धर्मपद' मे वर्णित ब्राह्म-गुणो के धनी होने के कारण। अपने प्रसिद्ध 'दोहाकोश' के पहिले ही दोहा मे उन्होने ब्राह्मणवाद पर प्रहार किया है, इसलिए वह उसके पक्षपाती नही थे, इसमे सन्देह नही।

उनके बाल्य और नवतारुण्य का भी हमे पता नही मिलता। 'होन-हार बिरवान के होत चीकने पात की उक्ति वालक सरह पर ठीक घटित होती रही होगी। वह असाधारण मेधावी थे, इसमे क्या शक हो सकता है? मेधावी होने के साथ-साथ वह मस्तिष्क से प्रकृतिस्थ नही थे, जिसका अर्थ यह नही कि वह पागल थे। वह बचपन से ही ऐसे थे, इसे नही कहा जा सकता। बाज वक्त प्रतिभाओ मे इस तरह के लक्षण पीछे प्रकट होते है, जब कि दुनिया को देख लेने पर उसका रोब उनके हृदय से दूर हो जाता है, और वह सभी प्रकार की रूढ़ियो को निस्सार समझ खुल्लमखुल्ला बगावत करने लगते है। आगे के जीवन को देखने से भी सरह को आरभ मे प्रकृतिस्थ प्रतिभावान् ही मानना पडेगा। सभव है, बाल्य काल मे उनकी शिक्षा-दीक्षा अपने नगर मे ही हुई। यदि उनका कुल बौद्ध नही था, तो उनका अध्ययन ब्राह्मणो की तरह घर पर या किसी ब्राह्मण गुरु के पास हुआ। उन्होने अपने वेद के साथ व्याकरण, कोश, काव्य का अध्ययन किया होगा। फिर उनकी न तृप्त होनेवाली जिज्ञासा उन्हे किसी बौद्ध विद्वान् के पास ले गई होगी। यदि उनका कुल जन्मना बौद्ध रहा, जो उस समय असभव नही था, तो उनके सीधे वौद्ध-सघ मे सम्मिलित होने मे कोई दिक्कत नही थी। श्रद्धालु माता-पिता अपने पुत्र—कभी-कभी एकलौते पुत्र—को भी प्रव्रजित करके सघ का दायाद

बनाना चाहते थे, जैसा कि राजा अशोक ने किया था। जैसे भी हो, नालन्दा मे अध्ययन के लिए सरह पीछे पहुँचे होगे। अत्यन्त कम अपवादो के साथ नालन्दा मे उन्ही छात्रो को प्रवेश मिलता था, जो कि वहाँ की द्वार-परीक्षा मे उत्तीर्ण होते थे। यह परीक्षा काफी कठिन होती थी। परीक्षा मे उत्तीर्ण होने-भर की योग्यता प्राप्त करके सरह ने नालन्दा की ओर प्रस्थान किया होगा।

बाल्य-नाम क्या था, यह हमे नही मालूम, पर सरह या सरहपा के नाम से प्रख्यात होने से पहिले उनका नाम राहुलभद्र और सरोज (सरोरुह) वज्र भी था। भिक्षु-नाम सभवत राहुलभद्र ही था, सरोजवज्र वज्रयान से सबध प्रकट करने के लिए हुआ गया। राहुलभद्र के कौन प्रथम उपाध्याय और आचार्य थे, इसका पता कैसे लग सकता है, जब कि उन्होने अपने सत्-गुरु को भी नाम लेकर कही याद नही किया, यद्यपि उनके प्रति सम्मान प्रकट करने में पीछे नही है। नालन्दा में रहते उनके एक अध्यापक हरिभद्र थे। हरिभद्र धर्मकीर्त्ति (बाण के वृद्धसमकालीन) के समान शान्त-रक्षित के शिष्य थे। वह दर्शन और प्रमाणशास्त्र के अपने समय के महा-पडित थे। शान्तरक्षित भोट सम्राट् खिस्रोङ दे. चन् (७५५–८० ई०) के के बुलाने पर तिब्बत गये और उन्होने वहाँ के प्रथम सघाराम सम् ये को ७७६-८० ई० (दूसरी परम्परा के अनुसार ८२३–८३५ ई०) मे बनवाया। ७९३ ई० के करीब तिब्बत मे ही इस अद्भुत विद्वान् तथा अपने परोप-कारमय जीवन के कारण आज भी भी तिब्बत मे बोधिसत्त्व के नाम से प्रसिद्ध पुरुष की मृत्यु सौ वर्ष की आयु मे हुई। इस प्रकार शान्तरक्षित का जन्म ६९३ में हुआ था। सभवत. उनके जीवन-काल में ही राहुल-भद्र सरहपा बन चुके थे।

सरहपाद के काल के बारे मे यहाँ कुछ कहना जरूरी है। वह शान्त-रक्षित-शिष्य हरिभद्र के विद्यार्थी रह चुके थे और हरिभद्र राजा धर्मपाल (७७०–८१५ ई०) के समय मौजूद थे। सरहपा भी धर्मपाल के समकालीन थे, पर साथ ही यह भी मालूम है, कि सरह के शिष्य शबरपा के शिष्य लूइपा राजा धर्मपाल के कायस्थ (सचिव या लेखक) थे। अपने राजा के साथ वह वारेन्द्र (पूर्वी बगाल) मे थे, जब लुई सिद्ध शबरपा के घनिष्ठ संपर्क में आ राजा से आज्ञा ले गृहत्यागी बने। इससे मालम होता है,

उस समय सरहपा का देहान्त हो चुका था, जिसके कारण उनके शिष्य शबर को सर्वोपरि सिद्ध माना जाने लगा था। लुईपा—भूतपूर्व राज-कायस्थ—असाधारण पुरुष थे, यह इसीसे मालूम होगा, कि गणना मे तृतीय (सरह 7 शबर 7 लुई) होने पर भी सिद्धो की सूची मे वह सिद्ध नम्बर एक है। यदि लुईपा धर्मपाल के अन्तिम समय ८०० ई० के करीब मौजूद थे, तो सरहपा की मृत्यु ७८० के करीब शायद हो चुकी थी।

राहुलभद्र कितने ही सालो तक नालन्दा मे पहले विद्यार्थी पीछे अध्यापक के तौर पर रहे। वह बौद्ध-शास्त्रो को पढाते रहे होगे। कविता की ओर उनकी स्वाभाविक रुचि जरूर रही होगी, पर बौद्धधर्म ने अश्वघोष (ईसा की प्रथम शताब्दी) और उनके समकालीन मातृचेट, तथा कुछ पीछे के आर्यशूर को पैदा करने के बाद कविता के क्षेत्र को छोडकर प्रमाणपटुता को अपना लक्ष्य बना उसमे ही परम सफलता प्राप्त की। तो भी जो थोडे-से सस्कृत श्लोक सरहपाद के मिलते है, उनमे कवित्व का अभाव नही है। उदाहरणार्थ—

"या सा ससारचक्र विरचयति मन सन्नियोगात्महेतो
सा धीर्यस्य प्रसादाद् दिशति निजभुव स्वामिनो निष्प्रपञ्च।
तच्च प्रत्यात्मवेद्य समुदयति सुख कल्पनाजालमुक्त,
कुर्यात् तस्याङ्घ्रियुग्म शिरसि सविनय सदगुरो सर्वकालम्॥"

—बौद्ध गान ओ दोहा, पृष्ठ ३

और भी मधुर यह पद्य—

"तनुतरचित्ताङ्कुरको विषयरसैर्यदि न सिच्यते शुद्धै।
गगनव्यापी फलद कल्पतरुत्व कथ लभते॥" —वही, पृष्ठ ४

इसमे सरहपाद ने शुद्ध विषय-रस के सेवन पर जोर दिया है। इसी भाव को और स्पष्ट करते वह कहते है—

"येनैव विषखण्डेन म्रियन्ते सर्वजन्तव।
तेनैव विषतत्त्वज्ञो विषेण स्फुटयेद् विप॥"

—वही, पृष्ठ, ७५

सिद्धचर्या की ओर पैर बढाने से पहले राहुलभद्र ने शास्त्रो के अध्ययन के साथ काव्यो का अवगाहन किया होगा। यद्यपि कवि पैदा करने की प्रवृत्ति बौद्ध-विद्यापीठो मे नही देखी जाती थी, वल्कि उनकी उसकी

ओर कुछ उपेक्षा ही थी, यह इससे स्पष्ट है, कि चन्द्रगोमी अपने चान्द्र व्याकरण के लिए जितने प्रसिद्ध है, उतने अपने काव्य-ग्रथो के लिए नही। उनका 'लोकानन्द' नाटक तिब्बती मे अनुवादित होने के कारण बच रहा है, नही तो वह उनकी और काव्य-कृतियो के साथ लुप्त हो गया होता। यह नही माना जा सकता, कि 'लोकानन्द' ही चन्द्रगोमी की आदिम और अन्तिम कृति रही होगी। सामान्य शास्त्रो के अध्ययन मे बौद्ध साप्रदायिक नही थे। पाणिनि का वह बहुत सम्मान करते थे, और एक समय बौद्ध ही पाणिनि-व्याकरण के महान् आचार्य माने जाते थे। 'काशिका' (पाणिनि-वृत्ति) को बौद्ध-कृति माना जाता है। पतजलि के 'महाभाष्य' के बाद पाणिनि-वैयाकरण का सबसे प्रौढ प्राचीन ग्रथ 'न्यास' तो महान् नैयायिक और, महावैयाकरण जिनेन्द्रबुद्धि आचार्य की कृति है, जो बौद्ध थे। जिनेन्द्रबुद्धि ने न्यास की तरह ही दिङ्नाग के महान् ग्रथ 'प्रमाणसमुच्चय' पर एक सुन्दर टीका लिखी है, जो अब तिब्बती-अनुवाद मे ही प्राप्य है।

सरहपाद के सामने अश्वघोष के काव्य 'बुद्धचरित' और 'सौन्दर-नन्द', नाटक 'सारिपुत्रप्रकरण' और 'राष्ट्रपाल' मौजूद थे। गुणाढ्य की 'बृहत्कथा', भास के नाटक, कालिदास की अमर कृतियाँ, प्रवरसेन के नाम से प्रसिद्ध पर कालिदास की प्राकृत-कृति 'सेतुबन्ध', दडी भवभूति के सुभाषितो का अवगाहन करना राहुलभद्र के लिए सुलभ और आवश्यक भी था, क्योकि उनके बिना शिक्षा पूरी नही समझी जा सकती थी।

राहुलभद्र को ही सरहपाद के नाम से वज्रयान के प्रथम सिद्ध होने का गौरव प्राप्त है, पर उसका यह अर्थ नही कि मत्रयान या वज्रयान का आरभ उन्ही से हुआ था। सिद्ध चौरासी सिद्धो से पहिले भी होते रहे। मृच्छकटिक' मे (पाँचवी सदी) मत्रसिद्धि की बात ही नही, आश्चर्यवार्त्ता-सहस्रवाले श्रीपर्वत का भी उल्लेख है। सरहपाद से सौ साल पहिले हुए बाण हर्ष को सकल प्रणयिमनोरथसिद्धि श्रीपर्वत कहते है। श्रीपर्वत नागार्जुन का निवास-स्थान रह चुका था। नागार्जुनीकोण्डा (जिला गुण्टूर, आन्ध्र) मे प्राप्य विशाल ध्वसावशेष बतलाते है, कि श्रीपर्वत किसी समय एक महान् बौद्ध-केन्द्र था। वहाँ से मिले अभिलेखो से निश्चित ही है, कि वर्त्तमान नागार्जुनी कोण्डा का ही पुराना नाम श्रीपर्वत था। सरह के समय से

पहिले ही श्रीपर्वत प्रसिद्धि पा चुका था। सरहपाद को भी उसने अपनी ओर आकृष्ट किया, और वह अक्सर वहाँ जाकर रहा करते थे। उनको सद्गुरु वहाँ मिले या और कही, इसका पता नही। वस्तुत सिद्धचर्या का बौद्ध-इतिहास सरह तक जाकर अतीत के अन्धकार मे विलुप्त हो जाता है।

जैसे भी हो, एक दिन राहुलभद्र नालन्दा छोड बैठते है, और उसके साथ और बहुत-सी बातो को भी तिलाजलि दे देते है, जिसके लिए नालन्दा अस्तित्व रखता था। महायानी होते हुए भी नालन्दा मे अशोक के समय से चली आती विनय-परपरा मानी जाती थी। भिक्षु स्त्री-विरत रहते थे, वह मद्यपान नही कर सकते थे। उनके शरीर पर भिक्षुओ के चीवर अनिवार्यतया सदा बने रहते थे। राहुलभद्र को यह सारा बेकार का ढोग मालूम हुआ। ढोग समझ लेने पर वह अपने सम्मान-सत्कार की भी परवाह करने के लिए तैयार नही थे। कितने लोगो ने इसे सनक समझा होगा, पर सरह को उसकी भी परवाह थी नही। जैसा मैने पहिले कहा, वह असाधारण मस्तिष्क के पुरुष थे। जिस समय उन्होने यह महान् निर्णय किया, उस समय वह दूसरी भूमिका मे पहुँच गये थे। उनकी जाग्रत और स्वप्न की अवस्थाओ की सीमा-विभाजक रेखा मिट गई। असाधारण प्रतिभा के साथ-साथ यह मानसिक स्थिति सरह ने पाई थी।

अपनी खुली बगावत को और स्पष्ट करने के लिए उन्होने शर-कार (वाण बनानेवाले) की एक लडकी अपने साथ रख ली और स्वय भी सरकडो का शर बनाने लगे, जिससे उनका नाम सरहा पडा। फिर भक्त लोगो ने अपनी श्रद्धा के प्रतीक शब्द 'पाद' को जोडकर उन्हे सरहपाद कहना शुरू किया। आरभ क्या, वाद मे भी सनातनी बौद्ध और सुधारक बौद्ध उनका विरोध करते रहे, पर विरोधियो से उनके भगतो की सख्या और अधिक हो गई। उनके जैसे अन्तर और वाह्य से बिल्कुल खुले और निष्कपट पुरुष की नीयत पर तो कोई आक्षेप नही कर सकता था। छल और प्रपच के लिए जिन उपायो का इस्तेमाल किया जाता है, वह उन्हे इस्तेमाल करने मे असमर्थ थे। वह जमात से करामात नही करते थे, बल्कि अपनी महामुद्रा—शरकार-कन्या—के साथ अकेले विचरा करते थे। विचरण-भूमि मे नालन्दा से श्रीपर्वत तक की भूमि तो अवश्य थी, हो सकता है, वह उत्तरी भारत के सारे भूभाग मे विचरते हो।

वह अपने विचारो का प्रचार करना चाहते थे । ध्यान के साथ करुणा पर भी उनका बहुत जोर है और करुणा बिना ध्यान या शून्यता-योग को वह व्यर्थ समझते है। इस करुणा से ही प्रेरित होकर लोगो को अन्धेरे से बाहर निकालना चाहते थे । अपने दोहो के रचने मे उनका केवल यही उद्देश्य रहा होगा, यह नही कहा जा सकता । उनके कितने ही पद्य मौज मे निकले सहज उद्‌गार-से मालूम होते है। सस्कृत को नही, बल्कि साहित्यिक भाषा के तौर पर अभी अस्वीकृत अपभ्रश को अपने भावो का माध्यम बनाना बतलाता है, कि अपने दूर के अनुयायी कबीर की तरह वह पडितो से नही, बल्कि जन-साधारण से सबध रखना चाहते थे ।

§३. सरह की कृतियाँ

सरहपा केवल अपभ्रश-पद्यो के ही रचयिता नही है, बल्कि कई सस्कृत-ग्रथ—विशेषकर तंत्रो की टीकाएँ—उनके नाम की तिब्बती स्तन्-ग्युर मे है । इन्हें उन्होने अपनी किस स्थिति मे लिखा था, यह कहना मुश्किल है, सभवत वह आरभिक अवस्था की कृतियाँ हो । ऐसी कृतियो की सख्या सात है—

	नाम	स्तन् ग्युर् के तत्रो मे स्थानपृष्ठ-पक्ति	अनुवादक
१	बुद्धकपालतत्रपजिका 'ज्ञानवती'	र १०४ख१–१५०क२	गयाधर/ग्यि जो स्ल वडि
२	बुद्धकपालसाधन	र २२५ख३–२२६ख३	,, ,,
३	बुद्धकपालमण्डलविधि	र २३०ख२–२४३ख५	,, ,,
४	त्रैलोक्यवशकरलोकेश्वरसाधन	फु १८२ख२–१८३क६	अभयाकर/छ्ल् ख्रिम् ग्यल् म्छन्
५	,, ,,	फु १८४क६–१८४क६	रत्नाकर/ ,,
६	त्रैलोक्यवशकरावलोकितेश्वर-साधन	मु ४६ख२–४७क७	अमोघवज्र/ब रि लो च व
७	त्रैलोक्यवशकरलोकेश्वरसाधन	मु ८८क१–८८ख३	अग्स.प ग्यल् म्छन्

इनके अतिरिक्त यहाँ अनुवादित १६ अपभ्रश की कविताएँ स्तन् ग्यु्र् सग्रह के तत्र (ग्र्यद्) विभाग मे सगृहीत है, जिनके सरह की कृति होने की बहुत सभावना है, विशेषकर वे, जिनमे सरह के स्वतन्त्र और फक्कड विचारो की छाप दीख पडती है । यह कृतियाँ निम्नलिखित है ·

		पद्य-सख्या		
१	दोहाकोश गीति	१३५–२०	वि ७०ख५–७७क३	०
२	दोहाकोश नाम चर्यागीति	३८-२	शि २६ख६–२८ख६	०
३	दोहाकोशोपदेश गीति	८०-१	शि २९ख६–३३ख४	वज्रपाणि
४	क ख दोहा नाम	३३-०	शि ५५ख३–५७ख२	श्री वैरोचनरक्षित
५.	क.ख दोहाटिप्पण	०	शि ५७ख२–६५ख७	श्री वैरोवचनवज्र
६	कायकोशामृतवज्रगीति	१२४–०	शि १०६क२–११५ख४	०
७	वाक्कोशरुचिरस्वरवज्रगीति	४७-२	शि ११३क२–११५ख४	कृष्ण (नग् पो प)
८.	चित्तकोशाजवज्रगीति	२५-२	शि ११५ख४–११७क२	,,
९	कायवाक्चित्तामनसिकार	९०-०	शि ११७क३–१२२क३	,,
१०	दोहाकोश महामुद्रोपदेश	४३-२	शि १२क३–१२४क३	वैरोचनरक्षित
११	द्वादशोपदेशगाथा	१६-३	शि १२४क७–१२५क३	०
१२	स्वाधिष्ठानक्रम	१६-०	शि १२५क३–१२६क६	शान्तभद्र/ मॅ वन्.छोस् वर्
१३.	तत्वोपदेशशिखरदोहागीतिका	२५-१	शि १२६ख–१२७ख१	कृष्णपडित
१४	भावनादृष्टिचर्याफलदोहागीति		सि ३क५–४क२	०
१५	वसन्ततिलकदोहाकोग-गीतिका	६–३०	सि ५ख२–६ख६	०
१६.	महामुद्रोपदेशवज्रगुह्यगीति	१३४-१	सि ५५ख७–६२क६	कमलशील/स्तोन्. प. सेङ्. गे. ग्र्यल्. पो

सरह की अपभ्रंश की कृतियाँ दोहाकोश वा दोहा-गीति के नाम से प्रसिद्ध है। पर हम देखते है, कि उनकी सबसे अधिक प्रसिद्ध कृति "दोहा-कोश नाम चर्यागीति" मे दोहो की अपेक्षा चौपाइयाँ अधिक हैं। इससे यही मालूम होता है, कि दोहा शब्द अभी अपने आज के अर्थ मे रूढ नही हुआ था और उसका अर्थ दोहरी पंक्ति वाले छन्द से था। इसी तरह अभी अमरकोशके रहते भी 'कोश' शब्द केवल शब्दकोश के लिये इस्तेमाल नही होता था, इसीलिए यहाँ 'दोहाकोश' का अर्थ दोहासंग्रह मात्र था। प्राकृत की महान् कृति 'गाथासप्तशती' को पहिले 'गाथा-कोश' ही के नाम से पुकारा जाता था। इसमे शक नही कि दोहाकोश नाम का प्रचार सरह की इसी कृति द्वारा हुआ। उनकी चार कृतियाँ भिन्न-भिन्न नाम के दोहा-कोश है। तिब्बत मे अब भी प्रचलित परंपरा के अनुसार सात दोहाकोश (दोहा म्जोद्. व्दुन्) सिद्धचर्या और वज्रयानी योग के प्रेमियो के वेद माने जाते है। इनमे सरहपा, लुईपा, विरूपा, कण्हपा, तिलोपा आदि के कोश सम्मिलित हैं। तिब्बती भाषा मे सप्तकोश पर बहुत बड़ा साहित्य है जिसके अध्ययन से सिद्धो के विचारो पर काफी प्रकाश पड़ सकता है।

§४. सरह की परम्परा

जैसा कि ऊपर बतलाया गया, शबरपा सरह के प्रधान शिष्य थे, जिन्हे आदर से शबरेश्वर भी कहते है। शबर कहने से उन्हे आदिवासियो की सन्तान नही समझना चाहिए। सरहपा के दूसरे शिष्यों मे जोगी, नागा-र्जुन और सर्वभक्ष भी थे। यह नागार्जुन यदि कोई ऐतिहासिक व्यक्ति थे, तो द्वितीय शताब्दी के माध्यमिक आचार्य नागार्जुन नही हो सकते, यद्यपि ऐसा करने के लिए उन्हे कई सदियो की आयु देने की कोशिश की गई है और इसीलिए उनकी ऐतिहासिकता—जहाँ तक सरहपाद के शिष्यत्व का सम्बन्ध है—सदिग्ध हो गई है। तिब्बती परपरा ने आदि-सिद्ध सरहपाद को छठा सिद्ध नही बनाया, बल्कि जान पड़ता है, किसी पक्षपात के कारण प्रथम सिद्ध बनने का सौभाग्य सरह के प्रशिष्य भूतपूर्व राज-कायस्थ लूईपा को प्राप्त हुआ। बिहार-बगाल के नालन्दा, विक्रमशिला और जगत्तला के महान् विहारो के तुर्कों द्वारा ध्वस्त कर दिये जाने पर

भारतीय सघराज शाक्यश्रीभद्र के साथ शरणार्थियो की जो मडली तिब्बत पहुँची थी, उसमे शाक्यश्रीभद्र के शिष्य तथा अपनी भाषा (पूर्वी मैथिली) के कवि विनयश्री भी थे। विनयश्री तिब्बत के स.स्क्य बिहार मे बहुत समय तक रहे। शायद वह फिर लौटकर भारत नही आये। वहाँ एक बडल से जो मूल्यवान् हस्तलेख मिले थे, उनमे विनयश्री के कितने ही स्वरचित गीतो के साथ सिद्धो का नामानुस्मरण भी था, जिसका शायद आज ही तरह गुरुपरम्परा के तौर पर पाठ किया जाता था। पाठ कुछ अधिक भ्रष्ट मालूम होता है, जिससे विनयश्री के हाथ का लिखा होने मे सन्देह होता है। इस परम्परा मे भी पहिला नाम लूईपा का मिलता है, जैसे :—

"लुइ (१) लीला (२) बिरुआ (३) कमल (३०) कलक्कल (६८) चलणा।
काकण (२६) कन्हदेव (१८) त डोम्बि (४) वीणा (११) नाग (७६) हरणा। (१)
सिद्ध (च) लणो भावि रपभास र बान्दइ।ध्रु।
भाट (२४) भादे (३५) भुसुकु (४१) कोकिल (८०) जोगी (५३) बाजपाचे। (२)
नीलप (४०) माथ विसुधो डेङ्कपा (३१) असिष[2] धरि।
मेखला (६६) सरह (६) सबर (५) तैलोम्रे (२२) कुक्कुरिपा (३४) अप सिद्धा। (३)

चन्दकिति भुअ-भुअ कि अन्ता पुण सरहे निबधा।
चन्दण[3] किष्णपा (१७) आ माहिल (३७) वीर सम्वरा। (४)
सुगतभूषण धोकडि (४६) तान्ति (३३) धामधुम (३६) अवतारा।
सहजो स कपिल थाकलि (१६) सव्बभक्ष (७५) विसेसे[1]। (५)
सान्ति (१२) चाटपा (५६) लक्ष्मि (८२) अनतिन (५८) सनल विसेसे।
महिधर (५०) सुखमदेव कन्हपा (१७) जउडि (६४) विरुअ (३) तीनी। (६)
चन्द्रभूति दुदुआ चन्द[5] राउल कोङकल (६८) आहि ना।

विर अचिन्त (३८) अधार्घी वज्ज-आङ्कर कराली । (७)

दारिक (७७) गुडरि (५५) गगना (१६) डाक पभाकर काम्वलि (३०)

उडिआणावर घटा (५२) कमलसिल निरासु । (८)

श्री जलन्धर (४६) नाग (?७६) वुद्ध भल दिलाहु सुप्रसिद्ध ।

उडविसि दास पभासर धारना सिद्ध । (६)

आर्यदेव (१८) नागार्जुन (२६) राउले (४७) सिद्ध मेखला (६६) निवधा ॥

इस सूची मे कुछ नाम ऐसे भी है, जो ८४ सिद्धो की प्रामाणिक सूची मे नही मिलते । पर वह किसी की गुरु-परम्परा मे हो सकते है, जैसे चन्द्रराहुल की पूरी सूची हम अन्यत्र (पुरातत्त्वनिवधावली) मे दे चुके है। यहाँ हम सिद्ध सरहपाद के शिष्य वगवृक्ष को देते है, जिससे पता लगेगा कि आठवी से ग्यारहवी सदी ईसवी तक कौन-कौन-सी आध्यात्मिक विभूतियाँ पैदा हुई थी—

सरह-वंश-वृक्ष

(राजा गोपाल ७६५–६६)
सरह ६
मुसुक ४१
जोगी ५३
शबर ५
नागार्जुन १६
सर्वभक्ष ७५
मेखला २६
लुई ५
आर्यदे ८१
नागाबोधि ७८
पक्ज ५१
किल ७३
डेंगी ३१
दारिक ७७
विरुपा ३
राहुल ४७
लीला ३
भद्र २४
(देवपाल ८१५—५४ मई)
सर्वभक्ष ७५
चिता घटापा ५
डोवि ४
गुडरि ५५
जलधर ४५
मत्स्येंद्र
मेखला ६६
अनग ८१
कमरि ३०
तति १३
चर्पटी ५६
धर्म ६३
कण्हपा
१७
कमरि ३०
कुकुरि ११
हालि ५०
गोरक्ष
चौरंगी
लक्ष्मी
इंद्रभूत
गुह्य
चेतन ८
मेखला ६६
कनखला ६७
महिपा ३७
भद्र २७
कथलि ६१
भादे ३२
(नारायण ८५७–६११ ई०)
विजय
लक्ष्मी ८२
वीणा ११
जवरी ६४
तेलो २२
लीला २
(महिपाल ६६२–१०४० ई०)
शवरद्वि० नारोपा २०
थगन १६
अवधूति
मर.बा
शातिपा १२
कमर ४५
चेलुक ५४
दीपकश्रीज्ञान
मि.ला
कुठालि ४४
(नेपाल १०४४-५५") कान्हपा २७

इस वश-वृक्ष के देखने से मालूम होगा कि गोरखनाथ—जिनका पथ अब भी सारे भारत मे फैला हुआ है—सरह>शवर>लुई>दारिक>घटा जलधर>मत्स्येन्द्र की शिष्य-परम्परा मे थे। महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर भी सरह की परम्परा के ही थे, जैसे

आदिनाथ (जलधर)> मत्स्येंद्र> गोरख>गहनी> निवृत्ति नाथ> ज्ञानेश्वर। ज्ञानेश्वर और गोरखनाथ के बीच की कुछ पीढियाँ छूटी मालूम होती है, क्योकि गोरखनाथ राजा देवपाल (८१५–५४ ई०) के समकालीन थे और ज्ञानेश्वर १४ वी सदी के।

§५. कवित्व

सरह के समय मे पहुँचते-पहुँचते सस्कृत और प्राकृत दोनो साहित्यो का मध्याह्न बीत चुका था। अश्वघोष, भास, कालिदास के काव्य नाटक अब तक प्रसिद्ध हो साहित्यानुरागियों के प्रेम-भाजन बन चुके थे। सुबन्धु, दडी और बाण—जैसे महान् गद्यकार कवि भी हो चुके थे। भामह और दडी-जैसे उद्भट साहित्य-मीमांसक भी उस समय तक प्रसिद्धि पा चुके थे। प्रवरसेन की "कीर्त्ति" भी सागरस्य पर पार चली गई थी। सरहपाद पहिले सस्कृत के महापडित के तौर पर नालन्दा मे प्रसिद्ध हुए थे। उन्होने इन काव्यनिधियो का अच्छी तरह अवगाहन किया था। वह चाहते तो अपने समय की शिष्ट सरणी का अनुसरण करते, उच्च समाज मे एक सफल कवि के तौर पर ख्याति प्राप्त कर सकते थे। पर उन्होने शिष्ट साहित्य की जगह लोक-साहित्य का अनुसरण करना पसन्द किया, और अपन मन से यह भाव निकाल दिया, कि कभी मैंने उन ग्रथों का अध्ययन किया था। उनकी कविता में शास्त्र-सम्मत गुणो का अभाव नही है। उपमा का वह अक्सर सुन्दर प्रयोग करते है। उनके दोहाकोश 'चर्या-गीति' (२) के तो एक-एक पद मे उपमाएँ भरी-पडी है। अफसोस है, सरह की इस अनमोल कृति को अभी मूल-भाषा मे नही पाया गया, और उसके तिब्बती अनुवाद से ही हमे सन्तोष करना पडेगा। इसमे उन्होने जो उपमाएँ दी है, उनमें से कुछ है-

(१) जैसे जलधर सागर से जल लेकर पृथिवी पर फैलाता है। (५)

(२) जैसे सागर का खारा जल जलधर के मुख मे पड मीठा हो जाता है (११)

(३) बिजली के घोष को छोड पानी बरसता जाता है। (१२)

(४) जैसे फूल के भीतर की मधु को मधुमक्खी ही जानती है। (१४)

(५) जैसे दर्पण के रूप को अन्धा नही समझता। (१५)

(६) फूल की गध का रूप नही होता, तोभी वह प्रत्यक्ष सर्वत्र व्याप्त है। (१६)

(७) कीचड मे पडा उत्तम रत्न अपनी चमक को प्रकाशित नही करता। (२८)

(८) जैसे बीज से अकुर होता है, अकुर के कारण टहनियाँ होती है।

(१०) जैसे ब्राह्मण घृत और तडुल से प्रज्वलित अग्नि मे होम करता है। (२३)

यद्यपि इच्छा होने पर उन्होने उपमाओ का इतना सुन्दर प्रयोग किया है, पर वह बहुत कम और एकाध ही कृतियो मे। सरह ने अपनी कविता मे कुछ नई मान्यताएँ स्थापित की, जिनका पता उनसे पहिले नही मिलता, यद्यपि उनका अस्तित्व लोक-काव्य मे रहा होगा। यही मान्यताएँ गोरख, कबीर, नान्हक, दादू आदि सभी सन्तो मे पाई जाती है। यही आगे चलकर सन्त-काव्य की कसौटी बन गई। इनमे व्यग्योक्तियाँ, उलटवासियाँ भी शामिल है। सरह कविता करना अपना ध्येय नही समझते थे। वह नया सदेश देना चाहते थे, जिसका जिक्र हम आगे करेगे। स्मरण करने की सुविधा के लिए जिस तरह उस समय नाना शास्त्रो पर ग्रथ श्लोक या कारिका मे लिखे जाते थे, उसी तरह उन्होने भी अपने विचारो को लौकिक छन्दो मे गूँथा। बल्कि सरह के बारे मे यह भी कहना ठीक नही प्रतीत होता। सरह आज की भाषा मे अब्नार्मल प्रतिभा के धनी थे। मूड आने पर वह कुछ गुनगुनाने लगते। शायद उन्होने स्वय इन पदो को लेखबद्ध नही किया। यह काम साथ रहनेवाले सरह के भक्तो ने किया। यही कारण है, जो दोहाकोश के छन्दो के क्रम और सख्या मे इतना अन्तर मिलता है। सरह जैसे पुरुष से यह आशा नही रखनी चाहिए, कि वह अपनी धर्म की दूकान चलायेगा, पर, आगे वह चली, और खूब चली, इसे कहने की आवश्यकता नही। ८०० से कुछ ऊपर के 'दोहो' के मूल-रूप

मे आये विना हम उनकी कविता का पूरा मूल्याकन नही कर सकते । वह मूल मे अब न मिल सकेगे, ऐसा मै नही समझता, अब भी उनमे से कितने ही तिव्वत मे मिलेगे, यह मेरी धारणा है ।

दोहा कोश-गीति मे भी उपमाओ का प्रयोग सरह ने किया है, यद्यपि चर्यागीति जितना नही —

(११) अप्पा परहि ण मेलविउ, गमणागमण ण भोग्ग ।
तुस कुट्टन्ते काल गउ, चाउल हत्थ ण लाग्ग । (५४)

(१२) अण्ण तरग कि अण्ण जलु, भव-सम ख-सम सरूअ ।। (७६)

(१३) जत्तइ पइसइ जलहि जलु, तत्तइ समरसु होइ ।। (७८)

(१४) मुअणं जिम वरकामिणि माणिउ । रइ-सुह तहि पच्चक्खहि समाणिउ ।
(१०७)

(१५) जिम-जल-मज्झे चन्दडा, णउ सो साच्च ण मिच्छ ।
तिम सो मण्डल-चक्कडा, णउ हेडइ णउ खित्त ।। (११८)

(१६) जिम जलेहि ससि दीसइ च्छाआ । तिम भवे पडिहासइ सअलवि माआ
(१३०)

कवीर की उलटवासियाँ मशहूर है, पर इसका भी आरंभ हम सरह मे पाते है । 'दोहाकोशगीति' के कुछ उदाहरण देखिये—

(१) वद्धो धावइ दस दिसाहि, मुक्को णिच्चल ट्ठाअ ।
एमइ करहा पेक्ख सहि, विवरिअ मह पडिहाअ ।। (२६)

(२) आगगे आच्छअ वाहिरे आच्छअ । पइ देक्खअ पडवेसी पुच्छअ (६९)

रहस्योक्तियां तो सरह की होनी ही चाहिए, क्योकि वह मूलत रहस्यवादी विचारक है । इनके श्लेष परमपद-परक होने पर भी साधारण कामुकता को भी प्रकट करते है, जिसके कारण पीछे वह घोर वामाचार के सहायक वन गये । उनका निम्न गीत वहुत सुन्दर है, भाव मे और काव्य-गुण मे भी—

ऊँचा-ऊँचा पावत तहि वसइ सवरी वाली ।
मोरङ्गी पिच्छि प(हि)रहि सवरी गीवत गुजरी माला ।
ऊमत सवरो पागल सवरो, मा कर गुली-गुहाडा ।
तोहारि णिअ घरिणी सहज सुन्दरी ।ध्र.।

णाणा तरुवर मौलिल रे, गअणत लागेलि डाली ।
एकली सबरी ए वन हिण्डइ, कर्णकुडल वज्रधारी ।
तिअ धाउ खाट पडिला सबरो, महासुह सेज्जि छाइली ।
सबरो भुजग णइरामणि दारी, पेक्ख (त) राति पोहाइली ।
हिए ताबोला महासुहे कापुर खाई ।
सून निरामणि कण्ठे लइआ महासुहे राति पोहाई ।
गुरु वाक पुंछआ बिन्ध णिअ मणे वाणे ।
एके शर-सन्धाने बिन्धह, बिन्धह परम णिवाणे ।
उमत सबरो गरुआ रोषे,
गिरिवर सिहर सन्धि पइसन्ते, सबरो लोडिब कइसें ।

ऊँचे-ऊँचे पर्वत पर शबर-बालिका बैठी है, जिसके सिर पर मोर-पाँख और ग्रीवा मे गुंजा की माला है । उसका प्रिय शबर प्रेम मे उन्मत्त पागल है । "ओ शबर, तू हल्ला-गुल्ला मत कर। तेरी अपनी (निज) गृहिणी सहज सुन्दरी है । उस पर्वत पर नाना प्रकार के तरुवर फूले हुए हैं, जिनकी डालियाँ गगन से लगी हुई है । कान मे कुंडल-वज्र धारे शबरी अकेली इस वन मे घूम रही है । दौडकर खाट पर महासुख-सेज पर शबर पड गया। शबर भुजग (विट) और नैरात्म्य (शून्यता) वैश्या (दारी) को देखते रात बीत गई । हृदय ताबूल को महासुख-रूपी कपूर (के साथ) खा, शून्य नैरात्मा को कठे लगा महासुख मे रात बीत गई । गुरु-वचन पूछकर निज मन-रूपी बाण से बेध—एक ही शर-सन्धान से बेध-बेध परम निर्वाण को।

इसके अधिक भाग मे शबरी बालिका उसके तरुण प्रेमी शबर तथा उनके मनोहर पर्वत-वन-निवास का सुन्दर और स्वाभाविक वर्णन है । यदि कुछ विशेष साकेतिक शब्दो पर ध्यान न दिया जाय, तो यह एक शृगारी कविता है। हरेक पाठक उन साकेतिक शब्दो की ओर ध्यान देने के लिए मजबूर भी नही है। यहाँ शबरी से सन्तो और सरह के यहाँ भी सुरति (तल्लीनता) अभिप्रेत है । उसका प्रेमी शबर साधक है। वुद्ध के मुख्य सिद्धान्त—जो है, वह सब क्षणिक है—के अनुसार जगत् और उसके किसी पदार्थ के अन्तस्तल मे भी कोई नित्य पदार्थ—आत्मा या ब्रह्म—निहित नही है। सभी आत्म-रहित निरात्मा या नैरात्म्य, नइ-रामणि है । उसी नैरात्म्य तत्त्व-शून्यता को साक्षात् करना है। उसी

'णडरामणि दारी' का भुजग हरेक साधक विलासी को बनना है। उसका साक्षात्कार महासुख की अनुभूति है, जिसे योगी ध्यानमग्न हो प्राप्त करता है ।

§३. सरह के विचार

१ धर्म

सरह विद्रोही थे। राजनीतिक विद्रोही नही, विचारो की दुनिया के विद्रोही और कितने ही अगो मे सामाजिक विद्रोही भी । उन्होने अपने 'दोहाकोश-चर्यागीति' के पहिले १२ दोहो मे अपने समय के धार्मिक सप्रदायों और उनक विचारो का खडन किया है । "यदि नग्न रहने से मुक्ति हो, तो कुत्ते और सियार भी मुक्त हो जायँगे। मोर-पख ग्रहण करने मे यदि मोक्ष हो, तो मोर और चमर भी मुक्त हो जायँगे। शिला चुगकर खाने मे यदि ज्ञान हो जाये, तो करि और तुरग भी ज्ञानी हो जायेगे । इन्ही भावो को और करीब-करीब सरह के शब्दो मे ही, छ शताब्दियो बाद कबीर ने कहा—

का नागे का बाधे चाम । जौ नहि चीन्हसि आतम राम ।
नागे फिरे जोग जे होई । बनका मृग मुकति गया कोई ।
मुड-मुडाये जौ सिधि होई । स्वर्गहि भीड न पहुँची कोई ।
(कबीर-ग्रथावली, पृष्ठ १३०)

अपने समय के कितने ही मूढ विश्वासो का—जिनमे से बहुतेरे बारह सदियो बाद आज भी उसी तरह प्रबल है—खडन सरह ने जैसे किया है, उसके नमूने लीजिए—

मत्र-तत्र खडन—
किन्तहि दीपे कि णवेज्जे । किन्तइ किज्जइ मन्तह भावे । (१२)
मन्त ण तन्त ण धेअ ण धारण। सव्ववि रे वढ, विब्भमकारण। (३४)

शास्त्र को सरह ने मरुस्थल कहा है, जिसकी भूल-भूलैया मे पडकर आदमी निकल नही सकता—

गुरु-वअण-अमिअ-रस, धवहि ण पिविअउ जेहि ।
बहुसत्तत्थ-मरुस्थलेहि, तिसिअ मरिव्वो तेहि ।। (४४)

और पडितो की खबर लेते कहते है—

पडिअ सअल सत्थ वक्खाणअ। देहहि बुद्ध वसन्त ण जाणअ। (७४)

छूत-छात और भक्षाभक्षय के कठोर नियमों की निस्सारता बतलाते कहते है।

जइ चण्डाल-घरे भुंजइ, तअवि ण लग्गई लेउ। (११२)

(१) साधु होना बेकार

घरहि म थक्कु म जाहि वणे, जहि तहि मण परिआण।
सअलु णिरन्तर बोहि–ठिअ, कहि भव कहि णिब्बाण।
णउ धरे णउ वणे बोहि ठिउ, एहु परिआणहु भेउ।
णिम्मल चित्त-सहावता, करहु अविकल सेउ। (बाग० १०३, १०४)

घर मे न रहो न वन मे, सब जगह तो निरन्तर बोधि (परमज्ञान) स्थित है, फिर कहाँ भव (ससार) और कहाँ निर्वाण ? न घर मे बोधि (परमज्ञान) है न वन मे। इस भेद को अच्छी तरह समझ लो। चित्त का निर्मल होना असली बात है, उसका बराबर सेवन करो।

इन्द्रिय-संयम के सरह पक्षपाती है, पर उसके चरम रूप को नही पसन्द करते। उन्होने कहा है—

विसआसत्ति म बन्ध करु, अरे बढ सरहे वुत्त।
मीण-पअडगम करि भमर, पेक्खह हरिणह जुत्त। (वाग० ७१)

रस-रूप-स्पर्श-गध-शब्द के लोभ मे पडकर मीन, पतग, भ्रमर, हाथी, और हरिन नष्ट होते है, इस प्रसिद्ध उपमा को देकर वह सयम का पाठ पढाते है।

(२) सहज जीवन

सरह की सबसे बडी देन जो है, वह है, सहज या नैसर्गिक जीवन पर जोर देना। सहजवाद के वह प्रथम आचार्य है, इसलिए उनके पन्थ को सहजयान भी कहते है। यह उल्लेखनीय बात है, कि अन्य कितनी बातो की तरह यह वाद कबीर के पास भी पहुँचा, यद्यपि तब कबीर के जन्म-देश मे एक भी बौद्ध या सहजयानी नही रह गया था। कबीर कहते है—

अब मै पाइबो रे पाइबो ब्रह्मगियान।
सहज समाधे सुख मे रहिबो, कोटि कलप विश्राम।

—कबीर-ग्रंथावली, पृष्ठ ८९

कबीर साहब चौरासी सिद्ध शब्द से अपरिचित नही थे। उन्होने कहा है—

धरती अरु असमान बिचि, दोइ तूंबड़ा अबध।
षट दरसन संसै पड्या, अरु चौरासी सिद्ध ।। ५३६

वही, पृष्ठ ५४

पर उन्हे नही मालूम था, कि चौरासी सिद्धो मे प्रथम सरहपा थे, जिनके बीसियो भावो को कबीर ने ले लिया है। सरह कहते हैं—

झाण-हीण पव्वज्जे रहिअउ। गही वसन्ते भाज्जे सहिअउ ।। (१८)

ऐसे ध्यान और साधुवेष से रहित भार्या-सहित घर मे रहते ज्ञानी कबीर स्वयं थे।

सरह फिर कहते हैं—

खाअन्ते पीवन्ते सुरअ रमन्तें। आलिउल बहलहो चक्क फरन्ते ।।
एवहि सिद्धि जाइ परलोकह। माथे पाअ देइ भुअलोक (४८)

सहज-जीवनका निर्देश करते वह कहते है—

देक्खउ सुणउ पईसउ साद्दउ। जिग्घउ भमउ बईसउ उट्ठउ ।।
आलमाल ववहारें वोल्लउ। मण च्छड्डु एकाआरे म्म चलउ ।।
चिन्ताचित्तवि परिहरहु, तिम अच्छहु जिम बाल ।। (६३,६४)

स्पष्ट है, कि सरह जीवन के भोगो को त्याज्य नही मानते। हाँ उनमे आसक्ति त्याज्य है। उपनिषद् के मन्त्रो ने उनसे डेढ़ हजार वर्ष पहिले ज्ञानी को 'बाल्येन तिष्ठासेद्' का उपदेश दिया था। सरह भी कहते है, 'वैसे रहो जैसे बालक रहना है'। आसक्ति और छल-पाखंड के जीवन के वह विरोधी थे। इसे उन्होने आजकल के कितने ही महात्माओ की तरह दूकान चलाने के लिए नही इस्तेमाल किया, बल्कि वह स्वयं वैसा जीवन बिताते थे। उनके साथ शर बनानेवाले की कन्या रहती थी, यह पहिले बतला आये है। भिक्षुओ के चीवर के साथ उनके नियमो का उन्होने प्रत्याख्यान कर दिया था। उनका कहना था—

विसअ रमन्त ण विसअहि लिप्पइ। उअअ हरन्त ण पाणी च्छुप्पइ। (७१)

विषयो मे रमण करते विषयो में लिप्त न हो। पानी निकालते हुए पानी को न छूये।

जह जग पूरिअ सहजाणन्दे। णाच्चहु गाअहु विलसहु चगे ।। (१३६)

जगत् सहज आनन्द से भरा हुआ है। नाचो, गाओ, अच्छी तरह विलास करो।

आज के लिए भी सरह के ये विचार विद्रोही मालूम होगे, फिर आज से बारह सौ वर्ष पहिले के आचार और निवृत्ति-प्रधान भारतीय भद्र समाज के लिए यह कितनी कडवी घूँट साबित हुई होगी, इसे अच्छी तरह समझा जा सकता है।

२ योग (समाधि)

आज भी योग-ध्यान के पीछे लोग पागल दीखते है। सरह के समय भी—

'झाणे मोहिअ सअलवि लोअ।' (ध्यान पर सभी लोग मोहित) थे। सरह स्वय योगी नही योगीश्वर थे। उन्होने ध्यान-समाधि का बहुत अभ्यास किया था, और उसके सबध मे फैले हुए भ्रमो को जानते थे। उन्होने मूढ योगियो के योग को काष्टयोग कहते सावधान किया है—

"पवण धरिअ अप्पाण म भिन्दह। कट्ठ जोइ णासग्ग म बदह॥" (९३) श्वास रोककर या नासाग्र मे चित्त को लगाकर योगी चमत्कार दिखलाता है। पर, चित्त की एकाग्रता से आदमी ऐसी चीजो को भी देखने लगता है, जो उसके चित्त की सृष्टि है? इस प्रकार वह आत्म और पर-वचना करता है। चित्त, मन और विज्ञान बौद्ध परिभापा मे एक ही चीज के नाम है। चित्त की अपार शक्ति को सरह मानते थे और उसके स्वरूप को समझ लेना परम पुरुषार्थ मानते थे। चित्त के सबध मे उन्होने कहा है—

चित्तेक सअल बीअ भव-णिब्बाणा जम्म विफुरन्ति।
त चिन्तामणिरुअ, पणमह इच्छाफल देइ। (२३)

ससार और उसका निरोध निर्वाण दोनो चित्त से ही स्फुरित होते है। चित्त सबका बीज है। वह चिन्तामणि-रूप है। उसकी सेवा करो, वह इच्छा फल प्रदान करेगा।

मन या चित्त को मुक्त करना ही परम कर्तव्य है—

वज्झइ कम्मेण जणो, कम्म-विमुक्केण होइ मण मुक्को।
मण-मोक्खेण अणुअर, पाविज्जइ परमणिव्वाण॥ (२४)

आदमी कर्म से बधन मे पडता है। कर्म से मुक्त होने पर मन मुक्त

हो जाता है, और फिर तुरन्त ही परमनिर्वाण पा जाता है। फिर कहते हैं—

चित्ते वद्धे वज्झइ मुक्के मुक्कइ णत्थि सन्देहो। (९१)

जबर्दस्ती चित्त को काबू मे नही रखा जा सकता।

एहु णिअ मण तुरग सुचचल। मेलहि सहाव ट्ठाअ दो-णिम्मल॥ (९८)

इस चचल तुरग-मन को उसके स्वभाव पर छोड़ देने मे वह निर्मल हो स्थिर हो जाता है।

चित्तहि चित्त जइ लक्खण जाइ। चचल मण पवण थिर होइ (जाइ)॥
(१२०)

सरह ने अपने योग और आचार का अत्यन्त सक्षेप करते करुणा और शून्यता (नैरात्म्य, नैरामणि) पर जोर दिया है। यह दोनो वस्तुएँ अलग-अलग नही अभ्यास मे लाई जा सकती। दोनो एक-दूसरे मे घनिष्ठतया सवद्ध (युगनद्ध) होनी चाहिए, तभी वह कार्यकर होती हैं।

करुणारहिअ जो सुग्गणि लग्गा। णउ सो प वई उत्तिम मग्गा॥ (१६)
अहवा केवल करुणा साहअ। (जम्मसहस्सहि मोक्ख ण पावअ)
जइ पुण वेण्णवि जोडण मक्कअ। णउ भव णउ णिव्वाणे थाक्कअ॥ (१६, १७)
सुण्ण तरुवर फुल्लिअउ, करुणा विविह विचित्त॥
अण्णा भोअ परन्त फलु, एहु सोक्ख परु चित्त॥ (वाग० १०८)

सरहपाद अद्वय तत्त्वशून्यता के अभ्यासी थे साथ ही सबके ऊपर अपार करुणा रखनेवाले थे। हिन्दी के आधुनिक सरह निराला सहज योगी है, शून्यता और नैरात्मा के वाद मे उन्हे कोई मतलब नही, पर उनमे भी अपार करुणा है। किसी को दुखी देखना उनकी सहन-शक्ति से बाहर की बात है। जाडो मे अपने चाहे ठिठुरते रह जाय, पर दूसरे को देख वह अपनी रजाई उसे उढा आयेगे। ऐसे वेबसी के जीवन को सरह पसन्द नही करते, जिसमे किसी दुखिया की सहायता न की जा सके। वह कहते हैं—

जो अत्थीअण ठीअउ, सो जइ जाइ णिरास।
खण्डसरावें भिक्ख वरु, च्छ(ा)डहु ए गिहवास॥
परउआर ण कीअउ, अत्थि ण दीअउ दाण।
एहु ससारे कवण फलु, वरु छड्डहु अप्पाण। (वाग० १११, ११२)

यदि अर्थी जन निराश चला गया, तो ऐसे गृहवास से टूटा मृत्पात्र ले भीख माँगना अच्छा। दान और पर-उपकार के विना इस ससार मे रहने का क्या फल ? इससे तो जीवन छोड देना बेहतर है।

(१) अपने पराये का भेद छोड़ना

जाव ण अप्पउ पर परिआणसि। ताव कि देहाणुत्तुर पावसि। (६७) आत्म और पर का भेद मिटाना साधक का परम कर्त्तव्य है।

(२) सहज योग

ऋद्धि सिद्धि का लोभ छोड सहज भावना कल्याणकारिणी है।

सहजे सहज वि बुज्झइ जब्बे। अन्तराल गइ तुट्टइ तब्बे।
रिद्धि-सिद्धि हले वेण्णि न काज्ज। पाप-पुण्य तहि पाडहु वाज्ज॥ (८२, ८३)

जगतको 'जगु सहावे सुद्ध' (१०१) मानते, कहते थे—

जग उपपाअणे दुक्ख बहु, उप्पण्णउ तहि सुह-सार। (१०३)

जग मे उत्पन्न होने से यदि दु ख बहुत है, तो सुख का सार भी वही है। जग को सहजानन्द से पूरित बतला उन्होने कहा—नाचो, गाओ, विलसो (१३६) और यह भी कि—

मुक्कउ चितगेएन्द करु, एत्थ विअप्प ण पुच्छ।
गअण गिरि णइ-जल पिअउ, तहि तड वसउ सइच्छ। (बाग १००)

चित्त-रूपी गजेन्द्र को मुक्त कर दो। इसमे पूछ-पाछ न करो। गगन (शून्य)-रूपी गिरि नदी के जल को पीके उसके तट पर उसे स्वच्छन्द बैठने दो।

ऋजुमार्ग यही सहज मार्ग है, जिसमे जीवन को अपने नैसर्गिक रूप मे बिताना पडता है।

उजु रे उजु छाड्डि मा लेहु रे वक। णिअहि वोहि मा जाहु रे लाङक॥
वाम दाहिण जो खाल-बिखाला। सरह भणइ बपा उजु वाट भाइला॥
—'बौद्ध गान ओ दोहा' (पृष्ठ ४८)

सरह अपने मार्ग को दोनो चरम-पथ से भिन्न मध्य का वतलाते है। सहज शब्द उन्होने बुद्ध की मध्यमा प्रतिपद् के लिए ही इस्तेमाल किया है, हाँ, उससे कुछ अन्तर रखते।

(३) चन्द्र-सूर्य-साधना

सन्तो के भावना-मार्ग मे चन्द्र-सूर्य या इडा-पिंगला की साधना आती है। सरह मे पहिले की योग-क्रियाओ मे इसका जिक्र नही आता, संभवत यह सरह की ही सूझ और अभ्यास के परिणाम है। वह कहते थे—

चन्द-सुज्ज घसि घालइ घोट्टइ। सो आणुत्तर एत्थु पइट्ठइ ॥ (३५)
अध-उद्ध मागवरे पइसरेइ। चन्द सुज्ज वेइ पड़िहरेइ ॥
वञ्चिज्जइ कालहुतणअ गइ। वे विआर समरस करेइ ॥ (५७)

चन्द्र और सूर्य भावना-रश्रो को वह वाधक समझते है। उन दोनो को छोड़-ऊपर अनुत्तर सर्वोत्तम मार्ग पर पहुँचना है। सरह की बताई इस भावना के अभ्यास करनेवाले योगी तिब्बत मे आज भी मौजूद है। हमारे आज के भारत मे सरह का नाम हाल मे ही कुछ सुनाई पड़ने लगा है, पर तिब्बत मे वह आज भी अतिपरिचित और पूज्य मार्गदर्शक है।

२ दर्शन (प्रज्ञा)

सरह का यान सहजयान या वज्रयान महायान का आगे क विकास है—जहाँ तक कि उसके दर्शन का संबंध है। इसलिए, असंग के योगाचार और नागार्जुन के माध्यमिक (शून्यवाद) से उसका संबंध होना स्वाभाविक है। शून्यता—सभी भौतिक अभौतिक पदार्थों का किसी भी नित्य सार से रहित होना—को उन्होंने अपनी योग-भावना का पर्याय माना है। करुणा तथा शून्यता भावना के युगनद्ध रूप मे ही परम पुरुषार्थ की प्राप्ति मानी है। योगाचार (क्षणिक विज्ञानवाद)-दर्शन का आलय-विज्ञान मूल तत्त्व है। वैभाषिक, सौत्रान्तिक दोनों हीनयानी बौद्ध-दर्शन द्वैतवादी है। वैभाषिक या सर्वास्तिवादी (और स्थविरवादी भी) रूप (भूत) और विज्ञान (चेतना) दोनो तत्त्वो को मानते है। सौत्रान्तिक बाह्य पदार्थ (रूप) पर अधिक जोर देते हुए भी विज्ञान का अपलाप नही करते, इस लिए दोनो ही द्वैतवादी है। माध्यमिक अन्तर और बाह्य सभी पदार्थो को सार (नित्यतत्त्व)-शून्य मानते है, और एक कदम और आगे बढ़कर रूप और विज्ञान के अस्तित्व के परस्पर सापेक्ष होने से उनके स्वतन्त्र अस्तित्व को क्षणिक भी मानने के लिए तैयार नहीं है, इसलिए उन्हे न द्वैतवादी कहा

जा सकता, न अद्वैती ही। योगाचार एक ही विज्ञान (चेतना) तत्त्व के वास्तविक होने को स्वीकार करते है, हाँ, वह नित्य नही बल्कि क्षणिक प्रवाह रूपेण सनातन है। इस प्रकार वह अद्वैतवादी है। सरह स्वयं अद्वैत तत्त्व की महिमा गाते है, इससे मालूम होता है, कि उनका झुकाव योगाचार-दर्शन की ओर अधिक है। मायावादियों के घटाकाश और महाकाश की तरह योगाचार-दर्शन भी विज्ञान को वैयक्तिक विज्ञान और महाविज्ञान के रूप मे विभाजित करता है। वैयक्तिक विज्ञान को वह प्रवृत्ति-विज्ञान कहते है, तथा महाविज्ञान को आलय-विज्ञान। विश्व के सभी दृश्यादृश्य पदार्थ जिसके परिणाम है, वह सर्वत्र-व्यापी अ-भौतिक तत्व आलय-विज्ञान है। वह समुद्र की तरह है, जो अपने क्षणिकता के स्वभाव के कारण हर वक्त तरगित रहता है। यही तरगे प्रवृत्ति-विज्ञान है, जिन्हे रूप या अरूप स्थिति मे हम देखते या प्रत्यक्ष करते है। योगाचार-दर्शन के प्रवर्तक असग के अनुज वसुबन्धु ने "वीची-तरग-न्यायेन तदुत्पत्तिः" भी आलय-विज्ञान से कही है। सरह कहते है—

"आलअ तरु उमलइ, हिण्डइ जग च्छाच्छन्द।" (१३५)

वसुबन्धु ने आलय-विज्ञान को समुद्र बतलाया और सरह ने उसे स्वच्छन्द हिलने-डोलनेवाला तरुवर। स्वच्छन्द विशेषण उन्होने यों ही नही दिया है, उससे उनका अभिप्राय है, आलय या ससार के मूल तत्त्व को चालित करनेवाली कोई दूसरी शक्ति (ईश्वर) नही है, बल्कि उसकी गति स्वच्छन्द—औटोमेटिक—है। शुरू से आज तक बौद्ध अनीश्वरवादी और अनात्मवादी है, यह सभी जानते है।

(१) मूल तत्त्व

मूल तत्त्व आलय-विज्ञान को योगाचार-दर्शन की तरह ही सरह मानते है। पर, वह उसे एक रहस्यमय रूप देना चाहते है, जिसमें निर्वाण-तत्त्व की पुरानी कल्पना सहायक हुई है। कर्म के बन्धन से छूटा मुक्त मन निर्वाण-प्राप्त माना जाता है। निर्वाण मन की ऐसी स्थिति है, जिसमे वह भव (ससार)-बन्धन—कर्मपाश—से छूट गया रहता है। इसी निर्वाण की स्थिति को वह और रहस्यमय बनाते है। तत्त्व या वास्तविकता उनके यहाँ मूल-रहित है—

मूल-रहिअ जो चिन्तइ तात्त। गुरु आएसह एत्त वियात्त॥ (२८)

इसीको दूसरे शब्दो में कहा—

सुण्णवि अप्पा सुण्ण जगु, घरे-घरे एहु अक्खाण ।
तरुवर-मूल ण जाणिआ, सरहेंहि किअ वक्खाण ।। (५९)

शून्य और आलय दोनों के प्रतिपादन करनेवाले सरह योगाचार-माध्यमिक ही हो सकते है, जिनमे उनका अधिक जोर शून्य-निरंजन पर है, यह हम आगे देखेगे ।

(२) माया

परमपद को उन्होंने मायामय बतलाया है, जिससे माया उनके सामने सुतुच्छ नही मालूम होती ।

वुद्धि विणासइ मण मरइ, तुट्टइ जह अहिमाण ।
सो माआमअ परमपउ, तहि कि वज्जइ झाण ।। (६१)

वुद्धि-मन की पहुंच से वाहर वह परमपद मायामय है ।

(३) भाव या अभाव नही

भावाभावे वेण्णि न काज्ज । अन्तराल ट्ठिअ पाडहु वाज्ज ।

तत्त्व को न सद् कह सकते है, न सत्तारहित । वीच की स्थिति भी वह छोड डालने को कहते है । और भी—

भावाभावे जो परिच्छिण्णउ । त(हिं) जगतिअ सहाव विलीणउ । (६६)

परिच्छिन्न की जगह 'परिहीण' पाठ ठीक जान पड़ता है। भाव और अभाव से जो परिहीन या परिच्छिन्न है, उसी तत्त्व मे सारी दुनिया विलीन है ।

भव (ससार) और निर्वाण को एक वतला सरह ने निर्वाण के आकर्षण को कम कर ऐहिक जीवन के मूल्य को वढाया, इसीलिए भोगो को त्याज्य नही, ग्राह्य ठहराया तथा जगत् को सहजानन्द-पूरित मानने पर जोर दिया—'भव-णिव्वाणे किम्पि ण दूरा' (१६१) अथवा 'मुक्कावधि जे सअल जगु, णाहि णिवद्धो कोवि' (८०) । वधन का भय दिखला आतंकित कर निर्वाण के पीछे पागल करने की जो प्रवृत्ति धर्मनायको में देखी जाती थी उसकी व्यर्थता को वतलाकर सरह ने लोगो को निडर करना चाहा। न जगत् को, न देह को उन्होंने गन्दा कहा, वल्कि ऐसे विचारों का विरोध करते कहा—"जगु सहावहि सुद्ध" (१०१) और—

एथु से सरसइ सोबणाह, एथु से गगासाअरु।
वाराणसि पआग एथु, सो चान्द-दिवाअरु।
खेत्त पिट्ठ उअपिट्ठ एथु, मइ भमिअ समिट्ठउ।
देहा-सरिस तित्थ, मइ सुणउ ण दिट्ठउ ।। (९६ ? ९७)

वह परस्पर-विरोधी बात नही कहते—कभी देह को गन्दगी का पनाला और कभी कुछ दूसरा। उनके विचार मे देह सबसे बडा पवित्र तीर्थ है। इसीके भीतर सरस्वती, सोमनाथ, गगासागर, बनारस, प्रयाग, क्षेत्र, पीठ, उपपीठ है। सरह के समय मे भारत के जो पवित्र तीर्थ थे, उनके नाम यहा गिनाये गये है। सोमनाथ को अभी महमूद गजनवी ने नष्ट-भ्रष्ट नही किया था, और वह एक प्रमुख तीर्थ था। पीछे चार धामो की महिमा बढी, जिन मे से सोमनाथ को निकाल दिया गया—महमूद के प्रहार का यहाँ तक प्रभाव पडा।

(४) मुक्ति और परमपद

मुक्ति सरह की दृष्टि मे स्वत सिद्ध वस्तु है। शकराचार्य ने भी परमार्थ मे यही माना है, क्योकि जीव की कल्पना मिथ्या है, परमार्थ मे एक-मात्र ब्रह्म ही सत्य है। सरह ने ब्रह्म या किसी सनातन एकरस तत्त्व को नही माना, न जगत् क भोगो को झूठा और त्याज्य कहा। जगत् की क्षणिक, किन्तु मूल्यवान् स्थिति को स्वीकार करते उन्होने जगत् के महत्त्व को कहा और नकद को छोड उधार या प्रत्यक्ष को छोड परोक्ष के पीछे दौडने को मूर्खता बतलाया। उनकी दृष्टि मे परमपद मन की एक विशेष अवस्था है—

जहि मण मरइ, पवणहो तहि लअ जाइ।
एहु सो परम महासुह, सरह कहिहउ जाइ। (३०)

मन की शकायुक्त स्थिति हट जाने पर उसकी चचलताओ के मिट जाने पर परम महासुख की स्थिति आती है। उस स्थिति को और स्पष्ट करते कहते है —

जहिं मण पवण ण सचरइ, रवि-ससि णाहि पवेस।
तहिं वढ चित्त विसाम कर, सरहे कहिअ उएेस ।। (४९)
आइ ण अन्त ण मज्झ तहि, णउ भव णउ णिव्वाण।
एहु सो परम महासुह, णउ पर णउ अप्पाण ।। (५१)

अग्गें पच्छें दस दिसे, जं जं जोअमि सोवि। (५२)

परमपद—परम महासुख आदि-अन्त-मध्य-रहित है। न उसे ससार कहा जा सकता, न निर्वाण। उसमे अपना और पर का भेद नही। आगे-पीछे दसो दिशाओं मे जहाँ देखें, वही-वही है। इस वर्णन मे शकर-वेदान्त में प्रतिपादित मोक्ष का आभास मिलता है। यद्यपि सरह शकर के सम-सामयिक है, पर उनका अद्वैतवाद नागार्जुन (ईसवी दूसरी सदी) और असग (ई० चौथी सदी) से चला आता था। सरह से दो-तीन सदियों पहिले हुए गौडपाद बौद्ध विचारो से प्रभावित हैं। गौडपाद शकर के गुरु गोविन्दपाद के गुरु वतलाये जाते है, पर गौडपाद कारिका के सुयोग्य संपादक महामहोपाध्याय श्री विधुशेखर भट्टाचार्य ने इसे अमान्य ठहराते गौडपाद को शकर स दो शताब्दी पहिले का माना है। एक ही स्रोत से निकलें सरह और शकर के निर्वाण-मोक्ष मे इतनी समानता स्वाभाविक है।

(५) शून्य-निरंजन

परमपद को सरह ने पहिले-पहल लोकभाषा मे शून्य निरजन कहा। वह शून्यवाद के माननेवाले थे, इसलिए उनका ऐसा कहना ठीक था आश्चर्य तो यह है, कि पीछे के सन्त शून्यवाद से विल्कुल अपरिचित थे, तो भी सरह का घुमाया धर्मचक्र इतना प्रवल था, कि सन्त लोग उसके प्रवाह में वहे विना नही रहे। सरह ने कहा—

सुण्ण णिरजण परमपउ, सुइणो (अ) माअ सहाव।
भावहु चित्त-सहावता, णउ णासिज्जइ जाव॥ (१३८)

परमपद शून्य और निरजन है—उपनिषद् ने भी 'निरजनं परमसाम्यमुपैति' से ब्रह्म (परमपद) का निरजन होना स्वीकार किया है। सरह ने उसे स्वप्नोपम स्वभाव का माना है, जव कि ब्रह्मवादी उसे वैसा नही मानते। मन की चँचलता जवतक नष्ट न हो जाये, तवतक चित्त के इस स्वभाव की भावना करने को कहा, और वतलाया।

अक्खर-वण्ण-विवज्जिअ, णउ सो विन्दु ण चित्त।
एहु सो परम महासुह, णउ फेडिय णउ खित्त॥ (१४१)

चित्त (नाद) और विन्दु से जो नही है, जो अक्षर-वर्ण-विवर्जित है, वह परम महासुख है, जो न त्याज्य है, न ग्राह्य। परमपद के समझाने के

लिए सरह ने बहुत कहा है, पर उसका समझना अपार श्रद्धा रखनेवाले व्यक्ति के लिए ही साध्य है। सौभाग्य से ऐसे श्रद्धालुओ से हमारी भारत-मही विहीन नही है।

(६) सरह की अंतिम विचार-परंपरा

सरह के अनुयायी आज भी तिब्बत में भारी सख्या मे मौजूद है। सन्तो ने बहुत-सी सरह की बाते ले ली है, यह भी सत्य है। इसलिए, कहा जा सकता है, कि सरह की परम्परा भारत से अब भी उच्छिन्न नही हुई है। पर, जो अपने आद्य-मार्गदर्शक का नाम भी नही जानते, उन्हे सरह का अनुयायी कैसे कहा जा सकता है? सरह के वश मे ८४ सिद्ध हुए, यह हम बतला आये है। अन्तिम सिद्ध कालपा (२७) और कुठा-लिपा (४४) ग्यारहवी सदी के पूर्वार्द्ध मे हुए। इसका अर्थ यही हुआ, कि चौरासी की सख्या कालपा पर पूरी हो जाने से आगे सूची वन्द कर दी गई। सिद्ध बाद मे भी होते रहे, यह काशि-कन्नौज के स्वामी गहड्वार जयचन्द्र के गुरु जगन्मित्रानन्द के होने से सिद्ध है। भारत से बौद्धधर्म—जो कम-से-कम विचारो मे सरहका अनुसरण करता था—जिस समय नष्ट होने जा रहा था, उस समय भी सिद्धो की तरह के लोक-कवि होते थे। विनयश्री का नाम हम पहिले ले चुके है। वह विक्रमशिला, जगत्तला के तुर्कों द्वारा नष्ट कर दिये जाने पर अपने गुरु तथा भारत के सघराज शाक्यश्रीभद्र के साथ १२०३ ई० मे तिव्वत पहुँचे। यदि शेप जीवन वही नही रहे, तो कितने ही वर्षो तक वह वहाँ जरूर रहे। उन्होने कितने ही भारतीय ग्रथो के तिव्वती भाषा मे अनुवाद करने मे सहायता की। वह अपने साथियो और गुरुभाइयो—विभूतिचन्द्र, दानशील, सुगतश्री आदि—के साथ कितने ही वर्षों तक स स्क्य विहार मे रहे, जहाँ उनके हाथ के लिखे कितन ही पन्ने लेखक को मिले। सुगतश्री ने अपने आश्रयदाता ग्रग्स्. प ग्र्यज् म्छन् (कीर्तिध्वज) की श्लोको मे स्तुति की थी, जिसकी मूल सस्कृत प्रति वहाँ मुझे मिली। विभूतिचन्द्र और दानशील की पोथियो की तरह वही विनयश्री के कितने ही गीतो को—जो उनके ही हाथो से लिखे गये मालूम होते है—पाया। यह गीत इसीलिए अपना महत्त्व नही रखते, कि यह सिद्धो की टक्साल के है, वल्कि इनकी भाषा वही मालूम होती है, जो १२ वी-

१२वी सदी मे विक्रमशिलावाले प्रदेश (भागलपुर जिले) मे वोली जाती थी। विनयश्री के एक पद मे आया—'गेल्लिअहु' शब्द आज भी वहाँ इसी अर्थ मे प्रयुक्त होता है।

विनयश्री १२०३ ई० मे तिब्वत मे जब पहुँचे, तो उनकी आयु ३५ साल से कम की नही होगी। भारत में रहते ही उन्होने कविता करने का अच्छा अभ्यास कर लिया था। तिब्वत मे पहुँचने पर उनका कोई महत्त्व न था, यह इसीसे मालूम होगा, कि जहाँ सुगतश्री–रचित कीर्त्ति-ध्वज-यशोवर्णन तिब्बती मे अनुवादित हो आज भी 'स्तन् ग्युर्' सग्रह मे मौजूद है, वहाँ विनयश्री के गीत यदि तालपत्र पर लिखे मुझे न मिलने, तो शायद ही वह आज प्रकाश मे आते—पुजारी ने उन्हे काटकर प्रसाद वाँटने के लिए रख छोडा था। गीतो की सख्या १४ से अधिक नही है, जिन्हे परिशिष्ट मे दिया गया है। यह तो निश्चित ही है, कि विनयश्री जैसे प्रौढ कवि ने इतने ही गीत नही वनाये होंगे। सरह की रहस्य-वादी भाषा में वह परमतत्त्व का वर्णन करते है—

निमूल तरुवर डाल न पाती।
निभर फुलिलल पेडु विआती॥
भणइ विनयश्री नोखौ तरुवर। फुल्लेए करुणा फलइ अणुत्तर।
करुणा मोदे सएलवि तोसए। फल-सर्प(र)तएँ से भव नासए॥
से चिन्तामणि जे जइ सवासए। से फल मेलए नहिए सासए।
वरगुरु भत्तिएँ चित्त पवोही। तहि फल लेह अणुत्तर वोही॥३॥
गेल्लिअहु गिरिसिहर रि जाने। तहि झपाविल्लि कलि के अन्ते। ध्रु।
हल कि करमि सहिएँ एकेल्लि। विसरे राउ लेल्लइ पेल्ली।
तहि झपइ टुटेल्लि हेरुअ मेले। विमअ सिलइल्लि मा छाड़िअ हेले।
भणइ विनयश्री वराुरु-वएणे। नाह न मेल्लअ रे गमणे॥४॥

सरह ने तत्त्व को मूल-रहित कहा है, उसी को विनयश्री ने निमूल तरुवर कहा है। करुणा का फूल फूलना और अनुत्तर (सर्वोत्तम निर्वाण) का फल लगाना भी सरह की वातो का ही शब्दान्तर है। गिरिशिखर में गया या गई (गेल्लिअहु) की सरह के गीत 'ऊँचा-ऊँचा पावत' मे छाया मिलती है। सरह या सिद्ध-परपरा के ये पद है, इसे कहने की अवश्यकता

नही है। विनयश्री की भाषा १२वीं सदी के उत्तरार्द्ध की भाषा है, जो अपभ्रंश होते भी अब अधिक आधुनिक भाषा की ओर झुकी थी। सरह की तथा दूसरी भी पुरानी अपभ्रश कृतियों मे भूतकाल के लिए इल प्रत्यय का प्रयोग नही मिलता। जहाँ उसका प्रयोग देखा जाता है, वह पीछे लिखे हस्तलेखो मे लेखको द्वारा किये गये परिवर्त्तन के कारण ही। पर, यहाँ विनयश्री के अपने हस्तलेख में फुल्लिल्ल, गेल्लिअहु, झपाविल्ल-जैसे इल-प्रत्ययान्त शब्द मौजूद है, जिनका इस्तेमाल आज भी भोजपुरी, मगही, मैथिली, बँगला मे प्राय. वैसा ही होता है। पाली के बाद प्राकृत के काल मे व्यजनो का स्वरो मे जो परिवर्त्तन हुआ, वह अपभ्रश-काल मे भी वैसा ही रहा। और तरुवर की जगह तरुअर को ही हम सरह के दोहाकोश की अपनी पुरानी प्रति मे पाते है। पर यहाँ विनयश्री तरुवर लिखकर प्राकृत-अपभ्रंश की चरम विकारवाली व्यजन स्थाने स्वर की परम्परा को छोड तत्सम रूप की ओर लौटते देखते है। शायद यह इस तरह का सबसे पुराना प्रथम उदाहरण है। यही नही, अपने नाम मे कवि इस बात का और भी अनुसरण करता है। प्राकृत-अपभ्रश के नियम के अनुसार उसे अपना नाम विनअसिरि लिखना चाहिए था, पर वह उसकी जगह शुद्ध तत्सम-रूप विनयश्री को इस्तेमाल करता है। सभी गीतो मे विनयश्री ही लिखा गया है, इसलिए यह जान-बूझकर किया गया है। परन्तु, सभी जगह सस्कृत-तत्सम या पालि-तत्सम (जिसमे भी व्यञ्जन स्थाने स्वर नही होता) का प्रयोग नही किया गया है, जिससे पता लगता है, अभी बारहवी सदी के उत्तरार्द्ध मे इस प्रवृत्ति का आरभ ही हुआ था।

§४. सरह की भाषा

शब्द-कोश-व्याकरण

दोहाकोश की भाषा मे लिपिको ने समयानुसार सुधार करने की कोशिश की। इसके कारण भिन्न-भिन्न हस्तलेखो मे अन्तर आता गया। यह हमे डाक्टर बागची-सपादित दोहाकोश और हमारे इस स.सक्य के हस्तलेख के मिलाने से मालूम होगा। वैसे जान पडता है, तत्कालीन अपभ्रश मे

देश-भेद से शायद ही कही अन्तर आता था। दोहाकोश में व्याकरण के सारे प्रयोग नही आये हैं।

१ उच्चारण-प्रक्रिया

(१) वर्णमाला

उस समय की भाषा की वर्णमाला मे हमारी आज की वर्णमाला के कुछ अक्षर नही थे, साथ ही कुछ उच्चारणो के लिए हमारी नागरी मे आज अक्षर मौजूद नही हैं। स्वरो मे ऋ, लृ, ऐ, औ का अभाव था, और व्यजनो मे श, ष का। उस समय और आज की हमारी भाषा—विशेषकर लोक-भाषा—मे ह्रस्व ए और ह्रस्व ओ थे, पर उसके लिए कोई अक्षर नही थे। द्रविड़ भाषाएँ इस विषय मे ज्यादा सौभाग्यशाली हैं। अपभ्रश मे निम्न स्वरों और व्यजनो का प्रयोग होता था, जिसमें स जान पड़ता है, श का भी काम देता था—

स्वर

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, अे, ऐ, ओ, ओ, ओ

व्यञ्जन

क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण।
त थ द ध न। प फ ब भ म। य र ल व स ह।

य का उच्चारण भी ज की तरह किया जाता, और ब तथा व मे भेद नही रक्खा जाता था, जैसा बँगला में आज भी होता है।

ह्रस्व स्वर को भी छन्दोभंग न होने के लिए दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व बोला जा सकता था।

(२) परिवर्त्तन

संस्कृत की तुलना से अपभ्रंश में जिस प्रकार लोप, आगम, विकार होते थे, उन्हें आगे दिया जाता है। लोप-आगम-विकार अपभ्रश और प्राकृत में प्राय. एक-से ही होते है, इसीलिए कितने ही लोग व्याकरण में इनके नवीन-भारतीय आर्य-भाषाओ के वर्ग मे होने पर भी इस प्राकृत-

वाले मध्य-भारतीय आर्य-भाषा-वर्ग में गिनते हैं।

संस्कृत की तुलना में हमारे संस्कृत हस्तलेख के अपभ्रंश में निम्नलिखित भेद मिलते हैं—

(क) लोप—

अ. अहम्> हउं (७५)
इ. इच्छ> चाह (८७)
नि सार> निसार (७२)
त. जगत्> जग (२५)
स्. स्नेह> णेह (८६)

(ख) आगम—

क्. लिख> लिक्ख (१५), एक> एक्क
च् छेद> च्छेअ (७४), च्छुवइ (७१), च्छाडाहु (६७)
ट् ठाकी जगह ट्ठाइ (३१), ट्ठाअ (७४)
ड. चित्त>चित्तडा (७८)
ण्. विहीन>विहून>विहुण्ण (७४), अन्य न>अण्ण ण>अण्ण ण्ण (१४)
ब् ब् एव>एव्ब (३५), मोक्ष-वास>मोक्ख-ब्बास (६०)

(ग) विकार—

अ>आ, अन्तर>आन्तर (१३५)
अन>आण, अनुत्तर>आणुत्तर (३५)
अपि>उ, अद्य अपि>अज्ज अउ>अज्जउ (५८), तद् अपि>तउ
अपि>वि, अन्योपि>अण्यवि (५)
आ>अ, आगमन>अमण (३८)
अव>ओ, लवण>लोण (४६)
अय>ए, अय हि>एहु (५६)
इय>इज्, ईअ, क्रियते कीअइ
ईय>इज्ज, दीय>दिज्ज (७२)

उ>वु, उक्त>वुत्त (१६), उच्यते वुच्चग्र (३८)

ऋ>रि, ऋद्धि>रिद्ध (८३)

एय>इज्ज, विलेय>विलिज्ज (४६)

ओ>उ, नो>णउ (१६)

,,>अव, कोनु>कवणु (१०३)

क>अ, सकल>सअल (२३)

,,>ह खक गु क>सुनह (८५)

का>आ, आकाश>आआस (३३)

का>ऐ, चित्रकर>चित्तएर (८१)

,,>ल, उदक>उअल (७१)

कु>उ, अरिकुल>अरिउल (४५)

कु>अ, कुरु>करु (६४)

क्त>त्त, उक्त>वुत्त (१६), अनुरक्त>अनुरत्त (७३), मुक्त>मुक्क (९१)

क्ष>क्ख, यक्ष>जक्ख (८१), राक्षस>रक्खस (७३), मोक्ष>मोक्ख (८)

क्षे>ख, क्षेपण>खवन, क्षय>खअ (६२)

कद>के, कदली>केलि (१४९)

क्ष>छ, क्षार>छार (३)

क्ति>त्ति, प्रसक्ति>पसत्ति

क्षे>खे, क्षेत्र>खेत्त (९६)

ग>अ, भगवा>भअवा (२) गगने>गअणे (७०)

गृ>घे, गृह्णाति>घेप्पइ (१२३)

गी>ई, योगी>जोइ (७१)

गन>ग्ग नग्न>णग्गल (५), लग्न>लग्ग (१७)

ग्र>ग, ग्रहण>गहण (८)

घृ>घो, घृष्ट>घोट्ट (३५)

घ्र>ग्घ>जिघ्र>जिग्घ (६३)

ख्या>क्खा, व्याख्यान>वक्खाण (११)

ख>ह, मुख>मुह (२०)

च>अ, अनुचर>अणुअर (२४), लोचन>लोअण (३१), वचन>वअण (४४)

क्ष्य>क्ख, उदीक्ष्यते>उअेक्खइ (६२)

चि>इ, अचिन्त>अइन्त (१२१)

च्य>च्च, अवाच्य>अवाच्च (४२), उच्यते>वुच्चअ (३८)

ज>अ, बीज>बीअ (२३), भोजन>भोअण (८) निज>णिअ (१६),

जा>आजाल>आल (८४)

जे> ए, गजेन्द्र> गएन्द (१३२)

जे>उ राजा>राजो>राउ (१२१)

ज्ञ> ण्ण, विज्ञान>विण्णाण (१३१), आज्ञप्त>आणत्त (७६)

ज्ञ>ज, ज्ञान>जाण (८)

ज्ञ>ञ्ञ, प्रज्ञ>पञ्ञ (१०६)

ट>ड, जटा>जड (३)

टि>ड, कोटि>कोडि (१३१)

ट्य>ट्ट, त्रुट्यति>तुट्टइ (६१)

ण>न, कोण>कोन (४)

त>अ, रहित>रहिअ (६), सुरत>सुरअ (४८), रसातल>रसाअल (६०)

उत्पद्य>उअज्ज (६२)

त> ड, पात>पाड (३६),

ति> इ, लाति>लेइ (५३), आनयति >आणेइ (५३), युवती>जुवइ (७)

ति> डि , प्रति>पडि (२६)

तु>उ, चतुर्थ>चउत्थ (१)

तो>उ, ग्राहितो> गाहिउ (४२), कथितो> कहिउ (६७)

तु>उ , सेतु >सेउ (६६)

तृ>ति, तृषित> तिसिअ (४४)

त्त> ण्ण, दत्त> दिण्ण (३७)

त्ति>त्त, उत्तम>उत्तिम (१७)

त्न> अण, रत्न> रअण (८५)

त्प>प्प, उत्पादन>उप्पाअण (१०२)

त्प>अ, उत्पद्य>उअज्ज (६२)

त्प>व, उत्पद्य>उवज्ज (२०)

त्म> प्प, आत्मा>अप्प (६,२८)

त्य>च्च, प्रत्यक्ष>पच्चक्ख (१०६), मृत्यु मिच्चु (१५४), सत्य सच्च (१४)

त्र>त्थ, यत्र>जत्थु (१०४), अत्र>एत्थ (२७,६५), यत्र>जेत्थु (४०),
यत्र>जत्थु (१०४)

,,

त्र> थ, अत्र> एथु (६५)

त्र>त, स्वतन्त्र>स्वतत (११), मंत्र> मत्त (१३)

त्र>ह, तत्र>तह (१३)

त्र>त, त्रय>तइ (१२३)

त्रि>ति, त्रिभुवन>तिहुअण (५०)

त्रु>तु, त्रुट्यति>तुट्टइ (६१)

त्व>त्त, तत्त्व>तत्त (६) तात्त (२८), सत्त्व>सत्त (७३)

,,> तु, त्वं हि>तुहु (१४८)

थ>ह, अथवा>अहवा (१७)? (१६०), कथानक>कहाण (१३१), कथ्य,
कहिज्ज>(६२)

,,>ढ, प्रथम>पढम (३३)

थि>हि, कथि>कहि (६७)

थ्य>च्छ, मिथ्या> मिच्छा (११६)

द>अ, पाद>पाअ (१५), उदक>उअल (७१) खादति >खाअ (६०)
खादत्ति>खाअत्ते (४८)

द>उ, भेद>भेउ (१) परमपद>परमपउ (१३६)

द>व, उद्देश>उवेस (२)

द>व्व, तदा>तव्व (३२) यदा>जव्व

दय>अ, हृदय>हिअ (३६) छेद> छेअ (७४)

द>दि, दत्त>दिण्ण (३७)

दपि>बिम्र, तदपि>तबिम्र (११०)

दि>इ, आदि>आइ (१४६),

दृ>ई, कीदृश>कीस (३७,१२२)

दृ>दि, दृष्टि>दिट्ठि (८) दृढ>दिढ (६४)

दृ>दी, दृष्ट>दीस (३७)

दृ>रि, सदृश>सरिस (९६)

दे> ए, पादे>पाए (३७), आदेश>आएस (२८)

द्ध>ज्झ, सिद्ध>सिज्झ (२०), बुद्ध>बुज्झ (२०), शोद्ध>सोज्झ (५६) बाध्य>बाज्झ (७१), सिद्ध> सिज्झ (१२६)

द्य>ज्ज, वाद्य>बाज्ज (२४), उत्पद>उवज्ज (२०), अद्यपि>अज्जउ (५८), अद्य> अज्ज (६२)

द्वा> दु, द्वा>दुई (७४)

द्व> बे, द्वावपि> बेण्णवि (१७), वेवि (१३१),

द्रि> द्द, शूद्र>सुद्द (९४)

द्र> दि, इन्द्रिय> इन्दी (२९)

ध> ह, साध> साह (९), विविध>विविह (३९)

ध्य> झ, ध्यान> झाण (१९) मध्य> मज्झ (५१)

ध्ये> धे, ध्येय> धेअ (४३)

न> ण, नग्गल> णग्गल (५),

ध> द, निबन्धन> णिबन्दण (१४४)

न्य> ण्ण, अन्यो> अण्णु (१०), शून्य>सुण्ण (१७),

न्म> म्म, जन्म> जम्म (१६)

नि> णि, निश्चल>णिच्चल (३१), निर्वाण> णिव्वाण (१२, १७)

ना> णु, विना> विणु (३६)

प> अ, रूप> रूअ (२३,८१)

प> फ, पाश>फान्द (१३४)

प> इ, स्वप> सुइ (१२४)

प>व, दीप> दीवा (४), अपरें>अवरें (११), प्राप>पावं (१७)
अपर> अवर (४७)
पा> आ, उपाय> उआअ (३२)
पि> इ, कोपि> कोइ (११)
पु> उ, निपुणत्व> णिउत्त (२८)
पृ> पु, पृच्छ> पुच्छ (२६)
" > प, पृष्ठे> पच्छे (५२)
प्य> प्प, लिप्य> लिप्प (७१)
प्त> त्त, आज्ञप्त> आणत्त (७६)
प्न> अण, स्वप्ने> सुअणे (१०६)
प्त> त्त, समाप्तं> समत्त (१०६)
फ> ह
फु> खु, फुसफुसाइ> खुसखुसाइ (४)
ब्भ> द्ध, लब्भ> लद्ध (६०)
ब्र> व, ब्रह्मा> वम्हा (४७)
ब्रा> वा, ब्राह्मण> वाम्हण (६४)
भ> ह, भवन्ति> होन्ति (११२) स्वभाव> सहाव (२६)
भि> हि, अभिमान> अहिमाण (३४), शोभित> सोहिअ (३६)
भु> हु, त्रिभुवन> तिहुअण (५०),
भ्य भिअ, अभ्यन्तरे> अभिअन्तरे (५३)
य> अ, निरय>णिरअ (२२), प्रयाग> पआग (६५) काया>काआ (६)
य> ज, युवति> जुवई (७), महायान> महजाण (१०), यस्य> जसु (१२)
य> इ,
यथा> जिम (११६)
या> आ, माया> माआ (६१)
यो> जोव, (३८)
यं> मं, स्वयं> सम्मं (४०)

य> जे, यत्र> जेत्थु (४०)

र्> ल

र्> ग् , मार्ग> मग्ग (१६)

र्थ> ट्ठ, चतुर्थ> चउट्ठ (११३)

र्ध> द्ध, अर्ध> अद्ध (३१)

र्ध्व> द्ध, उर्ध्व> उद्ध (५७)

र्थ> त्थ, परमार्थ> मरमत्थ (१२), तीर्थ>तित्थ (१४)

र्प> प्प, दर्पण> दाप्पण (८६)

र्य> ज्ज, कार्य> कज्ज (१), सूर्य> सुज्ज (३५)

र्व> ब्ब, निर्वाण> णिब्बाण (१२), १७), सर्व>सव्व (४३),

र्श> न्स, दर्शन> दन्सण (५८)

ल्प> प्प, संकल्प> सकप्प (१००)

व> अ, तरुवर तरुअर (५६)

वि>अ, प्रविष्ट>पअट्ट (३५)

वि> वइ, विश बइस (६३),

,,> इ, प्रविश> पइस (३६)

व्य> ब, व्यवहारे> बवहारे (६३)

श >स, दश>दस (२६), शक्य>सक्क (३२), विशेष>विसेस (४५)

शृ >सु, शृणु > सुणउ (६३)

शृ > सि, शृगाल > सिआल (८५)

श्च > च्च, निश्चल > णिच्चल (३०)

श्च > च्छ, निश्चित > णिच्छिअ (१६)

श्र > स्स, विश्राम > विस्साम (३१)

श्री > सिरि (३७),

श्व > स, महेश्वर > महेसर> महेसुर(५५), आश्वास>असास (१२६)

ष > स, विषय>विसअ (१८), दोष>दोस (३३), विशेष>विशेस (४५)

तुष>तुस (५४)

ष्ट > ट्ठ, दृष्टि < दिट्ठि (३३), प्रविष्ट > पअट्ठ (३५)

ष्ठु > ठु, सुष्ठु > सुठु (१२१)

ष्णु > ट्ठु, विष्णु > विट्ठु (५५)

स > छ, आसन्त > अच्छन्त (४३)

स्त > त्थ, मस्ते > मत्थे (४२) अस्त > अत्थ (६४)

स्त्र > त्त, शास्त्र > सात्त (४४)

स्थ > त्थ, स्थल > त्थल (४४)

" ठ, स्थित > ठिअ (३६)

स्थि > थि, स्थितै- > थियेरि (१४१)

स्न > ह्न, स्ना > ह्नाइ (१३)

स्प > व, निष्पद्य > णिवज्ज (६२)

स्पृ > छु, स्पृशति > छुपइ (७१)

स्म > म्ह, अस्मा > अम्हा (४७)

स्य > सु, यस्य > जसु (१२), तस्य तसु (११)

स्फु > हु, स्फुट > हुड (२७),

स्व > स, स्वरूप > सरुअ (३७)

स्व > सु, स्वप्न > सुअण (१०६), स्वप्न > सुइण (१२४)

स्वप > सिवि, स्वप्न > सिविण (१४४)

हम् > हंउ (७५)

ही > हू, विहीन > विहूण (७४)

हि > हु, त्व हि > तुहु (१४८)

हृ > हि, हृदय > हिअ (३६)

ह्म > म्ह, ब्रह्मा > बम्हा (४७)

ह्य > हिर, बाह्य > बाहिर (६६).

ह्यं > हं, मह्य > मह (३८)

सुवन्त और तिडन्त प्रत्यय अपभ्रंश को आज की भाषाओ की पाँती मे बैठा देते है । उच्चारण के परिवर्तन यहाँ करीव-करीव वही मिलते है, जो प्राकृत मे और इसी भ्रम के कारण जैन भाडारो मे अक्सर अपभ्रंश ग्रथो को प्राकृत ग्रथो के वेष्टनो मे रख दिया जाता है । सुवन्त विभक्तियो के रूपो को पालियो ने और उससे भी अधिक प्राकृतो ने कम कर दिया था । अपभ्रंश ने इस प्रवृत्ति को और आगे वढाया । इसमे द्वितीया, चतुर्थी और षष्ठी तीनो विभक्तियाँ एक-सी होती है । उसी तरह तृतीया, चतुर्थी और कभी-कभी पचमी को भी एक बना जाता दिया है। प्रथमा के एक वचन मे सस्कृत-पाली-प्राकृत मे प्रयुक्त अकारान्त शब्दो के ओ को छोटा करके उ कर दिया जाता है, जिसे मागधी क्षेत्र के हस्तलेखो मे वहुधा छोड दिया जाता है । प्रथमा एकवचन का यह उकार गोस्वामी तुलसी दास के 'रामचरित मानस' की पुरानी प्रतियो मे काफी मिलता है, और रुहेलखड मे अव भी वहुत से कवि और वक्ता उसका प्रयोग करते है । प्रथमा वहुवचन मे कोई विभक्ति-सूचक प्रत्यय नही लगाया जाता, और शब्द का अपना रूप ही पर्याप्त समझा जाता है । तृतीया मे अपने प्रत्ययो के अतिरिक्त कितनी ही वार प्राकृत-पाली और सस्कृत के प्रत्यय एण को इस्तेमाल किया जाता है, और ऐसी जगहो पर पालि-प्राकृत प्रथमान्त ओकार का प्रयोग वतलाता है, कि शायद ऐसा करने मे पुरानी भाषा के अनुकरण की प्रवृत्ति कारण हो, तुलसीदास ने भी ऐसा कभी-कभी किया है। सरहने "कम्मविमुक्केण होइ मण मुक्को" (२४) कहा ।

२. संज्ञा, सर्वनाम

(१) लिंगभेद

सस्कृत-पाली-प्राकृत तक चला आता नपुसक लिग अव खतम हो गया था तथा पुलिग और स्त्रीलिग दो ही लिग रह गये थे ।

पुलिग—

अकारान्त—कोण (व.४), खवण (व ६), चेटल>चेला (व ६), तड>तट (१००)

आकारान्त—घण्टा (व ४)
इकारान्त—अइरि<आर्य (व ३), अग्गि<आग (व १), हत्थि<हाथी (व ७१), गिरि (व १००) जोइ (स ४४), मुणि<मुनि (ग ४१), मुण्डी (व ५), रत्ति (स १९),
ईकारान्त—अत्थी<अर्थी (व १११), जोई<योगी (स ८८), दण्डी (व २), पाणी (स ६६),
उकारान्त—अणु (स ६७), गुरु (स ३८,६२), पसु<पशु (स २०)

स्त्रीलिंग—

आकारान्त—इच्छा (स २३), काआ<काया (व ९), जडा<जटा (व ३), दीवा (व ४), पव्वज्जा<प्रव्रज्या (स १८), भाज्जा<भार्या (स १८), मुद्दा–मुद्रा (व २२), मुरुगा<मुरग (व ७२)
इकारान्त—अक्खि>आँख (व २), इन्दि<इन्द्रिय (ग ८४,९४), जुवइ<युवती (व २७), जोइणि<योगिनी (व ८६), वोहि<वोधि व (१०३), मट्टि (व १), मणि (व ९७) माइ<माई (व ८४), सहि<सखी (ग ४५, ९२), सिरि<श्री (व ६६)
ईकारान्त—कुमारी (स ६५), णई<नदी (फव. १००), वाराणसी (स ९६), रण्डी (व ५)

(२) सर्वनाम

अण्ण (स ९६), एहु (स ३०), को (व ९३), जो (स १६), सइ (स ७७) सव्व (स १४), सो (स १६)

(३) संख्या

एक (व १३), एक्क (स ५०),
बिण्णि (व ५४), बेण्णि (स ५०), बेइ (स ५७, ६२), दुइ (स १५६)
तिण्ण (स ७७)
चारि (व १), चउ (स १०९) चउट्ठ (व ९६),
पंच (स १४३)
दस (स ५२)
चउग्गह्<चउद्दह (ग ९१, व ८९)

सग्राइ<शतानि (स २१)

३. सुबन्त

प्रथमा और सप्तमी (अधिकरण) विभक्तियो के अतिरिक्त बाकी विभक्तियो के रूप प्राय एक से होते है। हमारे कोश मे आये रूपो के साथ यहाँ कविराज स्वयभू के "पउमचरिउ" (रामायण), बारहवी सदी के पूर्वार्ध के गहडवार गोविन्दचन्द्र के दरबारी दामोदर पडित की पुस्तक "उक्ति-व्यक्तिप्रकरण" तथा बारहवी सदी के अन्त के कवि विनयश्री की गीतियो के प्रयोगो को हम देते है—

एक वचन के रूप—

विभक्ति	सरह	स्वयभू	दामोदर
प्रथमा	उ (मणु व ८६) ओ (कहाणो, ठाणोस १२८)	(कवन्धु, १ पृष्ठ७१)	(पूतु)
द्वितीया	चिह्न नही	उ (पूतु),	न्ह (पूतन्ह)
तृतीया	ए (वज्झे व ४२), (कज्जे व २) ए (च्छारे व ३, सहावे व १०६) एहि (खवणेहि ब ५) एहि (अइरियेहि ब ३) एण (कम्मेण स २४)		पूते (पूतेहि)
चतुर्थी	०		पूतहि, पूतकिहें, पूतें कर
पचमी	एँ (दोसे स ३३, ३४) लइ (तालइ स २०) ह (आयेसह स २८) हि (भवणिव्वाणहि मुक्कअ स ३२)		तौ, हुँत, हुत, पास, हति, आँ (पूत तौ, पूतहितौ, पूतहँत, पूतहति, पूतपास
षष्ठी	केरो (राक्खस केरो स ७३) केर (जणकेर स १११, माआकेर स ११६) तणअ (कालहु तणअ स ५७)		कर, किअ, हिँ, करे, करि, केर, केरि पूतकर, ० किअ)

सप्तमी हु (हत्थे स. ५४)
ए (घरे व १२७) ए, ए, हि, मज्झ
एँ (कोले व. ८६, वअणे ग. ६४, पम्मत्थे म ४७)
एहि, एहि (जलेहि म. ८८, पाणिएँहि म ८६)
हि, हि (काणहि व ४, वरहि व ४, देहहि म ३४, मन्न्थलहि म. ४४)
सु (सीसमु व. ३)
संबोधन अरे रे (म २३) अरे, अहो
ये (माइ ये व ८४)
हले (न ६२)
हे (ग. ३८)

वहुवचन

इसका बहुत कम प्रयोग मिलता है ।
प्रथमा आ (जुआ, म. ६१, जडा स ६१)
एँ (वाले स १६) (पूते)
द्वितीया न्ह (पूतन्ह), ए (पूते)
तृतीया इँ, एँ, हि हुपास (पूति, पूते, पूतहि,)
चतुर्थी न्ह (पूतन्ह)
पञ्चमी ० (अप्पण व ६) न्हतो (पूतन्हतो)
षष्ठी एआग (खवणाण व. ८) न्हकर (पूतन्हकर)
सप्तमी न्ह मज्झ (पूतन्हमज्झ)

(२) सर्वनामों के सुवन्त रूप

(क) मैं—एकवचन—
प्रथमा मइ (न २२)
हउ (स. ३५, १६४) हउँ
द्वितीया मह (स. ८८, मह म ३४) मैं
तृतीया मइ (न. २१)....मइ
चतुर्थी द्वितीयावत्
पञ्चमी मह, मज्झ
षष्ठी द्वितीयावत् मह, मज्झ मोर

सप्तमी मइ (स. ४३, ४६)

वहुवचन

प्रथमा अम्हे, अम्हे

द्वितीया अम्हा (स ४७) अम्हेहि

तृतीया म (स २२)

चतुर्थी

पचमी अम्हहुम् अम्हहँ

षष्ठी अम्हहुम् अम्हहँ

सप्तमी

(ख) तू—सरह मे नही है, स्वयभू और दामोदर के रूप हैं—

	एकवचन	वहुवचन
प्रथमा	तुह (स्व), तूँ (दाम)	तुम्हे, तुम्हे (स्व)
द्वितीया	मै (स्व), तोहि (दाम)	तुम्हे (स्व)
तृतीया	तै (दाम)	
चतुर्थी	तुहु, तुव, तुज्झु (स्व), तोर (दाम.)	तुम्ह, तुम्हहँ, तुम्हहु, तुम्हे (स्व द)
पचमी		
षष्ठी		
सप्तमी		

(ग) सो—

	एकवचन	वहुवचन
प्रथमा	सा (व ४५), से. (स ६५), ता (स २०), सो (स द्य ६)	
	मु, सा (सव)	
द्वितीया	सो (स. १४), त (स २३, ७७), तहि (स ४२)	
तृतीया	तेण (स)	
	तेण, तिए (स्व)	
पष्ठी	तसु (स १४)	
	तासु, ताहे (स्व)	

(घ) अण्ण (अन्य)—

प्रथमा अण्ण (स ७६)

(ङ) एहु—

प्रथमा एहु (स ३०), एहु (स्व)

(च) को—

प्रथमा को (व ६७), कवण

कवण (स्व), को (स्व)

तृतीया केण (स २२)

षष्ठी कसु (स ५८), कासु (म. ६५)

(छ) जो—

प्रथमा जो (स १६), जे (स ८०)

द्वितीया जे (स ५२)

तृतीया जेण (स ६१)

षष्ठी जसु (स १२)

जसु, जासु (स्व)

सप्तमी जहि (स ४६)

४. अव्यय, उपसर्ग

(१) अव्यय—

अग्गे (स ५२), अग्गे (स ६६), अध (स ५७), अरे (व ४४), इ<हि(ग ३७,७६), इअ<इति(ग ८६), उ>और(ग २०), उणो<पुन (ग ४२), ए<हे(ग ६२), एम<एव(स ४३), एहि>यहाँ(व ४), कमणे> कौन(स १०५,)कहि>कहाँ(स २७), काइँ>क्यो(ग २४), कि(व ८), किअ (स ४२), की>क्यो (स २०), खलु (ग १०४), जइ<यदि (स ६६) जत<यद्(ग २३), जन्तइ>जेतना(स ७६), जत्थ<यत्र(स २९), जव्वे>जव (स ३६), जाउ<यावत् (स ६७), जाव>यावत् (स ६६) जिम>जिमि, यथा (व ७६,८६), जेत्तइ>जेत्ता (स. ७७), ण<ननु (?), णउ> नहि (स १७,१६), णाहि>नही (स ४६), णु<नु (व. ११२), तउ>तो (स ७५), तत्तइ>तेत्ता (स ७२), तत्थ<तत्र (स ४०), तव्वे>तव (स ३६), तहवि<तथापि (स ७२), तहा<तथा (व १०१), ताव<तावत् (स २५), तावइ (स ७६), तिम>तिमि (स ४६, व. ८६), न (व १),

पच्छे>पीछे (स ५२), पुण>पुनि (स १७), पुणु>पुनि (स. ३९), फुड>फुर (स २७), वाज्ज<वादि (स १४०), वाहिर (स ६९), वि>भी (स ६६) विणु<बिना (स ७२), म>न (स ४३), मा>ना (स १७), रे (स ८९), सइ<स्वय (श ४६), सुठु>सुठि (स १२३), हु (श ६०), हो (स ३०),

(२) उपसर्ग

अ–निषेधार्थ (श १००), अ>आ (अमण<आगमन श ७०), अबत्तेअण–अको<अवचेतन (श १८), अब्भ<अभि (अब्भन्तर व ८९), अह<अथ (श २२) अहि<अभि (अहिमाण स ६०), आ (आअेस<आदेश (स २८), उअ<उप (उअपिट्ठ<उपपीठ, स ९६), उज<उत् (उज्जोअ व ९७), उड<उत् (उड्डी व ७०), उव<उद् (उवाहरण<उदाहरण श ९८) कु (व ९९), णि<निस् (णिण्क्कारुण व १०९), णिच्चल (स ६६), णि<नि (णिवेसी व ४), णिर<निर् (णिरक्खर स २५), दु<दुर् (श ८८), पडि<प्रति (पडिवेसी<प्रतिवेशी स ६८), वि<वि (विअप्प<विकल्प व १००), सम (समरसु स ७७, ९५), सु (सुगति स ८८)

५. समास

चार समासो के उदाहरण निम्नलिखित है—

१ कर्मधारय—घोरान्धार (व ९७)

२ तत्पुरुप—जोइणिचार (व ८४), जोइणिमाअ>जोगिनी-माया (व ८६)

३ द्वन्द्व—चित्ताचित्त (स १२३)

४ वहुव्रीहि – अभिण्णमइ<अभिन्नमति (श ८९)

६. तद्धित

तद्धित का प्रयोग वहुत कम होता था। कुछ उदाहरण है—

तणअ<तन (कालह तणअ स ५७), केर<कीय, (रावखस केरे (स ७३)।

७. क्रिया

क. तिङन्त

सहायक क्रिया-सहित वर्त्तमान क्रिया का यहाँ कोई प्रयोग नही दीख पड़ा। वर्त्तमान, भविष्य, अतीत (भूत) और आज्ञा की क्रियाएँ निम्न प्रकार हैं

(१) वर्त्तमान—

प्रथम पुरुष एकवचन मे ०, अ, इ, प्रत्यय आते है, जैसे जाण (व. ६६), जाअ (म ७७), जाणअ (व ६५),

जाइ (म ९३), जाणइ (व ६५), ठाइ (म ८३), णासइ (म ६०), तुट्टइ (म ७७), देइ (म ७३), देक्खइ (म १५), धावइ (म ४३), पइसइ (म ३६), पईसइ (म १५), वज्जइ (म ६१)। प्रथमपुरुष, बहुवचन का प्रयोग शायद इ को अनुनासिक करके होता था। मध्यमपुरुष के लिए संस्कृत की तरह् सि प्रत्यय का इस्तेमाल होता था—जाणसि (म ७७), पावसि (म ६७) परिआणिसि (म ६७)।

उत्तमपुरुष मे मि एक वचन के लिए आता था—वहमि (ग. ६५), जाणमि (व ६०), जोअमि (म ५७), पुच्छमि (स ५७)।

स्वयम्भू रामायण मे प्रथम पुरुष के लिए इ, मध्यम के लिए हि, हो और उत्तम के लिए एकवचन मे मि और हु आता है।

प्रथमपुरुष बहुवचन मे सरह न्ति, न्ते का प्रयोग करते है।—वज्जन्ति (म ६१), होन्ति (म ११४), रमन्ते (म ४८)।

(२) भविष्य—

इसका प्रयोग अलग मे बहुत कम देखा जाता है।

कुछ प्रत्यय है—

इहइ (होइहइ स ६८) प्रथम पुरुष

इ (वुज्झइ म ८७)

ईहसि मध्यमपुरुष मे—करीहसि, गमीहसि, ठवीहसि (स १५५)

स्वयंभू एकवचन मे सइ और बहुवचन मे सन्ति का प्रयोग करते है—होसइ, होसन्ति।

(३) अतीत—

अतीत काल के लिए पुराने रास्ते को छोड़ निष्ठा प्रत्यय से काम लिया जाता है, जैसा कि हिन्दी, अवधी, व्रज, भोजपुरी आदि करती है। ये प्रत्यय है—

अ (चाहिअ ग ४१, हुअ ग. १०१, ठविअ स. १५)

अउ (ठविअउ स. १५, ठिअउ ब ८६, ठीअउ व १११, दीअउ ब्र. ११२, बसिअउ श. ३८), इअउ (कहिअउ स ६४, पढिअउ व ६०)।

इउ (गहिउ स. ६६, गाहिउ स १२७, चाहिउ ब ३६, जाणिउ स ५१, घाविउ स १०, वाहिउ स १२८, साहिउ स २२)

उ (गउ स २६, ठिउ स २६)।

अपभ्रश का भूतकालिक प्रयोग अवधी के सबसे नजदीक है। इसके लिए इल-अल प्रत्यय का प्रयोग भोजपुरी आदि मे पीछे होने लगा। पर विनयश्री—जो विक्रमशिला (भागलपुर) के थे—ने बारहवी सदी के अन्त मे इल, अल का बहुत प्रयोग किया है, जैसे—फुल्लिल्ल (गीति १), गेल्लिअहँ (वही) झपाविल्ल (वही), भइल्ल (गी २), गइल्ल (वही), लाम्बल (गी ६),

सरह की भाषा और स्वयभू आदि की अपभ्रश ने अतीतकाल के सबंध मे प्राकृत आदि से अपना सबध बिल्कुल तोड लिया, और उसका अनुसरण आज भी हमारी भाषाएँ कर रही है। भेद इतना है, कि जहाँ भोजपुरी, बँगला, मैथिली आदि ने इउ का इल, अल कर दिया, वहाँ अवधी ने पहिले ही की तरह अउ, इउ, एउ को कायम रक्खा। ब्रज ने ओ और यो किया, जिसको कौरवी या हिन्दी तथा उसकी सहोदरा पूर्वी पजाबी ने आ, ए (बहुवचन) बना के रक्खा। इस प्रकार अपभ्रश जाणिउ, अवधी मे जानेउ, ब्रज जानो, हिन्दी-पजाबी मे जाणा (जान लिया) या जाना बन गया।

(४) आज्ञा—

आज्ञा का प्रयोग मध्यमपुरुष मे ही प्राय: देखा जाता है, करेइ (व ६६) खरडह (श. २५), पडिहाउ<प्रतिभातु (व १०१) जैसे कुछ ही सन्दिग्ध प्रथम पुरुष के प्रयोग देखने मे आते है। मध्यम पुरुष के एकवचन के प्रत्यय है—

इ (पडेइ व. ०७),

० वस (स. २७)

उ (थक्कु ब १०३, थाक्कु श १०५, देक्खउ स ६२, वसउ व. १००, भमउ (स ६३)

हु (पडिपज्जह स. ४४, पणमह स २३, माणह म. ३८)

हि (जाहि व. १०३),
हु (मणहु व १०७, लग्गहु न ५१ अच्छहु म ६७)

(५) समस्त क्रिया

आजकल हिन्दी मे जिस तरह है आदि सहायक क्रिया के साथ मिलाकर एक धातु के स्थान मे दो धातु के प्रयोग द्वारा उसी अर्थ को प्रकट किया जाता है, जो संस्कृत, पालि, प्राकृत मे एक धातु के रूप से चल जाता था, जैसे—पठति के लिए हिन्दी मे पढता है। लेकिन, यह परिपाटी अर्थात् कृदन्त के एक शब्द के साथ सहायक क्रिया द्वारा अर्थ का प्रकट करना हिन्दी की मूल भाषा कौरवी तथा हमारी दूसरी भाषाओ ने भी अनिवार्य नही है। कौरवी मे पढै, जावै-जैसे प्रयोग देखे जाते है, और है को अनिवार्य रूप से प्रयुक्त भी नहीं किया जाता। पुरानी उर्दू कविताओं ने— पढे है, जावे है—जैसे प्रयोग कभी थे, लेकिन उन्हे त्याज्य कर दिया गया। जिसके कारण लाठी के जोरा से पढता है, जाता है का प्रयोग कराया गया। उस लाठी को हिन्दीवालो ने भी मान लिया। इस क्रिया-रूप मे एक और भी लाभ था, कि क्रिया मे स्त्रीलिंग-पुल्लिंग के भेद की अवश्यकता नही थी। समस्त क्रियाओ का सरह की भाषा अपभ्रंश ने भी प्रयोग अधिक नहीं देखा जाता, और यदि होता भी है, तो वह संस्कृत की तरह शायद ही कही। ये सहायक क्रियाएँ निम्नलिखित है—

गउ<गतो, (विलीण गउ स. ३९)
जाइ<याति, (खअ जाइ क्षय हो जा, न ३०, सिद्धि जाइ स ४८
भणइ ण जाइ स ६५, कहिहौ जाइ म ३०)
थाक्कैइ<स्थगति—(णिच्चल थाक्कइ निश्चल रहे, स. ६६)
सक्कइ<शक्नोति, (कहण ण सक्कइ कह न सके, स १०४)
होइ<भवति, (वध होइ>बढता है, स. ११३)
होवि<भवति, (होवि न खीण>क्षीण नहीं होता, स. ४१)

(६) नामधातु क्रिया

नाम से क्रिया बनाने का रिवाज संस्कृत और भोजपुरी, अवधी आदि

आधुनिक भाषाओ मे भी देखा जाता है । साहित्यिक हिन्दी मे इसका अभाव खटकता है । सरह की भापा मे भी इसके प्रयोग मिलते है, यद्यपि क्षेत्र सीमित होने के कारण वह कम देखने मे आते है।

नामधातु मे इअ प्रत्यय लगाकर क्रिया वनाई जाती है, जैसे उद्दूलिअ <उद्धूलित, धुलिआया, स ३ ।

शब्दानुकरण के लिए आइ प्रत्यय का उपयोग देखा जाता है, जैसे सुसखुसाई>फुसफुसाता है, (स ४)

(७) भाव, कर्म-संबंधी क्रियाएँ

अकर्मक धातुओ से भाव और सकर्मक धातुओ से कर्म मे प्रत्यय ला त्रिया के प्रयोग के कुछ उदाहरण है—

सक्कअ<शक्यते, स १७, वुच्चअ<उच्यते स ३८, रुच्चअ<रुच्यते स ३८, दमुच्चअ<मुच्यते, स १८

इअ, विअ डाविअ<दावते, ब २, पाविअ<प्राप्यते, स ८५

इअह, ईअइ, लक्खीअइ<लक्ष्यते, स २७, पुज्जिअइ<पूज्यते, स १४६, किअइ<क्रियते, स १६,४२

इज्जइ—दिक्खिज्जइ<दीक्ष्यते, व ५, गुणिज्जइ<गुण्यते, स १४, विलिज्जइ <विलीयते स ४८, णासिज्जइ<नाश्यते स १३६, भाविज्जइ <भाव्यते स. १४२

एइ, पडिहरेइ<प्रतिह्रियेत स ५७, करेइ<क्रियेत स ५७, चरेइ<चर्येत स. १२५, हरेइ<ह्रियेत स १२५

(८) प्रेरणार्थक णिजन्त क्रिया

इसका रूप प्राय वैसे ही प्रत्ययो को लगा के वनाया जाता, जैसा कि हिन्दी मे । कुछ प्रत्यय इसके कौरवी वोली मे देखे जात है, जैसे—चली का चाली । पर साहित्यिक हिन्दी ने उसे अपनाया नही ।

आ इ चाली>चलाता है (व ४)

आव—करावै

वइ—मेलवै>मिलता है (स. ५३)

ख. कृदन्त

कृदन्त रूपो का अधिक प्रयोग अपभ्रंशकाल से ही होने लगा, जिसे आज भी देखा जाता है। खासकर त या निष्ठा प्रत्यय जैसे हिन्दी मे भूतकालिक क्रिया की अपनी विशेषता बन गई है, वैसे ही अपभ्रंश मे भी देखी जाती है।

१ निष्ठा प्रत्यय क्रिया

अउ–सूणउ>सुना, डिट्ठउ>देखा, स ६७

आ–लग्गा>लगा स १६

इअ–कड्ढिअ>काढ़ा, निकाला स १६, कहिअ>कहा, स २२, सोहिअ> शोभित हुआ, स ३६ इअ–किया स. ५६

इअउ–कहि कहिअउ<कथित कहा स ६७

इआ–रजिया<रजित, रग्या>रगा स. ५०, जाणिया>जान्या>जाना स ५६

इउ–धाविउ>दौडा स १०, रहिअउ<रहित स १८, जाणिउ>जाना स. ४१

इव–गाइव>गाया स ३६

उ–गउ>गया स २६, दिन्नु>दिया स ३७

ओ–णट्ठो>नष्ट हुआ स २६, वइट्ठो>वैठा स ६७, डिट्ठो>देखा स. १०

हमे भूतकाल के वतलानेवाले आ और ओ या उ तीनो प्रकार के प्रत्यय मिलते है, जिनमे आज की भाषाओ मे आ खडी हिन्दी के लिए रह गया है और उ, ओ अवधी तथा व्रज मे प्रयुक्त होता है। लग्गा लगा यह खडी हिन्दी के जैसा है। कहिअउ>कहेउ के रूप मे अवधी मे वोला जाता है। गउ>गया का भी प्रयोग अवधी मे देखा जाता है। नट्ठो गओ की तरह व्रज के अनुरूप है।

२. न्त—इसके प्रयोग अपभ्रंश मे मिलते है, यद्यपि आजकल की भाषाएँ उनको उतना इस्तेमाल नही करती। इसके रूप मे—पढन्त व १ हुणन्त>होमता व १, कुट्टन्त>कूटता स ५४, रमन्ते>रमता स ७१, हरन्ते>हरता स ७१।

३ क्त्वा के लिए आजकल कर अलग से धातु मे जोडा जाता है, जैसे लेकर, वैठकर। इसके लिए यहाँ दो प्रत्यय प्रयुक्त होते देखे जाते है—

इग्र–लइ>लेकर स. १२२, बइसी>बैठकर ब. १, चूछाड़ी>छोडकर स. ११, धरि>धरकर स ६३।

बी–मुणेवि>मननकर स. ३६

४ धातु-अर्थ—इसके लिए सस्कृत आदि का अन प्रत्यय इसमे भी अण के रूप मे आता है, जिसके आकारान्त और उकारान्त दोनो रूप देखे जाते है, अर्थात् खडी बोली और व्रज-अवधी दोनो का पूर्व-रूप यहाँ मिलता है, जैसे अत्थमणु<अस्तमनम् स ६५, कहाणॉ<कथन>कहना स. १२७।

बी प्रत्यय का इस अर्थ मे प्रयोग भोजपुरी, अवधी आदि मे देखा जाता है, जो हिन्दी मे नही मिलता। अपभ्रश मे यह मिलता है–कहवि>कहना स ११३।

सरह की मूल भाषा मे ग्रथ एकाध ही मिले, इसलिए कृदन्त के सारे प्रयोगो के बारे मे नही कहा जा सकता। लेकिन, स्वयम्भू, पुष्पदन्त आदि अपभ्रश के महाकवियो ने महाकाव्य लिखे है, जिनमे अनेक रूप देखे जा सकते हैं।

८. विशेष

हम वतला चुके है, कि सरह की भाषा अपभ्रश अपनी शब्दावलि और उच्चारण मे यद्यपि पूरी तौर से प्राकृत की अनुयायिनी नही है, लेकिन वहुत-सी वातो मे वह आधुनिक भाषाओ का पथ-प्रदर्शन करती है। इसमे प्रयुक्त सस्कृत-वश से भिन्न भाषा के देशी (द्रविड़ आदि) शब्द बहुत-से आज भी प्रयुक्त होते है। और कितने ही शब्दों के रूप इसे आधुनिक भाषाओ से एक करते हैं। यहाँ उनके उदाहरण दिये जाते हैं।—

(१) देशी शब्द

करहा (४३, करभ), कबडिआर (वाग १०१, हाथीवान्), खुसखुसाइ (वाग ४, फुसफुसाइ), चाउल (५४, चावल), चॉगो (१२०, चगा), च्छाडहु (१५७), चेल्लु (वाग. ६, चेला), छुड (६३,), जँगड (४३, झगडा), धान्ध (८८, पाली धन्धा), फुड (२६, २७, ११६), वप्पडा (१५७), वाज्ज (१३८, विना), वुल्ल (१२१), लड (१०६), फेडिअ (१३६), सुरुगा (वाग ७६), हल्ले (८३)

(२) आधुनिक भाषाओं से एकता

जहाँ तक संस्कृत के तद्भव शब्द-रूपों का संबंध है, अपभ्रंश प्राकृत के शब्दकोष को बहुत अंशों में स्वीकार करती है। हाँ, वही बात सुबन्त और तिङन्त रूपों के बारे में नहीं कही जा सकती, जहाँ कि वह आधुनिक अश्लिष्ट भाषाओं की पंक्ति में आ बैठती है। इसके अतिरिक्त भी ऐसे बहुत-से शब्द मिलते हैं, जो उसे आधुनिक भाषाओं का बताते हैं, जैसे.

आवइ-जाइ (बाग. ८२), उत्तिम (१६), कट्ठिअ (१९), काहिइ जाइ (३०), कहण ण सक्कइ (बाग ५०), कहिज्जइ (६२), कोल (बाग ८९), गुणिज्जइ (१४), चलइ (६३), चाली (बाग) ४(, चाहन्ते-चाहन्ते (३४), च्छारे (बाग ३, राख), च्छुप्पइ (६९. छुवइ), घरिणी (बाग ८४), जसु (१२, जासु), जोअमि (५२, जोहूं), जोडण (१७, जोडना), जल्लइ-तत्तइ (७८), झगड (बाग. २३, झगडा), णग्गाविअ (बाग. ६), तब्बे (३६, तब), तरुअर (बाग १०७), थाक्कु (६६, बँगला,) दिक्खिज्जइ (बाग ५), पिविअ (८४, पीअइ), पुडअणि (९७, पुरइन, कमल), परमेसुरु (बाग ८१), फुइ (बाग. ७९), फुर (अवधी), वक्खाणु (१०, वखान), विलअ जाइ. (२७, ४१), विलअ गउ (२९), भणइ ण जाइ (६४), भुल्ले (बाग ३, भूले), रडी-मुंडी (बाग ५), लुक्को (बाग ८९, छिपा), लोडइ (बाग ८०, पजाबी), सुक्कावथि (८०, मगही), हव्वास (६९, अभ्यास)

(३) धातु-सूची

दोहाकोश में निम्न धातुओं का प्रयोग हुआ है—

अज्, उ-(६१, उत्-गद्), अच्छ(२३, बाग. ६२) है, अत्थ(बाग ६७), आ, आव (बाग ३४), आस>आ (७२, या-आस्), सन्आ-(बाग ४), आग (१४, ०१), अल, वि-(२८, अक्त, वि-), वआर, उ-(बाग १०७, उप-कृ), इच्छ (२३), इज, पति-(८९ ? पतियाइ), इस, प-(बाग ६७), इक्ख, प-(१५), कड्ढ (१९?, निकाल), कर (४४, ५० कृ), कह (३०, ६४,३८, ६९), खड (७३), खाज (४८ खाद्,) गह (६९, ग्रह), गा(३६, गया), गाह (३६ दृग्, बाग. ९१ ज्ञा, १२७ अवगाह), घस २५ (२५ घृष्), घोल (२५), ग (बाग १०१), चर (४९), चल (बाग. ४५), चाह (३४),

खीण (४१), चिन्त (२८) च्छुप (६९), च्छड (वाग ८२,–फ–६ १११), छिण्ण (६५), जल (जलन्त, वाग. ८१), जल (२३), जा (१३,४८), जाल (बाग ४), जिग्घ (६२), जाण (६, ६९, १०३, १२७), जुड (१७), जोग्र (५२), झा (१२, ध्या), ठि (२९, ४३), डह (वाग दह), डा (वाग ७० उडना), णिहाल (वाग ९९), देस (वाग २, दिश्), तप (१३), तिस (८८, बाग ९१ तृष्), तुट्ट (७२, ९४), तुट्ठ (१२), दा (३५,७१), दिस (१५, वाग ८१), दिह (९१), दी (२३, वाग ११२), धाव (१०, ४३, ९१), धर (वाग ७७), धा (वाग ८६, ध्या), पलुट (वाग ७०), पढ (बाग १,१८, वाग ९०), पड (वाग ७०), पाड (३५ वाग ५), पाव (१६, १७, ६६), पुन्छ (५२, ६८), पुज्ज (७१), पीव (४४, ४८), पुत्ल (वाग १०) पूर (९४), फुर (२३), वग्र (८९), वइ (३, वाग ९८), बइस (१०, वाग ४०), वज्ज (१८, ५४, बाग ८४), वज्झ (२४, ६४, ९१), बन्ध, (वाग ४) वन्ध (बाग. ४, १०५), बह (वाग.३, ८६, १२८), वस (२७), वाज्झ (७१), बास (वाग १११), विस (बाग ४), वुज्झ (३०, ७७), वेग्र (९६, वाग.७५), फर (४८), भण (वाग ८), भम (६३, ७९), भाव (१११, बाग ८, वाग १०५), भेज्ज (बाग. ८३), भोग्र (बाग ८), भान्त (६७), मण (८५), मण्ण (वाग. १०२), मर (३०, ६०), मिल (८८), मुण (३६, बाग ८१), मुसार (४१), मुह (३४), न्हा (१३), बक्ख (वाग १० ७४), मुवक (६६), रज (५०), रम (बाग ७०), रस (५१), रह (६४), रुघ (३४), मुच्च (१३), लग (१६), लक्ख (२७, ३४, ३५), लइ (२०), लज्ज (७५), लभ (१२), लिप (६९), लीण (६५, ९९), लुड (वाग ८०), लुक (वाग ८९), सक्क (१७, फाग ५०), सत्त (वाग. ७१), साध (१७), सा (सार, साल ७२, वाग १०१), सर (७१), साह (वाग.९,१७), सिज्झ (२०), सुण (६२), सुध (वाग. १०६), सुह (वाग ९५), ग्रेसेग्र (वाग १०५), सोह (३६), हर (वाग. ६४, वाग ९७), हा, पडि– (वाग ८७), हार, बव– (६३), हुण (वाग.१ हवन), होइ (१२)

(४) छन्द

जिस प्रकार प्राकृत का अपना विशेष छन्द गाथा या ग्रार्या है, जिसका वहुत सुन्दर प्रयोग गाथा-सप्तशती के मुक्तको मे देखा जाता है, उसी

तरह अपभ्रंश के दोहा-चौपाई अपने विशेष छन्द हैं। बल्कि हम कह सकते हैं, कि आर्या या गाथा को केवल प्राकृत का छन्द नहीं कहा जा सकता, पर दोहा-चौपाई का आरम्भ तो अपभ्रंश में ही शुरू होता है। इनके सबसे पुराने नमूने हमें सरह की कविताओं में ही मिलते हैं। जबतक और पुराना उदाहरण नहीं मिलता, तबतक के लिये हम कह सकते हैं, कि सरह ही साहित्य में इनके विधाता हैं। चौपाई और पद्धरिया एक ही प्रकार के छन्द हैं। दोनों में चार पद होते हैं, हरेक पाद में १६ मात्राएँ होती हैं। अन्तर इतना ही है, कि चौपाई के अन्त में गुरु आता है, और पद्धरिया में लघु। यह भी स्मरण रखने की बात है, कि दोहाकोश के नाम से ही सरह की अनेक कविताएँ विख्यात हैं, लेकिन दोहा छन्दों के अधिक होने पर भी उनमें केवल दोहे ही नहीं हैं, बल्कि पद्धरिया आदि दूसरे छन्द भी देखे जाते हैं। शायद उस समय अभी दोहा शब्द अपने आज के अर्थ में रूढ़ नहीं हुआ था। कोश भी यहाँ डिक्शनरी या शब्दकोश के लिए नहीं इस्तेमाल किया गया। कोश का अर्थ है संग्रह या संचय। दोहाकोशसे दोहों का संचय या दोहावली अभिप्रेत है। "गाथासप्तशती" को पहले गाथाकोश या आर्याकोश भी कहा जाता था, जिसका भी अर्थ गाथावलि ही है। सरह के "दोहाकोश गीति" में गाथा या आर्या छन्दों का भी प्रयोग देखा जाता है, जिनकी संख्या छ है। इनकी भाषा सभी जगह प्राकृत है, जिससे मालूम होता है, कि उस समय आर्या छन्द को प्राकृत का छन्द माना जाता था, और उसे देशी भाषा में इस्तेमाल नहीं किया जाता था। हो सकता है, दोहा-चौपाई आदि जिन छन्दों का पहले-पहल प्रयोग हम सरह को करते देखते हैं, वह लोकभाषा के छन्द थे।

दुवहय दोहा के रूप में ही प्रचलित था, क्योंकि इसी तरह सरह के ग्रंथो में उसका प्रयोग देखा जाता है। इस छन्द के बारे में किन्हीं-किन्हीं विद्वानों का मत है, कि यह ग्रीक छन्द से लिया गया है। इसमें शक नहीं, ईसा-पूर्व द्वितीय शताब्दी से ईसा की पाँचवीं सदी तक यवन, ग्रीक, हूण (हेफ्ताल) आदि जातियाँ भारी संख्या में भारत में आकर सदा के लिए बस गई। यद्यपि कुछ ही पीढ़ियों में वह अपनी भाषा खो बैठी, लेकिन उनके गीतों की ध्वनियाँ और छन्द इतनी जल्दी भुलाये नहीं जा सकते थे।

हिन्दी ने मुस्लिम-काल मे अरबी और फारसी—विशेषकर अरबी—के कितने ही छन्दो को ले लिया, जिनका प्रयोग आज भी होता है। ऐसे ही यदि उपरोक्त घुमन्तू जातियो के गीतो और छन्दो के बारे मे किया गया हो, तो कोई आश्चर्य की बात नही। यदि दोहा को इस तरह अपनाया गया हो, तो अधिक सम्भव है, वह यवनो से नही, बल्कि शको से लिया गया होगा। शक सामन्त हमारे यहाँ के सभ्रान्त राजपूतो, जाटो, अहीरों, गूजरों के रूप में आज भी मौजूद है। जिस तरह वह भारतीय जाति के अभिन्न अंग हो गये, वैसे ही उनके कुछ छन्द और लय भी यदि जनप्रिय होकर हमारे हो गये हो, तो कोई आश्चर्य नही। यहाँ एक उल्लेखनीय बात यह है, कि इन पंक्तियो के लेखक ने र्याजिन (रूस) और ताजिक लोकगीतो को उसी लय और छन्द मे गाये जाते सुना, जिसमे भोजपुरी बिरहे—जिसे हजारीबाग जिले मे चाचर (चच्चरी) कहते है—गाये जाते हैं।

डा० शहीदुल्ला ने "दोहाकोशगीति" मे निम्न छन्दो को पाया है—

१. दोहा—हमारी पुस्तक मे ६२ के करीब दोहे मिलते है, अर्थात् आधे से कुछ ही कम। दोहा इसी रूप मे वहाँ बोला जाता था, दुवहय नही। जैसा कि इस तालपत्र के १११ वे पद्य के इस वाक्य से मालूम होता है—"तहि भामिअ दोहाकोप तत्थ चिअकन्धअ समत्त॥" सरहपाद ने अपनी इस प्राकृत गाथा मे भी दुवहयकोस नही बल्कि दोहाकोश का प्रयोग किया है, जो १३ और १५ मात्राओंवाली दो पक्तियो का होता है।

२ सोरठा—सोरठा का प्रयोग सरह ने बहुत कम किया है। वैसे सोरठा दोहे को उलटकर ही बनाया जाता है।

३ पादाकुलक के भी कितने ही उदाहरण मिलते है, जो १७ मात्राओ का छन्द है।

४. अडिल्ल वदनक—इस पज्झटिका के काफी प्रयोग यहा देखे जाते है। इसके चारो पदो मे से प्रत्येक मे १६–१६ मात्राएँ होती है, और जैसा कि ऊपर बतलाया, पज्झटिका<पद्धतिका>पद्धडिया के अन्त मे दो गुरु और एक लघु अवश्य आता है।

५. गाथा (आर्या)—इसका प्रयोग सरह ने केवल प्राकृत मे लिखे छः पद्यो मे किया है।

६. रोला—इसका भी दो-एक ही जगह उपयोग सरहपा ने किया।

७ उल्लाला—२८ मात्राओ की दो पंक्तियों का यह छन्द बहुत कम प्रयुक्त हुआ है।

८ महानुभाव—१२ मात्राओ के ४ पादो का यह छन्द एक जगह ही प्रयुक्त हुआ है।

९ मरहट्ट—२९ मात्राओ के इस छन्द को डा० शहीदुल्ला ने एक ही जगह पाया है।

§५ हस्तलेख

जिन हस्तलेखो के आधार पर मैने मूल पुस्तक का सम्पादन किया है, उसके बारे मे कुछ कहने के पहले यह बतला देना आवश्यक है, कि सरह जैसे भाषा, विचार, छन्द आदि मे युग-प्रवर्तक पुरुष की एक ही कृति को हिन्दीभाषी पाठको के सामने रखकर सन्तोष कर लेना मैने अच्छा नही समझा। इसीलिए उनके जो अन्य अपभ्रंश ग्रथ तिब्बती (भोट) भाषा मे अनुवाद के रूप मे मौजूद है, उनको भी हिन्दी मे ला देने की मैने कोशिश की। इस प्रयत्न मे मै अपने को सफल नही कह सकता, लेकिन इससे सरह के भावो को जानने मे सहायता मिलेगी, इसमे सन्देह नही। यह भी हो सकता है, कि तिब्बत के पुराने विहारो के हस्तलेखो की अच्छी तरह छानबीन करने पर शायद उनमे कुछ और मूल भाषा मे मिल जाये, उस वक्त इन अनुवादो की अवश्यकता नही रहेगी। यदि ऐसा न भी हो, तो भी आनेवाले विद्वान् अधिक साधन-सम्पन्न होकर अच्छा अनुवाद कर सकेगे। सरह की भाषा अन्य सिद्धो की भाषा की तरह सन्ध्या-भाषा के नाम से अभिहित की जाती है। उसमे दूसरे रहस्यवादी कवियो की तरह अनेक भाव निहित है, इसलिए भी उनका हिन्दी मे अनुवाद करना आसान काम नही। दुर्भाग्य से मुझे कोई ऐसे तिब्बती विद्वान् की सहायता नही मिल सकी, जो सिद्धों की भाषा और भाव का ज्ञाता हो।

१. 'दोहाकोश-गीति' की तालपोथी

शायद दोहाकोश की सबसे पुरानी प्रति यही सिद्ध होगी, जो कि सन्

१९३४ ई० में मुझे तिब्बत के ऐतिहासिक मठ स स्क्य में मिली थी, और जिसके अनुसार मैंने कोश को सपादित किया। इसकी प्राप्ति बडे विचित्र ढग से हुई। मै भारत से गई तालपत्र की पोथियों की खोज मे अपनी दूसरी यात्रा मे स स्क्य पहुँचा। वहाँ तालपत्र की पोथियाँ थीं। खोज करने पर किसी ने कहा, वहा के एक मन्दिर के पुजारी के पास ताल-पत्रो का बडल है। मेरे चिरस्मरणीय मित्र और अब दिवगत गेशे सघ-धर्मवर्धन (गेन्दुन् छोम्फेल्) जाकर किसी तरह बडल को ले आये।

तिब्बत मे भारत से गई ताल-पोथियो को बहुत पवित्र माना जाता है। मरणोन्मुख व्यक्ति के मुँह मे यदि तालपोथी का धुला एक बूँद जल पड जाय, तो उसके पाप धुल जाने मे कोई सन्देह नही। यह उसी तरह का विश्वास है, जैसा हमारे यहाँ मरणासन्न के लिए गगाजल को समझा जाता है। ऐसी पवित्र वस्तु को वहाँ का हरेक सद्गृहस्थ अपने घर मे रखना चाहे, तो इसमे आश्चर्य क्या? अधिक चढावा चढानेवाले भक्त को पुजारी तालपोथी का एक टुकडा काटकर प्रसाद के रूप मे दे दिया करता था, और इसी उद्देश्य से नाना पुस्तको के पत्रो का यह बडल उसके पास था। कौन-कौन-से ग्रथो के कितने पत्रे इस प्रकार बँटे, इसे कौन बतला सकता है। महत्त्वपूर्ण पत्रों को फिर पुजारी को सपुर्द करना मेरे बस की बात नहीं थी। पुजारी को भी कुछ दक्षिणा मिल गई, इसलिए उसने आपत्ति नहीं की। यद्यपि हस्तलेख मे सन्-सवत् नही दिया हुआ है, पर लिपि दसवीं-ग्यारहवीं सदी की कुटिला है। इस हस्तलेख का इतना ही महत्त्व नहीं है, बल्कि अभीतक सरहपा के इस दोहाकोश की जितनी प्रतियाँ मिली है, उनमे यह सबसे पुरानी होते दोहों की सख्या मे भी सबसे बडी है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने जिस प्रति को "बौद्ध गान ओ दोहा" मे आज से ४० वर्ष पूर्व सपादित किया था, उसमे ५० के करीब दोहे थे। महाप्रस्थान के पथिक डाक्टर प्रबोधचन्द्र बागची ने आज से १५ साल पहिले जिस 'दोहाकोश' को प्रकाशित कराया था, उसमे दोहो की सख्या ११२ थी। स्वय तिब्बती मे जो इसका अनुवाद (तेर् गी स्तन्. ग्युर् ग्युद् पोथी वि पृष्ठ ७०ख५—७७क३,) मे मिलता है, उसमे दोहो की सख्या १३५ है, जब कि स. स्क्य की इस तालपोथी मे वह १६४ है। तिब्बती-अनुवाद इस प्रति से नहीं किया गया। वह उस प्रति का

अनुवाद है, जिससे मिलती-जुलती प्रति की कापी डाक्टर वागची द्वारा संपादित हुई। हमारी इस प्रति मे ८० के करीब नये दोहे है, उधर डाक्टर वागची के प्रति मे भी ५० से अधिक नये दोहे और है।

२ खण्डित पत्रे

तालपत्र--

तालपत्र ११"×२" पृष्ठाक १३

१३वे पत्र की दोनो ओर ८ दोहे है। इसमे पहिले के १२ पत्रों या २३ पृष्ठो मे ७५ दोहे रहे होंगे, अर्थात् प्रतिपृष्ठ ३ दोहे। दोहो पर सख्या का अक दिया हुआ है।

लिपि कुटिला (वर्तुल) के वाद की सभवत १२वी सदी की मागधी है। पातियो के वीच मे छोटे अक्षरो ने कही-कही भ्रष्ट सस्कृत मे टिप्पणी-है। ग्रथकर्त्ता का नाम नही है, पर जान पडता है, यह भी सरह-पाद की कृति है और प्रकाशित "दोहाकोश" से भिन्न। ये पत्रे भी स.स्क्य के मन्दिर के पुजारी से काटकर प्रसाद वनने से वचाये गये वडल के है। तालपत्र के ८ दोहे निम्नलिखित है·

कमलकुलिश वेवि मज्झ ठिउ जो सो सुरुअ विलास।
को त रम्मइ ण तिहुवणहि, कानु ण पूरिअ आस ॥ (७६)

(टि) वज्रपदमसयोगात् वोधि चेत्तहु स्थित्त सहजानन्दरूपी सुप्रपा· यत्किंचित् त्रिभुवने सहजमय सर्वागापरिपूरक।

क्खणउ वाअ सुह अहवा, अहवा वेण्णिवि सोवि।
गुरुअ पसाअे पुण्ण जइ, विरला जाण(इ) कोवि ॥ (७७)

तत्क्षणगभीरतत्त्वदेसनात तत्क्षणसरसविरससहजट्ठाणे त्रीप्रमायेन पुण्यधामतो नद्ययेन कोटीनासप्य--

गभीर भिड आर फले, णउ पर णउ अप्पाण।
सहजानन्द चउक्खण, णिअ सवेअ ण जाण ॥ ७८

हे सखे, निरक्खरस्थ स्वपरविभाग तु लौकिक त्वजा. (ठउ) परसविरस-सुसुप्नता सहजा निजस्वभावेन सवेदन

घोर अधारे चन्दमणि, जिम उज्जोअ करेइ।
परममहासुह अेक्क क्खणे, दुरिआ एस हरेइ ॥ ७९

चन्द्रकान्तिवत् अन्धकारापनयने गुरुरिव ससारिकः।

दुक्खदिवाअर अन्थविउ, उवइ ताराव्‌बइ सुक्क।
ठिअउ णिम्माणे णिम्मिअउ,तेण ढिमण्डलचक्क। (८०)

सन्नृत परमसार्थ अस्तङ गते सति बिम्बबुधबोधिचितस्थिरे सति. सदृतको यत्रवस्था धर्मसस्वोग अदृष्ट निर्मान बाह्या आस्य सक सवमण्डल चक्र नानामण्डलानाम्

चिन्तहि चित्त णि ण वट्ट, सअलउ मुञ्च कुदिट्ठि।
परममहासुहमोक्ख परु, तहि आअत्ता सिद्धि॥ (८१)

सहजअद्धषेति सुज्ञ अदित सव घर्म न नानात्मा कुदृष्टिछडह सहजात्म कु सकल परमसुखेन तस्योपरि परमोतम सिद्धिर् नस्तीति।

मुक्कउ चित्त गएन्द करु, एत्थवि अप्पा म पुच्छ।
मअण गिरी णइ जल पिअउ, तहि भडु बसिउ सइच्छ॥ (८२)

योगो हस्तिवत् भवदु ( ) खात् आत्मान पृछ मा कुरु आ महासुखम वेद्यती आकाशे पवन न पी अथवागत स्वतन्त्र कुरु आभासे।

बिसअ गअदे करे गहिअ, जिम मारइ पडिहाइ।
जोइ कवडिआर जिम, तहि पुणु णिप्परि जाइ॥ ८३

यत्किंचिद्रूप हस्तिवत् हस्तिखिलिकवत् विषयेन केन चित् लिप्यते चमरी हस्तिवत्।

§६ 'चचा' (चर्या) पोथियाँ

सिद्धो के गीत ८ वी से १२ वी शताब्दी तक—जब तक कि बौद्ध-धर्म उत्तरी भारत मे रहा—उसी तरह गाये और पढे जाते थे, जैसे आजकल कबीर साहब और दूसरे सन्तो की बानियाँ। आजकल के कुछ सन्त मतो मे भी गुप्त पूजा-पाठ होती है, जिसमे सन्त की बानी को गाया जाता है—उदाहरणार्थ शिवनारायण साहब की बानी। इस तरह के गुप्त पूजा-पाठ को चर्या, अनुष्ठान या आचरण कहा जाता था। सरह के समय और बाद में भी उत्तरी भारत का बौद्धधर्म महायान नही, वज्रयान (तान्त्रिक बौद्ध-धर्म) बन गया था। सरह वज्रयानी चर्याओ के प्रवर्त्तक थे, यह कहना मुश्किल है। उन्होने अपने "दोहाकोशगीति" के आरम्भ ही मे इस तरह के अनुष्ठानो और विश्वासो का खण्डन किया, जिसमे स्थविरो और महायानियो को भी नही छोड़ा है। यदि वह स्वय चर्याओ के प्रवर्त्तक या समर्थक होते. तो यह वदतोव्याघात होता।

जो भी हो, सरह के बाद चर्याओं का प्रचार बहुत जोर से हुआ, जिनमें पंचमकार का प्रयोग आवश्यक था। भारत में बौद्ध-धर्म के साथ चर्या के लुप्त होने के बाद भी यह नेपाल से नहीं उठी।

इसी चर्या शब्द का बिगड़ा रूप नेवारी में 'चचा' है। चर्या-पद्धति की आवश्यकता वहां अनुभूत हुई, क्योंकि उसके अनुष्ठान दो-एक सरल कामों या बातों तक ही सीमित नहीं, बल्कि घंटों तक चलने अनेक विधि-विधानों पर अवलम्बित। इसके लिए बहुत सी पुस्तिकाएँ भिन्न-भिन्न आचार्यों ने तैयार की, जिन्हें भी "चचा" कहते हैं। नेपाल के बौद्धों में जो नवजागृति हुई है, उसके कारण वज्रयान के क्रिया-कलापों से शिक्षितों की आस्था उठती जा रही है। इन अनुष्ठानों के पुरोहित बाड़ा (बन्द्य, वज्राचार्य) लोग भी अपने प्रभाव को खोते जा रहे हैं। उसके कारण डर है, कि कुछ दिनों में "चचा" की पद्धति बिल्कुल लुप्त न हो जाय, औ उसके साथ "चचा" की पुस्तिकाएँ भी नष्ट हो जायँ। यद्यपि यह वज्रयानी चर्याएँ मिथ्या विश्वास और मिथ्या आचार को फैलाती हैं, लेकिन इतिहास के लिए उनके अध्ययन की अवश्यकता है। इन गोष्ठियों में आज भी महासिद्धों और दूसरों के गीत एक खास लय में गाये जाते हैं। इनके अध्ययन से पुराने चर्यागीत के स्वरों का पता लग सकता है। शायद इसी लय में सिद्धों के गीत अपभ्रंश-काल में मध्यदेश, (उत्तर-प्रदेश, बिहार) में गाये जाते थे। यह बड़ी हानि होगी, यदि अध्ययन और संरक्षण के पहले ही वह नेपाल से लुप्त हो गये।

यद्यपि "चचा" के गीत अपभ्रंश के हैं, लेकिन उनके गानेवाले आर्य-भिन्न एक दूसरी भाषा नेवारी के बोलनेवाले हैं। वह गीतों के अर्थको नहीं समझते, यही नहीं, बल्कि उनके मुँह में पड़कर शब्दों का उच्चारण भी दूसरा हो जाता है। नेवार लोग बोलने में त और ट का भेद नहीं करते, इसी तरह र की जगह ल के प्रयोग को भी अति तक पहुँचा देते हैं। जैसा कि चचा पोथी १०, पृष्ठ १० में "सतगुरुचरणे" के स्थान पर "सतगुलु चलने", आया है। कण्हपा की बहुत पुनीत वज्रगीति को अनेक चचा पुस्तकों में देखा जाता है, लेकिन उसका सबसे अधिक शुद्ध रूप वहीं है, जो तन्-जुर, तन्त्र, पोथी यु, पृष्ठ १६३ में है।

मैंने नेपाल की एक यात्रा में "चचा" की डेढ़ दर्जन के करीब पोथियाँ जमा की, जिनमें अधिकांश सौ वर्ष से अधिक पुरानी हैं। कुछ और भी

पुरानी हो सकती है। खोज करने पर नेपाल मे तीन-चार सौ वर्ष पुरानी पोथियाँ भी मिल सकती है, जिनका महत्त्व अधिक होगा, इसे कहने की अवश्यकता नही। इनके विकृत उच्चारणों के लिए कण्ह (कर्ण) पाकी वज्रगीति: (तन्-जुर् गु १६३, प्रज्ञा) को देखिये—

कोल्लइ रे ठिअ बोल्ल, मुम्मुणि रे कक्कोला।
घणइ किपीटह वज्जइ, करुणे किअइ ण रोला ॥ ध्रु ॥
तहि पल खाजइ गाढे मअ ण पिज्जइ।
हले कलिजर पाणिअइ, दुन्दुरु तह बज्जिअइ ॥ २ ॥
चउसम कत्थुरिसिहल कप्पुर लाइअइ।
मलअइ घणसालिअइ तहि भरु खाइअइ ॥ ३ ॥
पेखण खेट करन्त सुद्धासुद्ध ण मणिअइ।
निरंशु एङ्ग चडाविअइ, तहि जस राव पणिअइ ॥ ४ ॥
मलअज कुदुरु बापइ, डिण्डिम तहि ण वज्जिअइ ॥ ५ ॥

१. कोलयि रे थिया वोला मूमूनि रे कंकोला।
घन किया थी होयि वज्रायि, करुणे कियायि न लोरा ॥ (I)
० मुमुरनि ले कनकोला घने कीथि होयि. करुण क्रियायि न लोला (II शेष III, वत्)

कोरयि रे थिया वोरा, मुमुनि रे कंकोरा।
घने कापि थिया वांरोरुणे क्रिया वीन लोला (IV)
० थिय. ००थिउ वोरा० यी न चोरा (IX शेष IV वत्)

२ तहि भरु खाज गाध्य, मय ना पीवयि यायी।
हले कालिजर पन यायी, दू दूरु वजायिले (I)
० तहि वा नु खाजयी यायिया, गाये मय ना पिज।
न यायीया हले कलिजल सालि जल (III)
० तहि वरु खाजयि गद्धे मय ना पिजययायिया।
कलिजर सारि जारे दुदुर वाज न यायिया (IX)

३ चवूसम कस्तुर्री सिल्हा कपूर,
लावन यायो मलया जइ घनसो लिजरे (I)
० चउसम कस्तुरि सिल्हा कप्पुर लाव न यायि।
मलयज कुणुरू वजयि तहि भरु खाज (III)

---चउमम कस्तुरी गीलकपूर्ल राव न यायियामाग्यि ।
इन्दु ने मालिजलनहि व। नु खाजयीयायिा (IV)
० नहि वा नु खा जयीयायिया, गाश्वे मय ना पिज न यायिया (IV)
० चउसम कम्तुरी शिहला कर्प्पुर राव न यायिया ।
शरयि इन्धन शारि जलतहि वरु खा जयियायिया (IX)
४ प्रेपु न क्षेत्र कगत सोद्धामुद्ध न मूनयि ।
तिलमुह अग च वा वयीया नहि जमए पन यायी । (II)
प्रेप--क्षेत्र क्तेत्रतकगुद्धागुद्वा नियेयायि ।
मलयज कुणरु वजयि, डिडिमा ता नहि वयि (III)
प्रेपून क्षेत्र करत गुद्धागुद्ध न यायि ।
० प्रेषण क्षेत्र कलत गुद्धागुद्ध न मानियायीया ।
नीलमुह अग सदा ययीयातहि जसु गव न प्रक्षमामिया (IV)
० प्रेखन कत करन्ते गद्धागुद्ध न मणियायिया
निल सुह अग चढावियिया, तहि जगु राव न पणसासिया (IX)
५. मलयज कुडुरु वजायि ले, डिडिम डिडिम तहि ना वाजयी । (II)
० मलयज कुणुरु वजयि डिडिमा ता नहि वजायि । (III)
० मलयज कु डुरु वाजयिया डिन्डि वाजयि न वाजयिया । (IX)

गुडरीपा (सिद्ध ५५) का गीत--

(राग कर्नाड, ताल झप)

त्रिहडा चापयि जोगिनी देह कवारि ।
कमलकुलिस घन करहु वियाले ।। ध्रु० ।।१।।
जोगिनी तुह्म विनू खनहु न जिवयि ।
तोला मूह चूविले कमल सपिवहि ।।२।।
क्षेपहु गोगिनी रेप न जायि ।
मनि कुल वहिया रे, वदिया ने समायि ।। ३ ।।
रगसू घले घल ओचिया रे चन्द्र सूर्य दूयी यक्षेन भण्डो ।
भनयि गोदावरी हमे कूदूरू वीग्रे ।
नरय तालि माझे उभय वू विरा ।।

त्रिहडा चापयि जोगिनी हे हकवारि कमरकुरिस घन करहु न विरा।
जोगिनि तुम्ह विणु खनह न जिवंयि तोरा मुह चुंवियाने, कमरस पिवयि ॥२
कंयहूँ मा जिनि रे पन जायि मनि करे वहि पार जो दिया न सुमान ॥३
सासु घरे घस कुचिकूभारि चन्द्रसूर्य दूयि पक्ष म डारि
भनयि गूडालि हर कूदूरू रिानर मारि माइ उभय नविरा ४—(८)

—त्रिहण्डा चामपयि योगिनी देह क वादि कमलकुलिश करहु वियार ॥१
योगिनी तुज्झ विनू पणहु न जीवयि तोरा मूह चूविया रे कमल पीवयि ॥२
क्षेपहु योगिनी लेप न जायि, मणि कूल वहिया रे कमल स पिवयि ॥३
शाशु घरे कूंचिया रे, चन्द्रसूर्य दूयि पक्ष न न भनतो ॥४
भनयि गोडारि हमे कूणुरू वीना, नरय नारी माझ उभय नउ वीना ॥५

लकारबहुलता—चचा-पुस्तक १० (पृष्ठ १०)

"सतगूलूचलने पनमामि"

हमारे पास की "चचा" (चर्या) पुस्तको मे निम्न पुरुपो के गीत मिलते है—

"चचा" पुस्तक १ परमवज्र (१), वाक्वज्र (१०), कर्णपा (१५),
लीलावज्र (१६)
गोदावरि (गुंडली) (२०)
प्रवनपवि (२२)
कुलदत्त (२३)
सुरतवज्र (२४,३४, ७६, १०५, १०७)
वाक्वज्र (१०,३४,४०)
द्वारक (३७)
कान्ह (४४)
कर्मादिवज्र (४६)
कर्णपा (१५, १८, ५३, ७१, ६८, ११४, १२०)
अनुपम (पद्म) वज्र (५४)
रत्नवज्र (५६, ७३, १०३)
नीरावज्र (६४)
श्रीकुलिश (७७, १०६)

परमवज्र (१, ७८)
जालंधरि (७९)
अमोघवज्र (८४, ११२)
समसमवज्र (८६)
प्रवनकुलिस, प्रवनपवि (९८)
नीलवज्र (९७)

"चचा" पुस्तक २

तथागतवज्र (३)
वाक्वज्र (६)
मुरत (सुलत) वज्र (८)
अमोघवज्र (१५)
परमादिवज्र, परमवज्र (१९)
कर्णपा (२०)
लीलावज्र (२४)

"चचा" ३:

परमादिवज्र (३ क)
कर्णपा (१० क, १८ क)
वाग्वज्र (११ क)
कण्हपा (१४ क)
लीलावज्र (१६ क, २१ क)
गुंडली, गोडारी (१७ क)
सुरतवज्र (१९ ख)
श्रीवज्रकुलिश (२५ क)
समरसवज्र (२६ क)
अमोघवज्र (३५ क)
प्रज्ञकुलिश (३५ क)

"चचा" ४

विरास, विलासवज्र (३ क)
नरमादिवज्र (१०)

संघसया (११)
गोडारि (२४)
वाक्‌वज्र (२५, ३४)
कण्हपा वज्रगीति (३२)
सुरतवज्र (३५)
लीलावज्र (३६)
गोस्वामी (४०)

"चाचा" ५:

परमादिवज्र (११, ६८)
अनुपमवज्र (२१)
हासकुलिश (२३)
सुरतवज्र (२५, ७४, ८६)
कर्णपा (३१, ८०)
पवनपवि (४३)
नागार्जुन (६०)
सुधाहर्ष (६४)
लीलावज्र (७६)
सघसयरा (८४)

"चचा" ६

लीलावज्र (७)
समरसवज्र (६)
कर्णपा (४३, ४०)

"चचा" ७.

तथा (गत) वज्र (४)
भास्करवज्र (७)
परमाद्‌यवज्र (८)
सिद्‌धिवज्र (११)
लीलावज्र (१६)
परमाद्‌यवज्र (२२)

सुरतवज्र (२८, ३०)
विरूपा (३३)
कण्हपा (३८, ४४)

"चचा" ८ :

अमोघवज्र (२ वजवर)
चन्द्रवज्र (५, ७, ८)
वज्रवज्र (५)
चन्द्रवज्र (७, ८ ६)
अनुप्रद्मवज्र, अनुपमवज्र (१०)
कर्णपा (१२)
सुरतवज्र (१४)
विरासवज्र (१७)
गुडालि (१६)

"चचा" ६

परमादेवज्र, परमादिवज्र (३, १२)
सुरतवज्र (१५, १६)
कण्हपा वज्रगीति (२४)

"चचा" १०

तथागतवज्र (७)
वाक्यवज्र (११)
सिद्धिवज्र (१२)
अनुपमवज्र (१३)
विलासवज्र (१८)
सघसयना (२६)
अवधूतपवि (२३)
अमोघवज्र (५५)
परमादिवज्र (६४)
नागार्जुन (७७)
जारधर, जालंधर (७६)

"चचा" ११ :

लिलासवज्र (३६)
सिद्धिवज्र (५३)
सुरतवज्र (६१)
पलमद्यवज, परमाद्यवज्र (७३)
सघसयना आचार्य (७५)

"चचा" १७ :

वाक्वज्र (१)

कण्हपा का दोहाकोश—सरहपा की तरह कण्हपा के भी अनेक दोहाकोश है, जिनमे से एक को महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने अपने "बौद्ध गान ओ दोहा" मे सपादित किया है। वही, जान पडता है, अधिक प्रचलित था, तभी तो स स्क्य के मदिर के पुजारी से काट-काटकर प्रसाद बनने से बचाये तालपत्रो के बडल मे सरह के कोश के साथ यह खण्डित कोश भी मिला। जिसके के पहिले तीन पन्ने प्रसाद मे बँट चुके मालूम होते है। किसी अनाम ग्रथकर्त्ता की टीका भी इसके साथ है, जो महा-महोपाध्याय द्वारा सपादित टीका का ही लघु सस्करण मालूम होती है। इस प्रति मे दोहो की प्रतीक-भर ही दी हुई है।

चोरासी सिद्धो मे निम्नलिखित १० अधिक प्रभावशाली माने जाते है—

१ सरह (६), २ शवर (५), ३ लुई (१), रु, ४ विरूपा (३), ५ दारिकपा (७७), ६ घटापा (५), ७ जलधरपा (५२), ८ डोंविपा (४), ९ कण्हपा (१७), १० तेन्लोपा (२२)। पर इन सबमे कण्हपा सबसे अधिक प्रतापी थे। आज भी नेपाली वज्रयानी बौद्ध अपनी रहस्यपूजा के समय जो "चचा" (चर्या) के गीत गाते है, उनमे चौरासी सिद्धो मे सबसे अधिक कण्हपा (कणपा) के ही गीत मिलते है, यह मेरे पास मौजूद "चचा" (चर्या)-पुस्तको (१–१७) के निम्न विवरण से मालूम होगा—

सिद्ध या कवि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१७	कुल संख्या
अनुपमवज्र	१				१			१			१		३
अमोघवज्र	२	१	१	०	०	०	०	१	०	१	०	०	६
अवघू पवि	०	०	०	०	०	०	०	०	०	१	०	० ०	१

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११			१७ कुल
कण्हपा (कणंपा)	८	१	३	१	२	६	२	१	१	०	०	०		२५
कर्मादि०	१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०		१
कुलदत्त	१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	१
गुंडरी (गोदावरी)	०	०	१	१	०	०	०	०	०	०	०	०		२
गोसाई	०	०	०	१	०	०	०	०	०	०	०	०		१
चन्द्रवज्र	०	०	०	०	०	०	०	१	०	०	०	०		१
जालधरपा	१	०	०	०	०	०	०	०	०	१	०	०		२
तथागतवज्र	०	१	०	०	०	०	१	०	०	०	०	०		२
दारिकपा	१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०		१
नागार्जुन	०	०	०	१	०	०	०	०	०	१	०	०		२
नीलवज्र	२	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०		२
परमाद्यवज्र	२	१	१	१	२	०	२	०	१	१	१	०		१२
प्रज्ञाकुलिश	०	०	०	१	०	०	०	०	०	०	०	०		१
प्रवनकुलिश	१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०		१
भास्कर०	०	०	०	०	०	०	१	०	०	०	०	०		१
रत्न	३	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०		३
लीला०	०	१	२	१	१	१	१	०	०	१	१	०		९
वज्र०	०	०	०	०	०	०	०	१	०	०	०	०		१
वाक् (वाक्य)	३	२	१	२	०	०	०	०	०	१	०	१		१०
विरूपा	०	०	०	०	०	०	१	०	०	०	०	०		१
विलास (विरास)	०	०	०	१	०	०	०	१	०	०	१	०		३
श्रीकुलिशवज्र	२	०	१	०	०	०	०	०	०	०	०	०		३
संघसयरा (०ना आचार्य)	०	०	०	०	१	०	०	०	०	१	०	०		२
समसमवज्र (०रस०)	१	०	१	०	०	१	०	०	०	०	०	०		३
सिद्धि०	०	०	०	०	०	०	१	०	०	१	१	०		३
सुधाहर्ष	०	०	०	०	१	०	०	०	०	०	०	०		१

सुरतवज्र	५	१	१	१	३	०	२	१	२	०	१	०	१७
हासकुलिश	०	०	०	०	१	०	०	०	०	०	०	०	१

जिस सामग्री का इस ग्रथ मे उपयोग किया गया है, वह प्रायः सारी तिव्वत मे प्राप्त हुई है। तिव्वत हमारी सास्कृतिक निधियो का महान् संरक्षक रहा है। हमारे अधिकारी विद्वानों को उनको देखने का वहुत कम अवसर मिला है, और जो कुछ दूसरों के लेख और कथन के रूप मे उनके सामने आया है, उससे उसके बारे मे बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है। तिव्वत मे भी वहुत-सी ऐसी निधियाँ वहाँ के विद्वानो की भी पहुँच से वाहर की है। उदाहरणार्थ जिन सैकडो ताल-पोथियों को मैंने स स्क्य, ङोर और शलु मे देखा, उनका पता तिव्वत के और जगहों के विद्वानों को ही नही, वल्कि खुद उन विहारो के विद्वानो को भी नहीं या बहुत कम था। स.स्क्य विहार मे ऐसी पुस्तको का कभी वहुत बड़ा संग्रह था, और वस्तुतः उपरोक्त दोनो दूसरे विहारो मे संरक्षित तालपोथियाँ भी मूलत' स स्क्य विहार की थी। वहाँ के महन्तराजों मे से एक को तो बिल्कुल पता नही था, कि उनके यहाँ इतनी ताल-पोथियाँ किसी पुस्तकागार में रक्खी हुई है। दूसरे महन्तराज--जो उनके वाद गद्दी पर बैठे और अव इस संसार में नहीं है--अपने पुरखो की वात सुनकर ही जोर देकर कह रहे थे, कि पोथियाँ जरूर है। वह अन्त मे मिली भी। अव इन अज्ञात अन्धेरी कोठरियो मे वन्द अथवा तिव्वती हस्तलेखो के जंगल मे सूई की तरह छिपी ताल-पोथियो के अतिरिक्त उन पोथियों के भी प्रकाश मे आने की सम्भावना है, जो कि किसी मूर्त्ति या स्तूप के उदर मे हमेशा के लिए वन्द कर दी गई। जव वह सव वाहर आ जायँगी, तो सिद्धों की कविता के रूप मे अपभ्रंश-भापा का वौद्ध-साहित्य प्रचुर मात्रा मे हमारे सामने आयेगा।

मसूरी, २६–९–५५ राहुल साकृत्यायन

सिद्ध सरहपाद

१(क.) दोहाकोश-गीति

(हिन्दी छाया-सहित)

१(क). दोहाकोश-गीति (मूल)

१ 'षट्' दर्शन-खंडन

(१) ब्राह्मण–

१. [ब्रम्हणेहि म जानन्तहि भेउ । एवइ पढिअउ ए च्चउवेउ ॥
मट्टि (पाणि कुस लई पढन्तं । घरहि वइसी अग्गि हुणन्तं ॥

२. कज्जे विरहिअ हुअवह होमे । अक्खि डहाविअ कडुअे धूमे ॥
एकदण्डि त्रिदण्डी भअवँ(ा) वेसे । विणुआ होइअइ हंस उएस ॥

३. मिच्छेंहि जग वाहिअ भुल्ले । धम्माधम्म ण जाणिअ तुल्ले ॥

(२) पाशुपत–

अइरिएंहि उद्दूलिअ च्छारे । सीसमु वाहिअ ए जड-भारे ॥

४. घरही वइसी दीवा जाली । कोणहि वइसी घण्टा चाली ॥
अक्खि णिवेसी आसण वन्धी । कण्णेहि खुसखुसाइ जण धन्धी ॥

५ रण्डी-मुण्डी अण्णवि वेसे । दिक्खिज्जइ दक्खिण-उद्देसे ॥

(३) जैन–

दीहणक्ख जइ मलिणें वेसें । । णग्गल होइ उपाडिअ केसें ॥

६ खवणेहि जाण विडंविअ वेसे । अप्पण वाहिअ मोक्ख उवेसे ॥
जइ णग्गाविअ होइ मुत्ति, ता सुणह सिआलह ॥

७ लोमुपाडणे अत्थि सिद्धि, ता जुवइ णिअम्बह ।
पिच्छीगहणे दिट्ठ मोक्ख (ता मोरह चमरह) ॥

स स्वय को तालपोथी का पाठ ।

इस तालपोथी का प्रथम पत्र लुप्त है, जिसे यहाँ डाक्टर बागची संपादित 'दोहाकोश' से (Calcutta Sanskrit Series 1938 pp. 14-16) दिया गया है।

१. भोट अनुवाद (तेर्गी से स्तन् ऽग्युर्. र्ग्युद्. वि, पृष्ठ ७० ख ५–७७ क ३) में एक दोहा अधिक है, । दूसरा दोहा—हरप्रसाद शास्त्री-संपादित 'बौद्ध गान ओ दोहा' में है । ब्रह्मणहि, भोट-पाठ ग्शि=मूल व्शि=चार का प्रमाद-पाठ है ।

१(क). दोहाकोश-गीति (छाया)

१. 'षट्' दर्शन खंडन

(१) ब्राह्मण–

१. ब्राह्मण न जानते भद। यो ही पढे ये चारो वेद ॥
मट्टी पानी कुश लेइ पढन्त। घरही बैठी अग्नि होमन्त ॥

२ काज विना ही हुतवह होमे। आख जलावे कडुये धूए।
एकदडी त्रिदडी भगवा भेसे। ज्ञानी होके हस उपदेसै ॥

३. मिथ्येही जग बहा भूलै। धर्म-अधर्म न जाना तुल्यै ॥

(२) पाशुपत–

शैव साधु लपेटे राखी। ढोते जटा भार ये माथी ॥

४ घरमे बैठे दीवा बाले। कोने बैठे घटा चाले।
आख लगाये आसन बाधे। कानहि खुसखुसाय जन मूढे ॥

५ रडी-मुडी अन्य हु भेसे। दीख पडत दक्षिणा उदेसे।

(३) जैन–

दीर्घनखी यति मलिने भेसे। नगे होइ उपाडे केसे ॥

६. क्षपणक ज्ञान-विडबित भेसे। आतम बाहर मोक्ष उदेसे।
यदि नगे न होइ मुक्ति, तो शुनक-शृगालहु ॥

७. लोम उपाडे अस्ति सिद्धि, तो युवति-नितम्बहु।
पिच्छि गहे (जो) दीख मोक्ष, तो मोरहु चमरहु ॥

---

२. (भोट ३)।

३. (भोट ४। श्रइरिएहि:एरइ)।

४. (भोट ५) कोणहिं=म्छम्स् सु एकान्त. खुसखुसाइ =शुब्. शुब्, धन्धी=स्लुब्. (मन्द)।

५. (भोट ६) दक्खिणा, ब्ल.मऽि योन्=गु गुण

६ (भोट ७) खवणेहि =नम् म्खऽि यिद्.चन् गगनमना=दिगवर

७. (भोट ८) सिद्धि। थ्रोल्=मुत्ति।

८ उञ्छे भोअणे होइ जाण, ता करिह तुरङगह ।
सरह भणइ खवणाण] मोक्ख, महु किम्पि न भावइ ।।
2a९ तत्त-रहिअ काअ(ा) न ताव, पर केवल साहइ ।
(४) बौद्ध—
चेल्लु भिक्खु जे त्थविर उएसे । (वन्देहिअ पव्वज्जिउ वेसे ।।
१०. कोइ सुत्तत वक्खाण वइट्ठो । कोवि) चित्त करुअ मइ दिट्ठो ।।
अण्णु तहि महाजाणे धाविउ । मण्डल चक्क .मवि नाधेउ ।।
११. (तसु परि[1]आणे अण्ण न कोई । अवरे (ग)अणे सज्जइ सोई ।।
सहज च्छाडी णिव्वार्णेहिं धाविउ । णउ परमत्थ एकवि साहिउ ।।
१२. जो जसु जेण होइ सन्तुट्ठ । मोक्ख कि लब्भइ झाण-पविट्ठ ।।
किन्तह दीपे किन्तह णेवेज्जे । कि[3]न्तह किज्जइ मन्तह भावे ।।
१३ किन्तहि न्तित्थ तपोवण जाइ । मोक्ख कि लब्भइ (पाणी न्हाइ ।।
च्छड्डहु रे आलीका वन्धा) । सो मुञ्चहु जो (अच्छहु धन्वा)[4] ।।
१४ तसु परिआणहु अण्ण ण्ण कोवि । अवरे गाण्णे सव्वइ सोवि ।।
सोवि पढिज्जइ सोवि गुणिज्जइ । सत्थ-पुराणे वक्खाणिज्जइ ।।
१५ नाहि सो (दिट्ठि जो ताउ ण ल(क्खइ) । एत्तवि वरगुरुपाआ पेक्खइ ।।
जइ(गुरु-वुत्त)हो (हिअहि पईसइ । णिच्चिअ हत्थे ठवि)अउ दीसइ ।।
2b१६. सरह भणइ जग-वाहिअ आले । णिअ[5] सहाव ण लक्खिअ वाले ।।

२. करुणा-सहित भावना

करुण-रहिअ ज्जो सुण्णहिं लग्गा । णउ सो पावइ उत्तिम मग्गा ।।

---

८. (भोट ९)
९. (भोट १०) वद. वडि (मुल) अधिक पाठ वन्देहिअ= वन्दें. नंमस् (वन्दनीय लोग,
१० (भोट ११) ग्शु्ड् लग्स् छद् मडि. व्स्तन् चोस्.यि् (ग्रंथ प्रमाणशास्त्र) अधिक। वाग ११ महजाणहि धा(वइ) । तहि संतन्त तक्कसत्य होइ) । कोइ मण्डल-चक्क भावइ । अण्ण चउत्थ तत्त दीसइ ।
११. कख (भोट नहीं) । ११गघ (भोट. १३ खगघ, १४ क) धाविउ=स्गोम् बयेद् =भाविउ ।
१२. (भोट. १४ खगघ, १५ क) । १३. (भोट. १३कख १५ खगघ) तपोवण=

८ उंछ-भोजने होइ ज्ञान, तो करिहु तुरगहु ।
सरह भणइ क्षपणो का मोक्ष, मोहि तनिक न भावै ।।
९. तत्त्वरहित काया न ताव, पर केवल साधै ।।

(४) बौद्ध–

चेला भिक्षु जे स्थविर-उदेसे । वद्य होहिं प्रव्रजिते-भेसे ।।
१० कोइ सूत्रात बखानै बैठो । कोई चित्ते करि मैं दृष्टो ।।
अन्य तहा महायाने धावइ । (अन्ये) मडल चक्रहु भावइ ।।
११ तासु परिज्ञाने अन्य न कोई । अपर गगने आसक्त सोई ।।
सहज छाडि निर्वाणे धायेउ । नहि परमार्थ एकउ साधेउ ।।
१२ जो जासु जेन होइ सन्तुष्ट । मोक्ष कि लब्भै ध्यान-प्रविष्ट ।।
क्या तह दीपे क्या नैवेद्ये । क्या तह कीजै मन्त्रहि भावै ।।
१३ क्या तह तीर्थ तपोवन जाये । मोक्ष कि लब्भै पानि नहाये ।।
छाडहु रे अलीका वन्धा । सो मुचहु जो है मूढत्ता ।।
१४ तसु परिजानहु अन्य न कोई । अपरे गान सर्वहि सोई ।।
सोई पढीजै सोई गुनीजै । शास्त्र-पुराणे बक्खानीजै ।।
१५ नहि सो दृष्टि जो ना लक्खै । एतउ वरगुरुपादा पेखै ।।
यदि गुरु-उक्तहु हृदये पइसै । निश्चित हस्ते स्थापित दीसै ।।
१६. सरह भनै जग बहा भूल मे । निज स्वभाव नहिं लखा वालने ।।

२. करुणा-सहित भावना

करुणारहित जो शून्यहि लागा । नहि सो पावै उत्तम मार्गा ।।

द्कऽ-थुब् (तपस्या) ।

१३. गघ (भोट नहीं)।

१४. क (भोट १८ क) । १४ ख (भोट १७घ) अवरे गाणणे=तोंग्स् पर्. ऽग्युर. न. (गणने) । १४ ग घ (भोट. १८ खग)।

१५. (भोट. १८ घ, १९ कखग) । १६ खक (भोट १९घ, २०क), १६ गघ (भोट १५घ, १६क) ।

१६ बाग–करुणा छड्डि जो सुण्णहि लग्गु । ०मग्गु।० केवल भावइ । जम्मसहस्सहि मोक्ख ण पावइ.—(पृष्ठ ४८) ।

१७. अहवा करुणा केवल साहअ । सो जमन्तरे मोक्ख ण पावअ[1] ।।
जइ पुण वेण्णवि जोडण साक्कअ । णउ भव णउ णिव्वाणे थाक्कअ ।।

१८ झाण-हीण पव्वज्जे र ह(अ)उ । गही वसन्ते भाज्जे सहि(अ)उ ।।
(जइ) भिडि विसअ रमन्ते ण मुच्चअ । सरह[2] भणइ परिआण कि रुच्चअ ।।

१९. जइ पच्चक्ख कि झाणे कीअइ । अहवा झाण अन्धार साधिअअ ।।
सरह भणइ मइ कड्ढिअ राव । सहज सहाउ णउ भावाभाव ।।

२०. जा ल्लइ उवज्जइ ता ल्लइ वाज्जइ । ता लइ परममहासुह सिज्झइ ।।
सरह भणइ महु (कि) क्करमि । पसू लोअ ण वुज्झइ की करमि ।।

२१ एक्के साञ्चिअ धणअ पउरु, अवरे न्दिण्ण सआइ ।।
काल गच्छन्ते वेण्णि गउ, भणन्तो भण्णो काइ ।।

२२. पाणि चलणि रअ गइ, जीव दरे ण सग्गु ।
वेण्णवि[5] पन्था कहिअ मइ, जहिं जाणसि तहिं लग्गु ।।

३. चित्त

२३ चित्तेक चित्त सअल वीअ भव-णिव्वाणा जम्म विफुरति ।
त चिन्तामणिरूअं पणमह इच्छाफलन्देइ ।।

3a२४. वज्झइ कम्मेण जणो कम्मविमुक्केण होइ मणमुक्को ।
मणमोक्खेण अणुअरं पाविज्जइ परम (णि)व्वाणं ।।

२५ अक्खर वाडा सअल जगु, नाहि णिरक्खर कोइ ।
ताव से अक्खर घोलिअइ, जाव णिरक्खर होइ ।।

२६. वद्धो धावइ दस दिसहिं, म्मुक्को णिच्चल ट्ठाअ ।
एमइ करहा पेक्ख सहि, विवरिअ महु पडिहाअ ।।

---

१७ कख (भोट १६ खग) जमन्तरे=ऽखोर् व दिर्. ग्नस् (एहि जग ठिअ), १७ गघ (भोट १६ घ, १७ क)।

१८ (भोट. २० खगघ, २१ क) जइ भिडि=गड शि . (जो) । दे ञिद् ग्रस् यिन्. शस्. स्म=सो जाणइ च्चअ ।

१९ (भोट २१ खगघ. २२ कख)।

२० (भोट २२गघ.; २३ कख) जल्लइ=गड शिग्. व्लड् नस् , बाज्जइ । ग्नस् ऽ गयुर्. (वसइ)।

१७ अथवा करुणा केवल साधा । सो जन्मातरे मोक्ष न पावा ।।
यदि पुनि दोनों जोडन सक्कै । ना भव ना निर्वाण रहै ।।

१८. ध्यानहीन प्रव्रज्यहिं रहितउ । गृही वसन्ते भार्या-सहितउ ।।
यदि भिडि विषय रमन्ते न मुचै । सरह भनै परिज्ञान कि रुच्चै।।

१९ यदि प्रत्यक्ष क्या ध्यानेहि कीजै । अथवा ध्यान अंधार साधिजै ।।
सरह भनै मै करी पुकार । सहज स्वभाव न भावाभाव ।।

२०. जे ले उपजै सो ले नाशै । सो ले परममहासुख सिद्ध्यै ।।
सरह भनै मै का करऊँ । पशू लोक बूझै न का करऊँ ।।

२१ एकने सचा धन प्रवर, और ने दिया गताइ ।
काल बीतते दोनो गये, कहते कहा न जाइ ।।

२२ पाणि चरण रज गति, जीव दरे न स्वर्ग ।
दोनो पन्था कहेउ मैं, जह जानहु तह लग्ग ।।

३ चित्त

२३. चित्त एक चित्त सकल बीज भव-निर्वाण जँहि विस्फुरै ।
सो चिन्तामणि-रूप प्रणमहु इच्छा-फल देवै ।।

२४ बधै कर्मसे जना कर्मविमुक्त होइ मन मुक्त ।
मन-मोक्ष के पाछे ही पावै परम निर्वाण ।।

२५ अक्षर बाढा सकल जग, नाहिं निरक्षर कोइ ।
तबलो अक्षर घोलिये, जबलो निरक्षर होइ ।।

२६. बद्धो धावै दस दिसहिं, मुक्तो निश्चल स्थाय ।
ऐसइ करा पेखि सखि, विवरिय मोहि प्रतिभाय ।।

२१–२२. (भोट नहीं) ।

२३. (भोट. ४१ गघ, ४२ कख), जम्स=गङ ल. (जहिँ) । हर. त चिन्तामणि० । एत्र चित्त वज्झ वज्झ मुक्कइ मुक्के नत्थि सन्देहो । वज्झंति जेणवि जडा लघु परिमुच्चंति तेनवि बुधा (पृ. ९८) ।

२४. (भोट.४० ग घ,४१ क ख.) मण–मोक्खेण=रङ.ग्युद् ग्रोल्. न. (स्वसन्तानमोक्षेण) ।

२५–२६ (भोट नहीं), वाग अक्खर बाढा० णाहि० घोलिआ० (८८), हर अक्खर बाढा० घोलिजा० (पृ०११४) ।

२७ चित्तह मूल ण[२] लक्खिअइ, सहजे तिण्णवि तत्थ ।
कहि उअज्जअ विलअ जाअ, कहि वसअ फुड एत्थु ॥

२८ मूल-रहिअ जो चिन्तइ तात्त । गुरु-आएसह एत्त विआत्त ॥
सरह भणइ णिउ(ण)त्तणे जाणहु । एव्वहि पर(म) महामुह माणहु ॥

(१) परमपद--

२९ इन्दी जत्थ विलीअ गउ, णट्ठो अप्प सहाव ।
सो हले सहजानन्द तणु, फुड पुच्छह गुरुपा[४]व ॥

३० जहि म्मण मरइ, पवणहो तहि खअ जाइ ।
एहु सो परममहामुह, सरह कहिहउ जाइ ॥

3b३१ जहि इच्छइ तहि जाउ मण, अहवा णिच्चल ट्ठाइ[५] ।
अद्धुग्घाटी लोअणे, दिट्ठीविसामे कोइ ॥

३२ जइ उआअ उआएँ धाहअ । अहवा करुणा केवल साहअ ॥
जइ पुणु वेण्णिवि जोडण सक्कअ । तव्वे भव-णिव्वाणहि मुक्क[६]अ ॥

३३. पढमे जइ आआस विमुद्ध । चाहन्तें-चाहन्ते दिट्ठि णिरुद्ध ॥
ऐसे जइ आआस वि कालो । णिअ मण दोसे ण वाजइ वालो ॥

३४ अहिमाण दोसे ण लक्खिअ तात्त[२] । दूसइ सअल जाण सो देत्त ॥
झाणे मोहिअ सअलवि लोअ । णिअ सहाव न लक्खिअ कोवि ॥

---

२७. (भोट ३६ ग घ, ३७ क ख) वाग. ०लक्खिअउ० तहि जीवइ विलअ जाइ वसिअउ तहि फुड एत्थ । (३६) हर. ०लक्खिअउ० तहि जीव विलअ जाइ वसिअउ तहि हत ग्रन्थ। (पृ. ९५)।

२८ (भोट. ३७ ग घ, ३८ क ख), २८ ग के स्थान पर है--ख्रो वडि. रङ ब्शिन्-सेमस्.क्यि. ङो- वो. ञिद्. यिन्. ग्सुं । (सहाव चित्तहि भाव)। वाग तत ०गुरु-उवएसे एत्त विआत्त । ०व जाणहु चंगे । चित्तरुअ संसारह भङ्गे (३७) हर. भणइ वट जानहु चंगे। चित्त रुअ ससारह भगे (पृ० ९६)।

२९ (भोट. ३०) वाग. इन्दिअ जत्यु विलअ गउ ण-ठिउ अप्प सहावा। सो हले सहज तणु०पुच्छहि० पावा (२९)।

३०. (भोट. ३१), भोट ३१ घ, ३२क ख अधिक पाठ। वाग. जहि मण।

२७. चित्तको मूल न लक्खिअइ, सहजे तीनउ तथ्य ।
कहूं उपजै विलय जाय, कहू बसै फुरि अत्र ।।

२८. मूलरहित जो चिन्तै तत्त्व, गुरु-उपदेशे एतउ व्यक्त ।
सरह भनै निपुणत्वे जानहु, एवं परममहासुख मानहु ।।

(१) परमपद–

२९. इन्द्रिय यत्र विलीन गउ, नष्टो आत्मस्वभाव ।
सो री सहजानन्द तनु, फुर पूछहु गुरुपाद ।।

३०. जहं मन मरै पवनहु, तहं लय जाइ ।
एहु सो परममहासुख, सरह कहिअउ जाइ ।।

३१ जह इच्छै तंह जाउ मन, अथवा निश्चल स्थाइ ।
अर्ध-उद्घाटित लोचने, दृष्टि विश्रामै काइ ।।

३२ यदि उपाय उपाये धावै । अथवा करुणा केवल साधै ।।
यदि पुनि दोनो जोडन सक्कै । तब्बे भव-निर्वाणहि मुचै ।।

३३ प्रथमे यदि आकाश विशद्ध । देखत-देखत दृष्टि निरुद्ध ।।
ऐसे यदि आयासउ काल । निज मन दोपे न वूझइ वाल ।।

३४. अहिमान दोपे न लखियै तत्त्व । दूपै सकल ज्ञान सो दत्त ।।
ध्याने मोहित सकलउ लोय । निज स्वभाव न लक्खै कोय ।।

पवणहो क्खअ जाइ । ०सो० रहिअ कहिम्पि ण जाइ (३०–३१) । हर. ०मन मरन पवनहि क्खअ जाइ (पृ०९३) ।

३१–३२. (भोट नहीं) ।

३३. (भोट. ३४ ग घ, ३५ क ख) मणदोसें=ञिद्. ल. स्क्योन्. ग्यिस्. (यिद् चाहिए)। वाग. ०विसुद्धो. ०णिरुद्धो० ऐसें० ण बुज्झइ वालो (३४) । हर. पउमें जइ० विशुद्धो० निरुद्धो । ऐसे जइ० दोष ण बुज्झइ वाला (९४) ।

३४. (भोट. ३५ ग घ, ३६ क ख) स्क्ये. बो. म. लुस्=सअल जण । वाग. लक्खिउ तत्त । दुण ०जाणु सो दत्त । ०णउ लक्खइ कोअ (३५), लक्खिउ तत्त ०तेन दूसइ सअल जान इ सो दत्त । ०णउ लक्खई कोइ (९७) ।

३५ चन्द-सुज्ज वसि घालइ घोट्टइ । सो आणुत्तर एत्थु[3] पअट्ठइ ॥
एव्वहिं सअल जाण णिगूढो । सहज सहावे ण जाणिअ मूढो ॥

३६ णिअ मण साच्चे सोहिअ जव्वे । गुरु-गुण हिअहि म्पइसइ तव्वे ॥
एव मुणेवि णु सरहें गाइव । मन्त ण तन्त ण एक्कवि गाहिव ॥

३७ सो गुण-हीणो अहवा णिरक्खर । सिरिगुरुपाए न्दिण्णु मो वाक्खर ॥
तसु चाहेन्तेउ हमि ण दीस । मरुअ चाहेन्तेउ हमि ण कीम ॥

३८. सअलहि तत्तसार सो वुच्चअ । सरह भणइ महुं सोवि ण रुच्चअ ॥

२ सहज, महासुख—

4a जइ पुणु अह-णिसि सहज पइट्ठइ । अमणागमण जे तहि णेवाट्टइ ॥

३९. भावाभावे वेण्णि न काज्ज । अन्तराल ट्ठिअ पाडहु वाज्ज ॥
विविह पआरे चित्तवि अपिव । सोवि चित्त ण केणवि अपिव ॥

४०. इन्दी विसअ उ असंट्ठाउ, सएं सम्वित्तिए जत्था ।
णिअ चित्तन्तें काल गउ, झाण महासुह तत्थ ॥

४१ पत्त मुसारिउ ममि मिलिउ, होवि लिहे[2] ना खीणु ।
जाणिउ तें विस परमपउ, कहि(अइ कहि) लीएणु ॥

४२. झाण-रहिअ कि कीअइ झाणे । जो अवाच्च तहि किअ वक्खाणे ॥
भुअ मु(द्)दे सअल जग वाहिउ[3]। णिअ महाव ण केणवि णाहिउ ॥

४३ मन्त ण तन्त ण धेअ ण धारण । सव्ववि रे वढ़ वि(व्)भम-कारण ॥
असमल चीअ म झाणें खरडह । मुह अच्छन्ते म अप्पण[4] झगडह ॥

---

३५. (भोट नहीं), वाग. पाव-पुण्ण तवें ता खणे तुट्टइ । अइसो करण काह विवरीर । तें अजरामर होइ सरीर (पृ० ४८) ।

३६. (भोट ३९ ग घ, ४० क ख) वाग. ०सव्वें. ०हिअए पइसइ० एवं मुण मुणि सरहें गाहिउ । तन्त मन्त णउ एक्कवि चाहिउ (३९); हर. ०सवे० जवे० गुण हिअए पइसइ एवम मणे सरहें० चाहिव (९७) ।

३७.–४०. (भोट नहीं) ।

४१. (भोट. १०८) । स का पाठ खंडित ह, भोटानुवाद है—स्नग् छ्-मॄ ोस्. पस्. वलग्. तु.

३५ चन्द्र-सूर्य घसि घालै घोट्टै । सोइ अनुत्तर इहा पईठै ।।
एव सकल ज्ञान निगूढा । सहज स्वभाव न जानै मूढा ।।

३६ निज मन साचै शोधित जब्बै । गुरु-गुण हृदयहि पइसै तब्बै ।।
एवं मने करि सरहे गाइउ । मत्र न तत्र न एकउ ग्राहेउ ।।

३७ सो गुणहीन अथवा निरक्षर । श्रीगुरुपादा दीनु मोहि अक्षर ।।
तासु देखतेउ हम न दीख । स्वरूप देखतेउ हम न कईस ।।

३८ सकलहि तत्त्वसार सो उच्यै । सरह भनै मोहि सोउ न रुच्चै ।

(२) सहज, महासुख–

यदि पुनि अहनिसि सहज पईसै । अवनागवन जे तह निवर्तै ।।

३९ भाव अभाव न दोनेहु कार्य । अन्तराल स्थित पातहु बाज ।।
विविध प्रकारे चित्तउ अर्पिय । सोउ चित्त न काहुअ अर्पिय ।।

४० इन्द्रिय विषयउ न स्थाय, स्वसवित्तिये यत्र ।
निज चित्तान्तर काल गउ, ध्यान महासुख तत्र ।।

४१. पात्र मुसारिय मसि मिलिउ, होइ लिखे न क्षीण ।
जानेउ तै विष परमपद, कहियें करु (सो) लीन ।।

४२. ध्यान-रहित क्या कीजै ध्याने । जो अ-वाच्य ताहि क्यो बक्खानै ।।
भुवसमुद्रे सकल जग बहेउ । निज स्वभाव न केहूहि गहेउ ।।

४३. मत्र न तत्र न ध्येय न धारण । सर्व इ रे मूर्ख विभ्रम-कारण ।।
अ-समल चित्त न ध्याने खरडहु । सुख रहते ना अपने झगडहु ।।

मद् । रिग्.ब्येद्.दोन् मे् ञाम्स् दम्.प। सेम्स् दङ चिग् शेस् मि शेस् न। गङ.नस्. शर्–चिङ गङ. दु. नुब् ।

४२. (भोट २३) भुग्र-मुदे=त्रिदद्पऽ फ्य्. गं्यस् (भव-मुद्दे); वाग,-झाण वाहिग्र० ग्र-वाग्र तहि काहि बखाणे। भवमुद्दे सग्रलहि० णउ० साहिउ (२२)। हर. भवमुद्दे (९२)।

४३. (भोट. २४) रे वढ, रङ यिद् (स्व मन), वाग. ० वढ० चित्त० ग्रच्छन्त म ग्रप्पणु० । हर० चित्त म झाणइ खरतह० ग्रप्पनु जगतह० ।

४४ गुरु-वअण-अमिअ-रस, धवहि ण पिविअउ जहिं।
वहु सात्यात्थ-मरुत्थलिहि, तिसिअ मरिव्वो तेहिं॥
४५ मण निम्मल सहजावत्थे गउ, अरिउल नाहि म्पवेस[५]।
ए ते चीएहु फुड सथाविअउ, सो जिण नाहि विसेस॥
४६. जिम लोण विलिज्जइ पाणिएहि, तिम जइ चित्तवि ट्ठाइ।
4b अप्पा दीसइ परहिं सम, तत्थ समाहिए[६] काइ॥
४७ जोवइ चित्त ण आणइ वम्हा। अवर को विज्जइ पुच्छइ अम्हा॥
णामेहिं सण्ण अ-(न)ण्ण पआरा। पुणु परमत्थे एकाआरा॥
४८. खाअन्ते-पीवन्ते सुरअ[७] रमन्ते। आलि-उल वहलहो चक्क फरन्ते॥
एवहि सिद्धि जाइ परलोअह। माथे पाअ देइ भुअलोअह॥

३. परमपद--

४९. जहि मण पवण ण सचरइ, रवि-ससि णाहिं पवेस[२]॥
तहिं वढ चित्त विसाम करु, सरहे कहिअ उएस॥
५०. एक्क करु मा वेण्णि करु, मा करु विण्णि विसेस।
एक्के रंगे रञ्जिआ, तिहुअण सअलासेस॥
५१. आइ[३] ण अन्त ण मज्झ तहिं, णउ भव णउ णिव्वाण।
एहु सो परममहासुह, णउ पर णउ अप्पाण॥
५२ अग्गे पच्छे दस दिसे, जं ज जोअमि सोवि।
ऐव्वे तु दीठन्त डी, णाह ण पुच्छमि कोवि॥

---

४४. (भोट. ६६ क ख) वाग ० गुरु-उवएसें० धावहि ण पीअउ जेहि। ०सत्यत्य० तिसिअ मरिअउ तेहि (५६)। हर० ०उवअसो अमिअ-रसु हवहि ण पीअउ जहि। ०सत्यत्य-मरुस्थलहिं टिसिअे मरिखउ तेहि (१०२)।

४५-४८. (भोट नहीं)।

४८. वाग. ० (पिवन्ते ०सुह० णित्त पुणु-पुणु चक्कवि भरन्ते। अइस धम्मे सिज्झइ पर-लोअह। णाहं पाए दलि उ भअलोअह (२४)। हर. ०भअलोअह (९२)।

४९. (भोट. २६) व =मि. श . प. दग्. (मर्ख); वाग. ०णाह०: वढ० (२५), हर. ०नाह० उवेश (९३)।

४४ गुरु के वचन अमियरस, धाइ न पीयेउ जेहि ।
बहु शास्त्रार्थ-मरुस्थले, तृषिते मरिबो तेहि ।।

४५. मन निर्मल सहजावस्थे गउ, अरिकुल नाहिं प्रवेश ।
एते चेतेउ फुर स्थापिय, सो जिन नाहिं विशेष ।।

४६. जिमि लवण विलीजै पानियें, तिमि यदि चित्त विलाइ ।
आपहि दीखै परहि सम, तत्र समाधिये काह ।।

४७. युवती चित्त न आनै ब्रह्मा । और को है (जो) पूछै हम्मा ।।
नामे सत्त असत्त प्रकारा । पुनि परमार्थे एकाकारा ।।

४८ खाते पीते सुरत रमन्ते । आलिकुल बहुलहु चक्र फिरन्ते ।।
एव सिद्धि जाइ परलोकहि । माथे पाद देइ भवलोकह ।।

३ परमपद--

४९ जह मन पवन न सचरै, रवि शशि नाहिं प्रवेश ।
तहँ मूढ, चित्त विश्राम करु, सरह कहेउ उपदेश ।।

५० एक करु ना दोउ करु, ना करु द्वैत विशेष ।
एकहि रगे रगिया, त्रिभुवन सकल अशेष ।।

५१. आदि न अन्त न मध्य तह, ना भव ना निर्वाण ।
एहु सो परम महासुख, ना पर ना अप्पान ।।

५२ आगे पाछे दसदिसहि, जो जो जोऊ सोइ ।
एव तो दीठतडी, नाहिं न पूछउँ कोय ।।

---

५०. (भोट २७) मा करु विण्ण विसेस=रिगुस्. ल. व्ये. ब्रग्. दग्. तु म. ब्येद्. पर्. (मा करु विज्जे विसेस) । वाग. एक्क करु (रे मा वण्णि जाणे ण करह भिण्ण । एहु. तिहुअण सअले महाराअ एक्क-एक्कु वण्ण) (२६) ।

५१. (भोट. २८) वाग. मज्झ णउ णउ० (२७) ।

५२. (भोट २९) एव्वें तु दीठन्तडी=दे रिड. ञिद्. दु म्गो.न् पो. द्लतर्. टगुल्. प. छद्. (अव्व हि णाहभान्ति तुट्टिअ) । वाग. (दह दिहहि जो जो दीसइ तत्त सो । अज्जहि तइसो भन्ति मुक्क एव्वें मा पुच्छ कोइ) (२८) ।

५३ बाहरे साद को देइ, अभिन्तरे को आलवइ।
साद्धह साद्ध को मेलवइ, को आणेइ को लेइ ॥
५४. अप्पा परहिं ण मेलविउ[५], गमणागमण ण भाग्ग।
तुस कुट्टंते काल गउ, चाउल हत्थ ण लाग्ग ॥

४ भावना

५५ रवि-ससि वेण्णवि मा कर भान्ती। बम्हा-विट्ठु महेसर भान्ती ॥
5a गाढालिङगमाण सो राज्ज व[६]रु, जग उप्पज्जइ तत्थु ॥
५६ अरे पुत्त तोज्झ (तत्त), रसु सुसंट्ठिउ भोज्ज।
वक्खाणन्त पढन्तानिअ, जगहि णिआ-णिअ सोज्झ ॥
५७. अध-उद्ध माग्गवरे पइसरेइ। चन्द-सुज्ज वेइ[१] पडिहरेइ ॥
वञ्चिज्जइ कालहुतणअ गइ। वे विआर समरस करेइ ॥
५८ को पत्तिज्जइ कसु कहमि, अज्जउ किअउ अराउ।
पिअ-दन्सणे हले णट्ठ णिसि[२], संझासं हुइ जाउ ॥

१ शून्यता—

५९ सुण्णवि अप्पा मुण्ण जगु, घरे-घरे एहु अक्खाण।
तरुअर-मूल ण जाणिआ, सरहे हिं किअ वक्खाण ॥
६० जइ रसाअलु पइसरहु, अह दुग्गमहु आआस।
भिण्णाआर मुण तुह, कह मोक्ख-हव्बामु ॥
६१ बुद्धि विणासइ मण मरइ, तुट्टइ जहिं अहिमाण।
सो माआमअ परमपउ,[४] तहिं कि वज्जइ झाण ॥
६२ भव उएक्खइ खएहि णिवज्जइ। भाव-रहिअ पुणु कहिं उअज्जइ ॥
वेइ-विवज्जिअ जो उअज्जइ। अच्छहु सिरिगुरुणाहे कहिज्जइ[५] ॥

५३–५५. (भोट नहीं)।

५६. (भोट ६०ग घ, ६१क ख) स. का पाठ संदिग्ध। अनुवाद ह: कये. हो बु.... बशिन्. नो. (अरे पुत्त तत्त नाना रस न सुसंठिअउ भेज्ज। सुहपरमठाण.. तजिअ जगहि उवज्जइ जिमि। हर ०बोज्जु रसरसण सुसंठिअ अवज्ज। वक्खण पढन्तेहि जगहि ण जाणिउ० (१०१)।

५७.–६०. (भोट नहीं)।

५३. बाहरे स्वाद को देइ, आभ्यतरे को आलपइ ।
स्वादहि स्वाद को मेलै, को आनै को लेइ ।।

५४ आपा परहिं न मेलवै, गमनागमन न भाग ।
तुष कूटन्ते काल गउ, चावल हाथ न लाग ।।

४. भावना

५५. रवि शशि दोनों ना कर मान्ती । ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर भ्रान्ती ।।
गाढालिंगमान सो राज, बरु जग उपजै तत्र ।।

५६ अरे पुत्र तू (तत्त्व) रस, सुसस्थित भोगु ।
बखानते पढते निज, जगहि निजानिज सोझु ।।

५७ अध-ऊर्ध्व मार्गवरे पइसइ । चन्द्र सूर्य दोनो परिहरेइ ।।
बचि जाये कालहुसे । दो विकार समरस करेइ ।।

५८. को पतियाये कासु कहउँ, आजउ कियउ अराव ।
प्रिय दर्शन री नष्ट, निशि सध्या सफुर जाव ।।

१ शून्यता—

५९. शून्य उ आत्मा शून्य जग, घरे-घरे एहु आख्यान ।
तरुवरमूल न जानिया, साधेहि क्या व्याखान ।।

६० यदि रसातल पइसरै, अथ दुर्गम आकाश ।
भिन्नाचार मान तोहु, कह मोक्ष अभ्यास ।।

६१ बुद्धि विनाशै मन मरै, टूटै जँह अभिमान ।
सो मायामय परमपद, तँह का बाँधै ध्यान ।।

६२ भव उदीक्षे क्षयहि निपज्जै । भावरहित पुनि कहाँ ऊपजै ।।
द्वैतविर्वजित जो उपजै । अच्छहु श्रीगुरुनाथे कहिजै ।।

---

६१. (भोट ६१ ग घ, ६२ क ख) परमपउ=म्छोग् तु तोंग्स् प स्ते (परमकलु). वाग ०जहि (तुट्टइ)० परमकलु तहि किम्बज्झइ० (५३) हर ० मरइ जहि अहिमाण। सो माआमअ परमकलु तह किम्बज्जइ (१०१) ।

६२. (भोट. ६३ ग घ, ६४ क ख) भव उएक्खइ खएहि णिवज्जइ=द्ङोस् पोर स्क्येस् म्खऽ ल्तर्. रङ. व्शिन् न. (भाव उवजजइ०) । वाग. भवहि उअज्जइ खअहि० कहि उवज्जइ। विण्ण० जो उवज्ज । अच्छह० णाहे।

(२) भोग में योग—

६३ देक्खउ सुणउ पईसउ साद्दउ । जिघ्घउ भमउ वईसउ उट्ठउ ।।
आलमाल ववहारे वोल्लउ । मण च्छडु एकाआरे म्म चलउ ।।

5b६४ चित्ताचित्त वि परिहरहु[६], तिम अच्छहु जिम बाल ।
गुरु-वअणे दिड भत्ति करु, होइहइ सहज उल्लाल ।।

६५ अक्खरवाणो परमगुणे रहिअउ । भणइ णं जाइ सो मइ कहिअउ ।।
सो परमेसर कासु कहिज्जइ । सुरअ कुमारी[१] जिम उअज्जइ ।।

६६ भावाभावे जो परिछिण्णउ । त(हिं) जग तिअ सहाव विलीणउ ।।
जव्वे तहि मण णिच्चल थाक्कइ । तव्वे भव-णिव्वाणेहि मुक्कइ ।।

६७ जाव ण अप्पउ पर[२] परिआणसि । ताव कि देहाणुत्तर पावसि ।।
एमइ कहिउ भान्ति ण भावा । अप्पउ अप्पा वुज्झहि तावा ।।

६८. अणु-परमाणु ण रुअ विचित्तउ । अणवर[३] भावहु फुरइ सरइउ ।।
सरह भणइ भिडि एत्तवि मान्तउ । अरे णिकोल्ली वुज्झहु मित्तउ ।।

६९. आग्गे आच्छअ वाहिरे आच्छअ । पइ देक्खअ पडवेसी पुच्छअ[४] ।।
सरह भणइ वढ जाणहु अप्पा । णउ सो धेअ ण धारण जापा ।।

७० जइ गुरु कहइ सव्व वि जाणी । मोक्ख कि च्छडइ अप्पणु वाणी ।।
देस भमइ हात्वासे लइउ । सहज ण वुज्झइ पावे गहिउ ।।

---

६३. (भोट. ६४ गघ, ६५ कख)पइसउ साद्दअ=रिग् दङ । द्रन्. प. दङ', बाग. देक्खहु सुणहु परीसहु खाहु। जिग्घहु भमहु वइट् उट्ठाहु । ०व्यवहारे पेल्लइ । मण च्छड एक्काकार म चल्लह (५५) हर. व्यवहारे पेल्लेहु । मण च्छड्डु एक्कार म चल्लह (१०२) ।

६४. (भोट. ७०) चित्ताचित्त=व् य्सम्. दङ. व्सम्. व्य. (चित्तचैतस) उलाल, थे. छोम्. मेद् (निसंदेह) । वाग. ०वालु · ०होइ जइ० उलालु (५७), हर ०वालु :० हइह इ (१०३) ।

६५. (भोट. ७१), वाग. अक्खरवण्णो पर (म) गु(ण) रहिओ : ०जाण ए मइ कहिअओ । ०परमेसर० जिम पडिवज्ज (५८) हर. वर्णो० रहिजे । भभइण जाणइ सो मइ कहिजे ।

६६ (भोट ७२) तहि जग तिअ० विलीणउ-देर्. नि ऽग्रो व म-लुस्... तहि . जगसअल), भव-णिव्वाणेहिः ऽखोर् वऽि द्डोस्पो (भवभावहि) बाग०

(२) भोग में योग--

६३ देखहु सुनहु पईसहु स्वादउ । सू घउ भ्रमहु बईठहु उट्ठउ ।।
आलमाल व्यवहारे बोल्लहु। मन छोडि एकाकार न चल्लउ ।।

६४ चित्त अचित्तहु परिहरहु, तिमि रहहु जिमि वाल ।
गुरुवचने दृढ भक्ति करु, होइहै सहज उलास ।।

६५ अक्षर-वर्ण परमगुण रहितउ । भन्यो न जाइ सो मैं कहिउ ।।
सो परमेश्वर कासु कहीजै । सुरत कुमारी जिमि ऊपजै ।।

६६ भाव-अभावे जो परिछिन्नउ । तहँ जगत स्वभावे विलीनउ ।।
जब्बै तँह मन निश्चल थाकै । तब्बै भवनिर्वाणहिँ मुचै ।।

६७ जौलौ न आपहुँ पर परिजानसि । तौलौ कि देह अनुत्तर पावसि।।
यह मैं कहेउ भ्राति न भावे । आपै अपने बूझहि तब्बै ।।

६८ अणु परमाणु न रूप विचितहु । अनव भावहु स्फुरै सरै उ ।।
सरह भनै भिडि एतउ मानतउ । अरे निष्कुली बूझहु मित्रउ ।।

६९. आगे रहै बाहिरे रहै । पति देखै पडोसी पूछै ।।
सरह भनै मूढ जानहु आपा । नहिं सो ध्येय न धारण जापा ।।

७०. यदि गुरु कहै सब्बइ जानी । मोक्ष का मिलै आपन वाणी ।।
देश भ्रमै अभ्यासे लेइउ । महज न बूझै पापे गहिअउ ।।

परिहीणो । तहिँ जगे सअलासेस विलीणो । ०थक्कइ । भवससारह० (५९), हर ०जो परि- हीणो । तहि जग सअलासेस विलीनो । ०जब्बर्याँह मण णिच्चल थक्कइ । तव्य भवसंसारह मुक्क (१०३) ·

६७. (भोट. ७३) वाग. अप्पहिं० । हर. जाव ण अप्पहि० अेमइ कहिजे भतिण कव्वा । अप्पहि अप्पा बूझसि तब्वा ।

६८. (भोट. ७४) अणवर भावहु फुरइ सरइउ=द्ङस्. पो दे. दग्. ग्वोद्. नस्. शेन. प. मेद् । वाग णउ अणु णउ परमाणु विचित्तजे। अणवर (अ) भावहि फुरइ सुरत्तजे। भणइ सरह मन्ति एत विमत्तजे । अरे णिक्कोली वुज्झहु परमत्यजे (६१), हर. अणवर भावहि स्फुरहि सुरत्तजे। भणइ सरह भिति एत विमत्तजे (१०४)।

६९. (भोट. ७५)अग्गे=ख्यिम्. न (घरे); वाग. पडिवेसी पुच्छ ।

७०. (भोट. ७६) हव्वासे लइअइ=ग्दुङ वस. ञो. न्. ब्यस् । वाग सअल विणु जाणी ।

७१. विसअ रमन्ते ण विसअहिं लिप्पइ । उअल हरन्ते ण पाणी च्छुप्पइ ।।
6a एमइ जोइ मूल सगत्तो । विसअ[6] ण बाज्झइ विसअ रमन्तो ।।

(३) भ्रान्त पथ--

७२. देव पुदिज्जअ लक्खवि दिज्जअ । अप्पउ मारी कीस करिज्जअ ।।
तहवि ण तुट्टइ एहु संसारू । विणु आभासे णाहि निसारू ।।

७३. भावाभावह भावणुरत्तो । पसुअ मज्झे ते गणिअन्ति सत्तो ।।
झाणे जा किअ मोक्खावास । सो भव-राक्खसकेरो दास ।।

७४. धरिअउ हंस मइ कहिअउ भेअ । अध-उद्ध दुइ[२] पक्खा च्छेअ ।।
पक्खविहुण्णे कहवि जाअ । देह मढ जइ णिच्चल ट्ठाअ ।।

७५. पडिअ सअल सत्थ वक्खाणअ । देहहिं वुद्ध वसन्त ण जाणअ ।।
अमणागमण ण एक्क वि खण्डिअ । तउ णिलज्ज भणइ हंउ पण्डिअ ।।

(४) सहज अवस्था--

७६. जत्तइ चित्तहु विफुरइ, तत्तइ णाहु सरूअ ।
अण्ण तरग कि अण्ण जलु, भव-सम ख-सम सरूअ ।।

७७. ण त्तं वाएं गुरु कहइ, णउ तं बुज्झइ सीस ।
सहज सहावा हले अमिअरस, कासु कहिज्जइ कीस ।।

७८. जत्तइ पइसइ जलेहि जलु, तत्तइ समरसु[७] होइ ।
दोसगुणाअर चित्तता, वढ पडिवक्ख ण होइ ।।

७९. च्छड्डुह जे सहजे सहज बुद्धिए लइउ । विविह पआर पवञ्चा सहिउ ।।
6b एक्क कहवि ण[६] कीअई वासण । एहु आणत्त सअल जिण-सासण ।।

८०. मुक्कावथि जे सअल जगु, णाहि णिवद्धो कोवि ।
मूढहि मोहे पमत्तिअइ, सत्थावत्थ जे सोवि ।।

---

७१. (भोट ७७) उअल हरन्ते=उत्पल. ऽदब्. म. (उत्पल पत्र) । बाग. उअर सरन्तो । विसाह ण वाहइ विसअ रमन्तो ।

७२. (भोट ७८) देव विज्जइ (१०७) ।

७३-७४. (भोट नहीं) ।

७५. (भोट. ८१ ग घ, ८२ क ख) । बाग.० वक्खाणइ । ० ण तेण विखण्डिअ । तोवि० हुउ (६८) । हर. तो वि णिलज्ज० (१०७) ।

७१ विषय रमन्त न विषयहि लिप्पै । उत्पल हरन्त न पानी छुवै ।।
एव योगी मूल सगात्रो । विपय न बधै विपय रमन्तो ।।

(३) भ्रान्त पथ—

७२. देव पूजियै लक्षउ दीजै । आपा मारिय कइस करीजै ।।
तथापि न टूटइ एहु ससारू । बिनु आभासे नाहि निसारू ।।

७३. भाव-अभावहि भाव अनुरक्त । पशु-मध्य ते गणियत सत्त्व ।।
ध्याने जा करि मोक्षावास । सो भवराक्षसकेरो दास ।।

७४. धरियउ हस मैं कहिअउ भेद । अध उर्ध्व दोउ पक्षहँ छेदि ।।
पक्ष बिहूने कहबो जाय । देह मढ जो निश्चल स्थाय ।।

७५ पडित सकल शास्त्र बक्खानै । देहहि बुद्ध वसत न जानै ।।
अवनागवन न एकउ खडित । तऊ निलज्ज भनै हम पडित ।।

(४) सहज अवस्था—

७६. जेत्तइ चित्तउ विस्फुरै, तेत्तइ नाथस्वरूप ।
अन्य तरग कि अन्य जल, भव-सम ख-सम स्वरूप ।।

७७ ना तेहि वाचहि गुरु कहै, ना तेहि बूझै शिष्य ।
सहज स्वभाव री अमियरस, कासु कहीजै कैस ।।

७८. जेत्तइ पइसै जलहि जल, तेत्तइ समरस होइ ।
दोषगुणाकर चित्तता, मूढ प्रतिपक्ष न होइ ।।

७९. छाडहु जे सहजे सहज बुद्धिइ लेइअउ । विविध प्रकार वचना सहिअउ ।।
एक कहिब न कीजै वासना । एहु आज्ञप्त सकल जिन-शासना ।।

८० मुचावै जे सकल जग, नाहि निबद्धा कोइ ।
मूढा मोह प्रमत्तिया, शास्त्रावस्थ जे सोइ ।।

---

७६. (भोट. ८७), बाग. जत्तवि चित्तहि विफ्फुरइ तत्तवि णह० हर. जत्तवि चित्तह विस्फुरइ, तत्तवि णाह सरूव (१०९) ।

७७. (भोट. ६६ ग घ, ६७ क ख)।

७८. (भोट. ८९) बढ़=मंगोन्. पो. (नाथ); हर. दोषगुणाअर चित्तता वट परिवक्खा ण कोइ ।

७९ –८७ (भोट नहीं) ।

८१. चित्तह पसर णिरन्तर देक्खी । लोह मोह जे कहिउ(उ)एक्खी ।
जक्ख-हअ जिम चित्तएर विभाअ । मायाजाल जे तिम पडिहाअ ॥

८२. सअलहो एहु साहाञ्चिअ देक्खहु । तहि[२]म्वि लीण चित्त उएक्खहु ॥
सहजे सहज वि वुज्झइ जव्वे । अन्तराल गइ तुट्टइ तव्वे ॥

८३. रिद्धि-सिद्धि हले वेण्णि न काज्ज । पाप-पुण्ण तहि पाडहु वाज्ज ॥
सो[३] अ(ा)णुत्तर वुज्झहि जव्वे । सरह भणइ जग सिज्झइ तव्वे ॥

८४ गुरुअ वअण ससिद्धउ जव्वे । इन्दिआल सव्व तुट्टइ तव्वे ॥
सरह भणइ अ(ा)णुत्तर धाम्म ।' हरि-हर-वुद्ध एहुवि काम्म ॥

८५. सव्वाआरवरोत्तम कोवि । सुणह सिआल व मत्तु ले सोवि ॥
सुद्धिए (?) जाणिअ जव्वे । जिण-गुण-रअण पाविअ तव्वें ॥

८६ अहवा मोहे सो[५] परिआणिउ । मोक्खह वुद्धिए जाइ सम्माणिअउ ॥
हत्यहि कङ्कण ट्ठिअउ ण्णाइ । गुण-दोस-विअक्खण दप्पणहिं ण जाणइ ॥

८७ वद्धह सअल मणे देइ[६] मुक्का मल्ल माण सो वाज्झइ ।
7a जाणह परमात्थ न अत्था च्छिण्ण सव्वोच्छिण्ण पेच्छह सव्वं ॥

८८. सा होह सुव्वोच्छिन्नं अव्वोच्छिन्नं मून आणंतण ॥
सएसंवित्ति मा करहु रे धान्धा ः भावाभाव[१] सुगति रे वान्वा ।

८९ णिअ मण मणहु रे णेहुएं जोइ । जिम जल जलेहि मिलन्ते सोइ ॥
झाण मोक्ख कि चाहु रे आले । माआजाल कि चाहु रे कोले ॥

९० वरगुरुवअण[२] पत्तिजइ साच्चे । सरह भणइ मइ कहिअउ वाच्चे ॥
णिअ सहाव ण लद्धअ वअणे । दीसइ गुरु-आएसे णअणे ॥

९१. णउ तसु दोस जे एक्कवि ट्ठाअ[३] । धम्माधम्म जे मोही खाअ ॥
चित्ते वद्धे वज्झइ मुक्के मुक्कइ णत्थि सन्देहो ।

---

८८. क ख (भोट. नहीं); ८८ गघ (भोट. ३२ क ख); वाग सअसम्वित्ति म० । सुगति रे (वढ)वन्धा । हर. सइसम्वित्ति म करहु० । ०सुगतिरेव वन्वा-।

८९. (भोट. ३३) मणहुर णेहुए=ग्चिग्, तु. तोद्. (एक करहु), मिच्छे झाणे मोक्ख ण लब्भइ)। वाग. झाग मोक्ख ० । जाल कि लेहु कोल। हर. ०कि राहु रे आलें० । ०कि लेहु ० ।

८१ चित्तका प्रसर निरतर देखी । लोभ मोह जे कहेउ उदेखी ।।
यक्ष रूप जिमि चित्र कर विभाय । मायाजाल जे तिमि प्रतिभाय ।।

८२. सकलहु एहु सहाचित देखहु । तंह विलीन चित्त उदेखहु ।।
सहजे सहजउ बूझै जब्बै । अन्तराल गति टूटै तब्बै ।।

८३. ऋद्धिसिद्धि री दोउ न काज । पाप-पुण्य तह डारहु वाज ।।
सो अनुत्तर बूझै जब्बै । सरह भनै जग सिद्धै तब्बै ।।

८४ गुरु वचन ससिद्धउ जब्बै । इन्द्रजाल सब टूटै तब्बै ।।
सरह भनै अनुत्तर धर्म । हरि-हर-बुद्ध जे एहउ कर्म ।।

८५. सर्वाकारवर उत्तम कोइ । शुनक शृगालउ सत्त्व ले सोइ ।।
शुद्धि (   )जानिय जब्बै । जिन-गुण-रतन पाइय तब्बै ।।

८६ अथवा मोहे सो परिज.नेउ । मोक्षहि बुद्धिहि जाय सम्मानेउ ।।
हाथेहि ककण स्थितउ नाइ । गुणदोष विक्षण दर्पणहिं जानइ ।।

८७ बुद्धहि सकल मने देइ मुक्ता मल्ल मान सो वाझइ ।
जानै परमार्थ न अर्थच्छिन्न सर्वोच्छिन्न पेखै सर्वे ।।

८८. सा होहु सुव्यवच्छिन्न अव्यवच्छिन्न आनन्तर ।
स्वय सवित्ति न करह रे धधा । भाव-अभाव सुगति रे बधा ।।

८९ निज मन मनन करु रे निपुणे योगी । जिमि जल जलेहि मिलन्ते सोई ।।
ध्यान मोक्ष कि देखहु रे प्रवाहे । मायाजाल कि लेहु रे क्रोडे ।।

९० वरगुरुवचन पतियाइय साचे । सरह भनै मैं कहिअउ वाचे ।।
निज स्वभाव न लब्भै वचने । दीखै गरु आदेशे हि गगने ।।

९१. नहि तसु दोष जे एकहु ठाँव । धर्माधर्म जो मोही खाव ।।
चित्त बधे बधै मुक्ते म चइ न अस्ति सदेहो ।

---

९०. ग घ (भोट. ३९ गघ)लद्धअः मि. ञ्जो . क्यड्. (ण कहिअउ), वाग. णहु कहिअउ अण्ण । ०गुरउवएसें ण अण्णों।

९१. (भोट. ४०, ४२ गघ), वाग. ०तसु दस ओट्ठाइ । सा सोहिअ खा (३८) । हर. णउ तसु दोस जे एक्कवि ठाइ । धमाधम्म सोहिअ खोइ ।

९२. वज्झन्ति जेण जडा परिमुञ्चन्ति तेण वुधा ।।
वद्धो गमइ दस दिसेहि, मुक्को[४] णिच्चल ट्ठाअ ।
९३ एमइकरहा पेक्खु सहि, विवरिअ महु पडिहाइ ।।

(५) सहज समरस-भाव—
पवण धरि अप्पाण म भिन्दह । कट्ठ-जोअ नासाग्ग म विन्दह ।।
९४ अरे वढ सहज गइ पर रज्जह । मा भव-गन्ध-वन्ध पडिवज्जह ।।
एहु निअ मण सवल चातर स चल । मेलहि सहाव ट्ठाअ वसइ दोस-णिम्मल।
९५ जव्वे मण अत्थमणु जाइ, तणु[६] तुट्टइ वन्वण ।
7b तव्वे सम रसहि मज्झे, णउ सुद्द ण वाम्हण ।।

५. यही सब कुछ

(१) देह ही तीर्थ—
९६. एथु से सरसइ सोवणाहु, एथु से गङ्गासाअरु ।
वाराणसि पआग एथु, से चान्द-दिवाअरु ।।
९७ खेत्त पिट्ठ उअपिट्ठ, एथु मइ भमिअ समिट्ठउ ।
देहासरिस तित्थ, मइ सुणउ ण दिट्ठउ ।।
९८ सरु पुडअणि दलु कमल, गन्ध-केसर वर णाले ।
च्छाडहु वेण्णि[२] मा करहु से, मा लाग्गहु वढ आले ।।
९९ कामान्त सान्त खअ जाअ, एत्थ पुज्जहु कुलहीणउ ।
वाम्ह-विट्ठु-तइलोअ, जहि जाइ विलीणउ ।।

---

९२ (भोट ४३ क ख, ५१ ग घ), वाग. वज्झंति जेणवि जडा लहु परिमुच्चन्ति तेणवि वुहा (४२) ।

९३. (भोट. ५२ क ख, ५३ ग घ), सहि=गो. व्स्लोग; वाग. विहरिग्र महु (४३)।

९४. (भोट. ५४), वाग. ९२।४४ पवण-रहिग्र ग्रप्पाण म चिन्तह । कट्ठ-जो णासग्ग म वघह । (भोट) .वाग. ग्ररे वढ सहज सइ पर रज्जह । मा भव-गन्व-वन्व पडिचज्जह—(४४)। एहु मेल्लह तुरङ्ग सुचञ्चल। सहज सहावे सो वसइ णिच्चल (४५); हर. ०सहज शइ पर णज् जहु (९९) ।

९५. (भोट. ५५ ग घ, ५६ क ख); वाग. ०मणु ग्रत्यमण० । ०समरम वज्जइ (४६);हर. जव्वें मण ग्रच्छमण जा तणु० ।

९२. बधे जासे जडा परिमुचे तेन बुधा ।।
बद्धोउ जावै दस दिसहि, मुक्तउ निश्चल स्थाय ।
९३ एव करभा पेखु सखी, विवरिय मोहि प्रतिभाय ।।

(५) सहज समरस-भाव--
पवन धरी आपा ना भिन्दहु । कष्टे योग नासाग्र न बिन्दहु ।।
९४. अरे मूढ, सहज गति पर रंजै । ना भव-गध-बध प्रतिपद्यै ।।
एहु निज मन तुरंग चंचल । मेलहि स्वभाव स्थाय बसै दोष-निर्मल ।।
९५ जब्बै मन अस्तमन जाइ, तन टूटै बंधन ।
तब्बै समरस मध्ये, ना शूद्र न ब्राह्मण ।।

५. यहीं सब कुछ

(१) देह ही तीर्थ--
९६ एहिं सो सरस्वती प्रयाग, एहि सो गगासागर ।
बाराणसी प्रयाग, एहि सो चन्द्रदिवाकर ।।
९७ क्षेत्र पीठ उपपीठ एहि, मै भ्रमेउ समिस्थउ ।
देह सदृश तीर्थ, मै सुनेउ न देखेउ ।।
९८ सर पुरइणि दल कमल, गध केसर वर नाले ।
छाडहु द्वैत न करहु से, ना लागह मढ आले ।।
९९ कामन्त शान्त क्षय जाय, अत्र पूजहु कुलहीनहु ।
ब्रह्मा-विष्णु-त्रिलोचन, जह जाय विलीनउ ।।

---

९६. (भोट. ५६. ग , ५७ क ग) बागची-एत्थ से सुरसरि जभणा एत्थु ०। ० पम्राग वणारसि एन्थु से चन्दविाग्ररु (४७); हरप्रसाद शास्त्री. एत्यु से सुरसरि जमुणा एत्थु० । अत्थु पअाग वणारसि एत्थु०।

९७. (भोट. ५७ ग घ, ५८ क ख); बाग. क्खेत्तु पीठ उपपी एन्थु मइ मम परि्ठश्रो० । ०सरिसअ० मयं सुह अण्ण ण दीट्ठओ=(४८) ।

९८. (भोट. ५८ ग घ, ५९ क ख), बाग सण्ड पुअणि-दल कमल० च्छडहु वेणिम ण करहु सोस ण लग्गहु० (४९); हर. सण्ड पूअणिदलकमल०। छड्डहु वेणि म करहु सोसं न लग्गहु बढ आलें (१००) ।

९९. (भोट. नहीं); बाग (काम तत्थ खअ जाअ पुच्छ कुलहीणउ । वम्ह विट्ठु तीलोअ०।

१००. जइ णउ[3]विसअहिँ लीलिअइ, तहु बुद्धत्त ण केहिँ ।
मेउ-रहिअ णव अङ्कुरहिँ, तरुसम्पत्ति ण ज(ा)उ ।।

१०१. जत्थवि तत्थवि जहवि तहवि, जेण तेण हुअ बुद्ध ।
सए[4]सइ कप्पे णासिअउ, जगु सहावहि सुद्ध ।।

१०२. महज कप्प परे वेवि ठिउ, सहज लेउ रे मुद्ध ।
कअपअपाणी पीस लउ, राअहन्स जिम दुट्ठ ।।

(२) जग में ही सुखसार--

१०३ जग उपपाअणे दुक्ख वहु, उप्पण्णउ तहि सुहसार ।
उप्पण उप्पाअ णहि, लोअ ण जाणइ सार ।।

१०४. अरे पुत्त तत्त विचित्त रसु, कहण ण सक्कइ वत्तु ।
8*a* कप्प-रहिअ सुह ट्ठाण कुह । णिअ सहावे सेविउ एक्कह ।।

१०५ कमणे सो गुणहि धरिअउ । अहवा एकोवि ण धरिअउ ।।
सुण्णासुण्ण वि वुज्झइ जत्थु । गुरु णउ वण्ण वि भुंजइ तत्थु ।।

१०६. वुद्ध वि[1] वअणें एत्तवि धम्म । लोआचारे एत्तवि कम्म ।।
सअल तत्त सहावे देक्खह । लोआचार जे तहिँ उएक्खह ।।

१०७ एवहिँ वुद्ध-रुअ हले कोवि । सहज महावें सिज्झइ सोवि ।।
सुअणे जिम वरकामिणि माणिउ । रइ-सुह तहिँ पच्चक्खहि समाणिउ ।।

१०८ एवहिँ वुद्ध-रुअहु लइ सिज्झइ[3] । पज्जोपाए कहवि ण वज्झइ ।।
जइ मण सहज णिरन्तरे पावइ । इन्दी विसअहि खणवि ण धावइ ।।

१०९ तहिँ सो वि देअ ए चउरिद्धी । सरह भणइ जिण-विम्व वि सिद्धी ।।
दोहा-सङ्गम मइ[4] कहिअउ, जेहु विवुज्झिअ तत्थ ।

११० एहु ससार हले लेहु, जहिँ जाणिज्जइ तत्थ ।।
गहि गुण धम्म संसार अहवा सत्थत्थ णिअत्थणें ।

१११ तहि भासिअ[5] दोहाकोसं तत्थ च्चिअकन्वअं समत्त ।।

(मिग्.गसुम्), वाग काम तत्थ खअ जाइ पुच्छहु कुलहीणओ । वम्ह० तेलोअ सअल जगु णिन्तीणओ (५०) ।

१००. (भोट. नहीं) ।

१००. यदि नहि विषयहि लीलियइ, तो बद्धत्व न केहि।
सेतुरहित नव अकुरहि, तरुसपत्ति न जेहि ।।

१०१. जह तह जैसेउ तैसेउ, येन-तेन भा बुद्ध।
स्वकसकल्पे नाशिअउ, जगत् स्वभावहि शुद्ध ।।

१०२ सहज कल्प परे द्वैत ठिउ, सहज लेहु रे शुद्ध।
काय पग पाणि पीस लेउ,राजहस जिमि दुष्ट ।।

(२) जग में ही सुखसार—

१०३. जग उत्पन्ने दु ख बहु, उत्पन्ने तहि सुखसार।
उत्पन्न उत्पाद नहि, लोक न जानै सार ।।

१०४ अरे पुत्र तत्त्व विचित्र रस, कहन न सक्कइ वक्तु ।
कल्परहित सुखथान कहु। निज स्वभावे सेविउ एक्कउ ।।

१०५. कवने सो गुणे धरिअउ। अथवा एकउ न धरियउ ।।
शून्य-अशून्यउ बूझै यत्र। गुरु नव वर्णउ भुजै तत्र ।।

१०६. बद्धहु वचने एत्तइ धर्म। लोकाचारे एत्तइ कर्म।
सकल तत्त्व स्वभावे देक्खहु। लोकाचार जे तहि उदेखहु ।।

१०७ एव बुद्ध रूप है कोई। सहज स्वभावे सिद्ध्यै सोई ।।
स्वप्ने जिमि वर कामिनि मानेउ। रति-सुख तंह प्रत्यक्ष समानेउ ।।

१०८. एव बुद्ध रूपउ लड सिद्ध्यै। प्रज्ञोपाये कहउ न बधै ।।
यदि मन सहज निरतरे पावइ। इन्द्रिय विषय हि क्षणउ न धावइ।।

१०९ तंह सोउ देइ चउऋद्धी। सरह भनै जिन-बिवउ सिद्धी ।।
दोहा सगम मे कहेउ, जहँ जाणीजै तथ्य।

११०. एहु ससार री लेहु, जह जानीजै तथ्य ।।
गहि गुण धर्म ससार अथवा शास्त्रार्थ निजस्थाने।

१११. तहँ भाषेउ दोहाकोश, तत्र चित्तस्कधकं समाप्तं ।।

१००–११९ (भोट. नहीं)।

१०४. बाग. अरे पुत्तो तत्तो० रसु० वत्थु। ०सुहठाणु वर जगु उअज्जइ तत्थु (५२)।
हर अरे पुत्त० वत्थ। ०ठाणु वरु जग उवज्जइ तत्थ (१०१)।

६. सहज यान

जइ कहमि तोज्झु कहण ण जाइ। अहवा कहमि जणकेर मणपत्तअ ण जाइ॥

११२ जइ पमाएँ विहि वसे, वढ लद्धउ[६] भेउ।

9a जइ चण्डाल-घरे भुञ्जइ, तअवि ण लग्गइ लेउ॥

११३ सहज-सहज मु माणहु आले। जे पुणु वन्ध होइ भवपासें॥

अरे वढ आसा कहवि ण काज्ज। दम (? मद) गुरु किरणे पाइहु वाज्ज॥

(१) सहानुभूति—

११४ सअ-सवेअण तत्त वढ, लोए तं काइ मणन्ति॥

जो मण-गोअरे पाविअइ, सो परमत्थ न होन्ति॥

११५ णिअ सहाव गअण-सम, अप्पा पर[२] णउ सोइ।

सहजाणन्द चउटठउ, सो की वुञ्च ण जाइ॥

११६ विण वज्जे जिम च्छान्ती जावतिअ, मण माआकेर सहाव।

सअल विसअ ण सहावें सिज्झअ। पज्जोपाए[3]कहवि ण वाज्झअ॥

११७ जिणवर-वअण पत्तिज्जहु माच्चे। सरह भणइ मइ कहिअउ वाच्चे॥

सहजे सहज वि वाहिअ जवे। अचिन्त जोएं[४] सिज्झइ तव्वें॥

११८ जिम जल-मज्झे चन्दडा, णउ सो माच्च ण मिच्छ।

तिम सो मण्डलचक्कडा, णउ हेडइ णउ खित्त॥

(२) चित्त देवता

११९ चित्त देव जे सअल हि राज्जइ। पर-चित्तन्त[५] चाउलि भुंजइ॥

9b चित्तहिं सअल जग जो दीसअ। सहज सहावे किम्पि ण दीसअ॥

१२० चित्तहि चित्त जइ लक्खण जाइ। चञ्चल मण पवण थिर[६] होइ॥

चित्त थिर जो णिम्मल भाव। तहिं ण पइसइ भावाभाव॥

१२१ एहु देव वहु आगम दीसअ। अप्पण इच्छे फुड पडिहासअ॥

अप्पणु णाहो पर विरुद्धो। घरे-घरे सो सिद्धात पसिद्धो॥

---

११५ हर सहजानन्द चउट्ठ वपणे णिअ संवेसइ जाण (११७ ? १२१)।

१२०. (भोट नहीं)।

१२१ ख. (भोट. ९७ ग घ, ९८ क ख)।

६. सहज यान

यदि कहउ तोहि कहन न जाइ। अथवा कहउ जनके मन प्र.यय न जाइ ॥

११२ यदि प्रमादे विधिबस, मूढ लहेऊ भेद।
यदि चडालघरे भु जइ, तऊ न लागै लेप ॥

११३ सहज सहजे मानहु आगे। जे पुनि वन्ध होइ भव पागे ॥
अरे मूढ आगा कहब न काज। सदगुरु फिरने डारहु बाज ॥

(१) सहानुभूति

११४ स्वकसंवेदन तत्त्व मूढ, लोग से काह मानत ॥
जो मन गोचरे पाइयइ, सो परमार्थ न होन्ति ॥

११५ निज स्वभाव गगनसम, आपा पर न सोइ।
सहजानन्द चतुर्थउ, सो की कहा न जाइ ॥

११६ बिन वद्ये जिमि शाति जौलौ, मन मायाकेर स्वभाव ॥
सकल विषय न स्वभावे भावे सिद्धै। प्रज्ञोपाये कहब न वाझै ॥

११७ जिनवर-वचने पतियाहू साचे। सरह भनै में कहिअउ वाचे ॥
सहजे सहज उ वोधिय जव्बै। अचिन्त योगे सिद्धै तव्बै ॥

११८ जिमि जलमध्ये चदडा, ना सो सत्त्य न मिथ्य।
तिमि सो मडल-चक्कडा, ना हेठइ ना क्षिप्त ॥

(२) चित्त देवता

११९ चित्त देव जे सकलहि राजै। पर चित्तन्त चाउ ली भु जइ ॥
चित्तदेव जे सकलहि राजै। सहज स्वभावे किमपि न दीसै ॥

१२० चित्तहि-चित्त यदि लखा न जाइ। चचल मन पवन स्थिर स्थाइ ॥
चित्त स्थिर जो निर्मल-भाव। तह ना पइसै भाव-अभाव ॥

१२१. एहु देव बहु आगम दीसै। आपन इच्छे फुरि प्रतिभासै ॥
आपन नाथो पर-विरुदधो। घरे-घरे सो सिद्धान्त प्रसिद्धो ॥।

---

१२१ बाग. एक्कु देव० दीसइ। अप्पणु इच्छें फुड पडिहासइ। अप्पणु णाहो अण्ण विरुद्धा। घर-घरें सो अ० (८७)। हर. अप्पण नाहो अण्ण विरुधो। हो घरें-घरें सो अस सिद्धान्त पसिद्धो। १२१-१२७. (भोट नही)।

१२२. हिअहि काच मणि लइ तुट्ठो। वोहिमण्डल महासुह ण पइटठो ।।
सम्वर चित्त-राअ दिढ चाड़ गो। जाव ण दंसअ विसअ भुजगो ।।

१२३ पञ्जरे जिम पगि पक्खि णिचञ्चल। तिम मण राउ लगइ सुठु वञ्चल ।।
सो जइ लइअइ अइन्त विराले। चलइ न वुल्लइ ट्ठिअइ निराले ।।

१२४. चिन्ताचिन्त ण किअउ मइ, णउ परिआणिअ कीस।
वुज्झहो जो गुणवन्तो, वेण्णि करिआ सीस ।।

१२५ जइ ट्ठाण ण घेप्पइ दुट्ठ मण, इन्दी काइ चरेइ।
पसुघरे[४] चोरह मन्त ण पेच्छइ, जो तइलोअ हरेइ ।।

१२६ च्छाआच्छाअहि जइ सो पइट्ठो। देह वसन्तो चित्त ण दिट्ठो ।।
जो सो जाणइ णिअ मण ट्ठाणा। सअल जग[५] भवति भव सुइणा ।।

१२७. णिव्वाणे ट्ठिअ झाणे राजइ। आण्ण मान्द आण्ण आउ सह कीजइ ।।
णउ सो झाणे णउ पव्वाजे। गेह वसते समरस भाज्जे ।।

10a१२८. घरे-घरे[६] कहिअअ सोज्झु कहाणो। णउ परिआणिअ महासुह ट्ठाणो ।।
सरह भणइ जग चित्ते वाहिउ। सोवि अचिन्त ण केणवि गाहिउ ।।

(३) भव-निर्वाण एक–

१२९. ए जे करुण मुणन्ती मागहि, दिढ लाग्गइ ते भव-पास।
अइ अण्णो सो अणक्खरु णव, सुण्णहि चित्त णिरास ।।

१३०. जिम जलेहि ससि दिसइ च्छाआ। तिम भव पडिहासइ[२] सअलवि माआ ।।
अइसो चित्त भमन्ते ण दिट्ठो। भव णिव्वाण णिरन्तरे पइट्ठो ।।

१३१. अन्तो णत्थ सुइउआ णट्ठो काल दुइउ। एको[३] वि सो जाणिव्वो जेण कम्मसउ ।।
णिजिअ सासो णिहन्द-लोअणो सअल विआर विमुक्को मणो ।।

१३२. जो ए आवत्थ गउ सो जोइ णत्थि सदेहो[४]।
णिट्ठुर सुरअ सं पाणिअ, कमल-कुलिस सम्पत्ति ।।

१३३. खणे-खणे किं विवोहिअ णिव्वाण सएसम्वित्ति।
वेवि कोडि ण रत्तो, कहि म्पुण लक्ख क्हाण[५] ।।

---

१२८ कख. (भोट. ४६ ग घ और ६४); हर. रे घर काहिअइ सोज्झ

१२२ हृदये काच मणि लेइ तुष्ट। बोधि-मडल महासुख न प्रविष्ट।।
सवरचित्तराग दृढ चगा। जौ लौ न दशे विषय-भुजगा।
१२३ पजरे जिमि पडि पक्षि निश्चचल। तिमि मन राव लगै सुठवचल।।
सो यदि लेइ अचिन्त बिडाले। चलै न बोलै स्थिरे निराले।
१२४ चिन्ताचिन्त न कियउ मैं, ना परिजानेउ कैस।।
बूझहु जे गुणवन्ता, दोनों करिया सीस।
१२५ यदि स्थान न गहै दुष्ट मन, इन्द्री काह चरेइ।।
पशुघरे चोरह मत्र न पेखइ, जो त्रैलोक हरेइ।
१२६. छाया-छायेहि यदि सो पइठो। देह वसन्त चित्त ना दृष्टो।।
जो सो जानइ निज मन थाना।। सकलजग होइ भव-स्वप्ना।
१२७. निर्वाणे स्थिय ध्याने राजै। अन्य मन्द-अन्य आयु सह कीजै।।
ना सो ध्याने ना प्रव्रज्यहि। गेह बसन्ते समरस भार्ये।।
१२८ घरे-घरे कहियइ सोझ कहानो। ना परिजानिय महासुख थानो
सरह भनै जग चित्ते बहेउ। सोउ अचिन्त न कोउ गहेउ।।

(३) **भव-निर्वाण एक—**

१२९ ये जे करुण मनती मांगै, दृढ लागै ते भवपाश।
अति अन्य सो अनक्षर ना, शून्यहिं चित्त निराश।।
१३० जिमि जलेहि शशि दीखै छाया। तिमि भव प्रतिभासै सकलउ माया।।
ऐसो चित्त भ्रमन्त न दृष्ट। भव-निर्वाण निरन्तरे प्रविष्ट।।
१३१ अन्त नाहि सुपिना नष्ट काल दुइउ। एकउ सो जानिबो जेहि कर्मशत
निर्जिति श्वास निष्पन्द लोचन। सकल विचार विमुक्त मन।।
१३२. जो ये अवस्था गउ, सो योगी नाहि सदेहा।
निठुर सुरति सपानिय, कमल-कुलिश सपत्ति।।
१३३. क्षणे क्षणे का विबोधिय, निर्वाण स्वक-सवित्ति।
दोउ कोटिन रक्त, कह पूर्ग लक्षय कहान।

कहाणा। णउ पर सुणिउ महासुह ठाणा।० सो अचिन्त णउ केर्णवि गाहिअ (१११)।

१३४ तह वेवि रहिअ णिउगो, अणुत्तर बोहि विण्णाण ॥
10a रसु परिभुञ्ज ण मूल-रस, कमलवगे पण मज्जइ ।
१३५ वहु सन्तावे सअले, चित्त-गएन्द ण रज्जइ ॥
आलअतरु उमलइ, हिण्डइ जग च्छाच्छान्द ।
१३६ गम्मागम्म ण जाणइ, मत्तो चित्त-गअन्द ॥
जइ जग पूरिअ सहजाणन्दे । णाच्चहु गाअहु विलसहु चङ्गे ।
१३७ जइ पुणु घेप्पहु वासण विन्दे । तह फुड वाज्झहु ए भव -फान्दे ॥
समता कामिणि अणुह णिवास । समरस भोअण अम्वर वास ।
१३८ तहि पुणु किम्पि ण दीसइ आन्तर । सम गउ चित्तराअ णिरन्तर[१] ॥

(४) परमपद—

(क) शून्य निरजन

सुण्ण णिरञ्जण परम पउ, सुइणोमाअ सहाव ।
१३९ भावहु-चित सहावता, जउ णासिज्जइ जाव ॥
रवि-ससि वन्धण गउ जव्वे । उअरे अरइ तले खरइ ण तव्वे ।
१४० देक्खइ रवि परि त वुद्ध विण्णाणा । उअरे अरइ तलें णाहि मोक्खरणा ॥
णउभव णउ णिव्वाणे दिट्ठिअउ, महासुह वाज्ज ।
10b १४१. जो भावइ मणु भावणे, सो पर साहइ काज्ज ॥
अक्खर-वण्ण-विवज्जिअ, णउ सो विन्दु ण चित्त ।
१४२. एहु सो परममहासुह, णउ फेडिअ णउ खित्त ॥
जिम पडिविम्व-सहावता, तिम भाविज्जइ भाव ।
१४३. सुण्ण णिरञ्जण परमपउ, ण तहिं पुण्ण ण(उ) पाव ॥
पञ्च कामगुण भोअणेंहिं, णिचिन्त थियेंहिं ।
१४४. एव्वे लक्खण[२] परमपउ, किम्वहु वोल्लिअ एहिं ॥
हउँ पुणु जाणमि जेण मणु, च्छाडइ चिन्ता-तात्त ।
१४५. जो दुज्जअ पडिअ मणु, णउ सो वुज्झइ तात्त ॥

(ख) धेय-धारणादि व्यर्थ—

धेअ ण धारण[३] मन्त तहिं, णउ तहिं सिव (अ) सत्ति ।

---

१३९ ख वाग अक्खर मन्त विव जिओ०।०महासुहो० (पृ० ५६) ।

१३४. तंह् द्वैत-रहित निपुण, अनुत्तर बोधि विज्ञान ॥
रस परिभु ज न मूल रस, कमलवने घन मज्जै ।
१३५ बहु सतापे सकले, चित्तगयद न रज्जै ॥
आलय-तरु उमडै, हिलै जग स्वच्छन्द ।
१३६. गम्य-अगम्य न जानै, मस्तो-चिस्त गयद ॥
यदि जग पूरित सहजानन्दे । नाचहु गावहु विलसहु चगे ।
१३७. यदि पुनि लेहु वासना वृन्दे । तह् फुरि बाझहु ये भव-फन्दे ॥
समता कामिनि अनुभ (व) निवास। समरस भोजन अम्वर बास ।
१३८ तंह् पुनि कैस न दीसै अन्तर । सम गउ चित्तराग निरतर ॥

(४) **परमपद**—

(क) **शून्य निरजन**

शून्य निरंजन परमपद । स्वप्नोपमा स्वभाव ।
१३९ भावहु चित्त स्वभावता, ना नाशीजै जाव ॥
रवि-शशि बन्ध गउ जब्बै । उतरे अरति तले खरै न तब्बै ।
१४० देखहु रवि परित बुद्धविज्ञाना । उतरे अरति तले नाहि मोक्षरणा ॥
ना भव ना निर्वाणे, दृष्टउ महासुख बाज ।
१४१. जो भावै मन भावने, सो पर साधै काज ॥
अक्षर-वर्ण-विवर्जित, ना सो विदु न चित्त ।
१४२. एहु सो परम महा सुख, ना फैलिय ना क्षिप्त ॥
जिमि प्रतिबिब स्वभावता, तिमि भावीजै भाव ।
१४३ शून्य निरजन परम पद, ना तहि पुण्य न पाप ॥
पच काम-गुण भोजनेहि, निश्चिन्त स्थितेहि ।
१४४. एव लहै परमपद, क्या बहु बोलिय एहि ॥
हौ पुनि जानउ येन मन, छाडे चिंता तत्त्व ।
१४५ जो दुर्जय पडिय मन, ना सो बुज्झइ तत्त्व ॥

(ख) **धय-धारणादि व्यर्थ**—

ध्येय न धारण मत्र तहँ, ना तँह शिव (अरु) शक्ति ।

---

१४०. बाग ।

१४६. लक्खालक्ख विणाहि न्तोंहि, णउ तहि भाव-पसत्ति ।।
नउ तहि णिन्दा णउ सिविण, णउ जागर सुमुत्त ।
१४७ भावाभाव-णिवन्दणु[४], णउ तहि थावकअ चित्त ।।
णउ जाइअइ णउ मरइ, णउ अवित्थिणण वि होइ ।
१४८ णउ करावइ णउ करइ, हेउ विआरह तोवि ।।

(५) परमपद-साधना

11*a* जसु आइ ण[६] आन्त, णउ जाणिअ मज्झ ।
१४९ तसु कहि किज्जइ कहसु मइ, जोइहि पुज्जा कज्ज ।।
वण्ण-आआर पवाण-रहिअ, अक्खुरु वेउ अणन्त ।
१५०. को पुज्जइ कह पुज्जिअइ , ज I सु आइ ण अन्त ।।
सहि ससरह कहि तुहु, एत्थ कहिज्जइ तत्त ।
१५१ णउण विआर करन्तहि णउ कत्थवि परमात्थ ।।
जिम केलतरु सोहणेहि , णउ पाविज्जइ मारु ।
१५२ तिम भुअ तत्त विआरणे, दीसइ एहु संसारु ।।
वन्द ण दीसइ एत्थु हले, णउ सो मोक्ख सहाव ।
१५३ वुद्ध सयोग[३] परमपउ, एहु से मोक्ख-सहाव ।।
जेण पमवइ हिअअ पज्जोर, तेण किसेवि एण ।
१५४ मगुण पइसइ तिअम जणु, भावउ चित्त मणेण[४] ।।
णिपुखो वाणो वाणवासो एत्थ कारणे, किम्पि ण जाणो अणुसरइ ।
१५५ मुणणहि मज्झे मुणण पउ, तहि सन्वाण पइमरइ ।।
सव्व धम्म जे खसम करीहसि[५] । खसम सहावे चीअ ट्ठवीहसि ।।
१५६ सोवि चीअ अचीअ करीहसि । एवहि सो अणुत्तर गमीहसि ।।
11b णअण दुहहु अणुपम णिवन्धह । णिअ गइ णिअ मणे[६] जइ भिडि वन्धह ।
१५७. सरह भणइ एह दुइ पावहु । तुरिअ दुक्ख मिच्चु णिवारहु ।।
एहु घरें ट्ठिअ महिला मण सा । एहु ण दीसइ भण सहि कइसा ।
१५८ पासे पास भमन्ते अच्छह । सरह भणअ तसु घरिणी णेच्छअ ।।
साइ के खाढउ सअल जगु, सइ का ण केणवि खाढ ।

१४६ लक्ष्यालक्ष्य बिना हि तेहि, ना तँह भाव-प्रसक्ति ।।
ना तंह निद्रा ना स्वपन, ना जागर न सुषुप्त ।
१४७. भाव अभाव निवधन, ना तँह रहई चित्त ।।
ना जाइअ ना मरै, ना अविच्छिन्नउ होइ ।
१४८ ना करावै ना करै हेतु विचारह सोइ ।।

(५) **परमपद-साधना**—

जासु ण आदि ण अन्त, ना जानिय मध्य ।
१४९ तासु कहा कीजै कहहु मैं, योगि हि पूजा काज ।।
वर्ण आचार प्रमाण रहित, अक्षर वेद अनन्त ।
१५० को पूजइ कह पूजियइ, जासु आदि न अन्त ।।
सखि संसारहि कंह तुहुं, एहि कहीजै तत्त्व ।
१५१. निपुणे विचार करन्तहिं, ना कतहुं परमार्थ ।।
जिमि केलातरु शोभनेहि, ना पावीजै सार ।
१५२. तिमि भृत-तत्त्व विचारणे, दीसइ एहु संसार ।।
बन्ध न दीसे एहुं री, ना सो मोक्ष स्वभाव ।
१५३ बुद्ध सयोग परमपद, एहु सो मोक्ष स्वभाव ।।
जेहिते न प्रसवै हृदय प्रज्योत, तेहिते कैसे भी येन—
१५४• सगुण पइसै त्रिदशजन, भावउ चित्त मनेन ।।
निपुख वाण वाणवास एह कारणे किमपि न जानो अनुसरै ।
१५५ शून्य मध्ये शून्य पद, तंह संधान पइसरै ।।
सर्व धर्म जे ख-सम करीअसि । ख-सम स्वभावे चित्त स्थपीयसि ।
१५६. सोपि चित्त अचित्त करीअसि । एवं सो अनुत्तर जाइहसि ।।
मयन दोउ अनुपम निबंधह। निज गति निज मने यदि भिडि वंधह ।
१५७ सरह भनै एहु दुहु पावहु । तुरीय दुख मृत्यु-निवारहु ।।
एहि घरे स्थित महिला-मनुषा । एहु न दीसइ भन सखि कैसा ।।
१५८. पासे पास भ्रमन्तो आछै । सरह भनै तासु घरनी न इच्छै ।।
शकहि खायेउ सकल जग, शका न कोऊ खाउ ।

१५९ जे सङ का सङ किअउ, सो परमत्थ वि लद्ध ॥
मल्ल आदि उअत्ति कम्म, जो भावइ उअत्ति ।
१६० सो णव धम्मिअ वप्पडो, च्छाडहु अलिआ तत्ति ॥
मरण मरन्त पवण तल्लयें गअउ, तिहुअण[3] सहल समाउ ।
१६१. मण-तण जो पडिहासइ । सरह भणइ सो तत्त ण गवेसइ ॥
तेल्ल-खिच्चडइ अक्खर सारा । भव-णिव्वाण किम्पि ण[4] दूरा ॥
१६२. संसार अणुपलम्भ णिव्वाण । एहु बोह ण धेअ ण धारण ॥
अ-दसण दसण जत्तिवि ताण । तेत्तिवि मात्तम् भव-णिव्वाण ॥
१६३ अ-मुसिआरह तत्तें काल[5] । एहु उएस ण जाणइ बाल ॥
गुञ्जा-रअण मज्झे दीप उजाल । चञ्चल थिर करि पवण णिवार ॥
१६४ जो वढ मूलह सार वि जाणइ । ता की काल-विकाल वि[6] लागइअ ॥
णादह विन्दुह अन्तरे जो, जाणइ तिअ तिअ भेअ ।
१६५ सो परमेसर परमगुरु, उत्तारइ तइलोअ ॥

कृतिरियं सरहपादानां

१५९. जे शका शकियउ, सो परमार्थ उ लब्ध ।।
मल्ल आदि उत्पत्ति कर्म, जो भावइ उत्पत्ति ।
१६०. सो ना धार्मिक बापुडो, छाडहु अलीका तत्ति ।।
मरण मरन्त पवन तल्लए गयउ, त्रिभुवने सकल समाय ।
१६१. मनसे जो प्रतिभासै, सरह भनै सो तत्त्व न गवेपै ।।
तेल-खिच्चडइ अक्षर सारा । भव-निर्वाणे किमपि न दूरा ।।
१६२. ससार अनुपलभ निर्वाण । एहु बोध न ध्येय न धारण ।।
अदर्शन दर्शन जेत्तउ तान । तेत्तउ मात्र है भव-निर्वाण ।
१६३ ना समुझे तत्त्वे काल । एहु उदेस न जानइ बाल ।।
गुंजा रतन मध्ये दीप उजाल । चचल थिर करि पवन निवार ।।
१६४ जो मूढ़ मूलको सार विजानै । ताहि कि काल-विकालउ लागै ।।
नादहु बिन्दुहु अन्तरे, जो जानै सो-सो भेद ।
१६५ सो परमेश्वर परमगुरु, उत्तारै त्रैलोक ।।

यह कृति सरहपाद की (है)।

१(ख). दोहाकोश-गीति

(भोट अनुवाद और मूल)

१(ख). दोहा कोश-गीति*

ऽ म्. द्पल्. ग्ग़ोन् नुर्. ग्युर् व ल. फ्यग्. ऽछल्. लो ।

१. 'षट्' दर्शन-खंडन

१. दुग्. स्ग्रुल. ल्त वऽि स्कल्. मेद्. नि ।
ङे स्. पर. स्क्ये. वो. दम्. प. ल. ॥
स्क्योन्. ग्यि. द्रि. मस्. द्गोद्. पऽि. फ्यिर् ।
म्योङ्. व. च़म् ग्यिस्. ऽजिग्स्. पर. व्योस्. ॥१॥

(१) ब्राह्मण—

२. दे ञिद् मि. शेस्. व्रम्. जे. नि ।
ग्यि. न. रिग्स्. व्येद्. ग्शि. दग्. ऽदोन्. ॥
स. छु. कु. श. दग्. व्येद्. दङ ।
ख्यिम्. न. ग्नस्. ग्शि मे. ल. व्स्रेग् ॥२॥

३. दोन्. मेद्. स्व्यिन्. स्रेग्. व्येद्. प. नि ।
दु.वस्. मिग्. ल. ग्नोद्. पर. व्यस् ॥
द्व्यु. गु. द्व्युग्. ग्सुम्. लग्स्. ल्दन्. ग्स्.ग्स् ।
थ. दद् प ऽङ ङङ पस्. व्स्तन्. प. दग्. ॥३॥

४. छोस्. दङ. छोस्. मिन्. शेस्. पर् मि. म्ञाम्. ग्शि ।
ऽग्रो व. नमस्. नि. ग्जुन् प. ञिद् दु ऽग्रोल् ॥

---

*स्तन. ऽग्युर, ग्युद., बि ७० ख ५–७७ क ३ ५ (नेर् थी ङ्गाक-छापे का पाठ) ।
बोद् स्कद्दु. दो. ह. म्जोद -क्यि. गलु.

२. ग्शि नहीं, व्शि होना चाहिए। भोट-अनुवाद और तदनुक्रम से मूल ।

१(ख). दोहाकोश-गीति*

(नमो मंजुश्रियै-कुमारभूताय)

१. षड्दर्शन-खंडन

१. [विषसर्प जिमि अभव्य, निश्य (ह) सत्पुरुष को।

दोष-गधर्मे हसने को, देखने मात्र से भय करै]

(१) ब्राह्मण—

२. बह्मणेहि म जानन्त हि भेउ। एवइ पढिअउ ए चउबेउ॥

मट्टी (पाणि कुस लइ पढन्ते। घरहि बइसी) अग्गि हुणन्तेँ॥१॥

३ कज्जे विरहिअ हुअवह होमे। अक्खि डहाविअ कडुएँ धूमे॥

एकदण्डी त्रिदण्डी भअवँ वेसे। विणुआ होइअइ हस उएसे॥२॥

४. मिच्छेँहि जग वाहिअ भुल्ले। धम्माधम्म ण जाणिअ तुल्ले॥

---

*डाक्टर प्रबोधचंद्र बागची (बाग) द्वारा सम्पादित 'दोहाकोश' का पाठ (Calcutta Sanskrit Series, 1938)। ब्रेकेट [ ] में स स्वय पाठ या हमारा पुनरनुवाद और ( ) डाक्टर बागची संपादित अनुवाद हैं।

२. म. म हरप्रसाद शास्त्री (हर) 'जाणन्त ही भेउ', 'अग्नि हुणन्त।

(२) पाशुपत–

ए. रिऽ. थल्. बस्. लुस् ल ब्युग्स्. नस्. सु ।
71a म्गो. ल रल् पिऽ खुर्. बु खुर्. वर्. ब्येद ॥४॥

५ ख्यिम्. दु. मर्. मे ब्तङ. नस् ग्नस् ।
म्छम्स्. सु. ऽडुग् नस्. द्रिल् बु ऽख्रोल्. ॥
स्क्यिल् क्रुङ ब्चस्. नस् मिग् ब्चुम्स् ते ।
र्न वर् गुब्. गुब् स्क्ये वो. स्लु वर्. ब्येद् ॥५॥

६. ख्यो मेद्. स्क मेद् ऽदि. ऽद्र ग्गन् ल स्तोन् ।
द्वङ र्नम्स् ब्स्कुर् [१]गिङ ब्ल मऽि. योन् र्नम्स्. लेन् ॥

(३) जैन–

सोन् मो रिङ गिङ लुस् ल. द्रि मस् ग्योग्स् ।
गोस् दङ ब्रल् गिङ स्क नि ब्वल् वर्. ब्येद् ॥६॥

७ नम् म्खऽि यिद् चन् ग्नोद् ब्येद् लम् ग्यि ग्सुग्स् ।
थर्. पाऽि छेद् दु. ब्दग् ञिद् ऽग्रो. ब्येद्. स्लु ॥
ग्चेर्. बुस् गल्. ते ग्रोल् ऽग्युर. न ।
ख्यि. दङ. व.[२] सोग्स् चिस् मि. ग्रोल् ॥७॥

८ स्पु. ब्तोग्स् पस् नि. ग्रोल्. ऽग्युर् न ।
बुद्. मेद्. स्पु. ब्तोग्स् ग्रोल्. वर्. ऽग्युर ॥
म्जुग्स् स्पु ब्स्लङ वस् ग्रोल्. ऽग्युर् न ।
र्म. ब्यग् सोग्स् ग्रोल्. वर् ऽग्युर ॥८॥

९ लङस्. ते स. वस् ग्रोल्. ऽग्युर्. न ।
र्त. दङ ग्लङ पो. चि फ्यिर्. मिन् ॥
म्दऽ ब्स्मुन् न. रे नम् म्खऽि यिद् चन् ल ।
थर् प नम् यङ योद् प म यिन् स्रे्. ॥९॥

१० ब्दे. वऽि दे ञिद् दङ्. नि ब्रल् ऽग्युर् गिङ ।
लुस् क्यि द्कऽ. थुब् ऽबऽ ग्गिग् चम् ल्दन् पस् ॥

(२) पाशुपत--

अइरिऍंहि उद्‌दूलिअ च्छारे। सीससु वाहिअ ये जडभारे ॥३॥

५. घरही वइसी दीवा जाली। कोणहि बइसी घण्टा चाली॥

अक्खि णिवेसी आसण बन्धी। कण्णेहि खुसखुसाइ जण धन्धी ॥४॥

६ रण्डी-मुण्डी अण्णवि वेसे। दिक्खिज्जइ दक्खिण उद्‌देसे॥

(३) जैन—

दीहणक्ख जइ मलिणे वेसे। अप्पण वाहिअ मोक्ख उवेसे ॥५॥

७ खबणेंहि जाण विडबिअ बेसे। णग्गल होइ उपाडिअ केसे॥

जइ णग्गाविअ होइ मुत्ति ता सुणह सिआलह ॥६॥

८ लोमुपाडणे अत्थि सिद्‌धि, ता जुवइ णिअम्बह ।

पिच्छी-गहणे दिट्‌ठ मोक्ख, (ता मोरह चमरह) ॥७॥

९. उञ्छे-भोअणे होइ जाण, ता करिह तुरङगह॥

सरह भणइ खवणाण मोक्ख, महु किम्पि न भासइ ॥८॥

१० तत्तरहिअ काआ ण ताव, पर केवल साहइ ॥

(४) बौद्ध--

दगे. छुल्. दगे. स्लोङ ग्नस्. बतन् ग्सस् ब्य बस्।
वन्दे. नम्स् नि दे ल्तर् रब् ब्युङ नस् ॥१०॥

११ ख चिग्. म्दो. स्दे. छद् पर् ब्येद् चिग् ऽजुग्।
ल. ल. रोग्. चिग्. सेम्स् क्यि छुल्. ऽजिन् म्योङ॥
ख. चिग् थेग्. छेन्. दे ल. ग्युंग्. ब्येद् चिङ।
दे. नि. गशुङ. लुग्स् छद्. मऽि व्स्तन् चोस् यिन् ॥११॥

१२ ग्शन, थङ द्क्यिल. ऽखोर ऽखोर् लो म लुस. ब्स्ग्रोम।
ल ल नम् म्खऽि खम्स्. (सु) र्तोग्. पर् स्नङ ॥
ल्हन् चिग् व्गि पऽि दोन् छद् प. ल शुग्स्।
ग्शन्. यङ स्तोङ ञिद्. ल्दन्. पर् ब्येद्. प. दे ॥१२॥

१३ फल् छेर् मि. मथुन्. ऽफ्योग्स् ल. शुग्स् प. यिन्॥
ल्हन्. चिग्स्. स्क्येस्. ब्रल्. ग्शन् गङ गिस्।
म्य ङन् ऽदस्. गङ. स्गोम्. ब्येद् प.।
दे. दग्. ञस्. क्यङ् दोन् दम् नि. ॥
चिग् सोग्स्. ग्रुब्. पर्. मि. ञ्युर् रो ॥१३॥

१४. गङ गिग्. गङ ल. मोस् पर्. ग्युर्. प. देस्।
ब्सम् ग्तन्. ग्नस्. पस्. थर्. प थोब् बम्. चि।
मर्. मे. चि द्गोस्. ल्ह ब्शोस् दे. चि द्गोस्
दे ल चि व्य् ग्सङ स्ङग्स् ब्स्तन्. चि. गिग्स्. द्गोस्। ॥१४॥

१५ ऽबव् स्तेग्स् ञो दङ द्कऽथुब् मि द्गोस् ते।
छु. ल शुग्स् पस् थर् व. थोब्, बम् चि।

२. करुणा-सहित भावना

स्ञिङ्. जें. दङ ब्रल् स्तोङ प ञिद् शुग्स् गङ॥
देस्. नि. लम्. म्छोग् ञेद् प. म. यिन्. ते ॥१५॥

१६. ऽोन्. ते. स्ञिङ जें ऽबऽ. गिग्. ब्स्गोम्स् न यङ॥
ऽखोर्. ब. ऽदिर्. ग्नस्. थर्. प. थोब्. मि. ञ्युर्।

(४) बौद्ध—

चेल्लु भिक्खु जे त्थविर-उएसे। वन्देहिअ पव्वज्जिउ वेसे ।।९।।

११. कोइ सुत्तन्त वक्खाण वइट्ठो, कोवि चिण्ते कर सोसइ दिट्ठो

अण्ण तहि महजाणहि धा(वइ)। [ग्रथ प्रमाण शास्त्र हो सोइ ।।१०।।

१२ अपरेमडलचक्र सब भावै। अन्ये आकाशधातु समुझि भासे ।।११।।

अन्य चतुर्थ अर्थ छेदि बैठे। अन्ये शून्यवान् सो करै ।।

१३. बहु प्रतिकूल विपक्ष मे बैठे।] सहज च्छाडी णिव्वाणेहिँ धाविउ ।।

णउ परमत्थ एक्कवि साहिउ। एक्कवि सिद्धि नहि होइ ।।१२।।

१४. जो जसु जेण होइ सतुट्ठो। मोक्ख कि लब्भइ झाण-पविट्ठो ।।

किन्तहँ दीवे किन्तह णेविजज्जे। किन्तह किज्जइ मन्तह सेज्जे ।।१३।।

१५ किन्तह तित्थ तपोबन जाइ। मोक्ख कि लब्भइ पाणी हनाइ ।।

२. करुणा-सहित भावना

करुण-रहिअ ज्जो सुण्णहि लग्गा। णउ सो पावइ उत्तिम मग्गा ।।१४।।

१६. अहवा करुणा केवल साहअ। सो जम्मन्तरे मोक्ख ण पावअ ।।

---

११. कोइह चिन्ता (हर.)।

१५. स.स्वय. तालपत्र—१

गङ. यङ. गुञिस्. पो स्क्योर् वर् नुस्. प. देस्
ऽखोर् वर् मि गनस् म्य ङन् ऽदस् मि. गनस् ॥१६॥

१७ क्ये. लगस् गङ स्म्रस् वर्जुन्. गिङ् लोग् प दे वोर्. ल ॥
गङ ल गेन्. प योद्. प दे यङ म्थोङ ।
तोंगस् पर् ग्युर् न थमस् चद्. दे.यिन् ते ।
दे. ल गशन्. प सुस् क्यङ् गेस् मि ऽग्युर् ॥१७॥

१८. क्लोग् प. दे.यिन् ऽजिन् दङ स्गोम्. प दे. यिन् ते ।
ब्स्तन्. ब्चोस् स्ञिङ् ल. ऽछद्. पऽङ दे. यिन् नो ॥
ढे मि म्छोन् पऽि. ल्त. बु योद. मिन्. ते ।
ऽोन् क्यङ ग्चिग् बु. ब्ल. मऽि गल् ल स्तोस् प यिन् ॥१८॥

१९ ब्ल.मऽि स्म्रस्. प गङ गि स्ञिङ गुस् प ।
लग् पऽि म्थिल दु गनस्. पऽि. ग्तेर् म्थोङ ऽद्र ।
-ग्ञुग्. मऽि रङ ब्शिन्. ब्यिस् पस्. म म्थोङ वर् ।
ऽख्रुल् पस्. ब्यिस्. प ब्स्लुस् गेस् म्दऽ ब्स्मुन्. स्म्र ॥१९॥

२० ब्सम्. ग्तन्. मेद् चिङ रब्. तु ³ ऽब्युङ व मेद् ॥
ख्यिम् न गनस् गिङ्.छुङ्. म दग्. दङ ल्हन् चिग् तु ।
गङ शिग् युल् गिय द्गऽ वस्. ब्चिङस् लस् मि ग्रोल्. न
म्दऽ ब्स्मुन् द नि दे ञिद्. गेस् प यिन् गेस् स्म्र । ॥२०॥

२१. गल् ते म्ङोन् दु ग्युर् न ब्सम् ग्तन् चि ॥
गल् ते क्लोग्. तु ग्यर्. न मुन् प. ऽजल् ।
ल्हन् चिग्.⁴ क्येस्.पऽि रङ ब्शिन्. दे. ञिद् नि ॥
द्ङोस्. दङ द्ङोस् पो मेद् प म यिन्. ते । ॥२१॥

२२ म्दऽ ब्स्मुन् ऽो. दोङ तंग्. तु. ऽबोद् पर् ब्येद् ।
गङ शिग्. ब्लङस् नस्. स्क्ये शिग् गनस्. ग्युर्. प ।
दे. ञिद्. ब्लङस् नस् ब्दे. छेन्. म्छोग्. ग्रुब् चेस् ॥
स्कद् ग्सङ म्थोन् पोस् म्दऽ ब्स्मुन् स्म्र ब्येद् क्यङ।
ब्योल्. सोङ ऽजिग्. तेंन्. मि ो जि. ल्तर् ब्य ॥२२॥

जइ पुणु वेण्णवि जोडण साक्कअ। णउ भव णउ णिव्वाणे थाक्कअ ।।१५।।

१७ च्छड्डहु रे आलीका बन्धा। सो मुञ्चहु जो अच्छहु धन्धा ।।

तसु परिआणे अण्ण ण कोइ। अवरे गणणे सव्ववि सोइ ।।१६।।

१८ सोवि पढिज्जइ सोवि गुणिज्जइ। सत्थ-पुराणे वक्खाणिज्जइ ।।

नाहि सो दिट्ठि जो ताउ न लक्खइ। एक्के वर-(गुरुपाअ पेक्खइ)। १८।।

१९ जइ गुरु वुत्तउ हिअअ पइसइ। णिच्चिअ हत्थे ठविअ उ दीसइ ।।

सरह भणइ जग वाहिअ आले। णिअ सहाव णउ लक्खिउ वाले ।।१९।।

२०. झाणहीण पव्वज्जे रहिअउ। घरहि वसते भज्जे सहिअउ ।।

जइ भिडि विसअ रमन्त ण मुञ्चइ। (सरह भणइ) परिआण कि मुञ्चइ।।२०।।

२१. जइ पच्चक्ख कि झाणे कीअअ। जइ परोक्ख अन्धार म धीअअ ।।

सरहे (णित्त) कडढिउ राव। सहज सहाव ण भावाभाव ।।२१।।

२२. जल्लइ मरइ उवज्जइ बज्झइ। तल्लइ परममहासुह सिज्झइ ।।

(सरहे) गहण गुहिर भास कहिअ। पसु-लोअ निव्बोह जिम रहिअ ।।२२।।

२३ व्सम् ग्तन् ब्रल्. बस् चि गिग् व्सम्. व्यर् योद् ।
व्र्जोद् दु मेद् गङ जि ल्तर् व्गद् दु योद् ।।
स्निद् पऽि फयग् र्ग्यस् ऽग्रो व म लुस् व्स्लुस् ।
रङ व्शिन् ग्न्ाुग् म. सुस् क्यङ व्लङस् प मेद् ।।२३।।

२४. र्ग्युद् मेद् स्डग्स्. मेद् व्सम् व्य व्सम् ग्तन् मेद् ।
दे कुन् रङ[६] यिद् ऽखुल्. वर् व्येद्. पऽि र्ग्यु ।
रङ व्शिन्. दग् पऽि. सेम्स् ल व्सम् ग्तन् दग्. गिस्.मि व्स्लद् दे ।
व्दग्. गि. दे ञिद् व्दे ल गनस् गिङ ग्दुङ वर् म व्येद्. चिग् ।

२५ स गिङ थुङ ल ग्ञिद्. स्प्रोद्. क्यिस् द्गऽ गिङ ।
र्तग् तु.यङ दङ यङ दु ऽखोर् लो. ऽगोङस् ।।२५।।

72a छोस् ऽदि. ल्त वुस् ऽजिग् र्तेन्. फरोल्. ग्रुब् ऽग्युर् ते ।
र्मोङस् प ऽजिग् र्तेन्. म्गोन् पोर् र्दोग् पस् म्नन्. नस्. सोङ ।।२५।।

२६ गङ दु र्लुङ दङ सेम्स्. नि. मि र्ग्य. गिङ ।
ञि म. स्ल. व ऽजुग् प मेद् ऽग्युर् व ।।
मि शेस् प दग्. ग्नस् देर् गुग्स् फ्युङ चिग् ।
म्दऽ व्स्मुन्.ग्यिस्.नि मन् डग् थम्स् चद्.[१] व्स्तन् नस् सोङ ।। २६।।

२७ ग्ञिस् मु मि. व्य चिग्. तु व्य व. स्ते ।
रिग्स्. ल व्ये. व्रग् दग् तु म ऽव्येद्. पर् ।।
खम्स्. ग्सुम् म लुस्. ऽदि दग्. थम्स्.चद्. नि ।
ऽदोद्. छग्स् छेन् पो ग्चिग्. तु ख र्दोग् स्ग्युर् चिग् दङ. ।।२७।।

२८ देर् नि थोग् मेद् द्वुस् म्थऽ. मेद् ।
जि. स्निद् स्र्य ङन्.ऽदस्.प मिन् ।।
व्दे व छेन्. पो म्छोग् ऽदि ल ।
व्दग् दङ गगन् दु योद् म यिन् ।।२८।।

२९ म्दुन् दङ र्ग्यब् दङ फ्योग्स् व्चु रु ।
गङ गङ म्थोङ व दे दे ञिद् ।।

२३ झाण-वाहिअ कि कीअइ झाणे। जो अवाअ तहि काहि वखाणें ।।

भव मुद्दे सअलहि जग वाहिउ। णिअ-सहाव णउ केणवि साहिउ ।।२३।।

२४. मन्त ण तन्त ण धेअ ण धारण। सव्ववि रे बढ विब्भम-कारण ।।

असमल चित्त म झाणे खरडह। सुह अच्छन्त म अप्पणु झगडह ।।२४।।

२५. खाअन्ते (पिवन्ते सुह रमन्ते। णित्त पुणु पुणु चक्कवि भरन्ते ।।

अइसे धम्मे सिज्झइ परलोअह। णाह पाग्रे दलि)उ भुअलोअह ।।२४।।

२६ जहि मण पवण'ण सञ्चरइ, रवि ससि णाह पवेस।

तहि बढ चित्त विसाम करु, सरहे कहिअ उएस ।।२५।।

२७. एक्कु करु (मा वेण्णि. करु, मा करु विण्णि विसेस ।।

एक्के रगे रञ्जिआ, तिहुअण सअलासेस ।।२६।।

२८ आइ ण अन्त ण मज्झ णउ, णउ भव णउ णिव्वाण।

एहु सो परममहासुह, णउ पर णउ अप्पाण ।।२७।।

२९. आगे पच्छे दस दिसे, ज ज जोअमि सोवि ।।

---

२६ भोट बढलोकह=मूढलोकहि।

दे. रिङ ञिद्. दु म्गोन्. पो द ल्तर ऽखुल्. प. छद् ।
द नि सु. ल ऽङ द्रि. बर् मि व्यऽो ॥२९॥

(१) परमपद—

३० द्वङ पो गङ दु तुव् ग्युर् चिङ[3] ।
रङ गि ङो वोर् ञम्स् पर् ऽग्युर् ॥
ग्रोग्स्. दग् दे. नि ल्हन् चिग्. स्क्येद् पऽि लुस् ।
व्ल मऽि गल् लस् ग्सल्. बर्. ब्रिस् ।३०॥

३१ यिद् नि गर् ऽछिङ लुंङ गर् दे ङस् ।
स स्तेङ ऽदि न यन्. लग्. ग्नस् ॥
दे नि मोंङस्. पस् म्छम्स् मु योङस् गेस् व्य ।
ग्ति मुग् र्ग्य म्छो. ऽछद् प. गङ[4] गेस् प. ॥३१॥

३२ क्ये हो. ऽदि. नि रङ रिग् यिन् प स्ते ।
ऽदि ल. ऽख्रुल् प. म व्येद् चिग् ।
द्ङोस् दङ द्ङोस् मेद् व्दे वर् ग्गेग्स् पऽि ऽछिङ ब. स्ते ।
स्निद्. दङ म्ञम्. ञिद् थ. दद्. म ऽव्येद् पर् ॥३२॥

३३ ग्ञुग् मऽि यिद्. नि ग्चिग् तु ग्तोद्. दङ नल् व्योर्. प. ।
छु ल छु व्गग्. व्शिन् दु गेस्. पर्. व्योस् ॥
व्सम्. ग्तन्. बर्जुन्. पस् थर्. ब. ञोंद्. मिन्. नो ।
स्ग्यु लुस्. द्र बुस् जि. ल्तर्. वङ दु ऽख्युद्. ॥३३॥

३४. व्ल म दम्. पऽि व्कऽ यिस् व्दे वर् यिद्. छेस् पर् ।
ङ यिस् व्र्जोद् दु योद् मिन् गेस् नि म्दऽ. व्स्मुन् स्म्र ॥
ग्दोङ नस् दग्. प नम् म्खिऽ रङ व्शिन् ल ।
व्ल्तस्. गिङ व्ल्तस् गिङ म्थोङ व ऽगग्.पर्. ऽग्युर् ॥३४॥

३५. दे ल्त वु. ञिद् दुस्. सु ऽगोस् पर् ऽग्युर् ।
ग्ञुग्. म ञिद् ल. स्क्योन्. ग्यिस व्यिस् प. व्स्लुस् ॥

72b स्क्ये वो म लुस्. ल्हग्. पर्. मुन् ऽव्यिन् चिङ ।
ङ र्ग्यल् स्क्योन् ग्यिस् दे. ञिद् म्छोन् मि नुस् ।

एव्वें तु दीढन्तडी, णाह ण पुच्छमि कोवि] ।।२८।।

१. परमपद--

३० इन्दिअ जत्थ विलीअ गउ, णट्ठो अप्प सहाव ।

सो हले सहजानन्द तणु, फुड पुच्छह गरुपाव ।।२६।।

३१. जहि मण मरइ, पवणहो, तहि क्खअ जाइ [एहि भूमि अंग बिसै ।

सोई मूढ को एकांते पज्ञेय । तमसागर नशै जो जानै ।।

३२. सअ-सम्विन्ति म करहु रे धन्धा । भावाभाव सुगति रे वन्धा ।।३१।।

३३ णिअ मण मुणहु रे णिउणे जोई । जिम जलहि मिलन्ते सोई ।।

झाणे मोक्ख कि चाहु रे आले । माआजाल कि लेहु रे कोले ।।३२।।

३४. वरगुरु--वअणे पडिज्जहु सच्चे, सरह भणइ मइ कहिअउ (अ) वाचे ।।

पढमें जइ आआस विसुद्धो । चाहन्ते-चाहन्ते दिट्ठि णिरुद्धो ।।३३।।

३५ ऐसे जइ आआस वि कालो । णिअ मण दोसे ण वुज्झइ वालो ।।३४।।

अहिमाणदोसे ण लक्खिउ तत्त । तेण दूसइ सअल जाणु सो दत्त ।।

---

३१. के स्थान पर भोट में है--

०। ए ही भूमि ऊपर अंग वसई ।

सोइ मूढ ध्यान परिजानै । मोह समुद्र निरोध जो जानै ।

३२. ०सुगति रे बन्धा के बाद भोट में अधिक है "भवसमतुल्य भेद न कर हू", ।

३६. ऽजिग्. तेन्. म लुस्. व्सम्. ग्तन्. ग्यिस्. मोंङस् ऽग्युर् ।
गञ्ग्. मऽि रङ. व्शिन् सुस्. क्यङ म्छोन्. दु. मेद् ॥
सेम्स्. क्यि चॅ. व मिन् म्छोन्. ते. ।
ल्हन्. चिग्. स्क्येस्. प नॅम् ग्सुम्. गियु ॥३६॥

३७. गङ लस्. दे स्क्येस्. गङ दु नुब् ।
गङ दु. ग्नस्. ऽग्युर् ग्सल्. वर्. मि शेस्. सो ॥
चॅ. व. व्रल्. वऽि दे. ञिद्. गङ सेमस्. प ।
व्ल. मऽि म. मन्. ङग्. म्थोङ व दे यि छोग् ॥३७॥

३८. ख्रो. वऽि रङ व्शिन् सेम्स्. क्यि ङो वो ञिद्. यिन्. शेस् ।
मोंङस् नॅम्स् म्दऽ व्स्मुन् ग्यिस् स्म्रस्. चे. नि शेस् पर्. व्योस् ।
ग्ञग् मऽि रङ व्शिन् छिग् गिस् मि. व्र्जोद्. क्यङ ।
स्लोव् द्पोन् मन् ङग् मिग्. गिस्. म्थोङ वर् ऽग्युर् ॥३८॥

३९. छोस् दङ. छोस्. मिन्. म्ञोस् नस्. सोस् प. यिस् ।
ऽदि ल. ञोस्. प दुंल्. चम्. योद् म. लेग्स् ॥
ग्ञग् मऽि यिद्. नि. गङ छे स्व्यङस् ग्युर्. प ।
दे छे. व्ल. मऽि. योन्. तन्. स्ञिङ ल ऽजुग्. पर्. ऽग्युर् ॥३९॥

४०. ऽदि ल्तर्. तॉग्स्[3]. नस्. म्दऽ व्स्मुन् ग्लु लेन्. ते ।
स्ङग्स्. दङ ग्युंद्. नॅम्स् ग्चिग्. क्यङ म. म्थोङ ङो ॥
ऽग्रो. नॅम्स्. लस् क्यिस्. सो सोर्. व्चिङस्. ग्युर् ते ।
लस् लस्. ग्रोल्. न यिद्. नि. थर्. प यिन् ॥४०॥

४१. रङ ग्युंद् ग्रोल् न ङेस् पर्. ग्शन्. मेद्. दे ।
म्छोग्. गि. म्य ङन्. ऽदस्.प. थोव्. पर्. ऽग्युर्[4] ॥

चित्त

सेम्स्. ञिद् ग्चिग् पु कुन् ग्यि स. वोन्. ते ।
गङ ल स्रिद्. दङ. . म्य ङन् ऽदस्. फ्रोव्प ॥४१॥

---

३६. स. स्वय. के अनुसार ञिद् नहीं, यिन् चाहिए ।

३६. झाणे मोहिअ सअल वि लोअ । णिअ-सहाव णउ लक्खइ कोअ ।।

चित्तह मूल ण लक्खिअउ, सहजे तिण्णवि तत्थ । ।।३५।।

३७. तहिं जीवइ विलअ जाइ, वसिअउ तहि फुड एत्थ

मूल-रहिअ जो चिन्तइ तत्त । गुरु-उवएसे एत्त विअत्त ।।३६ ।।

३८ सरह भणइ बढ जाणहु चगे । चित्तरुअ ससारह भङ्गे ।।

णिअ-सहाव णउ कहिअउ अण्णे । दीसइ गुरु-उवएसे अप्पणे ।।

३९ णउ तसु दोसग्रो एक्कवि ट्ठाइ । धम्माधम्म सो सोहिअ खाइ ।।३८।।

णिअ-मण सब्बे सोहिअ जब्बे । गुरु-गुण हिअए पइसइ तब्बें ।।

४०. एवँ मणे मुणि सरहे गाहिउ । तन्त मन्त णउ एक्कवि चाहिउ ।।

बज्झइ कम्मेंण जणो, कम्मविमुक्केण होइ मणमोक्ख ।।३९।।

४१. मणमोक्खेण अणूण, पाविज्जइ परमणिव्वाणं ।।

३. चित्त

चित्तेक सअल बीअ, भव-णिव्वाणावि जस्स विफुरन्ति ।।४०।।

---

४१. स्वसतान मोक्ष से (७० भोट) ।

४२ ऽदोद् पऽि ऽग्रस् वु स्तेर् वर् व्येद् प यि ।
यिद् वृगिन् नोर् ऽद्रिऽि सेम्स्. ल फ्यग् ऽछल् लो ॥
सेम्स्. वचिङस् पस् नि ऽछिङस् ऽग्युर् ते ।
दे. ञिद् ग्रोल् न्. थे छोम्. मेद् ॥४२॥

४३ व्लुन् पो[५] गङ गिस् ऽछिङ ग्युर्. व ।
म्खस् र्नम्स् दे. यिस्. म्युर्. दु. ग्रोल् ॥
सेम्स्. नि नम् म्खऽ ऽद्र वर् गसुङ व्य स्ते ।
नम् म्खऽि रङ वृगिन् ञिद् दु. सेम्स् ग्सुङ व्य ॥४३॥

४४ यिद्. दे यिद् म. यिन्. पर्. व्येद्. ऽग्युर्. न ॥
देस् नि व्ल. मेद् व्यङ छुव्.थोव् पर् ऽग्युर् ।
म्खस् ऽद्रर्. व्यस् न र्लुङ नि. र्नम् पर् ऽछिङ ।
म्ञाम्. ञिद्. योङस् सु. शेस् पस्. रव् तु थिम् ॥४४॥

४५ म्दऽ वस्मुन्. ग्यिस्. स्म्रस् नम् शिग्. नुस्. ल्दन्. न ।
मि तंग् ग्यो व म्युर् दु स्पोङ वर् ऽग्युर् ॥
र्लुङ दङ मे. दङ द्वङ छेन् ऽगग्स् प. नि ।
वृदुद् चि ग्युं. वऽि. ऽदुस् सु. र्लुङ. नि सेम्स् ल ऽजुग् ॥४५॥

73a ४६ नम्[७] शिग् स्थ्योर् वृगि ग्नस् ग्चिग् ल नि शुग्स. प न ।
वृदे छेन् म्छोग्. नि नम् म्खऽि खम्स्. सु मि. शोङ ङो ॥
स्यिम् दङ ख्यिम् न दे. यिस्. ग्तम्. स्म्र. यङ ।
वृदे. छेन् ग्नस्. नि योङस्. सु शेस् प मेद् ॥४६॥

४७. ऽग्रो. कुन् बसम् पस्. सुन् क्यिन् म्दऽ. वृस्मुन् स्म्र ।
वृसम् ग्यिस् मि. स्यव् ग्रुव्. प. ऽगऽ यङ मेद् ॥
स्तोग् छग्स्. थम्स् चद्. कुन्. ल. यङ ।
दे ञिद् योद्. दे र्तोग्स्. प मेद् ॥४७॥

४८. थम्स्. चद्. रो. म्ञाम् रङ वृगिन् पस् ।
वसम्. पस् ये शेस्. वृल. मेद् पऽो ॥

---

४४. म्खस् (पंडित) न,हीं म्खऽ (ख, आकाश) ठीक होगा ।

४२. त चिन्तामणिरूअ पणमह इच्छाफल देति ।।

चित्ते बज्झे बज्झइ मुक्के मुक्केइ णत्थि सन्देहा ।।४१।।

४३. बज्झन्ति जेण वि जडा लहु परिमुञ्चन्ति तेणवि बुहा ।।

[चित्तहि गगन समान कहीजै । गगन स्वभावहि चित्त कहीज ।।४२।।

४४. सो मन न मन कर दे तो । इससे अनुत्तर बोधि पावै ।।

खसम करे तो पवन विच्छिन्न । समता परिजान से बिलीन ।।४३।।

४५ <u>सरह</u> भनै यदा शक्ति होइ । अनित्य चल तुरत छोड जाइ ।।

पवन अग्नि महासामर्थ्य निरुद्धै । अमृत हेतुकाले पवन चित्ते पइसै ।।४४।।

४६ थदा चारि योग एक स्थाने रक्खे । परम महासुख आकागह तुम्हे न भरै ।।

[घरे-घरे कहिअअ सोज्झु (सोइ) कहाणो, णउ परिआणिअ महासुह-ठाणो ।

४७ <u>सरह</u> भणइ जग चित्ते वाहिउ । सोवि अचित्त ण केणवि गाहिउ ।।१२८।।]

[सब प्राणी सर्वत्र ही, सोइ है सो ना बूझे ।

४८. सब समरस स्वभाव से, समुझि अनुत्तरज्ञान ।।

ख. सङ दे. रिङ दे. व्गिन् सङ दङ ग्गन् ।
दोन्. नंम्स्. फुन्. सुम्. म्छोग्स्. पर्. स्क्ये. वो. ऽदोद् ।।४८।।

४९. क्ये. हो. व्शिन् व्स ङस् स्ञ्रम् प. छुस्. व्कङ व ।
ऽजंग्स्. प. व्शिन्. डु. ञम्स्. प. म्छोर्. रो ।।
व्य व. क्येद् दङ व्य. व. मिन् व्येद्. प ।
ङेस्. पर्. तोंग्स्. न. ऽछिङ दङ ग्रोल्. व मेद्[3] ।।४९।।

५०. यि. गे मेद्. लस् ऽछद्. पर् योद् ऽदोद् प ।
गङ शिग् नंल् ऽव्योर् व्ग्य. ल. ऽगऽ यिस् मछोन् ।।
ऽजुर् वुस्. वचिङस्. पऽ सेम्स्. ऽदि नि ।
ग्लोद्. न ग्रोल् वर्. थे छोम् मेद् ।।५०।।

५१. द्ङोस्. पो गङ. गि. मोंङस पस्. ऽछिङस् ।
म्खस् नंम्स्. दे यिस् नंम्. पर्. ग्रोल्[4] ।

सहज—

व्चिङस् प दग् नि. फ्योग्स् वचुर्. ऽग्रो. व चोम् ।
म्थोङ वर् ग्युर् न मि. ग्यो वर्तन् पर्. ग्नस् ।।५१।।

५२ गो. व्स् लोग्. ङं. मो. ल्त वुर व्दग् गिस् तोंग्स् ।
वु. स्येद् नंम्स् क्यङ रङ ल.छेर् ते. ल्तोस् ।।
क्ये. लग्स् द्वङ पो. ल्तोस्. शिग्. दङ ।
ऽदि. लस् ङस्. नि. म. ग्तोग्स्. सो[5] ।।५२।।

५३ लस्. सिन्. प. यि. स्क्येस्. वु यि ।
द्रुङ दु सेम्स्. थग्. ग्चद् पर् व्योस् ।।
लंुङ व्चिङस्. प ल रङ ञिद् म सेम्स् स्क्ये ।
गिङ गि. नंल्. ऽव्योर् स्न. चेर् ऽडुग्। चिग् ।।५३।।

५४. ए. मऽो म यिन् ल्हन् चिग् स्क्येस् प म्छोग् छग्स्. व्योस् ।
म्रिद् पऽ स्न चेर् ऽछिङ व. यङ दग् स्पङ[6] ।
ऽदि नि यिद् ऽडुस् प. ल नंङ गि लंब्स् ।।
ग्यो गिङ ऽफ्यिर् ल. गिन् तु मि स्नुन् ऽग्युर् ।।५४।।

कल आज तथा और कल, अर्थ सपत्ति पुरुष चाहै।

४६ रे मुखधारिणी जलपूर्ण, अजलि छरै जैसे सवेदै ॥

क्रिया करना और न करना, निश्चय जानि वधनमुक्ति नही ॥

५० निरक्षर से करै इच्छा, सो योगी मे विरला लखै ॥

कोने बीच बंधा यह चित्त, सुरक्त मुक्त हो निस्सन्देह ॥

१. वज्झंति जेण जडा परिमु चन्ति तेण बुधा ॥ ॥]

सहज—

बद्धो धावइ दहदिहहि, मुक्को णिच्चल ठाइ ।

५२. एमइ करहा पेक्खु सहि, विहरिअ महु पडिहाइ ॥४३॥

[अरे इन्द्रिय देखि, इससे मैंने नही बूझा ॥]

५३ [कर्म से वधे पुरुष का चित्त आसन्नहि रज्जु तोडै ॥]

पवण-रहिअ अप्पाण म चिन्तह । कट्ठजोइ णासग्ग म वदह ।' ४४॥

५४ अरे वढ सहजे सइ पर सज्जह । मा भवगन्थवन्ध पडिच्चज्जह

एहु मण मेल्लह (?मेल्ल) पवण तुरङ्ग सुचञ्चल ।

सहज सहावे सो वसइ णिच्चल ॥४५॥

५१-५२. स. स्कय दोहा ६२, ६३ में कुछ अन्तर है।

५५ ल्हन्. चिग्. स्क्येस् पऽि रङ व्गिन् र्तोग्स् ग्युर. न।
दे. यिस् ब्दग्. ञिद् ब्र्तेन् पर् ग्युर्. प. यिन्॥

73b गङ छें यिद् नि. ञो. बर् ऽगग्स् ग्युर् न।
लुस्. क्यि. ऽछिङ व नँम् पर् ऽछद् पर् ऽग्युर॥५५॥

५६ गङ छे. ल्हन्. चिग् स्क्येस् दङ रो म्ञाम् प।
दे छे. द्मन् पऽि रिग्स् दङ ब्रम् से. मेद्॥

४ यहीं सब कुछ

(१) देह ही तीर्थ—

ऽदि नि ग्ल व ग्य. म्छो ञिद् दङ नि।
ऽदि नि गङ गऽि ग्य म्छो. ञिद् दङ नि॥५६॥

५७ वा रा. ण सी प्र य घ य. ति।
ऽदि नि ग्ल व गुसल् त्ये. ञिद्॥
गि्ङ कुन् ग्नस् दङ ञे वऽि ग्नस् सोग्स् प।
फियन्. ते व्ल्तस् पऽि. र्तोग्स् प. गङ. स्म्र व॥५७॥

५८ लुस् दङ ऽद्र वऽि मु. ग्नस् ग्शन्. मेद्।
द्गे. व ड यिस्. ङेस्. पर् यङ् दग्. मथोङ[१]॥
दव् ल्दन् पद्मऽि स्तोङ पो. गे सर् ग्यि. द्वुस् न।
शिन्. तु. फ्र वऽि. र्नल् म द्रि दङ ख दोग् ल्दन्॥५८॥

५९. त्ये ग्रग्[२] ऽोङस्. शिङ मोँङस् प म्य ङन् ग्यिस्।
ग्दुङस्. पऽि. ऽग्रस् बु मेद् पर् म त्येद् चिग्॥
गङ छे्. छङस् प स्यव् ऽजुग् मिग् ग्मुम् दङ।
ऽजिग् र्तेन्. म लुस् थमस् चद्. ग्गिर् ग्युर् प॥५९॥

६० रिग्स् मेद् दे. ल. म्छोङ न. लस् क्यि. यङ।
म्थऽ यि. छोग्स्.[३] नि. यङ दग्. सद् पर् ऽग्युर्।
क्ये. हो. बु. ञोन्. चोद्. पऽि रो. नि.
दग्. पर् यङ दग्. ग्नस् ग्सेस् प॥६०॥

५५. [सहज स्वभाव समझि, सो स्वयं स्थिर होई ।।]

जब्बें मण अत्थमण जाइ, तणु तुटटइ बन्धण ।

५६. तब्बे समरस सहजे वज्जड, णउ सुद्द ण बम्हण ।।४६।।

४. यहीं सब कुछ

(१) देह ही तीर्थ—

एत्थु से सुरसरि जमुणा, एत्थु से गङ्गासाअरु ।

५७ एत्थु पआग वणारसि, एत्थु से चन्द दिवाअरु ।।४७।।

क्खेत्तु पीठ उपपीठ, एत्थु मइँ भमइ परिट्ठओ ।

५८. देहासरिसअ तित्थ, मइँ सुहअण्ण(?सुणेउ)ण दिट्ठओ ।।४८

सण्ड-पुअणिदल-कमल-गन्ध-केसर-वरणाले ।

५९. छड्डहु वेणिम ण करहु सोस, ण लग्गहु बढ आलें ।।४९।।

काम तत्थ खअ जाइ, पुच्छह कुलहीणओ ।

बम्ह बिट्ठु तेलोअ(ण), सअल जगु णिलीणओ ।।५०।।

६०. [तँह अजाति मे आश्रम कर्म का भी अतिम समूह सम्यक् नप्ट होइ ।।]

अरे पुत्त बोज्झु रस, रसण सुमण्ठिअ अवेज्ज ।

---

५६. गघ–पृ० ५८ के स स्क्य पाठ से थोडा अतर है ।

६१. ऽग्रो.ब.ऽछद् चिङ ऽङोन् सोंग्स् पस् ।
दे. नि. गेस् पर् नुस् म यिन् ॥६१॥
क्ये. हो. बु ऽोन् दे ञिद् स्न छोगस् क्यिस् ।
रो. ब्स्तन्. पर् नुस् प म यिन्. ते ॥६१॥

६२. ब्दे. बऽि[4] ग्नस् म्छोग्. तोंग् स्पङ ते ।
ऽग्रो. व. ञोवर स्क्ये. व ञिद्. व्गिन् नो ॥
ब्लो. नि. नंम्. ऽगग्स्. यिद्. नि फम् ग्युर् प ।
गङ. दु म्ङोन् पऽि ङ र्ग्यल्. छद् पऽो ॥६२॥

६३. दे. ञिद्. स्युु मऽि रङ व्गिन् म्छोग् तु. तोंग्स्. प. स्ते ।
दे. ल. ब्सम् ग्तन् ऽछिङ व देस् नि. चि त्यर् योद्
द्ङोस्. पोर् स्क्येस् प म्खऽि ल्तर्. रङ व्गिन्. न ।
द्ङोस् पो नंम् स्पङस् फ्यि नस् चि गिग् स्क्ये ।६३॥

६४ ग्दोद् नस् स्क्ये मेद्. रङ व्गिन् यिन् प ल ।
दे रिङ द्पल्. ल्दन्. ब्ल म ब्स्तन् पस् तोंग्स् ॥

(२) भोग में योग—

म्थोङ दङ. थोस् दङ रिग्. दङ द्रन् प दङ ।
स्. स्नोम् ऽख्यम् दङ ऽग्रो दङ ऽदुग्. प दङ ॥६४॥

६५. चल्. चोल्. ग्तम् दङ लन् स्म्र ग्युर्. प ल ।
समस् सो. ग्. न[6] ग्चिग् गि नंम् प ल. मि. स्क्योद् ॥६५॥
गङ. शिग् ब्ल. मऽि मन् ङग् ब्दुद्. चिंऽि छु ।
ग्दुङ से ल्. ब्सिल् व दोम्म् पर् मि ऽथुङ वर् ॥६५॥

६६ दे. नि ब्स्तन् ब्चोंस्. दोन् मङ म्य ङम् ग्यि ।
थङ ल स्कोम् पस् ग्दुङम् ने ऽछि वर् सद् ॥
ब्ल. मस्. ब्स्तन् प ब्जोंद्. मिन् न ।
स्लोब् मस् गो व. म यिन् ते ॥६६॥

47a ६७. ल्हन् चिग्[7] स्क्येस्. प ब्दुद् चिऽि रो ।
गङ. गिस् जि ल्तर् ब्स्तेन् पर् न्य ॥
म्छद् पर् ऽजिन्. पऽि द्बङ गिस् . सु ।
ब्लुन् पोस्. थ्ये ब्रग् ञोंद् प. स्ते ॥६७॥

६१ बक्खाण पढन्तेहि, जगहि ण जाणिउ सोज्झ ॥५१॥

बुद्धि विणासइ मग मरइ, जहि (तुट्टइ) अहिमाण ।

६३. सो माआमअ परम कलु, तहि किम् बज्झइ झाण ॥५३॥

भवहि उअज्जइ खअहि णिवज्जइ । भाव-रहिअ पुणु कहि उवज्जइ ।

६४. विण्ण-विवज्जिअ जो उवज्जइ । अच्छह सिरिगुरुणाह कहिज्जइ ॥५४॥

(२) भोग में योग--

देक्खहु सुणहु परीसहु खाहु । जिग्घहु भमहु वइट्ठ उट्ठाहु ॥

६५ आल-माल व्यवहारे पेल्लह, मण च्छड्डु एक्काकार म चल्लह ॥५५॥

गुरु-उवएसे अमिअ-रसु, धावहि ण पीअउ जेहि ।

६६. बहु सत्यत्थ-मरुत्थलिहिं, तिसिए मरिअउ तेहि ॥५६॥

[ण त्तं वाएं गुरु कहइ, णउ त बुज्झइ सीस ।

६७. सहज सहावा हले अमिअ रस, कासु कहिज्जइ कीस ।

जह पमाए विहिवसें, वढ लद्धउ भेड ॥

६८ दे छे दोल् पऽि ख्यिम् दु रोल् ।
ऽोन्. क्यङ द्रि मस् मि गोस् सो ।।
गङ छे स्लोङ न स्रङ खऽि खम् फोर ग्यिस् स्प्योद् दे ।
ब्दग् नि र्ग्यल् पो.यिन् न स्लर्. यङ चि ब्यर्. योद्. ।।६८।।

६९ द्ब्ये ब र्नम्. पर् स्पङस् नस् दे ञिद् ग्नस् प. ल ।
रङ ब्शिन् मि. ग्यो. ब्तङ स्ञोम्स् ल्हुन् ग्यिस्. ग्रुब् ।।
म्य ङन् ऽदस् प. ल. ग्नस् स्रिद्. पर् म्जे स् ।
नद् ग्गन्. दग् ल. स्मन् ग्गन् ग्तङ मि ब्य ।।६९।।

(३). सहज भावना—

७०. ब्सम् दङ बसम् ब्य रब्. तु. स्पङस् नस्. स ।
जि. ल्तर्. बु छुङ छल दु. ग्नस्. पर् ब्य ।।
ब्ल. मऽि लुङ. ल ब्स्ग्रिम्स्. ते. रब्. ऽबब् न ।
ल्हन् चिग्. स्क्येस्. प. ऽज्युङ बर्. थे. छोम्. मेद् ।।७०।।

७१. ख दोग्. योन् तन् यि. गे द्पे ब्रल् ब ।
स्म्र. रु. मि ब्तुङ दे नि ब्दग् ग्यिन् म्छोन् ।।
ग्शोन्. नु. म यि. ब्दे. ब स्ञिङ ल. शेन्. प. ब्शिन् ।
द्वङ फ्युग् दम्. प दे. नि सु. ल. ब्स्तन्. नुस् सम्[3] ।।७१।।

७२. द्ङोस् दङ द्ङोस्. मेद्. योङस् सु. ब्चद्. प दङ ।
देर् नि ऽग्रो. व म लुस्. रब्. तु थिम् पर् ऽग्युर् ।।
गङ छे यिद् नि. मि. ग्यो. रङ. ग्नस् ब्र्तन्. प स्ते ।
दे. छे. ऽखोर् वऽि द्ङोस् पो लस् नि. रङ ग्रोल्. ऽग्युर ।। ७२।।

७३. गङ छे ब्दग्. ग्शन् योङस् सु शेस्. मेद्. नि ।
दे छे. ब्ल मेद्. लुस् नि. थोब् पर् ऽग्युर् ।।
दे[4] ल्तर्. ब्स्तन् प ञिद् लस् ङेस्. पर्. म ऽख्रुल्. पर् ।
रङ गिस्. रङ ल. लेग्स् पर्. शेस् पर् ब्यस्. नस् नि ।।७३।।

जइ चडालघरे भु जइ, तअवि ण लग्गइ लेउ ॥

६८ [जब पल सरावे भिक्षा मागे, म राजा हू (कहेत)तो क्या कीजिये ॥

भेद छाडि सोई रहै, अचल स्वभाव समापत्ति।

६९. निर्वाणे वसि भवे सुदर, रोग अन्य औषधि अन्य न दीजै ॥]

(३) सहज भावना—

७० चित्ताचित्त वि परिहरहु, तिम अच्छहु जिम बालु ।

गुरु-वअणें दिढ भत्ति करु, होइअइ सहज उलालु ॥५७॥

७१. अक्खर-वण्णो पर(म)गुण-रहिओ । भणइ ण जाणइ ये मइ कहिअओ ॥

सो परमेसरु कासु कहिज्जइ । सुरअकुमारी जिम पडि(व)ज्जइ ॥५८॥

७२. भावाभावे जो परिहीणो । तहिं जग सअलासेस विलीणो ।

जब्बे तहि मण णिच्चल थक्कइ । तब्बे भवससारह मुक्कइ ॥५९॥

७३ जाव ण अप्पहि पर परिआणसि ।ताव कि देहाणुत्तर पावसि ॥

ए मइ कहिओ भन्ति ण कब्वा । अप्पहि अप्पा बुज्झसि तब्बा ॥६०॥

७४ ङ्ल् मिन् ङ्ल् व्रल् म. यिन्. सेमस् क्यङ मिन् ।
दृङोस् पो दे. दग् ग्दोद् नस् ग्नेन् प मेद् ।।
म्दऽ स्मुन् ग्यिस्. स्म्रस् दे चम् गिग् तु सद् ।
क्ये हो. म लुस् द्रि मेद् दोन् दम् ग्रेस् पर् [५] व्योस् ।।७४।।
७५. ख्यिम् न ग्नस् प फ्यि रोल् सोङ नस् छोल् ।
ख्यिम् व्दग् म्थोङ. नस् ख्यिम् छेस् दग् ल द्रि ।।

(४) ध्येय-धारणादि व्यर्थ—

म्दऽ स्मुन् ग्यिस् स्म्रस्. व्दग् ञिद्. शेस् पर्. व्योस् ।
व्लुन् पोस्. व्सम् ग्तन् व्सम्. व्य.व्स्लस् व्जोद् मिन् ।।७५।।
७६ गङ छे व्ल मस् ब्स्तन्. चिङ थमस् चद् ग्रेस्. व्यस् क्यङ ।।
व्दग् [६] गिस् योङस् सु. व्र्तगस्. पस् थर् प. थोव्. वम् चि ।
युल् र्नमस् व्ग्रोद् चिङ गुदुङ वस् ञोन् व्यस्. क्यङ ।
ल्हन् चिग् स्क्येस् प मि ञोद् स्दिग् पस् ऽजिन् ।।७६।।
७७. युल् र्नमस् व्स्तेन्. पस् युल्. ग्यिस् मि गोस्. सो ।
उत्पल ऽदव म छु यिस् म. रेग् व्गिन्
74b गङ. ल्तर् च.व. र्नल्. ऽब्योर् [७] स्क्यव्स्. सु. ऽग्रो ।
दुग्. गि स्डग्स्. चन् दुग्. गिस् ग ल छुगस् ।।७७ ।।
७८. ल्ह ल. म्छोद् प ख्रि फग् ल्यिन् नस्. क्यङ ।
व्दग् ञिद् दे यिस्. ऽछिङ ऽग्युर् चि. शिग त्य ।
दे ऽद्रस्. ऽखोर्. व दि नि ऽछद् मिन् ते ।
ग्ञग्. मऽि रङ व्गिन् म र्तोगस् गॅल् मि. नुस् ।।७८।।
७९ मिग् नि मि. ऽजुमस् [१] सेमस् क्यङ. मि ऽगोग् दङ ।
लुंङ ऽगोग्. प नि. द्पल्. ल्दन् व्ल मस्. र्तोगस्
गङ छे लुंङ ग्युद् दे. नि. मि ग्यो. स्ते ।
छिङ वऽि छे. न र्नल् त्योर्. पस्. चि. व्य ।।७९।।
८०. जि– स्त्रिद् द्वङ पो युल् ग्यि. ग्रोङ ल ल्हुङ ।
दे स्त्रिद् रङ ञिद् लस् मेद रव् तु ग्यंस् ।।

७४. णउ अणु णउ परमाणु विचिन्तजे । अणवर भावहि फुरइ सुरत्तजे ।।

भणइ सरह भन्ति एतवि मत्तजे । अरे णिक्कोली बुज्झह परमत्थजे।।६१।।

७५ घरे अच्छइ बाहिरे पुच्छइ । पइ देक्खइ पडिवेसी पुच्छइ ।।

(४) धेय-धारणादि व्यर्थ—

सरह भणइ बढ जाणउ अप्पा । णउ सो धेअ ण धारण जप्पा ।।६२।।

६ जइ गुरु कहइ कि सव्बवि जाणी । मोक्ख कि लब्भइ सअल विणु जाणी ।।

देस भमइ हब्बासें लइजे । सहज ण बुज्झइ पापे गाहिजे ।।६३।।

७७ विसअ रमन्त ण विसएँ विलिप्पइ । उअर हरइ ण पाणी छिप्पइ ।।

एमइ जोई मूल सरन्तो । विसहि ण वाहइ विसअ रमन्तो ।।६४।।

७८. देव पिज्जइ लक्खवि दीसइ । अप्पणु मारिइ स कि करिअइ ।।

तोवि ण तुट्टइ एहु ससार । विणु आआसे णाहि णिसार ।।६५।।

७९ अणिमिसलोअण चित्त णिरोहे । पवण णिरूहइ सिरिगुरु-वोहेँ ।।

पवण वहइ सो णिच्चलु जव्बे । जोई कालु करइ कि रे तव्बेँ ।।६६।।

८० जाउ ण इन्दिअ-विसअ-गाम । तावइ विफुरइ अकाम ।।

ख्येद्. चग् द ल्तर् चि ख्येद्. सम्. दङ क्ये ।
दे. नि. गिन् तु द्कऽ बऽि द्गोङस् प ऽजुग् ।।।८०।।

८१. गङ. शिग्.गङ ल ग्नस् प नि ।
दे नि. दे रु मि म्थोङ स्ते ।।
म्खस् प थम्स् चद्. ब्स्तन्. ब्चोस् ऽछद्. प यिस् ।
लुस्. ल सङस् ग्र्यस् योद् पर् म र्तोग्स्. सो ।।८१।।

८२. ग्लङ. छेन्. लोब्स् नस् सेम्स्[3] छग्स्. छुद्. पस् न ।
देर् मि ऽग्रो. ऽोङ छद् नस्. डल्. व स्ते
दि ल्तर र्तोग्स् न गङ. दु ऽङ ड्रि स. मेद् ।
म्खस् प ङो छ. मेद्. पस् दे म र्तोग्स् ।।८२।।

८३ ग्सोन् प. गङ गिग्. र्मम् पर् म ग्युर् प ।
दे नि र्गस् गिङ ऽछि वर् ऽग्युर्. रम् चि
ब्ल मस् ब्स्तन्. प. द्रि मेद्. ब्लो[4] ग्रोस्. नि ।
दे ञिद्. ग्तेर् यिन् ग्शन्. प गङ गिग्. लो ।।८३।।

८४. युल्. ञिद्. र्नम् पर्. दग्. स्ते. ब्स्तन्. ब्य. मिन् ।
स्तोङ व ऽवऽ गिग् गिस्. नि स्प्यद्. पर् व्य ।
जि. ल्तर्. ग्झिङस् लस् ऽफुर् बऽि ब्य. रोग्. ब्शिन् ।
स्कोर् गिङ स्कोर् गिङ स्लर् यङ दे रु. ऽव्व् ।।८४।।

८५ थग्. प नग् पोऽि दुग् स्ब्रुल् ब्शिन्[5] ।
म्थोङ व चम् ग्यिस् स्डङ वर् ऽग्युर् ।।
ग्रोग्स् दग् स्क्ये वो दम्. प नि ।
युल. ग्ञिस् स्क्योन् ग्यिस् ब्चिङ वर्. ऽग्युर् ।।८५।।

५ परमपद साधना

(१) इंद्रिय-संयम—

८६. युल्. ल. ग्नेन् पस्. ऽछिङ वर्. म ब्येद चिङ ।
क्ये. हो. मोङस्. प. म्दऽ ब्समुन् ग्यिस् स्म्रस्. प ।।
ञ. दङ फिय. लेब्. ग्लङ छेन्. बुङ व. दङ ।
ऽदि.[6] नि रि द्गस् ब्शिन्. दु ब्य. बर् क्योस् ।।८६।।

[अरे अव तू क्या कना सोचै । यह अति कठिन ध्यान प्रवेश ।।]

८१. अइसे विसम सन्धि को पइसइ । जो जहि अत्थि ण जाव ण दीसइ ।।६७।।

पण्डिअ सअल सत्थ वक्खाणइ । देहहि वुद्ध वसन्त ण जाणइ ।।

८२ गज सिखि चित्ते राग दृढावै ।।

अमणागमण ण तेण बिखण्डिअ। तोवि णिलज्ज भणइ हउँ पण्डिअ ।।६८।।

८३ जीवन्तह जो णउ जरइ, सो अजरामर होइ ।

गुरु-उवएसें विमल-मइ, सो पर धण्णो कोइ ।।६९।।

८४. विसअ-विसुद्धे णउ रमइ, केवल सुण्ण चरेइ ।

उड्डी बोहिअ काउ जिम, पलुटिअ तहवि पडेइ ।।७०।।

८५. काल रज्जु मे मर्प जिमि, देखने गात्र भय उपजावै ।

सखे, सुजन जन हे, विषय दोष से बधै ।।]

५ परमपद साधना

(१) इन्द्रिय-संयम—

८६. विसआसत्ति म वन्ध करु, अरे वढ सरहे वुत्त ।

मीण-पअङ्गम-करि-भमर, पेक्खह हरिणह जुत्त ।।७१।।

८७. ग़ङ शिग्. सेम्स् लस् नंम् ऽफ्रोस् प ।
दे स्निद् म्गोन् पोऽि रङ व्गिन् ते ।
छु दङ्. लंव्स्. दग्. ग्शन् यिन् नम् ।
स्निद् दङ म्ञाम्. गिङ नम्. म्खऽि रङ व्गिन् नो ॥८७॥

८८ गङ शिग्. ब्स्तन्. ते गङ थोस्. प ।
75*a* द्गोङस्. प. गङ.[7] यिन्. दम् पर् स्क्योल्. व. न ॥
ञि. स्रे्. ल्कुग्स्. प. स यि र्दुल ब्गिन् ब्लंग् ।
स्ञिङ. ग. ञिद्. दु. नुब् पर् ग्युर प. यिन् ॥८८॥

८९. जि. ल्तर्. छु ल. छु. बगग्. न दे. ञिंद् छु रु रो म्ञाम्. ऽग्युर् ॥
स्क्योन्. दङ योन्. तन् मञाम् ल्दन् सेम्स् ।
म्गोन्.पो सुस् क्यङ म्थोङ मि ऽग्युर् ॥८९॥

९०. मोंङस् प दग् ल. ग्ञोन् पो. गङ. यङ मेद् ।
नग्स्. ल. म्छेद्. पऽि मे ल्चे ब्गिन् ॥
ग्दोङ. दु बब्. पऽि. ऽदि ल्तर्. स्नङ व कुन् ।
सेम्स्. क्यि चं व. स्तोङ प ञिद्. दु ल्हन्. चिग् व्योस् ॥९०॥

९१. गल् ते यिद् दु ऽोङ ङम्. स्ञाम् पऽि सेम्स् ।
स्ञिङ ल वब् प ग्चेस् पर्. व्यस्. न नि ॥
तिल्. ग्यि शुन् प[2] चम्. ग्यि. स ग्. र्ङुस् क्यङ ।
नम्स्. क्यङ स्दुग् व्स्ङल् ऽवऽ. शिग् ब्येद् पर् सद् ॥९१॥

९२. दे. ल्तर् यिन् ते दे. ल्तर् म यिन्. नो ।
ग्रोग्स् पो फग् दङ ग्लङ. छेन्. ल्तोस्
जि ल्तर् यिद् व्गिन् नोर्. वुऽि द्गोस् प व्शिन् ।
ऽख्रुल् प शिग् पऽि म्खस् प ङो म्छर् छे ॥
रङ ल रङ रिग्. व्दे व छेन्[3] पोऽि वग्. छग्स् ग्स ग्स् ॥९२॥

८७. जत्तवि चित्तहि विप्फरइ, तत्तवि णाह सरूअ

अण्ण तरङ्ग कि अण्ण जलु, भव-सम ख-सम सरूअ ।।७२।।

८८. कासु कहिज्जइ को सुणइ, एत्थु कज्जसु लीण ।

दुट्ठ सुरङ्गा धूलि जिम हिअ जाअ हिअहि लीण ।।७३।।

८९. जतवि पइसइ जलहि जलु, तत्तइ समरस होइ ।

दोस–गुणाअर चित्त तहा, वढ परिवक्ख ण कोइ ।।७४।।

९० [मूढों का मित्र कोई नहीं, वन दाहक अग्नि-शिखा जिमि ।।

वृक्ष पर गिरी; ऐसे सब भासैं चित्त मूल शून्यता में एक बार ।।]

९१. सुण्णहि सङ्गम करहि तुहु, जहिँ तहिँ समचिन्तस्स ।

तिल-तुस-मत्तवि सल्लता, वेअणु करइ अवस्स ।।७५ ।।

९२. अइसें सो पर होइ ण अइसो । जिम चिन्तामणि कज्ज सरीसो ।।

अक्कट पण्डिअ भन्तिअ णासिअ । सअ-सम्वित्ति महासुह-वासिअ ।।७६।।

६३. थम्स्. चद्. दे. छे. म्खऽ म्ञाम्. व्येद् पर् ऽग्युर् ।।
क. ल. कु. ट. स्मोस्. स॰ चि रुङ स्ते ।
रङ व्शिन्. म्खऽ. म्ञाम् यिद् क्यिस् ऽजिन्. प. यिन् ।।
यिद्. दे. यिद्. म यिन्. पर् व्येद्. ऽग्युर् न ।
रङ व्शिन् ल्हन् चिग्. स्क्येस्. प मछोग् तु म्जेस् ।।६३।।

६४. ख्यिम् दङ ख्यिम् न दे. नि व्जोद् मिन् ते ।
व्दे. छेन्. ग्नस्. नि. योङस् सु. शेस्. प. मिन् ।।
ऽग्रो. कुन्. सेम्स्. ख्रल्. खुर्. व. म्दऽ. व्स्मुन् ऽद्र ।
दे नि. व्सम्. मेद् सुस् क्यङ र्तोग्स्. म यिन् ।।६४।।

६५. व्दे ग्सङ यन्. लग् योङस्. सु स्पङस्. प. न ।
व्स्गोम् दङ मि स्गोम् द्व्येर् मेद्. व्दग्. गिस् म्थोङ[५] ।
युल गियस् म्छोन्. पस् ग्नन् दग् व्सम् पर् व्येद् ।
दे. ञिद्. व्सम्. पस्. म र्तोग्स्. रङ गशिन् ऽगग्स्. पर्. ऽग्युर् ।।६५।।

६६. गल्. ते. सेम्स् क्यिस् सेम्स् नि म्छोन्. दु. ऽग्रो ।
नंम्. र्तोग् दङ नि मि. ग्यो व्र्तन्. पर् ग्नस् ।।
जि. ल्तर्. लन् छ्व. छु. ल. थिम्. प. ल्तर् ।
दे. ल्तर्. सेमस् नि. रङ[६] व्शिन. ल. थिम्. ऽग्युर् ।।६६।।

६७. दे छे व्दग् दङ ग्गन्. नि. म्ञाम्. पर् म्थोङ ।
ऽव्रद्. दे व्सम्. ग्तन्. व्यस् पस् चि व्यर्. योद् ।।
ल्हन्. चिग्. ल नि. लुङ नंम्स्. म लुस्. मथोङ ।
रङ गि. ऽदोद्. प. मङ पो. ग्सल्. वर्. स्नङ ।।६७।।

(२) भोग में योग

75b ६८. म्गोन्. पो. व्दग् ञिद् ग्चिग्. पु ग्शन् नंम्स् ऽगल्[७] ।
ख्यिम्. दङ ख्यिम् न ग्रुव्. म्थऽ दे ग्रुव् पो ।।

६४ 'मिन्' (नहीं) नहीं, 'यिन्' (ह) चाहिए, 'ऽद्र (इव) नहीं, स्मन् (भर्त) चाहिए ।

९३. सब्ब रूअ तहिँख-सम करिज्जइ । खसम-सहावें मणवि धरिज्जइ ।।

सोवि मणु तहि अ-मणु करिज्जइ। सहज सहावे सो परु रज्जइ ।।७७।।

९४. घरे-घरे कहिअइ सोज्झु कहाणा । णउ परिसुणिअइ महासुह-ठाणा ।।

सरह भणइ जग चित्ते वाहिअ । सो अचित्त णउ केणवि गाहिअअ ।।७८।।

९५. [गुह्य सुख अग परिहरिय, ध्यानाध्यान मैंने देखा ।

विषय लखि अन्य ध्यावें, सो ध्यान से न जान स्वभाव विरुद्ध हा ।

९६. यदि मनसे लखि जावै, और विकल्प अचल स्थिर रहैं ।]

जिम लोण विलिज्जइ पाणिएहि, तिम जइ चित्तवि ठाइ ।।

९७. अप्पा दीसइ परहि सम, तत्थ समाहिए काइ ।।४६।।

[एहु देव वहु आगम दीसअ। अप्पण इच्छें फुड पडिहास अ।]

(२) भोग में योग—

९८. अप्पणु णाहो अण्ण विरुदधो । घरे-घरे सोअ सिद्धन्त पसिद्धो ।।

ग्चिग्. सोस्. पस्. नि. थम्स्. चद् छिग् ।
फ्यि. रोल्. सोङ. नस्. ख्यिम्. व्दग्. छ़ोल् ॥९८॥

९९. ऽोङस्. क्यङ म म्थोङ फ्यिन्. क्यङ मेद् ।
ऽदुग् पर्. ग्युर् क्यङ ङो म गेस् ॥
दव्. ऽलॅब्स्. मेद्. पऽि. द्बङ. फ्युग्. म्छोग् ।
ञ्रॉग् प. मेद् पऽि. व्सम् ग्तन्[1] ऽग्युर् ॥९९॥

१०० छु दङ मर्. मे रङ ग्सल् ग्चिग् तु ग़ोङ ।
ग्रो ऽोङ ङ यिस् मि लेन्. मि ऽदोर् रो ॥
गङ यङ स्ङ न. मेद्. पऽि स्गोग् मो दङ. फ्रद नस् ।
ञाल् वऽि सम्स्. नि ग्गि मेद् प ल व्र्तेन् ॥१००॥

१०१ रङ गि. ग्स़ुग्स् दङ श दद् म ल्त चिग् ।
दे. ल्तर्. सङस्. ग्यॅस्. लग्. तु ग्तोद्. प[2] यिन् ॥
गङ छ़े. लुस् दङ ङग्. यिद्. द्ब्येर्. मेद्. प ।
ल्हन्. चिग्. स्क्येस्. पऽि रङ व्गिन्. दे छ़े. म्ज़ेस् ॥१०१॥

१०२. ख्यिम्. वदग्. स़ोस्. नस्. ख्यिम्. व्दग् मो. पोङस् स्प्योद् ।
युल्. नि. गङ सग्. म्थोङ स्ते स्प्यद् पर् व्य ॥
ङ यिस् ऱ्चॅद् मो व्यस् प. ल ।
वुस् प नॅम्स्. नि अ थङ छद् ॥१०२॥

१०३. अ. म[3] व्ग़ग्. नस् वु दे स्क्ये मि ऽग्युर्. ।
देस्. नि. नॅल् ऽव्र्योर्. स्प्योद् प द्पे दङ व्रल् ॥
व्दग्. पो. स़्. गिङ रङ व्गिऩ् म्ज़ेस् छ्गस्. पऽि ।
स्प्योद्. देस् दगऽ वऽि सेमस्. दे ञिद् ॥१०३॥

१०४ छ्गस् दङ छ्गस्. व्रल् स्पङस् नस् द्वु मर् श़ुग्स् ।
सेम्स्. ञम्स् पस् न. नॅल् ऽव्योर् ङस्. म म्थोङ ॥
स़् गिङ ऽथुङ ल. व्सम् दु मेद्. पर् ग्युर् ।
ग्रोग्स्. मो ऽदि नि. सेम्स् ल गङ स्नङ व ॥१०४॥

एक्कु खाई अवर अण्णवि पोडइ । बाहिरें गइ भत्तारह लोडइ ।।८०।।

६६. आवन्त ण दीसइ जन्त णहि अच्छन्त न मुणिअइ ।

णित्तरङ्ग परमेसुरु णिक्कलङ्क धाहिज्जइ ।।८१।।

१०० [जल और दीप स्वय प्रकाश, एकत्र पूरै]

आवइ जाइ ण च्छड्डइ तावहु । कहिं अपुव्व-विलासिणि पावहु ।

१०१ सोहइ चित्त णिराल दिण्णा । अउण रूअ म देखह भिण्णा ।।

काअ-वाअ-मणु जाव ण भिज्जइ । सहज–सहावे ताव ण रज्जइ ।।८३।।

१०२. घरवइ खज्जइ घरिणिएहि, एहिँ देसहि अविआर ।

[मैंने खेल किया, फूत्कारो से विच्छिन्न किया ।।]

१०३ माइए पर तहिं कि उवरइ, विसरिअ जोइणिचार ।।८४।।

घरवइ खज्जइ सहजे रज्जइ, किज्जइ राअ-विराअ ।

१०४. णिअ-पास बइट्ठी चित्ते भटठी, जोइणि महु पडिहाअ ।।८५।।

खज्जइ पिज्जइ णवि चिन्तेज्जइ, इहले जो चित्ते पडिहाअ ।

---

१०२ स. 'अउण' स्याने 'अप्पण' ।

स-स्वय दाहा ४१ ।

१०५ फ्यि रोल्.सेमस् ल.म्छोन् मेद् ब्दग् गिस् ऽजिन् ।
स्न्यु मऽि नंल्.ऽब्योर् प नि.द्पे दङ,ब्रल् ब.स्ते ॥
स ग्सुम् दु.यङ.द्रि मेद्.मि ग्नस् मि ऽब्युङ.स्ते ।
मे नि.स्प्रव ऽदि ल क्येंन ग्यिस्.ऽवर् ॥१०५॥

१०६ स्ल व छु ऽजग् नोर् वु रङ द्वङ मेद् ।
थब्स् क्यिस् ग्यंल् स्निद् कुन ल द्वङ ब्स्ग्युर् व ॥
सेमस् ञिद् दे ञिद् ग्रुब् पऽि नंल् ऽब्योर् मऽो ।
ल्हन् चिग् स्क्येस् पऽि स्दोम् पर् शेस् पर् ब्य ॥१०६॥

१०७. यि गे ऽग्रो व.म लुस् प ।
यि गे मेद्.प ग्चिग् क्यङ मेद् ॥
जि स्रिद्[६] यि.गे मेद्.ग्युर् प ।
दे स्रिद् यि गे रब् तु शेस् ॥१०७॥

१०८. स्नग्.छ म्ञोस् पस् क्लग्ं तु मेद् ।
रिग्.ब्येद् दोन् मेद् ऽदोन् पस् ञाम्स् ॥
दम् प सेम्स् दङ चिग् शेस् मि शेस् नि ।
गङ नस् शर् चिङ गङ् दु.नुब् ॥१०८॥

१०९. जि.ल्तर्.फ्यि रोल् दे ब्शिन्.नङ ।
ब्चु ब्शि प यि स गं्ल.युन् दु ग्नस् ॥
लुस् मेद् लुस्.ल.स्वस् प.स्ते ।
दे शेस्.दे.यिस्.ग्रोल् बर् ऽग्युर् ॥१०९॥

११०. स्ग्रुब्.यिग् ब्शि.लस् दङ पो ब्दग्.गिस् स्तोन् ।
खु.व ऽथुङस्.पस् ङ.नि ब्जोंद्.पर् ग्युर् ॥
गङ गिस् यि गे ग्चिग् शेस् प ।
दे यिस्.मिङ नि.मि शेस्.सो ॥११०॥

१११. क्येंन्.ब्रल्.ग्सुम्.नि.यि गे ग्चिग् ।
स्ग्.मेद्.ग्सुम् ग्यि द्वुस् न ल्ह ॥

---

१०५. 'लंन.ऽब्योर्.प' के स्थान पर 'नंल् ०म' चाहिए ।

१०५. मणु वाहिरे दुल्लक्खे हले, विसरिस जोइणि-माअ ।।८६।।

त्रिभुवने निर्मल अप्रतिष्ठि अभूत, आग तण हेतु जलै ।।।

१०६. चंद्र जले परि नही स्वबश मणि, उपाय राज्य के सव वशीभूत ।

सो चित्तसिद्धि जोइणि, सहज सम्वरु जाण ।।८७।।

१०७. अक्खर बाढा सअल जगु, णाहि णिरक्खर कोइ ।

ताव से अक्खर घोलिआ, जाव णिरक्खर होइ ।।८८।।

१०८ पत्त मुसारिउ मसि मिलिउ, होवि लिहे ना खीणु ।

जाणिउ ते विस परमपउ, कहि (अइ कहि) लीएणु (लीणु) ।।४१।

१०९ जिम बाहिर तिम अब्भन्तरु । चउदह भुवणे ठिअउ णिरन्तरु ।।

असरिर (कोवि) सरीरहि लुक्को । जो ताहि जाणइ सो तहि मुक्को ।।८९।।

११०. सिद्धिरत्थु मइ पढमे पढिअउ । मण्ड पिवन्ते विसरअ ए मइउ ।।

अवखरमेवक एत्थ मइ जाणिउ । ताहर णाम जाणमि ए सइउ ।।९०।।

१११. प्रत्ययरहित तीन एक अक्षर, तीन अनास्रव मध्ये देव ।

गङ् गिग् ग्सुम् पो सग् प नि।
ग्दोल्. व रिग्. व्येद् दे व्गिन्. नो ॥१११॥

(३) सहज महासुख

११२ म लुस्. रङ् व्गिन् मि गेस् पस्।
कुन. दु रु. यि स्कव्स् सु. व्दे छेन् स्गुव् प नि॥
जि ल्तर् स्गोम् पस् स्मिग् ग्यँङि छु स्ञोग्स् व्गिन्।
स्कोम्. नस् ऽछि यङ नम्. म्खऽि छु ञेंद् दम ॥११२॥

११३. र्दो. र्जे पद्म ग्ञिस् क्यि वर् ग्नस् प।
व्दे. व. गङ गिस्. र्नम् पर् रोल् प यिन्॥
चि. स्ते. दे. व्देन् नुस् प मेद् पस् न।
स. ग्सुम्. रे. व. गङ गिस् जर्ोग्स् पर् ऽग्युर् ॥११३॥

११४. यङ. न. र्थव्स्. क्यि. व्दे व स्कद् चिग् म[3]।
यङ. न दे ञिद्. ग्ञिस्. मु. ऽग्युर् व स्ते॥
व्ल. मऽि द्रिन् ग्यिस्. स्लर्. यङ. नि।
व्ग्यँ. ल. ऽगऽ. यिस्. गेस् पर् ऽग्युर् ॥११४॥

११५. ग्रोग्स्. दग् सव् प दङ नि ग्यँ छे व।
ग्गन्. मेद्. व्दग् ञिद् म यिन् नो॥
ल्हन्. चिग् स्क्येस् द्गऽ बगि पऽि दुस्।
ग्ञग् म ञाम्स्. सु[4] म्योङ वर्. गेस् ॥११५॥

११६. मुन्. नग् छेन् पोर् सल् व. नोर् बु नि।
जि. ल्तर् ऽछर् वर् व्येद्. प व्गिन्॥
म्छोग्. तु व्दे छेन् स्कद् चिग् ग्चिग् ल नि।
व्सम् पऽि. स्दिग्. प. म. लुस्. फन् पर् व्येद् पऽो ॥११६॥

११७ स्डुग्. व्स्डल् स्नङ् व्येद् नुव् प. न।
स्कर्. मऽि व्दग् पो[5] ग्सऽ. दङ म्ञाम्. दु. शर्॥
ऽदि ल्तर् ग्नस् पस् स्प्रुल्. वर् स्प्रुल्।
दे. नि. द्क्यिल् ऽखोर्. ऽखोर्. लो. दम् पऽो ॥११७॥

जो तीन अनास्रव, चडालकुल क्रिया तिमि ।।]

(३) सहज महासुख—

११२. रुअणे सअलवि जोहि णउ गाहइ। कुन्दुर-खणहि महासुह साहइ ।।

जिम तिसिओ मिअ-तिसिणे धावइ। मरइ सो सोसहि णभजलु कहिँ पावइ।९१

कन्ध-भूअ-आअत्तण-इन्दी-विसअ-विआरु अप्प हुव।

णउ-णउ दोहाच्छन्दे कहवि ण किम्पि गोप्प ।।९२।।

पण्डिअ-लोअहु खमहु महु, एत्थु ण किअइ विअप्पु।

जो गुरु-वअणे मइ सुअउ, तहि कि कहमि सुगोप्पु ।।९३।।

११३. कमल-कुलिस वेवि मज्झ ठिउ, जो सो सुरअ बिलास।

को त रमइ णह तिहुअणे, कस्स ण पूरइ आस ।।९४।।

११४. खण उवाअ-सुह अहवा, अहवा वेण्णिवि सोवि।

गुरुपाअ-पसाएँ-पुण्ण जइ, विरला जाणइ कोवि ।।९५।

११५. गम्भीरइ उआहरणे, णउ पर णउ अप्पाण ।

सहजाणन्दे चउट्ठ-क्खण, णिअ-सम्वेअण जाण ।।९६।।

११६. घोरान्धारे चन्दमणि, जिम उज्जोअ करेइ।

परमहासुह एक्कु खणे, दुरिआसेस हरेइ ।।९७।।

११७. दुक्ख-दिवाअर अत्थ गउ, उवइ तारावइ सुक्क ।

ठिअ-णिम्माणे णिम्मिअउ, तेणवि मण्डल-चक्क ।।९८।।

---

११२ और ११३ के बीच के दो दोहों का भोटानुवाद नहीं है।

११८. क्ये हो मोंङस्. पऽि सेम्स् क्यिस्. सेम्स् ल. वृतंगस्. न. नि ।
ल्त व ङन्. प थम्स् चद् लस्. नि रङ ग्रोल्. ऽग्युर् ।।
म्छोग् तु व्दे व छेन् पोऽि द्वङ्. गिस्. नि ।
दे[६]. ल. ग्नस् न द्ङोस्. ग्रुव्. दम्. पऽो ।।११८।।

११९. सेम्स्. क्यि ग्लङ. पो यन् दु छग् ।
दे. नि. व्दग् ञिद्. द्रिस् ल. ग्चिग् ।।
नम्. म्खऽि रि. वो छु ऽथुङ दङ ।
दे. यि. ऽग्रम् दु ग ोग् चिग् रङ द्गऽ वर् ।।११९।।

१२०. युल् ग्यि. ग्लङ पोऽि द्वङ पो लग् पस्. व्लङस. नस्. सु ।
76b जि. ल्तर्. ग्सोद् पर् रङ द्वङ.[°] स्लङ वर् ऽग्युर् ।
र्नल्. ऽब्योर्. प नि. ग्लङ पो. स्क्योङ. व. व्शिन् ।।
दे. ञिद् नस् नि ल्दोग् पर् ऽग्युर् प यिन् ।।१२०।।

१२१ गङ गिग् ऽखोर् व. दे नि म्य. ङन् ऽदस्. पर्. ङेस् ।
द्ब्ये व. ग्शन्. दु सेम्स् प म यिन्. ते ।
रङ व्शिन् ग्चिग् गिस् द्ब्ये. व र्नम्. पर्. स्पङ्स् ।
द्रि. म मेद् प. ङ यिस् रव्. तु र्तोगस् ।।१२१।।

१२२ यिद् क्यिस्. दे. ञिद्. द्मिग्स्. दङ. व्चस् ।
द्मिग्स्. प स्तोङ प ञिद्. यिन्. ल ।।
ग्ञिस् ल. स्क्योन्. नि योद्. प. स्ते ।
र्नल् ऽब्योर् गङ गिस्. स्गोम् प. मिन् ।।१२२।।

१२३ स्गोम् प. द्मिग्स् व्चस् द्मिगस् मेद्. दे ।
स्गोम्. दङ मि स्गोम्. थ स्ञद्. मेद् ।।
व्दे. वऽि र्नम्. पऽि. रङ. व्शिन्. नो ।
रव्.[२] तु व्ल मेद्. रङ्. ऽब्युङ्. व ।।
व्ल. मऽि द्रुस्. थव्स्. व्स्तेन् पस् गेस् ।।१२३।।

१२४. नग्स्. सु म. ऽग्रो ख्यिम्. दु म. ऽडुग्. पर् ।।
गङ यङ दे रु यिद्. क्यिस् योङस्. गेस्. नस् ।

११८. चित्तहि चित्त णिहालु बढ, सअल विमुच्च कुद्दिट्ठि ।

परममहासुहे सोज्झ परु, तसु आअत्त सिद्धि ।।९९।।

११९. मुक्कउ चित्तगएन्द करु, एत्थ विअ णु पुच्छ ।

गअणगिरी-णइ-जल पिअउ, तहि तड वसउ स-इच्छ ।।१००।।

१२०. विसअ-गएन्दे करे गहिअ, जिम मारइ पडिहाइ ।

जोई कवडिआर जिम, तिम हो णिस्सरि जाइ ।।१०१।।

१२१. जो भव सो णिव्वाण खलु, स उ ण मण्णहु अण्ण ।

एक्क सहावे विरहिअ, णिम्मल मइ पडिवण्ण ।।१०२।।

१२२. [मन सोई सालवन, आलबन है शून्यता ।।

दोनो मे ही दोप है, जिससे योगी का ध्यान नहीं ।।

१२३. ध्यान सालब निरालंब, ध्यान-अध्यान व्यवहार नही ।।

सुखाकार स्वभाव, सु अनुत्तर स्वय होता ।]

१२४. घरहि म थक्कु म जाहि वणे, जहि तहि मण परिआन ।।

म. लुस्. ग्युंन्. दु. ब्यङ छुब् तंग् पर्. ग्नस् ।।
ऽखोर्. ब. गङ. यिन्. म्य. ङन् ऽदस् प गङ ।।१२४।।

१२५. यिद्. क्यि. द्रि. म. दग्. ल ³ ल्हन् चिग् स्क्येस्. प स्ते ।।
दे. छे. मि म्युन. फ्योग्स्. क्यिस् ऽजुग् प. मेद् ।
जि. ल्तर्. ग्यं. म्छो. दङ वर्. ग्युर्. प. ल ।।
छु. वुर्. छु ञिद् यिन्. ते. दे. ञिद्. थिम्. पर्. ऽग्युर् ।।१२५।।

१२६. नग्स्. दङ ख्यिम् न. ब्यङ छुब् ग्नस्.प मेद् ।।
दे ल्तर्. ब्येद् प योङस्.सु गेस् नस्. सु ।
द्रि.म. मेद्. पऽि. सेम्स् क्यि, रङ. ब्गिन् ग्यिस् ।।
म. लुस् मि तोंग् प रु. ब्तेन् पर् ऽोस् ।।१२६।।

(४) परमपद—

१२७ दे. नि. ब्दग् यिन् ग्गन्. यङ दे ब्गिन्. नो ।
गङ ब्सोम्. योङस्. सु. ब्सोम् प गङ ।।
द्ब्ये. ब. दे. ञिद्. ऽछिङ दङ ब्रल्. बर् ब्य ।
ऽोन्. क्यङ ब्दग् ञिद् नंम्. पर्. ग्रोल्. बऽो ।।१२७।।

१२८. ब्दग्. दङ ग्गन् दु. ऽख्रुल्. प म. ब्येद्. दङ्ˀ ।
म. लुस्. ग्युंन् दु. ग्नस्. पऽि. सङ्स्. ग्यंस्. ते ।।
सेम्स्. नि ङो. वो. ञिद् क्यिस्. दग्. प. न. ।
दे. ञिद्. द्रि. मेद् म्छोग्. गि. गो ऽफङ ङो ।।१२८।।

१२९. ग्ञिस्. मेद् सेम्स्. क्यि. स्दोङ पो. दम्. प. नि ।
खम्स् गसुम्. म. लुस्. कुन्. दु. ख्यब्. पर् सोङ ।।
स्ञिङ जेऽि. मे. तोग्. ग्गन्. दु. ऽख्रुल्. प. म ब्ये्.द्.दङ ।।
मिङ. नि. म्छोग् तु. ग्गन्. ल. फम्. पऽो ।।१२९।।

१३०. स्तोङ. पऽि. स्दोङ पो दम्. प. मे. तोग्. ग्ंयस '
स्ञिङ जे. दम् प. स्न छोग्स्. दु मर्. ल्दन् ।।
ल्हुन् ग्यिस् ग्रुब्. प. फ्यि् मऽि. ऽब्रस्. बु. स्ते ।
ब्दे. ब. ऽदि. नि. ग्शन्. पऽि सेम्स् मिन्. नो ।।१३०।।

सअल णिरन्तर बोहि ठिअ, कहिं भव कहिँ णिव्वाण ॥१०३॥

१२५. [सहजै चित्त निर्मल (जब), तब प्रतिपक्ष प्रवेश नही ॥

जिमि सागर मध्य बुद्बुद, उसी जल मे होइ विलीन ॥]

१२६ णउ घरे णउ वणे बोहि ठिउ, एहु परिआणहु भेउ ।

णिम्मल-चित्त-सहावता, करहु अविकल सेउ ॥१०४॥

१२७. एहु सो अप्पा ऐहु परु, जो परिभावइ कोवि ।

तें विणु बन्धे बेट्ठि किउ, अप्प विमुक्कउ तोवि ॥१०५॥

(४) परमपद

१२८. पर अप्पाण म भान्ति करु, सअल णिरन्तर बुद्ध ।

एहु से णिम्मल परमपउ, चित्त सहावे सुद्ध ॥१०६॥

१२९. अद्दअ चित्त-तरुअरह, गउ निहुअणे वित्थार ।

करुणा फुल्ली फल धरइ, णउ परत्त ऊआर ॥१०७॥

१३०. सुण्ण-तरुवर फल्लिअउ, करुणा विविह विचित्त ।

अण्णा भोअ परत्त फलु, एहु सोक्ख परु चित्त ॥१०८॥

१३१　स्तोङ पऽि स्दोङ पो दम् पऽि स्निङ जें मिन् ।
77a गङ ल. स्लर्. यङ. चँ. व मे. तोग्.[६] लो. ऽदव्. मेद् ॥
दे. ल. द्मिग्स्. पर्. व्येद्. प. गङ यिन् प ।
देर्. ल्हुङ. वस्. नि यन्. लग्. मेद्. पर् ग्युर् ॥१३१॥

१३२. स. वोन् ग्चिग्. ल. स्दोङ पो. ग्ञिस् ।
ग्युं. म्छन् दे लस्. ऽब्रस् वु ग्चिग् ॥
दे यङ द्व्येर् मेद्. गङ सेम्स् प ।
दे नि. ऽखोर्. दङ म्य. ङन्. ऽदस् नंम्स् ग्रोल्[१] ॥१३२॥

(५) परोपकार--

१३३　गङ गिग्. ऽदोद् प चन् गिय्. स्क्ये. वो ऽोङस् पऽि छें ।
दे. नि रे व. मेद्. न गल् ते. ऽग्रो व. नि ॥
फिय. स्गोर् वोर्. वऽि खम्. फोर् व्लग्स्. नस्. सु ।
दे. वस् ख्यिम्. थव्. वोर् नस् व्स्दद्. प. रुङ ॥१३३॥

१३४. ग्शन. ल. फन्. पऽि. दोन्. नि. मि व्येद्. प ।
ऽदोद्. प. पो ल स्ब्यिन् प मि. स्तेर्. व ॥
ऽदि. नि. ऽखोर् वऽि ऽब्रस् वु.[२] गङ यिन् लो ।
दे. वस्. व्दग्. ञिद्. वोर्. वर् व्यस् न रुङ ॥१३४॥

नंल्. ऽब्योर्. ग्यि द्वङ फ्युग्. छेन्
पो. द्पल्. सरह. छेन् पोऽि.ग्शल्.
स्ङ. नस्. म्जद् प. दो ह. म्जोद्
चेस्. व्य. व. दे खो. न. ञिद् नंल्.
दु. म्छोन्. प. दोन्. दम्.
पऽि यि. गे. ज्ोगिस्. सो ॥

१३१. सुण्ण-तरुवर णिक्करुण, जहि पुणु मूल ण साह ।
तहि आलमूल जो करइ, तसु पडिभज्जइ वाह ॥१०९॥

१३२. एक्केम्बि एक्केवि तरु तें, कारणे फल एक्क ।
ए अभिण्णा जो मुणइ, सो भव-णिव्वाण-विमुक्क ॥११०॥

(५) **परोपकार**

१३३. जो अत्थीअण ठीअऊ, सो जइ जाइ णिरास ।
खण्डसरावें भिक्ख वरु, च्छड्डहु ए गिहवास ॥१११॥

१३४. परऊआर ण किअऊ, अत्थि ण दीअउ दाण ।
एहु ससारे कवण फलु, वरु छड्डहु अप्पाण ॥११२॥

इति महायोगीश्वर महासरह के श्रीमुख से रचित ··· दोहाकोष ··· समाप्त ।

---

२. दोहाकोश चर्यागीति

(भोट, हिन्दी)

२. दोहाकोश चर्यागीति

(भोट)

दो.ह.म्ज़ोद्, स्प्योद् पऽि ग्लु

ऽफग्स् प. ऽजम् द्पल् ल फ्यग् ऽछल् लो ।
व्दुद् क्यि स्तोव्स्. रव्. तु ऽज़ोम्स् प ल फ्यग् ऽछल्.लो ॥

१. जि. ल्तर्. लुङ्. गिस्. व्ग्यंव् पस् मि ग्यो वऽि ।
छु.ल. ग्यो वस्. व.लव्स् नम्स्.सु ऽग्युर ॥

27a दे.ल्त. ग्र्युल्.पोस्. म्दऽ.व्स्नुन्. स्नङ्.बु. युङ् ।
ग्चिग्. ञिद्. न. यङ्. नम् प स्न.छोग्स्. व्येद् ॥

२. जि.ल्तर्. मोङ्स् पस्. व्स्लोग्.नस् बल्त्र्.प.यिस् ।
मर्.मे. ग्चिग्. ञिद्. ग्ञिस् सु स्नङ्व ल्तर् ॥
दे. ल. व्ल्त व्य. ल्त.व्येद् ग्ञिस्.मेद्.ल ।
क्ये. म व्लो. नि. ग्ञिस्.क्यि[1] द्ङोस् पोर्. स्नङ् ॥

३. ख्यिम् दु. मर्.मे. मङ्.पो. स्वर्.ग्युर्. क्यङ् ।
मिग् मेद् प.ल मुन्.पर्. ग्नस् प. ल्तर् ॥
ल्हन् चिग्. स्क्येस्.पस्. थम्स् चद् ख्यव् व्यस्. क्यङ् ।
ञो. यङ्. मोङ्स्.प.दग्. ल गिन्.दु रिङ् ॥

४. छुवो. स्न छोग्स्. यङ् ग्यं म्छो. ग्चिग्. ञिद्. दङ् ।
वर्जुन्.प दु.म.दग् क्यङ्[1] व्देन् प.ग्चिग् गिस् ऽज़ोमस् ॥
ञि.म. ग्चिग्. दङ्. स्नङ्.वर् ग्युर्.प.यिस् ।
मुन्.प. दु म.दग्. क्यङ् ऽज़ोमस्.पर. व्येद् ॥

---

१. तेर्-गिके स्तन्-ऽग्युर, र्ग्युद् पोथी शि, पृष्ठ २६ ख ६—२८ख ६

२. दोहाकोश चर्यागीति

(हिन्दी)

नमो मजुश्रियै। नमो मारबलविध्वसिने।

१. जिमि पवन-घाते अचल जल, चलै तरंगित होइ।
तिमि राजहि सरह प्रतिभासै, तऊ एक नाना विध करै॥

२. जिमि मूढ विलोम-नेत्र को, एकै दीप दो भासै।
तँह दृश्य-दर्शन दो नही, (तऊ) बुद्धि में दो वस्तु दीखै॥

३ घरे बहुत दीपक जलै, तऊ जिमि नयनहीन को अधार रहै।
सहज सर्वव्याप्त समीप है, तऊ मूढो को दूर (है)॥

४. नदी नाना तउ समुद्र एक (है), नाना मिथ्या को सत्य एक विध्वंसै।
सूर्य एक प्रकाशै (तो), अधार नाना भी ध्वस्त होइ॥

५. जि ल्तर्. छु.ऽजिन्.ग्यिस्. नि गं.य म्छों.लस् ।
छु व्लुङस् नस्. नि. स. ग्शि गङ व्यस्. क्युङ ।।
दे नि. म ञमस् नम् म्खऽ.दग् दङ म्ञम् ।
ऽफेन्.ब.मेद्.[३] चिङ ऽग्रिब् प दग्. क्यङ मेद् ।।

६ ग्यंल् बऽि फुन्.सुम्.छोग्स्.पस् योङस्. गङ् बऽि ।
ल्हन् चिग् स्क्येस् प ग्चिग्. मि रङ ब्शिन् ञिद् ।।
दे लस् ऽग्रो.व स्क्ये शिङ ऽगग् प स्ते ।
दे ल दूङोस्. दङ दङोस् पो.मेद्. पऽङ मेद् ।।

७ दम्.पऽि ब्दे.व स्पङस् नस् ग्शन्.दु. ऽग्रो ।
क्यंन् [४]लस् स्क्येस् पऽि ब्दे.ल रे.बर्. व्येद् ।।
रङ गि खर्ल्चुग्. स्ञङ चि ञो.व नि ।
ऽथुङ बर् मि.व्येद् शिन् दु. रिङ बर् ऽग्युर् ।।

८ व्योल् सोङ् दग्. स्दुग् बस्ङल् मि व्यद्.ल ।
म्खस्.प.दग्.गिस्. दे ल. स्दुग् ब्स्ङल्. व्येद् ।।
चिग्.ग्नोस् नम् म्खऽि ब्दुद् चि ऽथुङ्.वर् व्येद्[५] ।
ग्शन्. नि. युल्.नम्स् दग् लऽङ् नंम् पर्. छग्स्. ।।

९ ब्शद्.बऽि स्निन् बु द्रि ल छग्स् प नि ।
चन्दन् दग्.ल. द्रिङ.न.दग् तु सेम्स् ।।
जि ल्तर् म्य.ङन्.ऽदस् प. स्पङस्.नस् नि ।
स्निद् पऽि. ऽव्युङ ग्नस्. म्थुग् पोस् छगस् पर व्येद् ।

१०. व लङ. कंङ जेंस्. छु.यिस्. गङ.व्यस्[६] क्यङ ।
जि ल्तर् दे मङ. स्कम्.पर्.ऽग्युर्.व. ब्शिन् ।।
फुन् छोग्स् म. मिन्. फुन् छोग्स्.वर्तन् पऽि. सेम्स्. ।
यङ न फुन्.सुम् छोग्स् प स्कम्.पर् ऽग्युर् ।।

११. जि ल्तर् ग्यं. म्छो व छ चन्.ग्यि. छु. ।
छु ऽजिन्. ख.यिस् व्लङस् दङ.र. बर् ऽग्यर् ।।

५. जिमि जलधर समुद्र से पानी ले भूमि भरै।
सो अनष्ट शुद्ध आकाश सम, नहीं बढै औ ना घटै ।।

६. जिन-सपत्ति से परिपूर्ण, सहज एक स्वभावता ।
तेहि से जग उत्पन्न हो निरुद्ध होइ ।।

७ परम सत्य छाडि अन्यत्र जाइ, प्रत्यय से उत्पन्न सुख की आशा करै।
अपने डडे से मधु हिडोलै, (पर उसे) न पिये अतिचिर हुआ ।।

८ पशु (जिसमें) दुख न करै, पडित उसमें दुख करै।
एक हो आकाश का अमृत पान करै अन्य शुद्ध विषयो में भी रागै ।।

९ गूथ-कीट गधे रागी, शुद्ध चन्दन मे दुर्गन्ध मानै ।
जिमि निर्वाण छाडि, मन्द (जन) भव के उत्पाद-स्थान में रागै ।। ।।

१०. जिमि जलपूर्ण गोष्पद सोइ सूख जावै।
(तिमि) ना सपत्ति दृढ चित्त, भी सपत्ति सूख जाये ।।

११. जिमि समुद्र का क्षार-जल, जलधर के मुख में जा मधुर हो जाये ।

27b वर्तन् पऽि सेम्स्.[1]क्यिस्. ग्शन्.ग्यि दोन् व्येद्.प ।
युल् ग्यि. दुग् क्यङ् व्दुद् चिर्. ऽग्युर् प यिन् ।।

१२ व्र्जोद्.दु. मेद् न स्दुग् व्स्ङल् म. यिन्. ते ।
व्स्गोम् दु मेद् न. दे ञिद्. व्दे.व यिन् ।।
जि ल्तर्. ऽव्रुग् गि स्ग्र.यिस् स्पङ्स्. न. यङ्. ।
छर् प वव् पस् लो.तोग्स् स्मिन् पर्. व्येद् ।।

१३ दङ्. पो. थ म. दें व्गिन् ग्शन् न. मेद् ।
थोग्.म. थ.म वर् दु ग्नस् प मेद् ।।
कुन् तु र्तोग् पस्. र्मोङ्स्.पऽि यिद्.चन्. ल ।
स्तोङ् प दङ्. नि. स्ञिङ्.र्जे. व्र्जोद्.पस्. स ।।

१४ जि ल्तर् मे तोग्. नङ् ग्नस् स्व्रङ्.चि नि ।
वुङ्. वु. ञिद्. क्यिस्. शे.स्. पर् ऽग्युर्. प. यिन् ।।
स्निद्. दङ्. म्य. ङन्. ऽदस्.प मि ऽदोर्. रो.[2] ।
र्मोङ्स्.प. दग्. गिम्. जि ल्तर्. योङ्स्.सु. शेस्. ।।

१५. जि ल्तर् मे लोङ् ङोस्.क्यि. व्गिन्. ग्यि. ग्सुग्स् ।
र्मोङ्स् प. मि. शेस् प. यिस्. व्ल्तस्.प ल्तर् ।।
दे. ल्तर् व्देन प स्पङ्स् पऽि सेम्स्. ऽदि नि ।
मि. व्देन् प ल मङ्.दु वर्तेन् पर् व्येद् ।।

१६. मे तोग् द्रि नि गसुग्स् सु मेद् न यङ्[3] ।
म्ङोन्.सुम् कुन् दु स्ब्यव् पर् व्येद्.प. ल्तर् ।।
दे. व्गिन्. गसुग्म् सु मेद् पऽि रङ्.व्गिन्-ग्यिस् ।
द्क्यिल् ऽखोर् ऽखोर् लो. दग् क्यङ्. शेस्.पर् ग्यिस् ।।

१७. लुङ्. गिस्.छु ल. शुग्स् गिङ्. द्कुग्स् प.यिस् ।
ऽजम्. पऽि छु यङ् दों यि ग्मुग्स् ल्तर्.ऽग्रो ।।
र्तोग्. पस्[4] द्कुग्स्. पस्. र्मोङ्स्.प ग्मुग्स्.मेद्.प ।
शिन् तु स्त्र गि्ङ् म्ख्रेग्. प ञिद्. दु ऽग्युर् ।।

स्थिर चित्त से परमार्थ करे, (तो) विषय-विष भी अमृत हो जाये ॥

१२. अवाच्य में दुःख न है, भावना रहै (जो) सोई सुख है ॥
जिमि अशनि-शब्द करै, पर-वर्षा से फसल पक जाये ॥

१३. प्रथम अन्तिम तथा अन्य नही, आदि अन्त मध्य मे रहै नही ।
सर्वकल्पना से मूढ हृदय को, शून्य और करुणा कथन की भमि (है) ॥

१४. जिमि फूल बीच स्थित मधु को, भ्रमर ही जानै ।
भव-निर्माण न छाडि, मूढ जिमि परिजानै ॥

१५. जिमि दर्पण-तलके मुख-बिंब को, मूढ़ अजान का देखना ।
तिमि सत्य त्याग यह चित्त, असत्य में बहुत स्थिर होइ ॥

१६. पुष्प-गंध अ-काय भी, यथा प्रत्यक्ष सर्वव्यापी ।
तथा स्वभावतः अकाय, मंडल-चक्र को भी जानिये ।

१७. पवन पानी मे बल से हिलाया, कोमल जल भी पाषाण-काय जिमि चलै ।
कल्पना-चालित मूढ काय बिन्, अति कठोर ही होइ ॥

१८. सेमस्. गङ्. द्रि म.मेद्.पऽि. रङ्.ब्ग्नि्. ल ।
स्रिद्. दङ्. म्यङ्.ऽदस्. ऽदम्. ग्यिस् म.गोस्. सो ॥
ऽदम् दु ब्चुग्.न म्छोग्.गि रिन्.पो छे ।
दे.यि. ऽोद्. क्यङ्. ग्सल्.व. म. यिन्. नो ॥

१९. ग्ति.मुग्. ग्सल्. वस्. ये.शेस्. मि ग्सल्. ते ।
ग्ति मुग् ग्सल्.वस् स्डुग्.ब्स्डल्. ग्सल् व. यिन् ॥
जि.ल्तर्. स वोन्.लस्. नि. म्युगु. ऽब्युङ् ।
म्यु गुऽि. ग्युं.लस्. यल्. ग. ऽब्युङ्.वऽो ॥

२०. ग्चिग् दङ् दु.म सेम्स्. ल. द्प्यद् प.यिस् ।
ग्सल्.व. स्पङ्स्. नस्. स्रिद् प.दग्. तु ऽग्रो ॥
म्थोङ् व्ग्नि्.दु नि. दोङ् दु. ऽग्रो.व.ल ।
दे.लस्. स्ञिङ्.र्जे. व. नि. चि.शिग्. योद् ॥

२१. ख.स्ब्योर्. ब्दे.ल. योङ्स्. सु. छग्स् नस्. सु ।
ऽदि. ञिद्. दोन् दम् यिन् शे.स्. मोंङ्स्. प स्म्र ॥
गङ्. शिग् ख्यिम् नस् ब्युङ् नस् स्गो. व्रुङ् दु ।
का. म. रू. पऽि ग्तम्. नि. ऽद्रि. वर्. ब्येद् ॥

28a २२. लुङ्. गि. ग्युं. लस्. स्तोङ् पऽि ख्यिम् दु नि ।
नम् प दु मऽि. छुल् ग्यिस्. ब्चोस् म वस् ॥
नम्. म्खऽ. लस् वब्. ञेस्.प दङ्. व्चस्. पऽि ।
ग्दुङ्.वस्. ब्ग्यल्.वर्.ग्युर. पऽि नल्.ऽब्योर् प ॥

२३. जि.ल्तर. ब्रम्. से.मर् दङ् ऽव्रस् क्यिस्. नि ।
वर्.वऽि मे ल स्प्यिन् स्तेग् व्येद्.प नि ॥
नम्.मखऽि व्चुद्.किय जस्.क्यिस् व्स्क्येद् प. स्ते ।
ऽदि नि. दे.ञिद् ग्रोल्. प.शेस् सेर् ॥

२४. ख दोग्. द्व्ये.वस्. ऽछिद् व्. म. गंद्. सेर् ।
मोंङ्स्.पस्. रिन्.छेर्. वृतंग्.प. म. शेम्.पस् ।

१८. असमल स्वभाव चित्त मे, भव-निर्माण पक न चाहिये ।
पक मे रखे वररत्न की भी प्रभा प्रकाशित न होइ ।।

१९ अधार प्रकटै, (तो) ज्ञान न प्रकटै ।
अधार प्रकटन से दु ख प्रकटित होइ ।

२० एक-अनेक चित्त मे चर्या से, प्रकाश छाडि भव मे जावै ।
दर्शन जिमि पास जाये, तो कारुणिक कैसा ।।

२१. आकाश योग (है) सुख मे परिराग से, यही परमार्थ (है) यह मूढ भनै ।
जो घरसे जाइ द्वारे, कामरूप की कथा पूछै ।।

२२. पवन कारण शून्य घरे, अनेक विध वृत्ति क्रिया ।
आकाश से गिर सदोप, दाह-जयी योगी ।।

२३. जिमि ब्राह्मण घृत-तडुल, ज्वलित अग्नि मे होम करै ।
आकाश रस द्रव्य से उत्पन्न यह, सोई मुक्ति कहै ।।

२४ वर्ण-भेद से बंधन न जीर्ण कहै, मूढ रत्न-परीक्षा न जानै ।

दे. नि. र.गन्. ग्सेर्. गिय व्लो.यिस् लेन् ।
ञम्स् म्योङ्. ख्येर् नस्. दोन् दम् स्ग्रुब् पर्. व्येद्[3] ॥

२५. मि लम् व्दे.ल जेंस् सु. छग्स्. पर् व्येद् ।
फुङ् पो मि र्तग् व्दे. व र्तग्. चेस् स र्. ॥
ए ब यि गेर्. रङ्.गिस्. गो. वर्. व्येद् ।
स्कद्.चिग् द्व्ये वस्. फ्युग् ग्यु व्गि व्कोद्. चिङ ॥

२६ ञम्स् सु म्योङ् वस्. ल्हन्.चिग् स्क्येस् प. स र् ।
ग्मुग्स् ब्र्ञन् ग्सेस् प मे. लोङ् ल्त. व. व्गिन् ॥
जि ल्तर्.[4] म. र्तोग्स्. स्मिग् ग्यु ङि. छु ल. नि ।
ऽख्रुल्.पऽि द्वङ. गिस्. रि दग्स् ग्युग्. पर्. व्येद् ॥

२७ र्मोङस्.प. स्कोम्.प मि. दोम्स्.ऽछिङ. वर् ऽग्युर् ।
गङ्.शिग्. दोन्.दम् से र्. शिङ्. व्दे. व लेन् ॥
कुन्.ज र्वि. व्देन्.प. द्रन्.प मेद्.प स्ते ।
सेम्स्. दङ्. सेम्स्. नि. मेद् पर्. ग्युर् पऽो ॥

२८ दे. ञिद्.[5] योङ्स् सु. ग्युर् प म्छोग्. गि. मछोग् ॥
म्छोग् गि. दम् प ग्रोग्स्. दग् श स् पर् ग्यिम् ॥
सेम्स् नि. द्रन् मेद् तिङ्ङ ऽजिन् दु स्व्योर् ।
ऽोन् र्मोङस योङस्. सु. दग् पऽङ दे ञिद्. दो ॥

२९. जि ल्तर् ऽद्म् स्क्येस् ऽदम् ग्यिस्. मि छुग्स्-व्गिन् ।
स्निद् ऽग्युङ ञोस् पस् ग्येल्. छोस् मि गोस् सो[6] ॥
दे. यङ थम्स् चद्. स्यु मर्.ङ स्. पर्. व्ल्त. व्य. स्ते ।
ऽजिग् र्तेन् ऽदस् प स्कद् चिग् लेन् दङ व्तङ. स्ञोम्स्. व्येद् ॥

३० व्र्तन् पऽि. व्लो चन् दे दग् ग्ति मुग् ऽछिङ वर्. ऽग्युर् ।
रङ ब्युङ व्सम्.ग्यिस् मि ख्यव् रङ व्शिन् ग्नस्. प. यिन् ॥
स्नङ ऽदि ग्सल् वर् दङ पो ञिद् नस्. म. स्क्येस् ते ।
गसु ग्स् चन् म यिन् ग्सु ग्स कियि रङ ब्शिन् र्नम् पर् स्पङस् ॥

वह प्रीतल सोने के खयाल से, अनुभव ले परमार्थ साधै ।।

२५. स्वप्न-सुख मे अनुराग करै, स्कन्ध अनित्य सुख नित्य कहै ।
एव अक्षर स्वय जानै, क्षण भेद से मुद्रा रचै ।।

२६. अनुभव से सहज कहै, रूप-प्राप्ति दर्पण-दर्शन जिमि ।
जिमि बे समझे मायाजल मे, भ्रमवश मृग धावै ।।

२७. मूढ प्यासा अतृप्त फँसै, जो परमार्थ कह सुख लेइ ।
संवृति-सत्य स्मृति नही, और चित्त न चित्त होइ ।।

२८ सोई परिणाम उत्तमोत्तम, परमोत्तम सखे, जान ।
चित्त स्मृतिरहित समाधि मे जुडै, अध-मूढ परिशुद्ध सोइ ।।

२९. जिमि पंकज न पंके, तिमि भव-दोष न जिनधर्म लिपै ।
सो भी सव माया अवश्य जानिये, लोकोत्तर क्षण दानादान समापत्ति करे ।।

३०. सो स्थिरमति अंधार नाशै, अव्याप्त स्वयभू चित्त स्वभाव में रहै ।
यह प्रभास स्पष्ट पहिले से ही न उपजै, अरूपी रूप-स्वभाव परिहरै ।।

३१ दे ञिद् ग्युंन् दु ग्नस् गिङ वसम् ग्तन् ग्चिग्. पु. व्येद्।
यिद् ल मि व्येद् द्रि मेद् वसम् ग्तन् सेम्स् म यिन्॥
व्लो दङ सेम्स् क्यि स्नङ व दे. व्दग् ञिद्।
ऽजिग् र्तेन् गङ दग् ग्शन् दु स्नङ व्दग् ञिद्॥

३२ स्न छोग्स् म लुस् म्थोङ व्येद् दे व्दग ञिद्।
छग्स् दङ ग्ति मुग् व्यङ छव् सेम्स्. क्यङ दे. व्दग् ञिद॥
ग्ति मुग् मुन् वर् स्ग्रोन् मे ऽवर्।
जि स्त्रिद् व्लो यि द्व्ये वस्. क्ये॥

३३ दे स्त्रिद् सेम्स् क्यि द्रि म. स्पङस्।
म शेन् रङ व्शिन् गङ गिग्. वसम्॥
द्गग् प. मेद चिङ स्ग्रुङ. व मेद्।
ऽजिन्. प मेद् दे वसम् गि ख्यव्॥

३४ व्लो यि द्व्ये वस् र्मोङस नम्स् ऽछिङ।
द्व्येर् मेद् ल्हन् चिग् स्क्येस्. नम् दग्॥
ग्चिग् दङ दु मस् नम् व्र्तग् ग्चिग् ञिद् मिन्।
शेस् प चम्. ग्यिस् ऽग्रो व नम्. पर्. ग्रोल्.॥

३५. ग्सल. व गङ शिग् शेस् प.[२] व्स्गोम् प व्स्तन्।
मि. ग्योऽि. सेम्स्. नि व्दग्. ञिद् दे. रु ग्सुङ॥
द्गऽ. व र्ग्येस् पऽि युल् थोव्. प।
म्थोङ. वऽि सेम्स्. नि. नम् पर्. र्ग्येस्॥

३६. युल्. ल. व्रोस् क्यङ थ दद् मेद्।
द्गऽ व व्दे वऽि म्यु गु दङ॥
म्छोग्. गि. ऽदव् म. स्क्येद् प. स्ते।
जि. स्त्रिद् व्योस्.प. व्चुङ मि फ्रोग्॥

३७ स्प्रोस् मेद्. व्दे वऽि ऽन्नम् वु. ञिद्।
गङ गिस् गङ दु गङ ल. दे दग् मेद्॥

३१. उसी स्रोत मे रहि ध्यान एक (मात्र) करै,
अमनसिकार निर्मल ध्यान चित्त न है
बुद्धि, चित्त और चित्ताभास यह सब लोक
जो अन्यत्र आभासै सो अपने ही ॥

३२ सकल नाना दृश्य दर्शन सो अपने ही, राग, अंधार, बोधिचित्त भी अपने ही।
तिमिरनाशक जलता दीप जिमि बुद्धि का भेद रे ॥

३३ तिमि चित्त का मल त्यागै, अनासक्त स्वभाव जो समझै ।
अनिवारित न धारे सो समुझि न व्यापै ॥

३४ बुद्धि-भेद से मूढ बँधै, अभेद (है) सहज विशुद्ध ।
एक और नाना विकल्प एक ही नही, ज्ञान मात्र से जग विमुक्त ॥

३५. स्पष्ट जो ज्ञान भावना कहै, अचल चित्त अपने ही वहाँ कहै ।
विकसित आनंद का विषय पाइ, दर्शन का चित्त विकर्मै ॥

३६. विषय मे सक्ति भी भेद नही, आनद सुख का अकुर (है) ।
उत्तम पत्र जनमि, जिमि कर कुछ ना हरै ॥

३७. निष्प्रपच सुख का जो फल, सो जँह जिसका शुद्ध नही ।

दे. यिस्. दे. रु दे ल. द्गोस् प. व्यम् ।
जेंस्. सु. छग्स्. प. दङ. नि. म. छग्स्. पऽि ॥

३८. ग्सुग्स्. ञिद्. दग्. नि. स्तोङ. प. ञिद्. यिन्. नो ।
स्त्रिद्. पऽि. ऽदम्. ग्नें. फग्. ल्त. वु ।
द्रि. मेद्. सेम्स्. ऽग्युर् स्क्योन्. चि. योद् ।
गङ. यङ दग्. गिस्. म गोस्. प ॥
दे. यङ दे. यिस्. चि पियर् ऽछिङ. ।

नंल्. ऽब्योर्. ग्यि. दवङ् प्युग्. छेन्. पो. द्पल्. स. र. हऽि. शल्. स्ङ. नस् म्जद्. प. दो. ह म्जोद्. चेम्. व्य व स्प्योद्. पऽि ग्लु जोंग्स्.सो ॥

सो तँह तिस को चाह करै, अनुराग और विराग की ।।

३८. शुद्ध रूप ही शून्यता, भवपंक मे आसक्ति शूकर जिमि ।
विमल चित्त होइ, दोष क्या है ?
जो शुद्ध न चाहै, सो तिस से क्यों बंधै ।।

महायोगीश्वर-सरहपादकृत दोहाकोश चर्यागीति समाप्त ।।

३. दोहाकोश उपदेशगीति

(भोट, हिन्दी)

३. मि. सद्. पऽि. ग्तेर्. म्ज़ोद. मन्. ङग्. गि. ग्लु*

(भोट)

28b ऽजम् द्पल्.ग्श ोन्. नुर् ग्युर व ल. फ्यग् ऽछल्. लो।
१ ए म. म्खऽ. ऽग्रो ग्सङ. वऽि स्कद्।
ग्ञिस्. मेद् रङ व्गिन् फ्यग्. ग्य. छेन् पोऽि ग्नस्।
29a सङस् र्ग्यस् छोस् दङ द्गे ऽदुन्. रङ व्गिन् नि।
व्यङ छुव्. सेम्स् द्पऽ व्दे वऽि म्गोन्. पो. ल॥
२. फ्यग्. व्सङ पो. यिस् व्तुद् दे व्गद् पर् व्य.
स्क्ये. वो. स्निद्. पऽि ऽखिर. शिङ ल्त. वुस्. व्क्रिस्. प. र्नमस्॥
व्दग्. तु ऽजिन्. पऽि. म्य. ङन्. थङ ल. रव्. तु स्कम्स्।
र्ग्यल्. वु ग्ग ोन् नु. खिद्. मेद् फ दङ व्रल्. व. व्गिन्[1]॥
३. व्दे. वऽि. गो. स्कव्स्. मेद् पस् सेम्स् ल स्नुग्. दुर्. ग्युर्।
द्प्यद् पस् म ऽोङस् दे व्गिन् ञिद्. क्यि ये. शेस् नि॥
व्यस्. प. र्नम्स्. दङ. व्रल् गिङ वस्ग्स् पऽि लस्. मिन्. श ेस्।
रङ ञिद् शेस् पऽि म्दऽ व्स्मुन् ग्यिस्. नि दे. स्कद्. स्म्रस्॥
४. म्खस्. प. थम्स्. चद् स्ञिङ ल. दुग्. गिस् ख्यव्[2]. पर् ग्युर्।
सेम्स् ञिद्. र्नल् पऽि. दोन्. नि. कुन् ग्यिस्. र्तोग्स् द्कऽ. प॥
म्थऽ. यिस्. म्गोस् द्रि. म. मेद् पऽि स्ञिङ नि।
रङ. व्गिन् ग्दोद्. नस्. र्नम्. प. कुन्. ग्यि द्प्यद्. व्यमिन्॥
५. गल्. ते द्प्यद् न दुग् स्नुल् ग्चेस् प. खो नर् सद्.।
व्लो. यिस्. ग्गन् पऽि छोस्. ऽदि. थम्स्. चद्. रङ[3] गिस्. स्तोङ॥

---

* स्तन ऽग्युर र्ग्युद् शि पृष्ठ २८ ख ५—३३ ख ४

३. दोहाकोश 'अनुच्छिन्नकोश' उपदेशगीति

(हिन्दी)

नमोमजुश्रियै कुमारभूताय ।

१. अहो डाकिनी गुह्य वचन, अद्वय स्वभाव महामुद्रावास ।
बुद्ध धर्म सघ स्वभाव, बोधिसत्त्व सुख-नाथके अर्थ ।।

२ सुहस्तसे नमि कहिये, पुरुष के भवमे लता जिमि मगल ।
शोक-स्थाने आत्म-ग्रह सूखै, जिमि पिता विनु राजकुमार का भव* नही ।।

३ सुख-अवस्था विनु चित्ते रूप होइ, तैसे ही अनागत-चर्या× का ज्ञान ।
क्रिया विनु सचित कर्म नही, सरह भनै स्वय जानि यह वचन ।।

४ सब पंडितो के हृदये व्याप्त विष, चित्त ही नाल-अर्थ सब कठिन कल्पना।
अन्तत निर्मल (है) हृदय, स्वभाव राग से सर्वथा त्याज्य नही ।।

५. जो परसै सर्प डसै सोई मरै, बुद्धि से भिन्न यह सब धर्म स्वत शून्य ।

---

* जन्म । × आचरण, साधना ।

क्यॆन् दङ ब्रल्. फियर् व्तंग् प थम्स्. चद् योद् म. यिन्. ।
रङ व्शिन् ग्नस् मु ग्रोल् वऽि दे व्शिन्. ञिद् शेस्. न ॥

६ म्थोङ थोस् ल सोग्स मेद् चिङ दे यिस्. मि म्थुन् ब्रल् ।
द्ङोस् पोर् र्तोग् प थम्स् चद् फ्युग्म् दङ. ऽद्र. वर्. व्जोंद् ॥
द्ङोस् मेद् र्तोग् प दे वस् शिन् तु व्लुन् ऽग्युर्. ग्.स् ।
मर् मे ऽव्र्. दङ. व्सद्. पऽि द्पे यिस् व्र्जोद्. प. दग्. ॥

७ ग्ञिस् मेद् रङ व्शिन् फ्यग् र्ग्य. छेन् पोर् ग्नस् ।
द्ङोस् पोर् स्क्येस् प द्ङोस् पो. मेद् पर् रव् शि शिङ ॥
दे यि फ्योग्स् दङ ब्रल् व म्खस् प दे ञिद् नि
व्लुन् पो. र्नम्स्. क्यि. व्लो ल रङ गिस् द्प्यङ्[5] व्यस् न ॥

८ स्कद् चिग् ग्रोल्. व दे. ल छोस् क्यि. स्कु. शेस् व्य ।
ग्रोल् व दे लस्. ग्ग.न् पऽि. व्दे छेन् स योद् चेस् ॥
ञियस् प र्नम्स् क्यिस् स्म्रस् श्यङ स्मिग् र्ग्युऽि छु दङ म्ब्रुङस् ।
स दङ लम् दङ सङस् र्ग्यस् चम्स् चद् गो ग्चिग् पऽि ॥

९ ग्ञुग्. मऽि. ये. शेस् ऽदि. ञिद्. यिन्. गिय यिद्. ल.[6] द्रिस् ।
दे ल्तर् र्तोग्स्. पऽि मि दे. ल. नि. ऽछिङ व मेद् ॥
ङुल् म स्पङस् शिङ ङुल् गियस् चुङ स.द् गोस्. प मेद् ।
ञोन्. मोंङ्स् गञन् पो ग्ञिस् सु ऽप्येद् प. ग ल योद् ॥

१० दे ल्तर् व्च.ोन् पऽि. स्क्येस् वु दे नि ऽखोर् वर् ऽछिङ ।
स दङ छु दङ मे. दङ लुंङ दङ् नम्. म्खऽ र्नम्स् ॥

29b ल्हन्.[7] चिग्. स्क्येस्. पऽि रो ग्चिग् लस् नि ग्गन् योद् मिन् ।
स्त्रिद्. दङ् म्य. ङन्. ऽदस् प. ग.ञिस् सु मि र्तोग्स् प ॥

११. ऽदि नि. छोस्. क्यि द्व्यिङस् क्यि. ग्नस्. लुग्स् यिन् पर् व्गद् ।

ए.म. म्खऽ ऽग्रो. ग्सङ.वऽि स्कद् ॥

क्ये म. रङ. ल रङ गिस् दे ञिद् मछ.ोन्. ते ल्तोस् ॥
म येङस्. प[1] यि. सेम्स्. क्यिस्. ल्त दङ ब्रल्. ग्युर् न ।

अ-प्रत्यय* होने से सारी परीक्षा न होई, स्वभाव-स्थाने मुवित जैसा जो जाने ।।

६. दर्शन-श्रवण आदि विनु उससे प्रतिकूल नही,
वस्तुकल्पना सारी पशु-सदृश कहिये ।
विना वस्तुकी कल्पना से अतिमूढ हो जानै,
दीपक जलने बुझनेकी उपमा की कथा ।।

७. अद्वय स्वभाव महामुद्राका वास, वस्तुकी उत्पत्ति अवस्तु स्वभाव ।
उसका निष्पक्ष पडित सोइ, मूढोके मतमे अपने चर्या करै ।।

८ उसी क्षणिक मुक्ति मे धर्मकाय जानिये, उस मुक्तिसे अन्य महासुख भूमि यह ।
बालोका कथन, मृगजलकी वंचना , भूमि, मार्ग, बुद्ध सव एक जान ।।

९ निज ज्ञान यही है, यह मनसे पूछ , ऐसा समझे नरको बधन नही ।
धूल न छोड धूल कुछ भी ना चाहिये, पाप-विरोधी दोनोमे करना है कहाँ ।।

१० ऐमे वह पराक्रमी पुरुप ससार मे बँधे , धरती, जल, अग्नि, वायु औ आकाश ।
महज एकरस (तत्त्व) से अन्य नही, भव-निर्वाण दो नो समझै ।।

११. यही धर्म-धातुकी स्थिति कहिये,
अहो डाकिनी गुह्य वचन ।।
अहो अपनेहि अपने को प्रहरै देख, अनलस चित्ते दृष्टि न होई ।।

---

*हेतु विना ।

२१२ योङस् पऽि सेम्स् क्यिस् दे ञिद् र्तोगस् पर्. मि ऽग्युर्. ते ॥
दङोस् पोऽि छङ छिङ ग्सेब्. तु. दे. ञिद्. नोर्. बु. स्तोर् ।
क्ये.म. ऽद्रोद् पऽि दङोस् पो.गङ. लऽङ स्योद्. ञिद्. छगस्. म व्येद् ॥
गल्. ते छगस् पर् व्य बऽि युल् ल. यिद्. छगस्. न ।

१३ ऽदि[2] नि व्दे छेन् सेम्स् म्छोग् ग्सिर् थऽि नद्. रब्. म्ने ॥
ग्रि म मेद् पऽि सेम्स् ल. ऽद्रोद् पऽि म्छोन्. ग्यिस्. व्तव् ।
क्ये म ग्युं दङ ऽव्रस् वु. गञिस्. मु म. ल्त चिग् ॥
दङोस् पोर् स्क्ये वऽि ग्युं. दङ ऽव्रम्. बु योद्. मिन् ते ।

१४ रे दङ दोगस् पऽि दुग्. गिम् र्नल् ऽब्योर्. सेम्स्. म्योस्. न ॥
ल्हन्.[3] चिग् स्क्ये पऽि ये शेस् ग्नस् दे ऽछिङ. वर् ऽग्युर् ।
क्ये. म र्ङ. व्शिन् ग्रल् वऽि दे ञिद् व्सगोम् दु. योद् म. सेर्. ॥
गल् ते व्सगोम् पर्. व्य दङ स्गोम् व्येद् ग्ञिस्. र्तोगस् न ।

१५ ग्ञिस् मु ऽजिन् पऽि यिद् क्यिस् न्यङ छुव् सेम्स् स्पङस् ते ॥
स्क्येस् वु दे यिम्. रङ गिस्. रङ ल.[4] स्दिग्. प. व्यस् ।
क्ये. म व्ल. मऽि शल् ग्यि. व्दुद् र्चिऽि थिगस्. प. जि स्ञोद् प ॥
देस् शेस् म्ङोन्. ऽग्रो प यिस्. रब्. तु. व्लङ वर्. व्य ।

१६ दुस् दङ थव्स् ल. म्खस्. पस् दुम्. नु. म. व्स्तेन् न ॥
लोङ वम् र्ग्यल्. पोऽि वङ. म्जोद्. कुं. दङ ऽद्र थर् ऽग्युर् ।
क्ये म रिन्. छेन् द्वङ दङ ग्रल्[5] वऽि स्क्येस्. बु नि. ॥
ग्दोन्. प. द्मन् प शिग्. गिस् र्ग्यल् पोर्. रे स्मोन् व्शिन् ।

१७ रिग्. प. ऽजिन्. पऽि ग्युंद् र्नम्स्. देर् व्स्लुस्. पस् ॥
म्खऽ ऽग्रोस् छद् प. व्चद् नम् दों. जेंऽि द्म्यल्. वर्. ल्तुङ ।
क्ये म. द्गे वऽि व्शेस्. ग्ञेन्. दग्. लस्. म्छोग्. गि.दोन्. व्लङस् नस् ॥
दम्.पर् मि[6] ऽजिन्. द्मन्. पऽि सेमस् क्यिस् योङस्. स्पोङ् व ।

१८ स्क्ये.वो रब् रिब् ग्सेव् क्यिस्. स्येर् वर्. ग्युर्. प न ॥
व्स्कल् प. छेन् पोर्. रङ. ल स्डुग् व्स्डल् व्यस् पर् सद् ।

१२. अलस चित्तेहिं सो समुझ न होइ, वस्तुके मदमें बँधि सोइ मणि-भ्रान्ति।
अरे किसी इच्छित वस्तु मे राग न कर, जो रजनीय विषयमें मन रागी होइ ॥

१३. यह महासुख-चित्तवर मे महाशूल रोग, निर्मल चित्त पार राग प्रहार करै।
अहो कार्य-कारण तू दोनो ना देख्। वस्तु-उत्पत्तिमे कार्य-कारण
ना होइ ॥

१४. आशा-शका-विषसे योगी-चित्त मातै तो, सहज ज्ञान मे बसि वह बद्ध होई।
अहो ध्यान में सो नि स्वभाव ना कह जो ध्यान औ ध्येय दो समुझै ॥

१५ द्वैत ग्राही मन बोधिचित्त को छोडै, सो पुरुष अपनेहि अपने पाप करै।
अहो गुरुमुखामृत विन्दु मात्र पाइ, निश्चय आगे वढिज्ञान भले लेइ ॥

१६. काल औ उपाय मे पडित काल का आश्रय ना ले, जैसे भिखारी राज-
कोशकी चोरी करै।
अहो रत्न औ बल बिनु पुरुष सोइ, जिमि चडाल-शूद्र राजा ने
बनना चाहैं ॥

१७. विद्याधरकी जाति वहाँ राखैं, डाकिनी निग्रह तोडि नरक मे गिरै।
अहो कल्याणमित्रो से परमार्थ ले
उत्तम न धरि हीन चित्त परित्यागै ॥

१८. पुरुष मेरुशिखरे जावै तो, महाकल्प भर अपनेहि दुखी हो मरै।

क्ये म वर्तन् पऽि. स ल फ्यि नस्. दम्. छिग् मि. ल्दन. न ।
ग्यंल् पोस् छद् प. ग्चोद्. पऽि मि. नि व्मुङ व. ल्तर् ।
१९ नंम् [७]स्मिन् ल्चग्म. क्युस् स्रोग् गि लुंङ नि व्सुङ व्यस्. नस् ॥
30.1 ग्रो छ मोल् म. खर् व्लुग्स्. प नि. व्सोद्.पर् द्कऽ ।
वये म ग्नस् लुग्स् , र्तोग्स् क्यङ द्मन् व्गि. स्प्योद् प.
ञिद् व्यद् न ॥
ग्र्यल् पो ख्रि लस् वव् नस् पयग् दर् व्येद् प.व्गिन् ।
२० सद् मि शेस् पऽि व्दे व[१] छेन् पो ञिद् स्पङस् नस् ॥
ञ्खोर् वऽि व्दे व दग् ल रेग् प ञिद् कियम् ऽछिङ ।
क्ये म स्त्रोस् प नंम्स्. दङ व्रल् वऽि रङ गि. सेम्स् म्थोङ नस् ॥
स्त्रोस् प नंम्स् ल छेद् दु ऽत्रद्. पऽि नंल्. ऽव्योर् नि ।
२१ नोर् वु रिन् छेन्. ञोंद् नस् ऽछिङ वु छ ोल्. व. व्गिन् ॥
ऽवद् प. व्यस् क्यङ स्ञिङ पोऽि स नि नम्. यङ मिन् ।

ए.म. ऽम्ख ऽग्रो. ग्सङ वऽि. स्कद् ॥

व्यङ. छव्. सेम्स्. सिन् प. दङ व्यङ छुव्. सेम्स्. र्तोग्स दङ ।
२२. ऽवद् प. दङ व्चस्. ऽवद्.प व्रल् वऽि. ये शेस् नि ॥
दम्.प. नंम्स् किय. शल्. ग्यि व्दुद् चि लस्. व्युङ व ।
ञि म स्ल.व ग्ञिस्. किय. द्वुस् मु ग्सल् वर्. व्येद्[३] ॥
छ ददङ ल्दन् पऽि स्क्येस् वुऽि स्न चें लस्. व्युङ शिङ ।
२३ म्छन् दङ ल्दन् पऽि पयग्. र्ग्य लस् नि. दे. सेम्स्. ग्चिग् ॥
ग्सुग्स् सोग्स् द्ङोस् पोऽि. छोस् नंम्स्. दे. यिस् म्दोग्.
व्स्ग्युर. नस् ।
शि.व्र दङ व्चस् मन् ङग् गिस्. नि. ग्र्स्. पर् , व्य ॥
ऽोद्. ग्सल्. व. यि. छोस् ञिद् दे नि. ङेस्. म्थोङ ङे[४]-नस् ।
२४ व्ल मऽि. दुस् थव्स् व्स्तेन् प दे. नि छेर्. र्तोग्स्. ल ॥
शेस् रव् फ रोल् फियन्. दङ म्दो. ग्ग़न्. लस्. ञोंद्. चिङ ।
कुन् ल स्व्यर् वऽि. सेम्स्. नि. रव्.तु व्स्गोम्.पर व्य ॥

अहो स्थिर-भूमि मे बाहर से ना जो सद्वचनयुक्त,
राजदडतोडक पुरुषके पकडने-सा ॥

१९. वितप्त लोहाकुश से प्राणवायु को पकड,
उवलते पात्र के मुँहमे डालना जैसा दुसह ।
अहो स्थिति-रीति जान भी हीन आचरण करि,
जिमि राजासन से उतर कूडा वुहारै ॥

२०. कुछ न समझ महासुख छाडि, सांसारिक सुखोके स्वाद ही मे बँधा ।
अहो अपने चित्त को निष्प्रपच देखि भागनेवालो को,
वेदना मे व्यवहारी योगी ॥

२१. मणि-रत्न पाकर वचन ढूँढने जैसा, व्यवहार किया नही हृदय-भूमि कभी ।
अहो डाकिनी गुह्य वचन ॥
बोधिचित्त-ग्रहण औ वोधिचित्त-अववोधन, सव्यवसाय औ अव्यवसाय ज्ञान॥

२२. सन्तोके मुखामृतसे सभूत, रवि शशि दोनोके मध्य प्रकाश करै ।
ज्वर-युक्त पुरुष की नासिकासे सभूत, लक्षणवती मुद्रासे एक-चित्त ॥

२३ रूपादि वस्तु के उन धर्मों से शकित होने पर, स-शाति उपदेश जानिये ।
उस प्रभास्वर धर्मता के अभिसमय से, गुरु-समय* का सेवन वड़ा समझै ॥

२४. प्रज्ञापारमिता औ अन्य सूत्र पा कर, सवमे युक्त-चित्त सुभाविन करै ।

---

* साक्षात्कार ।

फ़्यि.दङ नङ दु वुल्त व मेद् पऽि सेम्स् दे.नि।
गङ गिस् मि व्सम्.गङ ल यङ नि सेम्स् म.यिन्॥

२५ रङ[५] व्शिन् ग्नस्.प र्दो र्जे चे मोर्.गलु व्लङम् प।
व्दे छेन् ग्सत्र् ग्नङ ञल् व छु वो ल्त वुर्.व्स्गोम्॥
ऽदुस् पऽि छोग्स् सु स्त्रोम् प कुन् ग्यिन् ग्येङस् पऽि सेम्स्।
ऽफो दङ ऽजुग् प मेद् पऽि रङ व्शिन् वर्नन्.प ञिद्।

२६. सेम्स् क्यि स्ञिङ पो रङ द्गऽ वर् नि लंग्स्.व्तङ स्ते।
स्क्योन्.[६] प.ल्त वुऽि सेम्स् नि व्य व.दङ ञल् व॥
म्थऽ यिस्.म गोम् वे शेस्.दे नि.व्स्गोम्.पर्.व्य।
स्गोम्.दङ व्स्गोम्.व्य मेद् पऽि सेम्स् नि रङ व्शिन् ञल्।

२७. रे.दोग्स् मेद्.पऽि म्थर् थुग् प नि र्दो र्जेऽि सेम्स्।
30b द्म्यल्.वर् स्रोङ स्त्रिद्.न.यङ दे.ल स्डुग् व्स्ङन् मेद्॥
स्त्रिद्.दङ ऽञस.[६] वु म्छोग्.ल ग्नस् नयङ ल्हग् प.ञेद् मिन्.पस्।
व्दे दङ स्डुग् व्स्डल् ग्ञिस्.क्यिस् फन्.दङ ग्नोद्.स्पङस् नस्॥

२८. व्सङ दङ ङन् पऽि स्प्योद्.पस्.दे ल.ऽफेन् ऽग्रिव्.मेद्।
र्तोग्स् पऽि ये शेस् ग्ञिस् ञल् ऽदि.लम् ग्यु.यि द्रि.म.ञल्॥
गङ दुऽङ म ल्त.ये.शेस् छेन् पो.ञिद्[२] म्योङ व।
ऽखोर् वऽि.दुग् र्नम्स्.ग्यि.वर् नुस्.पऽि र्नल् ऽव्योर् पस्॥

२९. द्गे.स्लोङ ग्गु.ऽद्र.र्ग्यल् स्त्रिद्.कुन् ल द्वङ स्ग्युर.व्येद्।
मिग्.नि मि.ऽजुम्स्.व्स्गोम् दु मेद् पऽि र्नल् व्योर् प॥
द्वेन्.पऽि.ग्नस्.दङ ग्नस् मल् मेद् पऽि ग्नस्.ञिद् दु।
छग्स् दङ.स्डुङ.व स्पङस्.पऽि द्रि म[३] मेद् पऽि.यिद्॥

३०. दोन्.दम्.सेम्स् क्यि ङो वो दे.नि व्स्गोम्.पर् व्य।

ए.म. म्खऽ ऽग्रो ग्सङ वऽि स्कद्॥

द्क्यिल्.ऽखोर् व.दङ स्ब्यिन्.स्रेग् पस्.स्तोङ.शिङ।
स्डग्स्.दङ.फ्यग्.र्ग्य.रव् ग्नस् ल स्रोग्स्.र्नम् ञल्.व॥

बाह्य औ अन्तर दृष्टि के विना सो चित्त जिससे ध्यावै (वहाँ)
जहाँ चित्त नही ।।

२५. स्वभाव मे स्थित वज्रशिखर गीत गाना, गभीर महासुख की अविगत
नदी जिमि भावना ।
समाजो मे सर्वप्रपच से अलक्ष-चित्त, सक्रमण औ प्रवृत्ति विना दृढ
स्वभाव (हो) ।।

२६. चित्त-पार को स्व-आनन्द मे मत डाल, दोष जिमि चित को निष्क्रिय (करै)।
अन्त न चाहिए, वही ज्ञान भावना करै, ध्यान-ध्येय विना चित्त
निःस्वभाव ।।

२७. आशा-शका-रहित भूतकोटि है वज्र-चित्त, नरकगति भव* मे भी दुख नही।
भव औ उत्तम फल मे स्थित भी अधिक लाभ विना, सुख-दुख दोनो
मे हित-अहित (भाव) छोडि।

२८ गुह्य औ दुचर्या से उसकी प्राप्ति[3] नही, कल्पना ज्ञान
इस उद्वय से कारणगध नही।
महाबुद्ध चाहो तो मूढको जानै, निष्क्रिय मन से कही न ढूँढै जो ।।

२९ गुण न ढूँढि उन के विपक्ष से रहित, कारण और सब शास्त्र से ना वह पावै।
द्वेष-राग-रहित चित्त मे कारण का मल नही,
कही मत देख महाज्ञान ही अनुभव करै ।।
ससार विघ्न शमन समर्थ योगी ।

२९ भिक्षु, धनुष जिमि सर्व राज्य वश करै।
आँख मत वद कर भावना विना ही, योगी,
एकान्तवास औ शयनासन विना रहते ही ।।

३०. काम औ आसक्ति त्याग निर्मल मन ।
परमार्थ चित्त सोई भाव भावना करै ।।
अहो डाकिनी गुह्य वचन ।।
मंडल औ होम हजार एक ।।
मंत्र औ मुद्रा प्रतिष्ठा आदि के विना ।।

---

* जन्म, योनि।

३१. ग्युं दङ व्स्तन् व्चोस् कुन्. गिय. व्स्गुव् पर् मि. नुस्. पऽि ।
दों. जें.[४] ये शेस् ऽदि. नि रङ व्शिन्. ग्नस् न. म्जेस् ।।
ग्चिग् गिस्. गो वर् नुम् प. रिन्. छेन् व्र्द यि मछोग् ।
स्प्रुल् गिय ग्सोव् ल्तर ग्शन् ल. म्जेस् प योद्. म. यिन् ।।

३२ स्ङिङ पोस् स्ञिङ पो. मछोन्. प व्ल म म्छोग्. दग् लस् ।
तोंग्स् पस् ग्शन्. ल. म्छोन्. ते. दे ञिद् रङ ल. म्छोन्[५] ।।
नम्. म्खऽ. नोर्. वु ञि. म. ल्त. वुऽि मथु म्दऽ. व ।
थिग्. ले. ग्सुम् दङ यिद् द्रन्. प दङ द्रन्. मेद्. दङ ।।

३३ स्व्योर् वऽि. स्ग्र सोग्स् गङ लऽङ स्प्योद् पर्. नुस्. रुङ पऽि ।
ग्शेर् ऽग्युर्. चि ल्तर छोम् नंम्स्. थम्स् चद् रो. म्ञम्. ऽग्युर् ।।
लम् स्व्यङ व. ल ग्ञग्. मऽि. ये शेस्. ग्चिग्. पु. ग्चिग्[६] ।
लम् ञिद्. व्र्दस्. स्तोन्. प नि व्ल. म म्छोग्. दग् ल ।।

३४. ग्सुग्स्. स्ग्र. द्रि रो रेग् दङ छोस्. ल व्र्तेन् पर् व्य ।
छोस् नंम्स् थम्स् चद् व्र्येन् मेद् पर्. नि. स्क्ये. न. यिन् ।।
31*a* म स्क्येस्. प ल म्खस् स्कल्. ल्दन् दे दग्. गिस् ।
स्क्येस्. प. थम्स् चद् ल. नि. गुग्स्. क्यिस म्खस्. पर् ऽग्युर्[७] ।।

३५. थ मि दद्. पऽि ये. शेस्. खो न. ग्चिग्. पु ञिद् ।
रङ व्शिन्. ग्शग्. पऽि सेम्स्. क्यिस्. रङ ल स्व्यव् ऽग्युर् ।।
व्दग्. दङ ग्शन् दु. स्नङ वऽि रङ व्शिन् ग्चिग्. शेस् शिङ ।
दे. ञिद्. खो न. म येङ्स्. प. यिस्. योङ्स् व्मुङ स्ते ।।

३६. दे. ञिद्. सेम्स्. क्यि सुग्स्.[१] ग्विन्. फियर्. व्तङ नस्. क्यङ ।
गङ लऽङ ग्नन् प. मेद् पस् व्दे व लेन्. पर्. व्येद् ।।
सेम्स्. ल ग्नोद्. पऽि. लस् नि थम्स् चद् क्यिस्. स्तोङ शिङ ।
ञोंद् दङ लेन्. पऽि व्य व गङ गिस्. गोस् प. मेद् ।।

३७ चोंल् दङ व्रल् शिङ ग्नस् स्कव्स्. ग्लो. वुर्. क्येन्. मेद्. पर् ।
स्नङ व. स्न. छोग्स् फ्यग्[२] ग्यं. ऽदि. नि. ग्सिग्स्. मोर्. छे ।।

३१ कारण औ सर्व शास्त्र (जिसे) सिद्ध करने मे असमर्थ।
इस वज्रज्ञान स्वभाव मे स्थित सुन्दर।
एक के द्वारा जानने मे समर्थ रत्न उत्तम सकेत।
निर्मित रचना जिमि दूसरे को सुन्दर नही॥

३२ हृदय से हृदय मे प्रहारि उत्तम गुरुओ से।
अवबोध से दूसरे को प्रहारि सोई अपने को प्रहरै।
गगनमणि सूर्य जिमि समर्थ धनुष्।
तीन तिलक औ स्मृति से सहित-रहित मन॥

३३ प्रयोग शब्द आदि कही भी चर्या उचित।
कचन भूत औपधि जिमि सब धर्म* पदार्थ समरम होइ।
मार्गशोधमे निज ज्ञान ही अकेला एक।
मार्गसंकेत-कर्त्ता उत्तम गुरु॥

३४. रूप-शब्द-गंध-रस-स्पर्श औ धर्म का आलंबन करै,
सभी धर्म विना प्रत्यय× उत्पन्न।
अनुत्पन्न को भव्य सभी उत्पन्न के रूप मे पडित ने जान लिया॥

३५. अभिन्न ज्ञान सोई एक स्वभाव में स्थापित चित्त अपने मे व्याप्त।
स्व-पर मे भासित स्वभाव को एक जानि, तत्त्व को अनुद्धत (हो) धारै॥

३६. सोई चित्त का रूप है, अत छोडकर भी, जहाँ अमन्द सुख लेवै।
चित्त-अपकारी सब कामो से शून्य कर, लाभ औ लेना जिसे न चाहिए॥

३७ यत्नरहित क्षेत्र मे अवस्थित अकस्मात् विना प्रत्यय२, नाना अवभास
यही मुद्रा का महाप्रेक्षण।

---

* पदार्थ। × हेतु।

थम्स्. चद् थम्स् चद् ग्दम्. पऽि दुस् मु ञ्जोर् म्थोङ नस् ।
व्ल मर् म. ग्युर् छोम् नि गङ यङ योद् म यिन् ।।

३८ वर् स्नङ म्जुव् मोम् म्छोन् पम् वर् स्नङ म्थोङ व मेद् ।
व्ल. मस् म्छोन् पऽि व्ल. म. दे यङ दे व्शिन्. नो ।।
व्तुल् शुग्स् स्प्योद् पऽि र्नल् [३] ऽव्योर् व नि ग्रोङ ख्येर् सेम्स् ।
ग्यंल् पोऽि फो. व्रङ ऽजुग् चिङ वु. मो दङ च्रें यङ ।।

३९ स्क्युर् व स्ङर्, व्रोम् प यिस् स्क्युर्. व. म्थोङ व. व्शिन् ।
युल् र्नम्स् थम्स् चद् दे व्शिन् ञिद्. दु रिग् ।।
छोग्स् क्यि ऽख्रोर् लो. ञ्रो वर् वग्र्यन् पऽि ग्नम् ञिद्. दु ।
कुन् दु रु यि स्कव्स् मु व्दे. व. छे [४] म्थोङ नस् ।।

४० व्दे दङ दम् छिग् ल्दन् पऽि र्नल् ऽव्योर् र्नम्स् क्यिस् नि ।
ग्निद् दङ शि व म्ञाम् प ञिद् लेग्स् फ्यग् ग्यं छे ।।

ए.म. म्खऽ ऽग्रो. ग्सङ वऽि स्कद् ।।

ये शेस् स्क्येस्. पऽि र्नल् ऽव्योर् गर् लऽङ दोग्स् मेद् पम् ।।
द्वङ फ्युग् थव्स् दङ ल्दन्. पस्. म्थर्. स्क्येस् [५] व्चल् वर् द्य ।।

४१. द्मन पऽि. ग्रोङ ख्येर् शुग्म् नस्. गङ दङ म्थुन्. प ल ।
छुङ दु. छुङ दुस् ग्निद् चिङ छेन्. पो दे. ल. स्त्यिन् ।।
दे. यिस् व्स्ञोन् व्कुर् व्यस् पऽि जेंस् नि. जि स्ञोद्. प ।
व्दग् गिर् मेद् पऽि सेम्स् क्यिस् दे. ल. ग्तङ. वर् द्व्य ।।

४२ कुन् दु ऽख्यम्. शिङ म्छन् म रव् तु व्तंग्. व्य. स्ते [७] ।
रिग्स्. दङ ख. दोग् म्छन्. मऽि. छोग्स् क्यिस् रिम्. गेस्. द्व्य ।।
रङ गि वु. मो. म दङ स्रिङ मो छ मो दङ ।
ग्युङ मो. छोस् म स्मद् ऽछोङ ग्सो. रम्. क्यिस्. ऽछोव् ।।

४३ स्दो व्सङम् दङ नि. द्कर् शम् द्मर् सेर् स्मुग्. नग् म. ।
स्मे व. चन्. ल ग्युंद् स्व्यर्. स.ल. वऽि . फ्यग् ग्यं. नि ।।

31b व्चु. द्रुग्. लो. लोन्. रव्. तु म्जेस्. प स्क. सेर्. लि ।
उत्प. ल. यि. द्रिस्. स्यव्. नु. म स्र मङ्गोस्. केद्. प. फ्र ।।

सब को उतमकालमे उपदर्शन कर गुरु धर्म कोई नही ।।

३८. तर्जनी से लखाये अन्तरिक्ष दीखै नही, गुरु से लखाया गुरु तैसा भी ।
तैसा ही व्रत योगी नगर चिन्तै,
राजप्रासाद पइठि (राज) कन्या से क्रीडै ।।

३९. खटाई के हटने से पूर्व जिमि,
खटाई देखै सर्व-विषय तथतामे* जानै ।
गणचक्र के समीप ललाट मे ही, कुन्दुरु×,
आकाश-अवकाश मे महासुख देखि ।।

४०. संकेत औ सद्वचनी योगियो ने (देखा) भव
औ शान्ति के तुल्य शुभ महामुद्रा ।
अहो डाकिनी गुह्य वचन ।।
ज्ञान-उत्पन्न कही भी निशक योगी,
ईश्वर-उपाययुक्त अन्त्यजन्म (का) यत्न करै ।।

४१. हीन नगर मे बैठि जिसके सपक्षमें,
उस महान् को थोड़ा-थोडा बचा देना ।
उससे उपासित जितना द्रव्य,
आत्मा नही उसे चित्तसे वहाँ छोडै ।।

४२. सर्वभ्रामक लक्षणा भले निरखै,
जाति वर्ण लक्षणा की गोष्ठीसे परिपाटी जानै ।
अपनी कन्या माता भगिनी नतनी औ डोमनी रजकी वेश्या दरजिनी ।।

४३. पथरकटिनी औ श्वेतपटी।लाली पीली धूँधली काली,
तिलवाली संततियुक्त सुकर मुद्रा ।
षोडशी अतिसुदरी पीतकेशी, उत्पलगधी, कठोरकुचा तनू-उदरा ।।

---

*वास्तविकता । ×भग, आकाश ।

४४ स्मद्. क्यि. श ेङ ग्यॅस् भ ग रुब्. चिङ छगस् पऽि म्दङस ।
क्युॅद्. म्दङ ब्चस् ग्मङ थुब् गुस्. पस् रब्. नु. ग्श ोल् ॥
दद्. प. रब् तु ब्र्तन् गिङ र्तोग्. प. छुङ ग्युर्. प ।
र्तग्स् ग्सुम् ल्दन् पऽि. फ्यग्. ग्य. दब्ङ. गिस्[१]. स्मिन्. पर्. द्ब्य ॥

४५ योन्. तन्. ब्सुङ न रङ गिस् रिग्. पऽि. ये शेस्. स्व्यन् ।
स्कब्स् सु. रो. स्ञोम्स्. ग्ञ ुग् मऽि ये शेस्. फ्यग् ब्र्ग्य ब्सुङ ॥
ब्चुन् मोऽि शु क्र द्गुग् पऽि. फ्यग् र्ग्य छेन्.मो. नि ।
दुस्. क्यिस् ब्स्ड ु ब व्यस् नस्. र्तोग्. मेद्. म्खऽ. ल. लस्ति. म ॥

४६ रेस्. ऽगऽ. छोङ दुस्. ग्नस्. न जि ल्तर् ऽदुग्[२] ।
दोन्. ग्यिस् दोन्. लं ब्ल्तस् नस् दोन् ञिद् गर्. द्गर्. ब्तङ ॥
रेस् ऽग्ऽ दुर् ख्रोद् गुग्स् नस् स्ग्रोन् म दग्. ल. स्प्योद् ।
ञम् ङ मेद् पऽि सेम्स्. क्यिस् यि. दग्स्. ग्नस् सु. ञल् ॥

४७ ग्दोल्. प. र्नम्स्. दङ. ऽग्रोग्स्. तो रो. यि ऽखोर् लो. ब्रङ ।
दि. ब्य.मेद् पऽि स्प्योद्. प. छद् दु[३] ग्सुङ. मि. ब्य ॥
ग्लु. गर्. ग्लिङ बु र्चेद्. ऽजो. रोल्. मोऽि छोग्स्. सु. ऽजुग् ।
हे.रु.क.यि. गर् दङ. द्रुग्. ल स्क्येस्. सोग्स्. ग्लुस् ॥

४८. सेम्स्. ल ग्सेङस्. ब्स्तोङ चुङ. सद् स्क्यो. बर्. मि. ब्यऽो ।
ग्यॅब्. तु ल. ब. ब्गो. ग्िङ यन्. लग् सङस्. मस्. स्प्रस् ॥
ऽखोर्. लो ल्दन् पऽि थोर्. छगस् स्प्यग्[४]. चुग् दग्. तु. ग्मुङ ।
रुस्. पऽि. दुम् बुस्. यन् लग्. कुन् ल. ब्र्ग्यन्. ब्यस्. नस् ॥

४९. ग्लङ. छेन्. स्तग्. गि पग्स् पस् स्तोङ दङ स्मद् द्क्रिस्. ते ।
ख ट्वां (ग). द्रिल्. बुर् ल्दन् प. लग् तु. थोग्स् पर्. ब्य ॥
ग्लङ. छेन् स्म्योन् पऽि स्प्योद्. प. ल्कुग्स् प. ब्यस्. नस्. नि ।
ब्य मेद्. मि. ब्य. मेद् पऽि स्प्योद् प. रङ श ुग्स्. क्यिस् ॥

५०. ग्लङ. छेन्. म्छ ो. रु. श ुग्स् ऽद्र तंग् तु. स्म्योन्. सेम्स् क्यिस् ।
द्मन्. पऽि छोस्. र्नम्स् स्प्यद्. न ग्रोल् बर्. म्दऽ ब्स्मुन्. स्म्र ॥

४४. विपुल भग योनि प्रहारि रति कान्त,
तात्रिकी-सहित गुह्य सेवन मे अतिनिम्न ।
अति दृढ़ श्रद्धा कर कल्पना मे क्षुद्र हो,
त्रिलिगी मुद्रा के वश परिपक्व होइ ।

४५. गुण-ग्रहण करि स्वयं विद्या-ज्ञान देइ,
अवकाश-समरस निज ज्ञान मुद्रा गहै ।
रानी का शुक्र खीचै महामुद्रा,
काले सग्रह करि निर्विकल्प आकाशे लीन होइ ॥

४६. कभी हाट के स्थान मे ऐसा रहै, अर्थ से अर्थ को देखि ही नाचै-उच्चाटै ।
कभी श्मशान मे बैठि दीप बारि, निर्भय चित्त से प्रेत-स्थान में सोवै ॥

४७ चडालो का साथी सुख से चिता-चक्र शीतल करै,
इस क्रिया विना चर्या का प्रमाण नही ।
गीत नृत्य वाद्य क्रीड़ा गन्धर्व-समाज में प्रविशै,
हेरुक के नृत्य आदि के गीत से ॥

४८. चित्त को ऊपर उठा जरा भी खेद ना करै,
पीठ मे कस्तूरी लगा अग ताम्र से रचै ।
चक्र की शिखा सामान्य चूडा में धरै,
अस्थिखड से सारे अग को भूपित करै ॥

४९. हाथी वाघ का छाला ऊपर औ नीचे लगा, खट्वाग घटा हाथ मे धरै ।
मस्त हाथी की चाल से जड वन निष्क्रिय अनिष्क्रिय चर्या में स्वय वैठै ॥

५०. सरोवर मे वैठे गज-सा सदा विक्षिप्त-चित्त,
हीन धर्मों को आचरि मुक्त होइ सरह भणै ।

ए म म्खऽ ऽग्रो गसङ बऽि. स्कद् ।।

स्न छोग्स् छोस् नंमस् थम्स् चद् रो. ग्चिग् पर् ।
स्तोन् पर् व्येद् प. व्ल म [6] दम् प ञिद्. यिन् ते ।।

५१. दङ पऽि म्छु दङ म्छुङ.स् पऽि र्जे व्चुन्. मछोग्. दे. नि ।
गुस् पऽि सेम्स् क्यिस् ग्चङ मऽि स्त्रिय. वोर् व्लङ. वर्. व्य ।।
ग्चिग्. तु. व्स्दुस् पऽि. सेमस् नि. म्छोन् व्येद्. व्ल. म. स्ते ।
म्छोन् पर् व्य. वऽि ग्शि नि स्तोव्. पऽि स्ञिङ ञिद्. दो ।।

५२ दे र्तोग्स् प. [7] यिस् स्दुग् व्स्डल् थमस् चद्. स्कद् चिग् ल ।
32a जोम्स् पर्. व्येद् पऽि द्पऽ वो. दे. नि द्रिन् चन् पस् ।।
दोन् ल व्ल्तस् नस् व्यस् प. द्रिन् दु ग्सो वऽि फियर् ।
स्मन्. पऽि र्ग्यल् पो दे. नि र्तग्. तु ग्सुङ वर् व्य ।।

५३ ऽखोर् वऽि ग्. य म्छो सव् चिङ ग्यु [1]. छे लस् ।
स्ग्रोल् वऽि. ग्रु म्छोग् दे नि ग्ञन् मेद् दे ।।
दम् पऽि ग्रु ल. व्र्तेन् नस्. व्दे. छेन् ऽोद्. ग्युर्. पऽि ।
स्तोव्स्. छेन्. ग्ञोन् प. दे. नि. ग्यो. मेद्. कुन् ग्यिस्. व्कुर् ।।

५४ ये शेस्. ञि. म. ल्त. वुऽि ऽोद्. स्र्. दग् प. यिस् ।।
म रिग्. पर्. व्येद्. पर्. पऽि स्क्येस् वु म्छोग्. दे. नि[2] ।।
ग्सेर्. ग्युर्. चि ल्तर्. छोस्. नंम्स् थम्स् चद् व्दे वर्. स्ग्युर्. म्जद् पऽि ।
थव्स् ल. म्खस. प ऽखोर्. लोस् स्ग्युर्. ग्. यल् र्तग्. तु. व्स्तिन् ।।

५५. छ. वो ल्त. वुऽि. सेम्स्. क्यिस् ग्ञिस् ल्त. सिल् ग्नोन्. चिङ ।
गङ यङ. म. स्पङस्. गोस्. प. मेद्. पऽि ये शेस्. ल्दन् ।।
व्लो. म. व्चोस्. शिङ.[3] व्लो. यि नंम्. प ग्नस् ग्युर्. प ।
व्ल. म. दम्. पऽि. शल्. ग्यि. व्दुद्. चि. लस् नि. व्युङ ।।

५६. सेम्स्. दङ सेम्स्. लस् व्युङ. शेस् थ स्ञद् प. नंम्स्. क्यिस् ।
व्र्तग्. प ऽदि नि. नंल् ऽव्योर् प यि ग्रोम्स्. नंग्स् सु ।।
स्ग्युर् वर् व्येद् प वल्. मऽि शल्. ग्यि. पद् मो स्ते ।
थम्स्. चद् [4] द्गे. वऽि व्शेस्. सु. व्स्ग्युङ. व दे. लस्. व्यङ ।।

अहो डाकिनी गुह्य बचन ।।

धर्म नाना, (पर) सबका रस एक देशना करता सद्गुरु है ।।

५१. हंस-चचु तुल्य महाभट्टारक उसे गौरव-सहित शिर पर लेवै ।
एकाग्रचित्त लखै (सोई), गुरु लक्ष्य वस्तु शिष्य का हृदय है ।।

५२. वह समझै सारे दु ख को क्षण मे, नाश करै उसे, वीर नायक है ।
अर्थ देखि दया करने के लिए, दया वह वैद्यराज सदा धारै ।।

५३ गभीर संसार-सागर महाकारण से, तारक नाव उत्तम सोइ अन्य नही ।
सुनाव के आश्रय महासुख पाने का, महावल अचल मित्र सोई पूजै ।।

५४. सूर्य सम ज्ञान की शुद्ध प्रभा से, अविद्या का अन्त करै उत्तम पुरुष सोई ।
सुवर्ण जिमि सारे धर्मो का सुख मे परिवर्तक,
उपाय-चतुर चक्रवर्ती (को) सदा सेवै ।।

५५. नदी जिमि चित्त से द्वैत-दृष्टि का पराभवकारी,
कुछ भी न छाड़ि (सो) निर्लेप ज्ञानी ।
बुद्धि ना मथि बुद्धि के आकार मे स्थित, सद्गुरु के मुखामृत से सभूत ।।

५६ चित्त औ चेतसिक व्यवहारो से, यह (है) परीक्षा योगी की मित्रो मे ।
परिवर्तनकारी गुरुमुख कमल,
सारे कल्याणमित्रो मे परिवर्तन उमसे होवै ।

५७. ग्युद् नंम्स् कुन् दु.स्प्रस् शिङ थ.स्नाद् क्यिस्.द्वन् प ।
सङस् ग्र्यस् नंम्स्.क्यि ग्सङ.व मुस् क्यङ शेस् मि ऽग्युर् ॥
मन् ङग् मिग् गिस् म्थोङ शिङ द्वङ वऽि रस्.ख्यब्.प ।
ग्वुस्.क्यि.ड्ल् ल रेग् न.ये शेस् रिग्[५] पर् ऽग्युर् ॥
५८. स्न.छोग्स् द्ङोस् पोऽि छोस् ल.स्तोङ पऽि.म्द . ऽफेन्.दङ ।
स्तोङ प.स्नङ वऽि थब्स् क्यिस्.म्योङ वर् ऽग्युर् व्येद् प ॥
शेस् रब्.शेस् पस् स्नङ व.ग्शल् व्यर् म्थोङ व स्ते ।
शेस् रब् दे.नि.ब्ल मेद्.स्लोब् द्पोन् दग् लस्. ऽब्युङ ॥
५९ ञोन्. मोंङस्[६] थम्स्.चद् थब्स्.क्यिस् म्छोग् तु स्ग्युर्.व्येद्. दङ ।
र्तोग् पऽि स ु ग्. ड ु.गङ. गिस्.स्ग्युर् वर् मि.नुस् प ॥
ऽदि नि.मन् ङग् रिङ पो लस् नि.ङेस् ऽब्युङ दङ ।
दे.यङ जें.ब्चुन् मथु लस् ङेस् पर् ञोद् पर् ग्युर् ॥
६०. दे.फ्यिर् ग्युद्.पर् ल्दन्.पऽि ब्यिन् र्लब्स्.गङ ल्दन् प ।
32b दुस् थब्स् ब्स्तेन्.प म्खस् पस् र्तग् तु.ब्स्तेन् पर्.ब्य ॥

ए म. म्खऽ ऽग्रो ग्सङ वऽि. स्कद् ॥

थब्स् दङ शेस् रब् रङ् ब्शिन्.म्ञाम् प ञिद् र्तोग्स.नस् ॥
६१. ऽोद् ग्सल् लस् नि ल्हन् चिग् स्क्येस्.प.ञेद् पर् ऽग्युर् ॥
रल व ग्यंस् ऽद्र व नि.गोम्स् प लस् ब्युङ स्ते[१] ।
ग्सल् वर् ब्येद् प.सा लु र.लऽि ऽोद् ऽद्रर्.स्प्योद् ॥
द्ङोस्.ग्रुब् कुन्.ग्यि चें.ङ दों जें स्लोब् द्पोन्.यिन् ।
६२. लेग्स्.पर् स्व्यङस् प ग्यु ञि.द् ऽन्नस् वु.कुन् ग्यि लुस् ॥
ब्दे वर् ग्शेग्स् पऽि ब्कऽ.दङ म्थुन् पर्.ब्य वऽि फ्यिर् ।
ब्यङ् छुब्.सेम्स् द्पऽ ब्दे वऽि.म्गोन्.पोस्.[२] लेग्स्. ग्सुङस्.प ॥
छोस्.क्यि.स्कु.दङ लोङस्.स्प्योद्.जोंग्स् दङ स्प्रुल्.पऽि स्कु ।
ङो.वो.जिद्.क्यि.स्कु.नि ग्यु ऽन्नस्. रब्.शेस्.ब्य ॥
६३. स्गो.स्कुर्.ग्ञिस् क्यिस्. स्तोङ व.ग्ञिस्.मेद्.छोस्.यिन् ते ।
ङो.वो.ञिद् क्यि.ब्दे.व.दे.नि.लोङस्.स्प्योद्.छे ॥

५७ सारे तत्रों में रचि व्यवहार से एकान्त, बुद्धो का रहस्य कोई ना जान ।
उपदेश-नेत्र से देखि वशिता-पट-व्याप्त, चरणधूलि स्पर्श करि जानै ।।

५८. नाना वस्तु धर्म पर शून्य वाण फेकि, शून्य-भासी उपाय से अनुभव करै ।
प्रज्ञा-ज्ञानसे प्रभासित प्रमेय देखै, सो प्रज्ञा अनुपम आचार्योंसे होवै ।।

५६ सर्व क्लेश उत्तम उपायसे परिवर्तन कर, समझ शल्य जो न परिवर्तन करै ।
यही उपदेश हृदय-निर्गत औ, सोई भट्टारक* प्रभावसे निश्चय पावै ।।

६०. अत तत्रधारी अधिष्ठान-पूर्ण, हो समय-उपाय-धर पडित को सदा अवलबै ।
अहो डाकिनी गुह्य वचन ।।
प्रज्ञा-उपायके स्वभावको समता समुझि, प्रभासे सहज को पावै ।।

६१. भावनासे विपुलचद्र-सा हो, प्रकाशशाली रवि-शशि-किरण सदृश आचरै।।
सर्वसिद्धि मूल (है) वज्राचार्य, सुधौत सर्व-हेतु-फल शरीर ।।

६२. सुगत-वचन के अनुसार क्रियार्थ के लिए, सुख-स्वामी वोधिसत्त्व-सुभाषित ।
धर्मकाय सभोग औ निर्माणकाय, स्वभाव-काय ही हेतु-फल मूल जानै ।।

६३ पक्षबन्धन अभ्याख्यान उभय शून्य अद्वय धर्म मे, स्वभाव सो सुख-महासभोग ।

---

* गुरु, दृढसकल्प, हेरुक ।

स्न.छोग्स्.प यिस्. ऽग्रो.व. थम्स्.चद्[३]. स्ग्रुल्.प.लस् ।
द्व्येर्.मेद्. येशेस् ञिद्. नि. कुन्.ग्यि व्दग् ॥

६४. स्क्येद्.पर् व्य. दङ ब्येद्.पऽि रङ.व्शिन्. मि.द्मिगस्. क्यङ ।
गोम्स्.पऽि. म्थु.यिस्. दोग्स्.प. थम्स्.चद्. सिल्.म्नन्.नस् ॥
ऽग्रस्.बु. ग्ञिस्. नि. रङ. दङ'. ग्शन्. दोन्. कुन्.छोग्स्. यिन् ।
ग्युं दङ. ऽग्रस्.बुर्[४]. व्तगस् . क्यङ . ङो.वो. दे. द्व्येर्.मेद् ॥

६५ स्मोन्.लम्. स्ञिङ.जें. स्तोव्स्.क्यिस्. ग्सुग्स्. स्कु नम्. ग्ञिस्. ऽव्युङ ।
वुम्.प. व्सङ. द्पग्.व्सम्.शिङ. दङ. नोर वु. रिन्.छेन्. ल्तर् ॥
गङ गिस्. व्सुङ व.मेद्.पऽि स्कु. नि रव्.तु. म्जेस् ।
ग्दुल्.व्य.नम्स्.ल. स्न छोग्स्प यि. ग्सु ग्स[१]. शर्.वस ॥

६६. दे.दग्. थम्स्.चद्. व्सम्. मि. ख्यव्. (प) स्ग्रुल्.प. स्ते ।
व्सम्.दु.मेद्.पऽि. ये.शेस्. रङ.व्युङ. गङ. व्स्गोम्.प ॥
देर्. नि ऽग्रस् वु. म लुस्. व्स्गोम् पर् ग्युर्.व. यिन् ।
थेग्.प छेन्.पो व्ल.मेद्. स्ञिङ्.पोऽि. लम् ऽदि. नि ॥

६७. ऽग्रस्.वु. लम् दु. ख्येर् नम् ग्दोङ नस्. ऽग्रस् ग्नस् ।
ग्शन् दोन्. फुन् सुन् छोग्स् प ऽग्रस् वुऽि म्छोग् यिन्. ते ॥
स्व्यङस् प ग्चो वोर् ग्युर् प. सोग्स् लस्. दे. नि ऽव्युङ ।
ग्रोल् व. छेन्.पो. लस् स्व्यङस् रि.व.मेद्.पऽि सेम्स् ॥

६८ ग्युन्. मि.ऽछद्.पऽि म्थु लस्. ङेस् प. ञेद् पर्. ग्युर् ।
स्क्येस् वु ख्. नि. छेन् गङ ल. ल्ह जंस्. ऽदि. स्क्येस्.पस् ॥
ग्दुङ.प. म.लुस्. थम्स्.चद् स्कद्.चिग्. ङोर्. शि. थिम् ।
सेङ गे. ग्लङ छेन्. स्म्योन्. दङ स्तग्. दङ. व्रेद् मो. दङ ॥

६९. ग्चन्.सन्. ख्रो.वो ढुग्.स्व्रुल्. मि. दङ. ग्यङस् (प.) दङ ।
ग्येल्.पोऽि. छद्.प. ढुग् दङ. थोग् दङ ल्वे ऽव्व् प[१] ।
थम्स्.चद्. ङो.वो. दे. ञिद्. यिन् फ्यिर्. ग्नोद् प.मेद् ।
नम्.तोंग् द्ग्र छेन्. छोम्स् पस्. द्ग्र. ऽदि. थम्स्.चद्. छोम्स् ॥

नाना जगत् सब निर्माण से (हुआ), अभेद ज्ञान ही सबका आत्मा ॥

६४. उत्पाद्य-उत्पादक का स्वभाव न पाते भी,
भावना शक्ति से सब नाश करि ।
उभय-फल है स्व-पर के अर्थ सपत्ति,
हेतु-फल की परीक्षा भी उसके भाव से न भिन्न ॥

६५. अधिष्ठान करुणाबल से रूप-काय द्विविध हुआ,
भद्रकलश, कल्पवृक्ष औ मणिरत्न जिमि ।
न धरने की जो अतिसुन्दर, विनेयो[1] की काया नाना रूप उद्गमन से ॥

६६. वे सर्व अचिन्त्य तारण है, चित्त मे नही ज्ञान जो स्वयभू भावना ।
वही अशेष फल भावित है, अनुपम महायान-सार का यही मार्ग ॥

६७. मार्ग में फल को लेजा सामने फले स्थित,
अन्य के अर्थ सम्पन्न फल-उत्तम है ।
मुख्य भूत हो घोष आदि से यही हुआ,
महामोक्ष से घोष इच्छा विना चित्त ॥

६८. अविच्छिन्न स्रोत की शक्ति से अवश्य पावै,
पुरुष महाछाग जिससे यह हव्य उपजै ।
अशेष व्याल सब उपशम-मग्न, सिह गज पागल बाघ औ भालू ॥

६९. श्वापद तीव्र आशीविष मानुष औ उलूक,
राज-निग्रह विष छत औ जिह्वा निपात ।
सर्व वस्तु सोई होने से हानि नही, महाशत्रु लुटेरा दुश्मन यह सबको लूटै ॥

---

१. शिष्य, साधक ।

७० ब्दग् ल्तऽि ग्दुग् प थुल् वस् ग्दुग् प. थम्स्.चद्. थुल् ।
दे फ्यिर्. सेम्स् क्यि नोर् बु ऽदि. नि. दम् पर्. ब्योस्. ॥
ऽग्रे म म्खऽ ऽग्रो. ग्सङ वऽि. स्कद्[२] ॥

स्कु दङ ग्सुङ. दङ. थुग्स् क्यि. ग्सङ व. गङ रिग् प ।
स्क्येस् बु दे ल. ग्दुग् पऽि ल्कुग्स् प योद्. म. यिन् ॥

७१ 'लस् नॅम्स् गङ लऽङ द्गे दङ स्दिग् प ग्ञिस् र्तोग्स् प ।
गङ गिग् चॅोल् व. दे नि ग्दुग् पऽि स्व्योर् वर् ब्गद् ॥
गङ सग् गिस्. स्प्योद् दे नि रङ गिस् रङ[३] ब्चिङस् पऽो ।
मोस्.प र्ग्रुन् छुग्स् प यि नङ वियस् ऽखोर् वर्. ल्तुङ ॥

७२. र्तोग् गिस् द्गोस् प मेद् चिङ स्ङ मस् छोग् पर् सद् ।
गङ.ल द्मिग्स् क्यङ द्मिग्स् प दे यिस्. थर् प. स्ग्रिव् ॥
ब्सङ पोर् र्तोग्स् क्यङ दे यि नद् वियस् ऽखोर् वर् ल्तुङ ।
द्मन्.पऽि लस् ल[१] ब्र्तग् र्न नम् स्मिन् ग्र्युन्. मि.ऽछ्द् ॥

७३. ब्तग्. प. मेद् पऽि सेम्स्. नि नम् म्खऽ ल्त बुर् ग्नस् ।
नम्.म्खऽ ग्नस् प मेद् प दे ञिद् थ स्ञाद् व्रल् ॥
व्रल्.वऽि. सेम्स् ल ब्र्त. दङ द्प्यद्.प मि द्गोस् विय ।
रङ ब्गिन् ग्शग् प जि ल्त बु. ञिद् दे ल्त ञिद् ॥

७४ व्रस्.बु[५].थोग्स.प मेद प ग्दोद् नस रङ ल. ग्नस्
दे पियर्. रे दङ दोग्स् पऽि ग्ञोन्.पोस् छिङ मि. द्गोस् ॥
ब्र्द. दङ थ स्ञाद् ब्तग्स् प कुन् क्यङ. दे.ब्शिन्. ते ।
यङ दम्. म यिन् यिन् प. म्खस् प कुन् ग्यि. युल् ॥

७५. र्ग्यु. दङ्. ऽव्रस् बु द्ब्येर्.मेद् ऽदि नि. स्ञिङ पोऽि. सेम्स्[६] ।
दे. म्योङ व यि ऽब्द् पस्. कुन् लस् ब्चल्. मि द्गोस् ॥
दम् प ब्स्तेन् दङ. ञोन्. दङ थोस् प. ल्हुर्. लेन् दङ ।
योन् तन्.द्बङ लस्. ऽव्युङ गॆस् व्यिन् र्लब्स् नोद् प. दङ ॥

७६ तिङ ऽजिन्. ब्लोर्. ग्गन् नस् नि स्व्योर् दङ स्गोम्.प दङ ।
फन्. ङेस्. स्ङोन् ड्ु. सोङ नस् ब्र्तुल्.ग ुग्स्.[७] गङ. स्प्योद्. प. ॥

७०. आत्मदृष्टि-विष के दमनसे सब विष दमित, अत यह चित्त-मणि उत्तम करै।
अहो डाकिनी गुह्य वचन ॥
काय वाक् मन के रहस्य को जो जाने,
उस पुरुष को व्याल (से) जड होना नही ॥

७१. कर्म जिन्हे पुण्य औ पाप दो समझै,
जो व्यायाम सोई व्याल-योग कहिए।
पुद्गल[२] करि सोई अपने आप बद्ध,
अविच्छिन्न अधिमोक्ष भीतरी भव मे गिरै ॥

७२ कल्पना स अनिच्छुक पहिले ही गण मारै,
जो उपलब्ध भी उस उपलब्धि से मोक्ष ढँकै।
भले समुझि भी उसके रोग से ससार मे गिरै,
हीन कर्म को परखै तो परिपक्व सन्तान अविच्छिन्न ॥

७३. ख-सम निर्विकल्प चित्त रहै, गगन (सम) न रहे सोई व्यवहाररहित।
विरहित चित्तमे कल्पना औ परीक्षा नही चाहिए,
स्वभावस्थापना जैसे (हो) तैसे ही ॥

७४. फल अव्याहत प्रथमसे अपनेमे रहै,
तिससे आशा औ शका प्रतिपक्ष से बँधे नही।
संकेत औ व्यवहार सब परीक्षा भी वैसी,
असम्यग्[३] होना सब पडित का विषय ॥

७५. हेतु-फल अभिन्न यही है सार चित्त,
इसे अनुभवके प्रयत्नसे सर्वत्र ढूँढिये।
सन्त-सेवन, उपश्रवण मे तत्परता औ, गुणवश सभूत यह अधिष्ठान-हानि औ ॥

७६ समाधि वुद्धिमे अन्यसे प्रयोग औ भावना,
हित निश्चय करि पूर्व-गतिसे व्रत जो आचरै।

२. व्यक्ति। ३. बेठीक।

दे दग् थम्स् चद् लोग् तोंग् व्चोस्.म ल स्प्योद्. यिन् ।
स्ञिङ पोऽि सेम्स् नि स्क्योन्. दङ योन् तन् नंम्स् दङ व्रल् ।।

७७. दोन् दे ञिद् नि. व्य व गङ ग्रङ मि द्गोस् क्यि ।
व्य.व व्तङ वऽि. सेम्स् नि व्दे व छे म्छोग् ञिद् ।।
लङ रिग् ल सोग्स् ग ऽदोद् ग्दोन्.ग्यिस्[1] सिन् ।
द्ङोस् पोर् ऽजिन् पऽि दुग् गिस् रङ गि सेम्स् ल. स्यव् ।।

७८. फ्यि.रोल्. स्पङस् पऽि सेम्स् नि नङ दु. ऽजोग्.प चन् ।
स्ञिङ पो ल स्प्योद् नंमस् क्यिस् ऽदि ञिद् व्सम् पर् रिग्स् ।
तोंग् गे. स्प्रोस् पऽि. स्वुन् प फ्यिर्. व्सल् नस् ।
ग्ञुग्. मऽि. द्वङ पो दग्.लस् स्क्येस्[2] प यि ।

७९. दोन्. ग्यि स्ञिङ पो व्ल.न मेद्.प ऽदि ।
तोंग्स्.पस्. व्चु.व्शिऽि स ल. ग्नस् पर. ऽग्युर् ।।
नंल्.ऽब्योर्. ये शेस् छेन् पो. गङ ऽदोद्. प ।
रिम्. दङ. चिग् चर्. ऽजुग् पऽि. रिम्.छोस् क्यिस् ।।

८०. ये.शेस्.म्छोग्.गि. गो.फङ स्ञिङ पो.नंम्स् ।
ब्कोद्.पस्. ऽग्रो[3].नंमस् फ्यग्.गंय.छे. थोव्. शोग् ।।
स्ञिङ् पो. ब्ल न मेद्.प. ग्तन्.ल द्वव् प दो हृ. म्जोद्. चेस्. ़्य. ब,
नंल् ऽव्योर्.क्यि. द्वङ फ्युग् द्पल् स.र हृ.पस्. म्जद् प जोंग्स्. सो ।।
।। ग्र्य.गर्.ग्यि म्खन्.पो. वज्र.पाणि. दङ्. ब्ल.म श्र सुस्. शुस् ।।

ये सब उलटी समझ कृत्रिम चर्या[1] है, सारचित्त(तो है)गुणदोषविवर्जित ।।

७७. सोई अर्थ-क्रिया[2] कुछ नही चाहिए, क्रिया-रहित चित्त महासुख उत्तम (है)।

पच विद्या आदि राग-द्वेष रज्जुसे बँधा ही,

धारा विष अपने चित्तमे व्याप्त ।।

७८. बाहर क्षिप्त चित्त भीतर निक्षेपी, सारत चर्याओसे यही ठीक चिन्तन ।

अवबोध-प्रपच के भुस को बाहर फेकि, निज इन्द्रियो से (जो) उत्पन्न ।।

७९. अनुपम यह अर्थ-सार, अवबोध कर चौदह भुवन मे रहै ।।

योग महाज्ञान जो चाहै, क्रम औ सद्य प्रवेश क्रमधर्म से ।

८०. उत्तम ज्ञान का कपाट सारोंसे विरचित, जगतके लोग महामुद्रा पावै ।।

इति अनुत्तरसार निर्णय दोहाकोश नाम योगीश्वर श्री सरहकृत समाप्त ।

भारतीय पडित वज्रपाणि औ गुरु असु द्वारा अनुवादित ।

---

१. व्रत, साधना। २. वास्तविकता की कसौटी है—वस्तु का अर्थयुक्त क्रिया में समर्थ होना।

४. क. ख. दोहा

(भोट, हिन्दी)

४(क). क. ख. दोहा

(भोट)

व्चोम् ल्दन् ऽदस् द्पल्. हे रु क ल फ्यग्.छल् लो ।

61.१. **क.** नि युम् ग्यि. पद् मऽि नङ दु ग्नस् प. ऽदि यिन्. ते ।
लुस् नि र्नम् पर् व्चिङस् शिङ व्दुद् र्त्सि. ऽजुग् ॥
म्गुल् नस् स्युद् पऽि[3] ङो त्वि ग्शोन् नु म ।
ग वुर् ऽजुग् चिङ ऽदि. नि. प्यिद् कऽि यल् ग. यिन् ॥

२. **ख** नि. नम् म्खऽ ग्नस् पर्. द्प्रल् वऽि स्तोङ प स्ते ।
द्गोस्. दङ मि द्गोस् म गोस्. ग्चेर्.वु ल ॥
स. शिङ ऽथुङ यङ म्य ङन् ऽदस् ल. गनस् ।
र्नल् ऽव्योर्. ग्चेर् वु. व्जुङ नस् शिन् दु द्गऽ ॥
नम्[4] म्ख.दग्. नि. स्व्यव्.चिङ. व्र्तन् ग्युर् पऽो ।

३. **ग.** नि नम्.म्खऽ ऽजो शिङ. जो शिङ् ऽयुङ व्र् व्येद् ॥
ग गा. य मु.न ग्ञिस् नि. लेग्स् पर् छिङस् ।
स्त्रिद् ल व्र्तेन् ते ऽग्रो. ऽोङ ऽछद् पर. ऽग्युर् ॥

४ **घ.** नि. द्रिल् वुऽि स्त्र यिस् द्पल् ल्द्न् हे रु क नि. म्ञोस् ।
व्दग् मेद् म यिस्[5] म्गुल् नस् यङ दङ यङ दु. ऽख्युद् ॥
र्नल्.ऽव्योर् म.यिस् लुंङ र्नम्स्. यङ नस् यङ. दु. ऽफो ।
ख्यिम् व्दग् मो नि ग्ञुग्.मऽि यिद् क्यि दङ ल ऽफो ॥

५. **ङ** नि ग्ञुग् मऽि रङ व्गिन् रङ व्गिन् ग्यिस् नि स्तोङ ।
ग्ञुग्.मऽि. ख्यिम् व्दग् मो ल. द्गे दङ मि द्गे मि ऽफो शिङ ॥

---

*स्तन् ऽग्युर् ,ग्र्युद्, शि. पृ० ५ख ३–५७ख २।

४(ख). क. ख. दोहा

(हिन्दी)

नमो भगवते श्री हेरुकाय ।

१. क-का (कुलिश) मातृकमल मध्ये स्थित यह काया वेधि अमृत झरै । |
गले बद्ध डोबी कुमारी, कपूरसे निकली यह वसन्त शाखा ॥

२. ख-खा ख-सम वसि ललाट शून्य, पुण्य अ-पुण्य न चाहिये नग्नको ।
खा - पी निर्वाणमे बस, नग्न योगी गहि अति आनदित
शुद्ध आकाश व्यापि दृढ हुआ ॥

३. ग-गा गमन लास्य करि-करि स्थूल कर, गगा यमुना दोनो को भले बांधै ।
भव आश्रय करि गमनागमन खडित होई ॥

४. घ-घा घनघन श्री हेरुक मुदित नैरात्मासे कठे समाश्लिष्ट ।
योगिनी पवन बार-बार डोलावै, घरनी निज मन हसमे लगावै ॥

५. ङ-ङ. निज स्वभाव स्वभावसे शून्य, निज घरनीमें पुण्य-अपुण्य न। प्रसरे ।

ग्यं॒न्. दु. नंल्[६] ऽब्योर्.प नि व्दे वर्.व्येद्. नुस्. न।
नुव्.मोऽि मुन्.प छद्.नस् ऽोद् ग्सल् पर्. ऽग्युर्(.प) ॥

६. च् . नि. द्गऽ व व्गिन्. नि ऽदि. दङ यङ दग्.ल्दन्।
क्ये. हो म्थऽ. व्गि. दङ, नि. ञल् पऽि. सेम्स् व्मुङ चिग् ॥
स्कद् चिग् व्गि. नि यङ दग् व्ल मऽि ग्मुङ लस्. गो वर् ग्यिस्।
थिग्. ले व्गि. नि मोंङस्[७] पऽि वग् छग्स् क्यिस् नि मि ग्नेस् सो ॥

५(७). छ् नि. द्वङ पो स्पोङस्. ल. दग्. पऽि रङ व्गिन् ग्यिस्।
ऽदोद्. योन् दङ नि द्ङोस् दङ द्ङोस् मेद् स्पोङस् ॥
चल्. चोल् ग्तम् नंम्स् दोर् चिग्. ऽदि नंम्स् क्यिस्।
रो ऽदि थोङ ल नम् म्खऽ.ल. नि लोङ्स् स्प्योद् ग्यिस् ।।

८. ज् नि. स्क्ये[१]. दङ र्ग दङ. ऽछि व मेद् पऽि नम् म्खऽ. यिन्।
गङ. दङ. गङ दु व्ल्तस्. क्यङ दे दङ देर् नम्. म्खऽो ॥
जि.ल्तर्. ग्नस्.प. दे ल्तर्. दे. नि दे ञिद्. दो।
जि. ल्तर्. म्थोङ व. दि. ल्तर् दे नि. दोन्. दम्. मो ॥

९. झ. नि. मे.तोग् मङ पोऽि स वोन्. जि ल्तर्. व्स्तेन् प दङ।
दे.ल्तर्. स्न छोग्स्.क्यिस्. नि. फुङ पो. ऽग्युव्[२].प. यिन् ॥
स्न.यिस्. स्ग्रङ चि दङ नि मर्.ग्ञिस् ऽग्युङ नुस्. न।
युन्.रिङस्.दुस्. दग् ऽछो व. ल. नि थे.छोम्. मेद् ॥

१०. स्कव्स्. ऽदिर्. ञ.यिग्.गि द्रङस् पऽि छिग्स्. व्चद्. ग्चिग्. मेद्. प
ऽदि. ऽग्रेल्.पर् यङ. नि. ङ. दङ. म्छुङ्स्.सो
ग्नेस् प. च्म्.लस् म. व्युङ. ङो।

११. ट नि. क्ये हो यङ दग्. व्ल.मऽि. ग्मुङ गि. थिग्.ले. फव्।
स ग्गि[३]. ऽगुल्.वस्. नम्.म्खऽ.लस्. नि. थिग्.ले. ऽजग् ॥
लम्.लोग्. चल्.चोल्. म व्येद्. क्ये हो. नल्.व्योर्.प।
स्ग्येद्.क्यिस्. चल्.चोल्.ग्यिस्. नि. ल्हन्. स्ञयेस्. मि.तोंग्स्. सो ॥

निरन्तर योगी सुख करै जो, निसि अधकार काटि उसे प्रभा प्रकशै ॥

६. च-चा चउथ आनद यह औ सयुक्त, अहो चउथ अनन्त चित्त गहो।
चउ क्षण सम्यग् गुरुके वचनसे जानै, चउ विन्दु मूढ के रागसे न जाना ॥

७. छ-छा छाडहु इन्द्रिय प्रतिक्रमण शुद्ध स्वभावसे, इच्छित गुण औ वस्तु-अवस्तु
आलमाल[1] कथाये छाडि इनसे, यह रसना देखनेको गगन मे भिक्षा चरै ॥

८ ज-जा जन्मजरामृत्यु विना आकाश, जहँ जहँ भी देखै तहँ तहँ आकाश।
जैसे रहै, तैसे सोइ-सोई; जैसे अनुभवै तैसे परमार्थ सोई ॥

९. झ-झा बहु कुसुम का जैसे बीज औ आश्रय, तैसे नाना स्कन्ध सिद्ध है।
नासासे मधु घृत उभय पी सकै तो, दीर्घकाल तृप्ति होने मे सदेह ना ॥

१०. इस स्थानमे अक्षरकी गिनतीका एक पद नही है। टीकामे
भी और 'ड तुल्य' इति मात्र होने से अनुवाद नही हुआ।

११. ट-टा अहो सद्गुरुवचन विन्दु के नीचे, मही कपसे गगनसे विन्दु झरै।
विपथ टालमाल[1] मत कर हे योगी, तू टालमाल सहज न समझै।

१. बेकार।

१२. **ठ** ठऽि. स्त्रस् नि. स्ङग्स्.नॅम्स्. व्र्जोद् प. दङ।
ठ यि. यि गे व्लङस् नस्. ग्नस् थोव् ऽग्युर् ।।
छ्ुल्. व्गिन्. लोङ नि तिङ ङे ऽजिन्. नि. ऽफो[४].वर् ऽग्युर् ।
यङ दग् व्ल.मस् नम् म्खऽ गो वस्. व्यङ छुव् यिन् ।।

१३. **ड** नि. स्ङग्स् नॅम्स् व्र्जोद् चिङ ङो.वि. लोङ।
तुम् मोस् व्स्रेग्स् शिङ. छु नॅम्स् ऽजग् पर् ऽग्युर् ।।
ड म रु. नि अ न ह यि स्कद् दु ग्रग्स् ।
ड म रु. दे व्सुङस् वस् नल् ऽव्योर् म. स्त्र यिन्. ।।

१४ **ढ** नि. रिल् प फोव्स्[५] नॅम् प ग्चिग् तु स्व्यव् पर् ग्युर् ।
सेम्स् नि ऽफोव्स् ल्हन् चिग् स्क्येस् पऽि म्छोग् तु. ग्युर् ।।
द्वङ पो ल्ङ यङ. ऽफो. गिङ ल्ह. न स्क्येस्. देर. ऽग ग्स्. सो ।
गव्. पऽि. ख्यिम्.व्दग् मो नि द्ङोस् पो चिर्. मि म्थोङ।

१५. **ण** नि. ग्ञ्गु ग्. मऽि रङ व्गिन् रङ व्गिन् ग्यिस्. नि. स्तोङ।
ग्ञ्गु ग्. मऽि यिद् नि गो. न द्गे[६] दङ मि द्गे. मि ऽगोस् गिङ।
ग्ञ्गु ग्.मऽि. ख्यिम् व्दग् मो. नि ल्हन् चिग्.स्क्येस् पस्. वङस्. पर् ग्युर्।
ग्युंन्.दु. व्स्तेन् न स्क्ये गि दङ. नि. ऽछिङ वर्. ऽग्युर. व मेद् ।।

१६. **त** नि. स्कु ग्सुम् ग्गुङ ग्सुम् व्र्तेन् नस् ग से स् पर ग्यिस् ।
यि.गे. ग्सुम् नि स.र.ह यि छिग् ल व्र्तन् ते. व्स्गोम्स्.[७] ।।
सेम्स्.नि म्ञम् प ञिद् क्यि. व्सम्.ग्तन् ग्यिस् ।
गल् ते चॅ.वऽि सेम्स् दङ व्लो.ग्ञिस् ग्चिग् तु.व्येद्.प. नुस्. ।।

१७ सेम्स्. नि. गिङ छद् पर् ग्युर् पस् रङ व्गिन्. ग्चिग्. यिन्. नो ।
थ. नि गङ छे. ना.द दङ थिग् ले. ऽदि. स्त्रस् न ।।
नॅल् ऽव्योर्. म यि स्त्र. यिस् दे[१]. छे. ल्हन् चिग्. स्क्येस् पर् तोंग्स् ।
जि. ल्तर्. रङ द्गर् ग्नस् पर्. ग्युर् न. छे ऽदि. ऽफेल्. वर्. ऽग्युर् ।।

१८. **द**. नि. स. र. ह. यि छिग्स् थम्स् चद्. व्स्तेग्स् दङ ऽछि मेद् ऽग्युर् ।
ऽो. म. ग्ञिस्.क्यिस् व्दे.म्छोग्. दे. ल ख्रुस् ग्यिस्. गिग् ।।

१२ ठ-ठा ठवनिसे मत्रों का वाचना, ठण अक्षर उठि स्थान पावै ।
शीलसदृश माग समाधि सचरै, सद्‌गुरु गगन जान बोधि है ।।

१३ ड-डा डोबी अन्ध मंत्रोंको पढे, चडाली होवै जल झरै ।
डमरू अनहद बाजै, सो डमरू कहै योगिनी शब्द है ।

१४. ढ-ढा ढलै एक प्रकार से व्याप्त, चित्त सहज उत्तम होइ ।
पाँचो इन्द्रिय ढलि सहज तह रहै गुप्त घरनी वस्तु वयो ना देखै ।।

१५. ण-णा णिअ (निज) मन स्वभावसे शून्य,
निज स्वभाव जाने तो न पुण्य अपुण्य न चाहिये।
निज घरनी सहज आयत्त होइ, सदा आश्रय ले जनम-मरन ना रुकै ।।

१६. त-ता त्रिकाय त्रिग्रथ दृढ जाने, त्रि-अक्षर सरह वचन दृढ भावै ।
तुल्य चित्त की समाधि से, यदि मूल चित्त औ बुद्धि उभय एकत्र कर सकै,
तो चित्त क्षेत्र उच्छिन्न होने से स्वभाव एक रहै ।।

१७. था-था थिर कर चन्द्र-गगनको, स्थानोको छाडि शुभ शरीर मे जिमि होइ ।।

थान थिर करि पवन से सूख जाइ, थिर बैठे तव्वे वृद्धि होइ ।

१८. द-दा दुइ सभी सरहकी वाणी अमर होइ,
दोनो दुद्धी-दूध से उस उत्तम सुख मे नहाइ ।

थिग् ले ग्ञिस् नि ग्ऽेस् न दग् पऽि रङ व्गिन्. यिन्।
स्दुग् व्स्डल् ग्दुग् प.चन् नि द्ङ ास् दङ[२]. दङ ास् प मेद् ॥

१९ **ध** नि ध यि. रङ व्गिन् व्क व्ग़ल् व्येद् चिङ ग्नस् ॥
व्कु व्ग़ल् व्येद् वयङ मि म्थोङ नङ.दु ग़ुग्स् नस् सोङ ॥
ख्रुस्.म्खन् मो नि स र ह यि छिग् गिस् लोङ।
ग्यो स्ग्युऽि स्व्योर् व. नम् म्खऽि रङ व्गिन् दु नि. ग्यिस् ॥

२० **न** नि स्न छोग्स्. छुल् ग्यिस् लेग्स् पर् ग्चिग्[३]. तु ऽफो।
ऽजिग् तेन् प नंम्स् म गो.व्स् न स्न छोग्स्. स्म्र॥
गङ पियर् ऽजिग्स् प मेद् प दे पियर् ग़ ा गम्. ऽजल्।
स्त्रिद् मिन् म्य ङन्.ऽदस् मिन् ग्ग़न् यङ मेद्.प यिन् ॥

२१. **प**. नि. व्दुद् चि ल्ङ नि स्न.ग़ व्लुग्स्.पर् व्य।
पद्. म दों जे स्यर् ग़िङ स्वयर् ग़िङ म्ञम्. ञिद् ऽग्रुव् ॥
मे तोग् पद् मऽि[४]. दों र्जे ग्दन्. नि छोद् पर ग्यिस्।
पद् मऽि दे ञिद्. मि ग़ेस् व्दे छेन् ग्यंल् पो मिन्. ॥

२२. **फ** नि. स्प्रो. ग़िङ व्स्दु वऽि सेम्स् ऽदि नम् म्खऽ ल्त वु यिन्।
स्प्रो प. मि म्थोङ नि नम् म्खऽ ल्त वुर् ऽदोद् ॥
फट् क्यि स्ग्र. दङ हु गि स्ग्र नि. जि. ल्तर् ऽफ्रो।
दि. ल्तर् द्पग् व्सम्. ल्जोन् ग़िङ स्पोङ पो[५] व्गिन्. दु ऽफ्रो ॥

२३ **ब** नि. नग्स्. क्यि छङस् पऽि मे. तोग् ख मुम् व्ये वऽि जिङ नंम्स्
ऽजिन्।
थेग् चिङ यिद्. ऽोङ ऽग़ेद्. पऽि ऽव्रस्. वु द्प्यिद् कऽि यल् ग व्गिन् ॥
द्वङ दु. व्स्दु ग़िङ लेग्स् पर्. गर् नि. नन् तन् व्येद्।
ऽग्रो. ऽदुग्. व्येद् पऽि नंल् ऽव्योर् म. नि रङ गि लुस् ल व्स्लङस् ॥

२४ **भ**[६] नि भग ञिद्. नि भगऽि रङ व्गिन् स्तोङ पर्. ग्नस्।
दे. नि. द्गे. दङ. मि द्गे. मेद्. पर् म्दऽ व्स्मुन् ङ. यिस्. स्म्र ॥

दुइ विन्दु जानै शुद्ध स्वभाव हे, दुःख विषधर वस्तु अवस्तु (है)।।

१९. ध-धा धोबी स्वभाव धोइ बैठ, धोवते भी न देख भीतर बैठ जा।
धोविन सरह की वाणी माँगती, धुन मायायोग गगनस्वभाव से ।।

२०. न-ना नाना प्रकार से भले, एकत्र लग, पामर ना बूझे नाना कहै।
जो कि नाश भय नहीं सो शुल्क मिला, ना भव ना निर्वाण ना अन्य ही है।

२१. प-पा पच अमृत नासामे डाल, पद्म वज्र जोडि जोडि समता साथ।
पद्म-पुष्प से वज्रासन पूज, सोई पद्म न जाने तो, महासुख राजा नही।।

२२ फ-फा फट्कार यह सग्रह चित्त ख-सम है, उत्साह ना देखै भी खसम चाहै।
फट्कार औ हुकार जिमि प्रसरै, तिमि कल्पद्रुम विरति भासै।।

२३ ब-बा बनका ब्रह्मपुष्प मुखपरिमडल विभाग तडाग धरै,
वज्र जा मनोहर इच्छित फल वसन्त (-पल्लव) जिमि,
वसमे सचय कर भले ना उद्यम कर,
विहरत जग योगिनी अपने शरीर मे ले।।

२४. भ-भा भग ही भग के स्वभाव शून्य वसै भनइ,
मैं सरह सो पुण्य-अपुण्य ना भनै।

व्ल.मऽि. ग्मुङ गिस् ऽदोद् योन्. ल्ड ल. सो।
ख्ल् पर् म. व्येद् सेम्स्. ञिद् ऽदि नि. नम् म्खऽ यिन्॥

२५ **म** नि नन् तन् ग्यिस् नि यङ दङ यङ दु छङ ऽजग्. चिङ।
द्पल्[७] ल्दन् व्ल म व्स्तेन् पस् र्च व गो वर् ग्यिस्॥
गल् ते र्च वऽि सेम्स् दङ व्लो ग्ञिस् ग्चिग् तु व्येद्. नुस्. न।
सेम्स् नि शि शिङ छद् पर् ग्युर् पस् रग् व्शिन् ग्चिग्. यिन्. नो।

२६ **य** नि गङ छे ना द दङ थिग् ले ऽदिर् स्म्रस् न।
र्नल. ऽव्योर् म यि स्ग्र यिस् दे' छे ल्हन् चिग्. स्क्येस्. पर् र्तोग्स्।
जि ल्तर् रङ द्गर् ग्नस् प दे वशिन् दु नि व्र्तेन्।
स्क्ये शि ग्ञिस् क्यिस् ऽजिग्स् (प) मेद् प थोव्. पर् ऽग्युर्॥

२७ **र** नि ञि म स्ल वऽि थिग्. ले नम् म्खऽ व्शिन् दु. शि. व मेद्।
ञि मस् गङ न व्दे व छेन् पोऽि. छुल् नि शिन् दु. जेस्॥
र स ना नि थिग्.[२]ले थिग् ले. फोव्।
ञिन् दङ म्छन् दु ग्ञग् मऽि यिद् विय डङ दु सोद्॥

२८. **ल** नि. क्ये हो र्लुङ गि ख्यिम् व्दग् मो दे ख्यिम् नङ लोङ।
ना द थिग् ले लोङ. चिग् छोस् नि सग् मेद् यिन् नो॥
ल ल ना दङ व्चस् दङ र स ग्र व धू ञिऽि र्चे नङ नस्।
थिग्. ले ऽजग् प दे. ञिद् शिन् तु ङो म्छर् फियर् नि ऽथुङ॥

२९ **व** नि छु यि. म्छोग् नि. रोल् पस् ऽथुङ चिग् क्ये।
र्दो. र्जे र्नल् ऽव्योर् म नि. रोल् पस्. ऽफ्रो॥
गङ. छे दपल्. मो र्नल् ऽव्योर् म नि ल्हन् चिग् स्क्येस् पस् म्ञेस्।
दे यि छे. न ङ म. रु नि ग्र न. ह यि स्कद् दु. ग्रग्स्॥

३० **श** नि रङ व्शिन् ग्यिस् नि ल्हुन् ग्रुव् अ न ह यि स्ग्रस्।
थिग्.[४] ले. ऽजग् प. गङ. शिङ र्नल् ऽव्योर्.म. यिन् म्गोन्॥
स र ह. यि. छिग्. गिस् ग्सिल् वऽि स्ग्र. नि व्य।
नम् म्खऽ. ऽजो.गिङ.. ऽजो शिङ थिग्.ले फोव् ल. ऽथुङ।

भुंज गुरुवचनसे पच कामगुण[1], भ्रान्ति न कर यह चित्त आकाश है ॥

२५. म-मा मदिरा बलात् पुन पुन झरै, श्रीगुरुसेवा से मूल को जानै।
मूल-चित्त औ उभय एक तो कर सकै, चित्त मरि नष्ट होने से स्वभाव एक है ॥

२६. य-या जब्बै नाद औ विन्दु यहा बोलै,
तब्बै योगिनीके शब्दसे सहजै समुझै।
जैसे स्वानन्द मे स्थित तैसे आश्रय (लेइ),
जनम मरण दोनोसे निर्भयता पावै ॥

२७. र-रा रवि-शशि विन्दु खसम अ-मर, रविसे पूर्ण महासुख प्रकार अतिसुदर।
रसना विन्दु-विन्दु चुवै रातिदिन, निज मन के हस मारै ॥

२८. ल-ला लेहु पवनकी करिनी सो घर भीतर अंध,
नाद विन्दु अन्ध धर्म अनास्रव है।
ललना सहित रस(ना) अवधूति के भीतरसे,
विन्दु झरै सोई अतिअचरज के लिये पी ॥

२९. व-वा वर वारि ललित पीओ रे, वज्रयोगिनी ललित प्रवाशै।
जब्बै श्रीयोगिनी सहजसे मुदित, तब्बै डमरू अनहद स्यापै।

३०. श-शा स्वभावसे स्वकृत अनहद शब्द, विन्दु झरै जो योगिनी स्वामिनी।
सरह वचन से शीत शब्द करे,
गगन लास कर लास कर शशधर विन्दु पी ॥

---

१. भोग।

३१ **ष** नि गङ छे् ल्हन् चिग् स्वयेस् पऽि म्छोग् गिस्. म्ञोस् ।
दे छे रङ दङ. ग्ञन् गि्य व्य छग्स् ऽगग्स् ॥
म्ञ.म् दङ मि^[५] म्ञाम् र्नल् ऽब्योर म ऽदि ग्रुव् पर् थे. छ़ोम् मेद्।
क्ये हो <u>म्दऽ व्स्मुन्</u> नि ऽदि ल थे छ़ोम् मेद् चेस्. स्म्र॥

३२ **सं** नि द्ङोस् पो ऽदि कुन्. द्ङोस् पो मेद् पर् म्ञाम् ।
स्तोङ प स्ञिङ र्जे ख्रुल् पस् म स्पङस् गिग् ॥
ल्हन् चिग् स्वयेस् पऽि. द्गऽ वस्. र्तग् तु म्ञोस् ।
ल्हन् स्वयेस् म्छोग् ऽदि^[६] गङ गिस् क्यङ नि ऽछिङ मि. नुस् ॥

३३ **ह** नि क्ये ह्रो व्शद् पऽम् स्वये व स्न छ़ोग्स् क्यिस् नि छि्म् ।
क्ये. हो. र्मोङस् प ऽफ्रोग् चिङ व्कङ. यङ द्गऽ. व मेद् ॥
गङ छे. लुस्. ल. द्वङ पयुग् म्गेग्. मेद् छ़िङस् गिग् दङ ।
रोल पस् दे छे व्ल मेद् लेग्स् पर् ऽग्रुव् पर् ऽग्युर् ॥

57b३४ **क्ष**. नि युल्^[७] दु ल्हुङ. न ब्यङ छुव् सेम्स् नि छुद् सोस्. ऽग्युर् ।
क्ष. क्षऽि. स्ग्रस् नि र्ग्य म्छो दग् क्यङ स्केम्स्. नुस्. न ॥
ऽदि. नि. र्चुब्. मोऽि. व्दर् व्गिन्. तिङ जिन् र्नोन् पोस् द्गऽ. वर् ऽग्युर ।
क्ये. हो. ग्चेर्. वुर्. थम्स् चद्. स्लु वर्. ङेस् पर् थे. छ़ोम् मेद् ।

क.ख. दो ह शेस्. ब्य व र्नल्. ऽब्योर् गि्य द्वङ पयुग् छेन्. पो. द्पल्. स्रम्. से्
छेन्. पो. स र. हऽि शल्. स्ङ. नस् ग्सुङ प र्जोग्स् सो ।

युल् को. स. लर्. ब्युङस् पऽि व्ल. म र्नल् ऽब्योर् प छेन्.पो. बै. रो च. न.
वज्रऽि. शल्. स्ङ. नस् रङ ऽग्युर् दु. ग्सुङस्. पऽो ॥

---

३१. ष-षा सहजे उत्तम मुदित जब्बे, तब्बे स्व-पर वासना निरुद्ध ।
सम और विषम यह योगिनी सिद्ध निस्सन्देह अहो सरह भने यहाँ न सदेह ।।

३२. स-सा सम यह सब वस्तु, औ अवस्तु शून्य करुणा भ्रम से नारी छोड ।।
सहज आनंद से सदा मुदित, सहज उत्तम इसे कोई भी न बाँध सके ।

३३. ह-हा हे हास नाना उत्पत्ति सन्तोष, हरिये अरे मूर्ख कही भी आनन्द नही ।
हरहर जब्बै शरीर मे वर्ण वितु बाँध, हलेस तब्बै अनुत्तर भले सिद्ध होइ ।।

३. क्ष-क्षा (क्षले) विषय में गिरकर बोधिचित्त नाश खावे,
क्ष-क्ष, शब्द सागरो को भी सोख सकै ।
यह कठोर प्रसरि तीक्षण समाधि से आनदित होइ,
अहो क्षपण नियम नही सदेह सर्व वचना ।।

(इति) क-ख दोहा महायोगीश्वर [श्री महान्‌ब्राह्मण सरह] मुखोक्त समाप्त ।।
(दक्षिण) कोसलदेश-जन्मा गुरु महायोगी वैरोचनवज्र के मुख से कथित
स्व-अनुवाद ।।

— —

५. कायकोश अमृतवज्रगीति

(भोट, हिन्दी)

५(क). स्कुऽि.म्जॊद् ऽछि.मेद्.दों.जेंऽि. ग्लु[1]

(भोट)

ऽजम् द्पल्.ग्ग्ोन्.नुर् ग्युर् [1]प ल फ्यग् ऽछ्ल् लो ॥

१ नाना मत

१. क्ये हो द्वङ दङ व्येद्.पर्. ऽजिन्.प. रल् प.चन् .
व्रम्. से. ग्चेर् वु सङ्स् ग्र्यस् ग.प दङ. नि ॥
सो.न ञिद् व्गि. ऽदोद् पऽि. ग्यँङ फन्.प ।
थम्स् चद् म्ख्येन्. शेस् सेर् नस् रङ म.रिग् ॥

२. देस् नि स्लु.वर् ऽोङ. स्ते. थर् स्ते. थर् लम् रिङ ।
व्दे व्रग्.प दङ म्दो.स्दे[५] स्ङग्स् प दङ ॥
र्नल ऽव्योर् प दङ द्वु म ल.मोग्स् ते
ग्चिग् ल ग्चिग् स्क्योन् ऽोल्.गिङ र्चोद्.पर्. व्येद् ॥

२ सहजयोग, महामुद्रा

३. स्नङ स्तोङ म्खऽ. म्ञम् दे ञिद् मि.शेस्. प ।
ल्हन् चिग् स्क्येस् ल ग्र्यँव् क्यिस्. फ्योग्स्.पर्. ग्युर् ॥
स्कु.ग्सुम्. थुग्स् ग्सल्. मेर्. मेर् रस्. दङ. मर्[६]. नग्.वशिन् ।
खो.न ञिद् ल्दन्. रङ स्नङ मर्.मे.ल्त.वुर्. ग्सल् ।

४. रङ.रिग् ग्सल्.वस्. ऽग्रो व.कुन्.ल. ख्यव् ।
द्व्येर्.मेद्. छुल् ग्यिस्. म स्क्येस्.म.यि रङ व्गिन्. यिन् ॥

107a व्दग् तु. ऽजिन्.पऽि. सेम्स्.क्यिस्. द्रन्.प. स्न्.छोग्स्.ग्र्युऽि ।
ङो.वो.ञिद्.ल. स्नङ.छ्ल्. चिर्. यङ[७]. ऽछर् ॥

---

१. स्तन् ऽग्युर, ग्र्युद्, शि, पृष्ठ १०६ ख४--११३ क २ ।

५(ख). कायकोश 'अमृतवज्रगीति'

(हिन्दी)

नमो मजुश्रियै कुमारभूताय ।।

१ नाना मत

१. अहो प्रभुता औ कार्यव ले जटाधर, ब्राह्मण निर्ग्रंथ औ बौद्ध ।
चार तत्त्व इच्छा के उपहित, सर्वज्ञ यह कहने से स्वय न युक्त ।

२. तिससे वचकर आता दीर्घ मुक्ति-मार्ग, वैभाषिक सौत्रान्तिक औ मान्त्रिक ।
योगाचार माध्यमिक आदि, पारस्परिक दोष हटा वाद करे ।

२ सहजयोग महामुद्रा

३. अवभास शून्य ख-सम सोई ना जानै, (जो) सहज की पीठ होइ ।
त्रिकाय चित्त प्रकाशै दीप मे घी औ वत्ती जिमि,
तत्त्वयुक्त स्वप्रभाम दीप सा भासे ।।

४. स्वसवेद्य प्रकाशसे सकल जग व्याप्त, अभिन्न प्रकार अज-स्वभाव है ।
आत्मग्राही चित्तकी स्मृति नाना हेतु की,
भाव ही को प्रकाशक क्यो फिर उगै ।।

---

१. छत्तीसगढ ।

५. मुन् प ल्त वुऽि वग् ल कुन् ग्नस् क्यङ् ।
दे ञिद् ञ्रोंद् पऽि र्नल् ऽब्योर्. स्ग्रोन् मे. ऽबर् ।।
स्ञिङ् पोऽि दोन् नि र्तोग्.गेऽि युल् ल्स् ऽदस् ।
मङोन्.दु मि.ग्सल्. द्रन् पऽि म्थु यिस् व्स्ग्रिव्स् ।।

६ र्तोग् मेद् देस् ग्.स्. द्रन् मेद् व्दे पऽि लम्[१] ।
ग्रोद् मेद् ऽव्रस् वु व्लो लस् ऽदस् पर्. स्नङ ।।
ल्हन् चिग् स्क्येस् प थुग्स् क्यि ग्तेर्.म्जोद् नस् ।।
दग् दङ म.दग् ऽखोर् ऽदस्. ग्मुग्स्. सु. स्नङ ।।

७ स्नङ यङ स्क्ये.व मेद् पऽि. ङङ दु. ग्चिग्. ।
दे.ञिद् मि.ग्यो थ.स्ञाद्. रङ व्शिन् मेद्. ।।
फ्यग्.र्ग्य छेन्.पो र्ग्युर्[२] मेद् व्दे छेन् दङ ।
र्ग्यु ल मि ल्तोस् ऽव्रस् वु व्लो.लस् ऽदस् ।।

८ फ्यग् र्ग्य छेन्पो र्जोग्स्. पऽि ऽव्रस् वु यिन् ।
थ स्ञाद्.लम् ग्यि दोन् ल. म् छोन् ते. स्व्यर् ।।
व्र्जोद् व्येद्.मेद्.प. स्ञिङ.पोऽि दोन् ।
कुन्.ग्यि. व्र्जोद् व्य द्रन्.मेद् रिग् पऽि द्व्यिङस् ।।

९. मोस् पऽि[३]. ग्नस्.पस्. र्तोग्स् प थ.दद्. क्यङ ।
द्रन् मेद् ऽदि ल व्र्ज नुप योद्. रे स्कन् ।।
लम् ग्यि चोंल् वस्. ऽव्रस् वु सो सो यङ ।
द्रन् प. ऽदि ल. व्देन्.प योद्. रे. स्कन् ।।

१० व्तङ स्ञोम्स्. द्वङ गिस्. रे. ऽजोग्. थ दद्. क्यङ ।
स्क्ये मेद्. ऽदि ल. ग्ञिस् सु योद्. रे स्कन् ।।
यिद[४] ल. व्य. दङ मि व्य. स्ञाद् ऽदोग्स् क्यङ ।
व्लो ऽदस्. ऽदि.ल. व्चल्.दु. योद् रे स्कन् ।

११. स्नङ वऽि. क्येन् ग्यिस् द्रन्.प. स्क्ये ऽग्युर्. यङ ।
स्तोङ्.वऽि. द्रन मेद्. क्येन्.लस्. ऽद्रऽ.व मेद् ।।

५. अंधकार जिमि अप्रमाद मे सर्वस्थिति भी, सोई लेने को योगप्रदीप जलावै
सार-अर्थ तर्कके विषयसे परे, पहिले अप्रकट स्मृति-शक्तिसे छादित ।।

६. उस निर्विकल्प से स्मृति, विनु सुख-मार्ग, अगम फल बुद्धि से परे प्रकाशै ।
सहज चित्तकी विधि से, शुद्ध-अशुद्ध संसार से परे रूप भासै ।।

७. भासित भी अजहस मे एक, सोई अचल व्यवहार नि स्वभाव ।
महामुद्रा अविकार औ महासुख, हेतु न देख फल (है) बुद्धि से परे ।।

८. महामुद्रा निष्पन्न फल है, व्यवहार मार्ग के अर्थ आयुध जोड ।
न कहने का सार-अर्थ, सर्व वाच्य स्मृति विनु विद्या-धातु ।।

९. अधिमुक्ति[1] ज्ञानसे अवबोध भिन्न (होते) भी,
इस विस्मृतिमे मिथ्या है रे कह ।
मार्ग के अभ्याससे फल पृथक् (होते) भी, इस स्मृतिमे सत्य है रे कह ।।

१०. उपेक्षा वश आशा निक्षेप से भिन्न भी, इसी अ-जातमे द्वैत है रे वह ।
मनमें करना न करना व्यपदेश[2] भी, इस बुद्धिसे परेकी अपेक्षा है रे कह ।।

११. आभास प्रत्ययसे स्मृति उत्पन्न (हो) भी,
शून्य विस्मृति प्रत्ययसे अतिक्रमण नहीं ।

---

१. मुक्ति । २. कथन ।

र्तोग् मेद्. दोन्.ल ब्य ब्रल्. व्ल्त रु. मेद् ।
रङ ल. ग्शन् नस् छोव् व अ. रे. ऽख्रु ल् ।।

१२ क्ये हो[५]. दों र्जे ल्त.वुर् र्तोग्स् द्कऽ खो.न.ञिद् ।
म.शेस् चोंल्.बस् स्प्र फियर्. ब्रङ सेम्स् क्यिस् ।।
व मेद्.पऽि. दोन्. दङ. फ्रद् पर् द्कऽ ।
ब्य बऽि रङ व्शिन् मि.ब्य शेस्. ग्युर्. न ।।

१३ र्गं्य ल वऽि द्गोङस् प. ञाग् ग्चिग् युल् लस् ऽदस् ।
स्कु. नि मि ऽग्युर् छोस् ञिद् खोङ[६]. स्तोङ लग्स् ।।
लुस् ल मि ग्नस् ब्य. दङ व्येद् प ब्रल् ।
लम् व्स्लद्. लम् ग्यि. ऽक्रस् वु म्थोङ मि ऽग्युर्. ।।

३ महासुख, अकथ

१४. स्क्ये मेद्. दङ ल. मि व्येद्.पयि थुग्स् ।
द्रन् मेद् दङ ल मम्ञाम् ग्शग्. व्दे व.छे ।।
107b व्दे.छेन्. दङ.ल् मि र्तोग् र्ग्युन् ल. ग्नस्. ।
यिद् ल मि व्येद्. स्नङ व. रङ[६] गर् दग् ।।

१५ र्कयेन्. नि. द्रन् प. म ऽगग् गेस् प. ग्सल् ।
र्चं व.ग्चिग् र्ग्यस् स्क्योन् मेद्. पद्.म व्शिन् ।।
ऽग्रो व कुन् ल. ल्हन् चिग् स्क्येस्.व्शिन्. ग्नस् ।
ग्शन्. योद्. लोङ. म्थोङ. स्तोव्स् क्यिस्. व्स्लद् मोद्. क्यङ ।।

१६. जि.ब्शिन्. थोग् मऽि पद् मऽि. मे तोग् व्शिन् ।
लेग्स्. म्थोङ. स्तोव्स्[७] क्यि पयग् र्ग्य छे मि ग्यो ।।
ग्स_ङ. दङ. ऽजिन पऽि. ञोंग्.मस्. व्स्लद् ग्युर् क्यङ ।
दुस्.ग्सुम् ऽग्युर् मेद्. र्च.व. व्दग् ञिद् छे ।।

१७. नम्.गेस्. लुं ङ. दङ ऽोग्. स्गो स्डग्स् ल सोग्स् ।
ये.नस्. स्प्योद. ब्रल रङ ग्शन् व्तङ. ग्ग्ग्. ब्रल् ।।

निर्विकल्प अर्थमे निष्क्रिय दृष्टि नही, अपनेमे परसे ढूँढना अरे भ्रम ।।

१२. अहो वज्र-सदृश दुरवबोध तत्त्व, न जान अभ्याससे शब्दके लिये मधु-चित्तसे ।
निष्क्रिय अर्थ का सग कठिन, क्रिया का स्वभाव न करे जान कर ।।

१३. जिनका[३] आशय एक ही विषयातीत, काय निर्विकार धर्म ही कोटरीकृत ।
शरीर मे ना रह औ क्रियाहीन, मार्ग मलिन (तो) मार्गफल ना दीखै ।।

३ महासुख अकथ

१४ अजात निरतर अ-कर्ता चित्त, विस्मृति औ समापत्ति (है) महासुख ।
महासुख औ निर्विकल्प स्रोतमे वसै, अमनसिकार भासै स्वभूमिमे शुद्ध ।।

१५. प्रत्यय तो स्मृति ना निरोधै ज्ञान प्रकाशै, एक मूल निर्दोष फुल्ल पद्म जिमि ।
सब जग मे सहज जिमि रहै, अन्य तो है अंधदृष्टि बलसे कलुष भी ।।

१६. जैसे आदिम कमल-पुष्प सुदर्शन बलकी महामुद्रा अचल ।
वहन-ग्रहण के दोलनसे कलुषित भी, त्रिकाल निर्विकार मूल महात्मा ।।

१७. विज्ञान पवन अधोद्वार मत्र आदि से,
चर्याहीन स्व-पर त्याग-स्थापना-विहीन ।

---

३. बुद्ध ।

ऽखोर बर् मि सेम्स् म्य ङन् ऽदस् मि ल्तोस ।
दुस् ग्सुम् स्रिद् ग्सुम्. स्कु ग्सुङ थुग्स् (ग्सुम्.) ल ।

१८. दुस् गङ ल मि ऽग्रद् ब्लङ दोर् ल्त ब मेद्. ॥
म्थऽ द्वुस् मि. ऽब्येद्. द्बु म ग्रङ पोऽि. लम् ।
ब्ध्स् बचोस् ब्रत् न शुग्स्.क्यिल् म म्छोग् सो ॥
ब्ग्रोद् ऽजुग् रिम् सोग्स् फ रोल फ्यिन् पऽि लम् ।

१९ ञे लम् ग्शग् नस् रिङ दु ऽखोर बऽि ग्यं ॥
ल्हन् चिग् स्क्ये. दङ ग्ञे न पो ऽग्रन्.स ल ब्रल ।
खो न ञिद्.ल स्कु ब्शि ये शेस् ल्ङ ॥
ञोन् मोङ्स् ल सोग्स् छोस् नस् ऽखोर्.बऽि लम् ।

२० युल्.दु. गङ स्क्येम् मि स्प्यद् युल् मेद् म्थोङ ॥
ङो.वो ञिद्.ल. द्गऽ दङ मि.द्गऽ मेद्[४] ।
ऽजिन् र्तोग् ग्ञिस् ब्चस्. म ब्चोस्. छोस् क्यि छु ॥
द्बङ पो रङ यन् म सिन् स्तोङ पर्. ग्नस् ।

२१ स्मर् मेद् ञाम्स् सु म्योङ ब र्ग्युन् मि ऽछद् ॥
रङ गि. र्ग्युद् ल. स्ब्यर् ते शेस्.पर् ब्य ।
द्रि म मेद्.पऽि. दोन्.ल. फ्यग्.र्ग्य.छे ॥
र्गं म्छो. नम् म्खऽ ल्त बुऽि ञाम्स् म्योङ ऽब्युङ[५] ।

२२. द्बङ पो युल्.ब्रल्. ल्तुङ.बऽि ग्यङ. स मेद् ॥
द्रन पस्. सिन्.पस्. ख्योद्. ञिद् छग्स्.प स्ने ।
रङ.ब्तङ ग्शग्.पस्. स्प्रोस् प स्लर् ल ल्दोग् ॥
ऽछर्.नुब्. मेद्.न. नंम् र्तोग्. मुन् प. नुब् ।

२३ छोस्.ञिद्. रो म्ञम् बुद् पऽि मे तोग्. म्छङस् ॥
स्क्योन् दङ योन् तन् द्ब्येर्.मेद्[६] ञिद्. दु म्छङस् ।
ङो.म्छर्.छे स्ते ञाम्स्. म्योङ स्मर् म. ग्तुब् ॥
ब्दे ब. द्ब्येर् मेद् जि ल्नर् छु.ग्ग ग् ब्शिन् ।

संसार ना चिन्तै निर्वाण न देखै, त्रिकाल त्रिभव काय-वाग्-मनको मिलावै ॥

१८ जिसे अप्रयास ग्रहण-त्याग की दृष्टि नही,
अन्त मध्य मे न बँटै मध्य (है) ऋजु मार्ग।
प्राकृत-कृत्रिम विना हृदय मध्ये न उत्तम,
यात्रा प्रवेश क्रम आदि पार-गमन मार्ग ॥

१९. समीप मार्ग राखि लंबा (है) संसार का कारण,
सहज और प्रतिपक्ष सपत्नी रहति।
तत्त्व के चार काय(और)पाँच ज्ञान, क्लेश आदि समूह संसार का मार्ग ॥

२०. विषयमें जो बधै न चरित निर्विषय देखै, भावमे ही आनन्द निरानन्द नही।
ग्रहण अवबोध दोउ साथ न मथै धर्मकाय,
इन्द्रिय स्वच्छन्द न पकड शून्ये रहै ॥

२१ अकथ अनुभव सदा न काटै, स्वसन्तान में युक्त हो जानै।
निर्मल अर्थमे महामुद्रा, सागर मे गगन सम अनुभव होइ ॥

२२. इन्द्रिय-विषय विनु प्रपान नही, स्मृति से बँधा तू ही कामुक।
स्वय त्याग-स्थापना से प्राच क्षण निवृत्त,
उदय-अस्त विनु विकल्प अंधकार असत् ॥

२३ धर्मता समरस कूट कुसुम तुल्य, दोष औ गुण अभिन्नता मे तुल्य।
महा अचरज अनुभव कहने में अस्पष्ट, सुख भिन्न नही जिमि जल स्थापना ॥

२४ ल्हन्.गचिग् स्क्येस् दङ नेल् ऽब्योर् दे मि ऽव्रल् ॥
द्ङोस् ग्चिग्. व्सम् प. दु मर्. द्रन्. म्थोङ. यङ ।
द्रन्. मेद्. ग्चिग्. यिन्. दु म ञिद् दु मिन् ॥
103a गङ शिग् ल्हन् चिग्७ स्क्येस्. द्गऽ व्दे छेन्. स्तोङ ।

२५ नेल.ऽब्योर् स्प्योद् प. व्लो लस् ऽदस्.पर्. स्प्योद् ॥
छगस्. लम्. ग्ञुग्.मऽि दोन्.ल. स्व्योर् ऽदोद्. न ।
नङ दङ फ्यि रोल्. म.द्मिग्स् व्दग्.ग्शन्.मिन् ॥
दे ञिद् दोन्.गेस्. रङ.व्शिन् ग्रोल् वर् व्स्तन्. ।

२६ स्कु.ग्सुम्. छोस्.स्कुर्.[1] द्व्ये.व.मेद्. मोङ. क्यङ ॥
ञम्स् सु व्लङस्. न ऽव्रस्. वु. सो मो ऽब्युङ ।
क्ये.हो. द्व्येर् मेद् तोंग्स्. न. ल्त ङन्. म्युर्.दु ऽजोम्स् ॥
स्क्ये.मेद्. स्तोङ.प. द्व्येर्.मेद्. थुग्.फ्रद्. दोन् ।

२७ यिन्.पर् शेस् न. नगस् ऽदव्. तेन्. दङ. व्रल् ॥
थुग्.फ्रद्. म.शेस्. म्छन्. मऽि. स्ञिङ. जें. नि ।
ऽखोर्.[2]. वऽि. ग्नस्.सु. चि. स्प्यद्. सग्.पऽि. ग्यु ॥
स्तोङ दङ स्ञिङ जें द्प्येर् मेद्. स्क्ये व. मेद् ।

२८. गङ शिग्. ऽखोर्. दङ. म्य ङन् ऽदस् रे.दोगस् व्रल् ॥
लुस्.सेम्स्. म ञेंद्. द्रन् मेद्. रङ.द्गर्. ग्नग् ।
दे ञिद् व्लो यिस्. म ञेंद्. रङ ब्युङ यिन् ॥
म्ञाम्.ग्नग्. जेंस्.थोव्. गि ग्नस्. म्छन्.ञिद्. दे[3] ।

२९ दोन्.दम्. म यिन्. व्लो यिस्. व्स्गोम्.दु मेद् ॥
लुस् दग्. सेम्स्.क्यिस् ग्सग्स्. सोग्स्. चोंल्.मेद्. ग्सल्
स्न.चें. ल सोग्स्. द्व्यिव्स् दङ. नम्.म्खऽ. दङ ॥
चोंल रेग्.पर्. म. स्प्यद्. ग्ञुग्.मर्. ग्नस् ।

३०. स्नङ व.थम्स्.चद्. व्दे व. योद्. मि.व्येद् ॥
द्रन.प.स्नङ.चम्. स्यु.मर्. शेस्[4]. चम्. ग्सल् ।

२४. सहज वह जोग उसके विना,
एक वस्तु चिन्तन नाना चित्त मे स्मृति देखे भी।
विस्मृति एक अनेकता में ही है, जो सहज आनन्द महासुख शून्य ।।

२५. योगचर्या बुद्धिसे परे आचरै, काम-मार्ग निज-अर्थ जोडना चाहै तो,
अन्दर बाहर न लहै आप औ पर नही, सोई अर्थ जानै स्वभाव मोक्षशासन ।।

२६ त्रिकाय धर्मकायमें भेद नही (तो) भी, समता उठानेमे फल भिन्न होइ।
अहो अभिन्न समझै तो कुदृष्टि तुरन्त मर्दै,
अजात शून्य अभिन्न चित्त ससर्गके अर्थ ।।

२७. है जानै तो वनस्पति आश्रयहीन, चित्त ससर्ग न जानै निमित्त करणा तो,
ससारके स्थान मे चर्याके आस्रवका[४] कारण क्या,
शून्यता करुणा अभिन्न अनुत्पन्न नही ।।

२८. जो संसार औ निर्वाणकी आशा-शका रहित,
काय-चित्त न लहै विस्मृति स्वच्छन्द।
सोई बुद्धिसे ना मिलै स्वयभू है,
समापत्तिके बाद प्राप्त सोई शान्ति-स्थान सो लक्षण ।।

२९. परमार्थ नही बुद्धिसे भावनीय नही,
काय-वाग्-चित्तसे रूप आदि व्यायाम के विना भासै।
नासा आदि सस्थान[१] औ आकाश, तृण को मत छ अपने में रह ।।

३० सब आभास सुख है मत कर, स्मृति आभास माया-ज्ञान मात्र भासै ।

४, मल। १. शरीर अवयव।

स्ल वऽि ग्सुग्स् व्र्न न छ मेद् ग्सुङ वस्. स्तोङ ।।
व् चल्. वयङ. मेद ल वल्तस्. वयङ. म्थोङ व. मेद् ।

४ ध्यान, महामुद्रा

३१. स्प्यु मर्. स्नङ वऽि. द्रन् प दे. द्रन् ते ।।
द्रन प मेद् लस् चिर् यङ. म्थोङ. व. मेद् ।
द्रन् पर् स्नङ यङ. ढे. ल ऽजिन् प. मेद् ।।
द्रन् पस् रेग् क्यङ रेग् गि [५] व्सम् ब्रल् वस् ।।
३२. व्सम् दु मेद् पस् ब्रल् वस् स्क्ये व मेद् ।
द्रन् प. स्क्येस् वयङ युल् ल मि.स्प्योद् पर् ।
चिर् यङ म ग्रुव्. स्तोङ वऽि रङ सोर् ग्गग् ।।
जि ल्तर् व्यस् वयङ पयग्.ग्र्य. ग्र्युन् मि ऽछद् ।
३३ यन् लग् व्शि ल्दन् पयग् ग्र्य छेन् पो व्शि ।।
स्क्ये मेद् दोन् र्तोग्स् प यि [६] यन् लग्. दङ ।
व्देन् ग्ञिस्. थ मि दद् विय. यन् लग् दङ ।।
स्नङ.व स्क्ये मेद्. थुग् फ्रद् ञिद् दु र्तोग्स्. ।
३४ द्रन् प ग्सुङ दु मेद्.पऽि यन् लग्. दङ ।।
स्तोङ प. क्र्येन् दङ द्रन् मेद् व्लो.लस् ऽदस् ।
दङ ोस् पो द्गग् स्ग्रुव् मेद् पऽि यन् लग्. गो ।
108b. दे. ञिद् ग्शिर् ल्दन् [७]. ऽदोद् पस् द्वेन् प् दङ ।
३५. र्तोग् दङ वचस्. द्प्योद् पर् व्चस् प. दङ ।।
द्गऽ. दङ व्दे दङ द्वेन् पर्.ग्नस् ल सोग्स् ।
थ स्ञाद् दे ञिद् म्छोन् पऽि युल् दु. ग्सुङस् ।।
ग्शिर् ल्दन् रव् ऽव्रिङ. थ मर् ग्सुङस् प यङ ।
३६. द्मन्.पऽि. दोन् दु. म्खस्.पस्. रव्.तु.व्शद् [१] ।।
फ्यग्.ग्र्य छेन् पो ग.ल. ग्नस् मि व्येद् ।
व्लङ दोर् ब्रल्.वऽि दोन् दु दे व्गिन् व्शद् ।।
ग्चङ स्मेर् मि ऽव्येद् गङ. यङ. द्ङोस्.ग्रुव दग् तु. ‹व्येद् ।

चन्द्र पुतली अश-विनु ग्रहण मे शून्य,
यत्न (कर) अभाव की दृष्टि से भी न दीखै ।।

४. ध्यान, महामुद्रा

३१. माया प्रतिभास की स्मृति सोई सुमिरै, विस्मृति से क्यों ना दीखै ।।
स्मृति-प्रतिभास भी उसका न धारण होई,
स्मृति द्वारा स्पर्श भी स्पर्श ध्यान-रहित ।।

३२ ध्यान मे अभाव से वियोग से उत्पत्ति नही,
स्मृति उपजी भी जो विषय मे न आचरै ।
क्यों कर भी न सिद्ध स्व-अगुलि रख, जेसे करी हुई मुद्रा कभी न टूटै ।।

३३. चतुरंगी महामुद्रा चार, अनुत्पन्न अर्थ अवबोध का अंग ।
दो सत्य अभिन्न का अग औ, आभास अनुत्पन्न चित्त संसर्ग में ही समुझै ।।

३४. स्मृति ग्रहण विनु अग, शून्य प्रत्यय औ विस्मृति बुद्धि से परे ।
वस्तु प्रवारण असिद्धका अंग (है), सोई मूल युक्त इच्छासे विविक्त औ ।।

३५. सवितर्क औ सविचार, आनन्द सुख औ विविक्त स्थान इत्यादि ।
सोई व्यवहार लखनेके विषयमे धरै, मूलयुक्त अधिमात्र[२] मृदुग्रहण भी।

३६. हीनके अर्थ पडितने कहा, महामुद्रा जहाँ न रहै ।
ग्रहण-त्याग-रहित अर्थमे वैसा कहा,
पवित्र-अपवित्र न विभाग कर जो भी भले साधै ।।

---

२. अत्यधिक ।

३७ ल्हन् चिग् स्क्येस् दङ युल् ल ग्तुम् मो स्पर्. ल.सोग्स् ॥
दम् छिग् ब्दग् गि खो न ञिद् दङ. र्नल्ऽब्योर्. ब्स्गोम् ।
द्ङोस् पो.[2] थम्स् चद्. म्ञाम्. ञिद्. फ्यग्.र्ग्य. छेन्. पो ल ॥
र्तोग्-प स्पङ.गिङ मि र्तोग्. ब्स्गोम् प चि.शिग्. ऽग्युर् ।

३८ ब्ल म.ल. गुस्. ग्सङ वऽि ऽद्रुल् स्दोम्. दे रु. र्जोग्स् ।
फ्यि नङ ग्सङ वऽि द्वङ ब्स्कुर् सो.सोऽि म्छन् ञिद् दङ ॥
बुम् प. ग्सङ.व. शेस्.रब् ये शेस् दङ ॥
ङो.बो ङस्[3]. छिग् द्वं व ल.सोग्स्. कुन् ।

३९ थुन् मोङ म्यु स्क्यस्. फ्यग् र्ग्य.छे.ल रेग्. मि.नुस् ॥
क्ये हो फ्यग् र्ग्य. छ ल. ऽब्रस्.बुऽि ब्दग् ञिद् स्कु गसुङ.
थुग्स् ल्दन् पस् ।
ऽब्रस् बु दे यङ. स्ञिङ पोऽि दोन्.ल. ऽर्यद् क्यिस्. द्रङ
दङ ङेस्.पऽि. दोन् ल. मिन् ॥
लम्. दङ ऽब्रस्.बु. स्ञिङ पो थम्स्.चद्[4] ब्चुद् ब्स्दुस्. दङ ।

४०. थेग्.छेन्. ब्ल न.मेद् पऽि. द्ङोस्. दङ. थेग् प.दग् गि.
स्यद् पर्. दङ ॥
कुन्.ग्यि. स्ञिङ.पोर् ग्युर् नस्. ग्सङ व ब्ल न.मेद् ।
फ्यग्.र्ग्य छेन् पो. ङेस् पऽि म्छन्.ञिद्. नि ॥
द्रन्. दङ. द्रन्.मेद्. ग्ञिस् सु.मेद्.पस् स्क्ये.मेद्. दे ।

४१. ब्लो.लस् ऽदस्.गिङ नम्.म्खऽ[5].ल्त.बुर्. चिर्. मि. ग्नस् ॥
लस्.क्यि फ्यग्.र्ग्य. द्पे. दङ. छोस्.क्यि. फ्यग्.र्ग्यऽि. लम् ।
फ्यग्.र्ग्य.छेन् पो. ऽब्रस्.बु. दम् छिग् फ्यग्.र्ग्य ग्ञन्.दोन्. ते ।
छोस् क्यि. फ्यग् र्ग्य. मन्.छद्. ब्स्तेन् पस् म्थर्.मि.ऽग्रो ।

४२. रो दोग्स् म्थर् ल्हुङ ऽदु ऽज़ि.ब्य.वऽि. स्क्योन्.दु ऽग्युर् ॥
खो न ञिद्.ल[6] ग्ञेन्.पो. द्ग्येर् मेद्. रङ.सोर. ग्शग् ।
र्नम्.र्तोग्. जि.स्ञेद्. गर्. यङ. ल्हुग्.पऽि.ञिद्. ल. शर् ॥
द्रन्.प. रङ सर् ग्रोल् नस् द्रन् मेद्. ल्हुग्.प ञिद् ।

३७. सहज औ विषय मे चडिका वेत इत्यादि,
सत्य वाणी आत्मका तत्त्व औ योगभावना ।
सर्व वस्तु सम ही (है) महामुद्रामे,
कल्पना छाडि भावना अविकल्प क्यो होवै ॥

३८. गुरु-भक्ति गुह्य विनय-सवर वहाँ निष्पन्न,
वाहर-भीतर गुह्य-अभिषेक भिन्न-भिन्न लक्षण ।
कलश गुह्य प्रज्ञा औ ज्ञान, भाव निश्चय वचनभेद इत्यादि सब ॥

३९. साधारण शक्ति से उत्पन्न महामुद्रा को छू न सकै,
अहो महामुद्रामे फल की आत्मा काय-वाक्-चित्तवाले से ।
सो भी फल सार-अर्थमे उपपत्ति से ऋजु औ निश्चित अर्थ नही,
मार्ग औ फल-सार औ सव रससग्रह ।

४०. महायान, अनुत्तर वस्तु औ यानोंके, विशेष सवके सारभूतसे गुह्य अनुत्तर ।
महामुद्रा निश्चयका लक्षण ही (है),
स्मृति-विस्मृति अद्वय से उत्पन्न नही (है) ॥

४१. वुद्धिसे परे हो खसम क्यो ना रहै, कर्ममुद्रा दृष्टान्त धर्ममुद्राका मार्ग ।
महामुद्रा फल सद्वचन मुद्रा परार्थ (है)
धर्ममुद्रा यावत् सेवनसे अन्त न होइ ॥

४२ आशा-शका अन्तच्युत सकर[३] का दोष होइ,
तत्व का परिपक्ष भेद नही स्व-अगुलि रख ।
विकल्प जितना भी उगै मुक्त मे उगै,
स्मृति स्वभूमि मे मुक्त हो तो विस्मृति मुक्त ही ॥

३, भीड़, मिश्रण ।

४३. गङ. यङ. लोङस्. स्प्योद् स्नङ.वर्. शे स्. शिङ. द्रन् मेद्. ग्सोस् ॥
रङ व्शिन्. ञम्स् ञिद् स्क्ये मेद् दग्.तु ल्दन् ।
109a कुन्.ल. ख्यब्[1].चिङ. वब्. छु ल्त वुर्. ग्नस् ॥
ग्युन् मि.छद्.पऽि. ऽवब्.छु. ल्त.वु. दङ ।

४४. मर् मे.ल्तर्. ग्सल्. रङ रिग् व्यङ छुब्.सेम्स् ॥
ऽगोग्.प मेद्.व्शिन्. द्रन् ग्गि रङ गिस् स्तोङ ।
यङ दग्.खो न.ञिद्. नि गङ गे न ॥
ग्गन् योद् (प) न. कुन् ग्यिस् म्थोङ वर्[1] रिग्स् ।

४५. रङ ल. योद्. क्यङ ल्कोग् ग्युर् व्ल मऽि गल्. ॥
सेम्स् ञिद् सङ्स् ग्र्यस् खो न ञिद् यिन् ते ।
द्रन् पस्. व्स्लद् चिङ दे ञिद् ग्गन् दु व्र्तग्स् ॥
सङस्.ग्र्यस्. यिन् फियर् योन् तन् गङ. गे न ।

४६. योन् तन् रस्. दङ. द्कर् पो ल्त वु स्ते ॥
खो.न.ञिद् क्यि. योन् तन् फ्यग् ग्र्य.छे[2] ।
ङो वो. योन्.तन्. सो सो म यिन्. थ दद् मिन् ॥
फ्यग्.ग्र्य.छे. दङ. व्शि व.ल सोग्स् कुन् ।

४७. योन् तन् सो.सो. म.यिन् थ दद् मिन् ॥
द्रन्.मेद् योन् तन्.ग्र्य.म्छो म ऽगुल्.वर् ।
द्रन पर्. मि ऽग्युर्. छु यि द्वऽ र्लब्स् मेद् ॥
स्क्ये.मेद्. योन् तन्. मि ऽग्युर्. व्रग्.दङ द्र ।

४८. व्रग्.च. ग्रग् चम् ज्रेस्[3]सु ऽव्रङ व. मेद् ॥
व्लो.यि ऽदस् गिङ. युल्.दु म ग्युर्. प ।
फ्यग्.ग्र्य छेन् पोऽि योन् तन्. नम् म्खऽ ऽद्र ॥
द्रन्प. सेम्स्.चचन् सेम्स् लस् व्युङ व यिन् ।

४९. दे.फियर्. स्तोङ प ग्गन् नस् व्चल् मि.द्गोस् ॥
व्शि.रु. स्नङ. यङ ग्चिग्.गि. योन् तन्. नि ।

४३. जो भी सभोग भासना जानि विस्मृति पोषै,
स्वभाव तुल्य ही अज शुद्ध (होना) युक्त।
सर्वत्र व्याप्त निर्झर जल जिमि रहै,
औ अविच्छिन्न स्रोत निर्झर जल जिमि॥

४४ दीप जिमि प्रकाशै स्वसवेद्य बोधिचित्त,
अनिरुद्ध सी स्मृतिवेदना स्वत शून्य।
सम्यक् तत्त्वमे जो आसक्त, अन्य होवे तो सबका देखना युक्त॥

४५. अपनेमें होवै तो परोक्ष गुरु-मुख, चित्त ही बुद्ध तत्त्व है।
स्मृति से कलुषित सोई अन्यत्र परीक्षा कर,
बुद्ध है, इसलिए जिस गुणमें आसक्त होवे॥

४६. गुण श्वेत पट-सा है, तत्त्व का गुण महामुद्रा है।
भाव गुण प्रत्येक का भिन्न नही, महामुद्रा औ चतुर्थ आदि सब।'

४७ गुण प्रत्येक नही भिन्न नही, स्मृतिहीन गुण सागर अचल।
स्मृति मे अविकृत जलकी तरग नही,
अनुत्पन्न गुण अविकृत शैल सदृश (है)।

४८. शिला ख्याति मात्र (से) अनुसरै नही, बुद्धि से परे विषयमे हुआ नही।
महामुद्राका गुण गगन-सम, स्मृति प्राणीके चित्तसे सभूत नही॥

४९ अत. शून्यता को अन्यत्र खोजिए, चारमे भासे तो भी एकका गुण।

फ्यग् र्ग्य वृगि रु स्नङ[४].व चि फियर् मृछो नि् ।।
गोङ गि ख्यद् पर् दग् गि वृगि रु. व्युङ ।
५० फ्यग् र्ग्य छे न् पो. ग्सुम् दु र्तोग् मि व्येद् ।।
गङ ल मि ग्नस् छंग्स् प मेद्.पर्. स्प्योद् ।
मे.र्तोग्. स्न्नङ चि. स्न्नङ मस् ऽयुङ.दङ ऽद्र ।।
सो.सोर् र्तोग्.पऽि ये.शेस्. थव्स् यिन्. ते ।
५१. रो. दङ फ्रद् न. रो.ल. शेन् प. मेद्[५] ।।
दे.ल्तर्. कुन् ग्यिस्. शेस्.पर् ऽग्युर् म. यिन् ।
स्ञिङ.पोऽि दोन् ग्यि ऽग्रो द्रुग् ख्यव् मोद्. क्यङ ।।
ऽग्रो व. द्रन् पस् व्चिङस् ते पद् त्रऽि. स्त्रिन् ।
५२. सेम्स् लस्. द्रन् प. व्युङ फियर् ऽख्र्उल् पऽि. र्ग्यु ।।
यिद् ल मि.व्येद् शेस् न. सङस र्ग्यस् ञिद् ।
ऽख्रुल्.प. दे.ल थव्स्. दङ्. शेस् रव्. मेद्[६] ।।
वये हो. द्व्येर् मेद् शेस्. न. थव्स् मृछोग्. दे.खो न ।

५. सहज, महामुद्रा

५३. सङ्स् र्ग्यस्. स्मेस् चन् छोस् नेम्स् थम्स् चद्.कुन् ।।
रङ गिस् सेम्स् ञिद्. दग् दङ ल्हन् चिग्. स्क्येस्. ।
यिद् ल मि व्येद् यिद् ल. स्क्येस्.चम् न ।।
109b द्रन् पऽि. स्नङ व नुव् स्ते वृदेन् वर्जन् मेद् ।
५४ दे फियर्. दे.ञिद् खो नऽि. युल्[७] म. यिन् ।।
द्पेर् न मिग् गि. युल्.दु. स्प्र मि. स्नङ ।
नेम् पर्.मि र्तोग्. र्तोग्.पऽि. युल्. म. यिन् ।।
स्तोङ पऽि. क्येन्.ग्यिस्. द्रन् प. ग्सल्.चम्. न ।
५५ द्रन् पऽि स्नङ व. नुव् नस्. मृथोङ. व.मेद् ।।
ये शेस्. ऽोन् लोङ स्कुग्स्. पर्. मि ऽग्युर्. ते ।
म द्रेन् प.ल. ऽोन् लोङ ल्कुग्स् र्ग्यु. मेद्[१] ।।
त्रेमस्.पो.ल.सोग्स्. थ.स्ञद्. कुन् दङ व्रल् ।

चार मुद्रामे भासित क्यो लखै, आगेके चारो विशेषो में सभूत ॥

५०. महामुद्रा तीनमे नही समझै, जहाँ न रहै निष्काम आचरै ।
मक्खीके पुष्प मधु पीने जैसा, प्रत्येकमे कल्पना-ज्ञान उपाय है ॥

५१. रसमे ससर्ग हो पर रसमे आसक्ति नही, तैसे सबसे ज्ञात होता नही ।
सार अर्थ के छ गति व्याप्त होने पर भी, गति स्मृतिसे बद्ध पत्रका कीट ॥

५२. चित्तसे स्मृति सभव होनेसे भ्रान्ति का कारण,
अमनसिकार जानै तो बुद्ध ही (है) ।
उस भ्रान्तिमे उपाय औ प्रज्ञा नही,
अहो अभेद जानै तो उत्तम उपाय सोई ॥

५ सहज चित्त, महामुद्रा

५३ बुद्ध प्राणी सारे धर्म सब, स्वय शुद्ध सहज (यह) चित्त ही ।
अमनसिकार मनमे उत्पन्न मात्र यदि,
स्मृति-आभास अस्त होइ सत्य औ मिथ्या नही ॥

५४ अत सोई उसका विषय नही, जैसे चक्षुके विषय मे शब्द नही भासै ।
अविकल्प कल्पनाका विषय नही,
शून्यताके प्रत्ययसे स्मृनि मात्र प्रकाशै यदि ॥

५५ स्मृति-आभास अस्त होनेसे न दीखै, 'ज्ञान बधिर-अन्ध-मूक'ता होइ ।
न-स्मृतिमे बधिर-अध-मूक कारण नही, जड़ आदि सर्वव्यवहार-रहित ॥

५६. स्नङ व नुव् चेस् व्य वऽि थ स्न्वद् नि ।।
द्रन्.प. फ्यग्स् ते द्रन्. मेद्. ग्सोस्.सु. स्पुङस्.
दे. ञिद्. स्क्ये मेद् व्लो लस् ऽदस् प नि ।।
द्रन्.प.मेद् दङ स्क्ये मेद् ये शेस् मेद् ।

५७ गसुङ ऽजिन् व्स्नेग्स्. स्व्यङस् व्लो लस् ऽदस्. फुल्.वस्
स्मोन्.[2]लम्. द्वङ गिस् स्क्ये.व फ्यिस् मि व्ग्युंद ।
दे फ्यिर् फ्यग् ग्यं छेन् पो स्ङोन्. सोङ ल ।।
सु ल. मि व्र्तेन् गङ ल. रग्. म.लुस् ।

५८. छु ल. ग्रुग्स्. दङ छोग्स् दङ. स्. ऽग्येद्. व्येद् ।।
रिग् व्येद् ग्रोङ ख्येर्. द्क्रोग् प. दग् दङ म्छुङस्. ।
फ्यग् ग्यं छेन् पो रङ लस्. ग्शन्.मेद्. फ्यिर् ।।
म्छोद् र्जस्.[3] द्रन्.प म्ग्रोन् दङ. म्छोद् ग्नस्. रङ शेस् पस् ।

५९ म्छोद्.प. रङ.गि. द्रन् प मेद्. ल. म्छोद् ।।
व्लो लस् ऽदस् क्यि स्क्ये मेद् छोग्स्.ल रोल् ।
फ्यग् ग्यं छेन्.पो. ग्शन्.ल. मि ल्तोस्.फ्यिर् ।।
व्स्गोम् व्य रङ ल स्गोम्.व्येद् रङ.गि सेम्स् ।

६० व्लो ऽद्स् रङ ल. द्मिग्स्.प.ञिद्.दङ व्रल्[4] ।।
दे ञिद् ऽव्रस् वु यिन् फ्यिर् ग्शन् ल रग्.म.लुस्. ।
व्स्गोम्.व्स्गुव्. स्ङग्स्. व्स लस् रङ गि सेम्स् यिन् ते ।।
यि दम्. ल्ह. दङ रङ गि. सेम्स्. यिन्.पस् ।।

६१ दे.फ्यिर् म्खऽ ऽग्रो. लुङ स्तोन्. ल.सोग्स्. रङ गि. सेम्स् ।
सेम्स्. नि द्रन.प चिर् (यङ) स्नङ वर्. स्तोन् ।।
म.द्रन् (प.) ल[5] थम्स् चद् द्मिग्स्.सु. मेद् ।
फ्यग्.ग्यं.छेन् पो रङ लस् ग्शन् मेद् फ्यिर् ।।

६२. सङ्स् ग्यंस्. छोस् दङ द्गे.ऽदुन् ल.सोग्स्. ते ।
फ. म. द्कोन् म्छोग्. रङ व्शिन्. व्यङ छुव्.सेम्स् ।।

५६. आभास अस्त (है) इसीका व्यवहार,
स्मृति से मुद्रित विस्मृत प्रत्यय-राशि।
सोई अज बुद्धिसे परे, स्मृतिहीन औ अज ज्ञान अग्निसे ॥

५७. धारणी-धर होम-घोष बुद्धि से परे अर्चना,
अधिष्ठानवश उत्पन्न पीछे असतान ।
अत: महामुद्रा पूर्व गतिमे, किसीको न आलवै कही ना अधीन ॥

५८ जलवास समाज औ भोज करै, वेद नगर दूहना (?) तुल्य।
महामुद्रा अपनेसे परे नही जो,
पूजाद्रव्य स्मरण दीप औ पूज्य स्वयं जानि ॥

५९. पूजा अपनी विस्मृतिमे पूजै, बुद्धिसे परे के अजन्मा समाजमे ललित।
महामुद्रा अन्यत्र न देखै अत, भावै अपनेमें भावनीय अपना चित्त ॥

६०. बुद्धिसे परे अपनेमें निरालव, सोई फल होनेसे दूसरेके न अधीन ।
भावना साधन मत्र जप अपना चित्त, औ इष्टदेव अपना चित्त है ॥

६१. अत डाकिनी व्याकरण इत्यादि अपना चित्त,
चित्त स्मृति क्यो भासित वता देइ ।
अ-स्मृतिमे सव आलवन मे नही, महामुद्रा अपनेसे पर ना होवै ॥

६२. वुद्ध धर्म सघ इत्यादि, माता पिता रत्न स्वभाव वोधिचित्त (है)।

म्छोद्. दङ. व्ञेन् वकुर् व्यस्. न द्रन्.पऽि. ग्युर् ।
थ दद्. मेद्. न. स्क्ये.मेद्. रङ सर्. ग्रोल् ॥

६३ व्लो.लस्.[6] ऽदस्.न. व्य दङ मि व्य. मेद् ।
सङस् ग्र्यस् सेमस्.चन्. म्छोन् छुल्. सो.सो यङ ॥
ल्हन् चिग् दग् तु. स्क्येस्. ते ग्गिग्.म. रिग् ।
गङ.शिग्. स्नङ यङ द्रन् पर्. मि तोंग् न ॥

६४ सेम्स् चन् ञिद् नि. ऽव्रस्.वु. स्क्ये व मेद् ।
110. गङ.शिग् मि स्नङ. द्रन्.पर्. तोंग्.चे. न ॥
सङस् ग्र्यस् ञिद्[7] वयङ खम्स् गसुम् ऽखोर् वऽि ग्यु ।
गङ शिग् द्रन् मेद्. यिद् ल ऽछ्ङ ट्येद्. चि ॥

६५. सेम्स्.चन्. स्नङ. यङ सङस् ग्र्यस्. दग् दङ म्छुङ ।
गङ शिग्. द्रन्.प. सङस् ग्र्यस् तोंगस् ऽदोद् न ॥
सङस्.ग्र्यस्. स्नङ. (व.) सेम्स्.चन्. स्यद्.पर् मेद् ।
देस्.न. स्नङ.[1] व्तग्स्. ग्ञिस् ल. व्र्तग्. तु मेद्. दे. पोर् ॥

६६ वोर्. यङ. रङ लस्. ग्शन् मेद् ऽग्रो. ग्युन् ऽछद् ।
रङ.लस्. योद्.स्नम् तोंग् गि द्रन्.पस्. व्स्लङ ॥
स्नङ व. ग्सल्.ल. मि.तोंग्. म. ग्ञेन्. सेम्स् ।
दे.फ्यिर्. योद्. दङ. मेद्. पऽि. तोंग्. प. ग्ञिस्. व्रल्. ते ॥

६७. ग्ञुग्. मर्. ग्नस्. न. गङ.[2] ल्तर्. व्यस्. क्यङ. व्दे ।
द्रन प. ऽोद् ग्सल् ऽजिन् पऽि स्ञिङ पो.चन् ।
शेन्.प ग्ञिस् दङ.व्रल्. ते. रङ व्गिन्.ग्ञुग् मर्. ग्शग् ॥
देस् न. फ्यग् ग्र्यं.छेन्.पो सुङ.दु. रव्.ऽजुग्. स्ते ।

६८. द्रन.प. द्रन्.मेद्. स्क्ये.मेद्. सुङ दु. ऽजुग् ॥
द्रन.मेद्. मि तोंग् प.यि. रङ.व्गिन्. दङ. ।
तेंन्.व्रेल्[3]. ग्लो वुर्. स्क्ये वऽि. द्रन्.प.गञिस्. ॥
स्क्ये.व मेद्.पऽि. दङ. दु. रो.ग्चिग्.फ्यिर् ।

पूजा औ उपासना करे तो स्मृतिका कारण,
भेद नही उत्पत्ति नही तो स्वभूमिमे मुक्त।

६३. बुद्धिसे परे हो तो क्रिया अ-क्रिया नही,
बुद्ध (औ) प्राणी के लखने का ढग पृथक्-पृथक् भी।
शुद्ध सहजमे जनमी विद्या अविद्या, जो भासै भी स्मृतिमे न अवबोधित यदि।।

६४. प्राणी ही फल उत्पन्न नही, जो न भासै भी स्मृतिमे अवबोधित यदि।
बुद्ध ही त्रिधातु समारका कारण, जो विस्मृति (सो) मनमे धारिये क्या।।

६५. प्राणी भासै भी शुद्ध बुद्ध (के) तुल्य, जो स्मृति बुद्ध समझा चाहे तो।
बुद्ध भासै भी प्राणी से विशेष नही,
अत आभास परीक्षा दोनोमे निरूपण नही उसे छोड़।।

६६. छोडा भी अपनेसे पर नही जग प्रवाह टूटै,
अपनेसे है चिन्ता कल्पनाकी स्मृति से ले।
आभास प्रकटमे अविकल्प अमन्द चित्त,
अत भाव-अभाव दोनो कल्पना से रहित।।

६७. निजमे रहै तो जैसे करा भी सुख, स्मृति आभास्वर धारी सारवान्।
आसक्ति द्वैतरहित स्वभाव निजमें थापै, अत महामुद्रा युगमें प्रविष्ट(है)।।

६८. स्मृति विस्मृति अजन्मा युगमे उतरै, औ विस्मृति अविकल्पका स्वभाव।
प्रत्यय अकस्मात् उत्पन्न दो स्मृति, उत्पत्ति विना साथमे एकरसके कारण।।

६ त्रिकाय, त्रिमुद्रा

६९ देस् न स्ञ्ये दङ स्ञ्ये व व्लो लस् ऽदस् ॥
ऽोद् ग्सल् स्तोङ दङ सुङ दु ऽजुग् ल सोग्स् ।
म व्चोस् म व्यस् स्क्ये मेद रङ.सर्. ग्रोल् ॥
दे ल. स्कु ग्सुम् छोस् स्कु. लोङस् स्कु दङ ।
७० स्न छोग्स् स्नङ व[४]. स्प्रुल् स्कु. ग स्.सु व्गद् ॥
ग्ञुग् म ङो.वो ञिद् क्यि स्कु यिन्. ते ।
स्ञिङ.र्जे स्तोङ दङ. द्व्येर् मेद् स्क्ये व मेद् ॥
नस् क्यि फ्यग् र्ग्य ल व्र्तेन् ञम्स् म्योङ नि ।
७१. व्चोस् म यिन् फ्यिर्. र्क्येन् ग्यि स्तोव्स् लस् व्युङ ॥
ग्शन् ल ल्तोस् फ्यिर् खो.न ञिद्. म यिन् ।
छोस्.क्यि. फ्यग्.र्ग्य. व्चोस्[५] म. म.यिन्. क्यङ ॥
ञम्स् सु.म्योङ वस्. म ग्रुव् ञिद्. मि म्थोङ ।
७२. फ्यग्.र्ग्य.छेन् पो ञम्स् सु म्योङ. ऽग्युर् न ॥
द्रन्.प. स्न छोग्स् स्क्ये व मेद्.पर्. शेस् ।
द्ङोस् पोर् स्नङ.व. ङो वो ञिद् क्यिस् स्तोङ ॥
सेम्स्.चन् स्क्ये.व मेद्. दङ द्व्येर् मेद्. दोन् ।
७३. स्ञिङ र्जे. थव्स् क्यिस्[७] म्छोन् व्य. द्पे यिस् व्स्तन् ॥
स्न.छोग्स् स्नङ यङ व्लो ऽदस्. युल् मि ग्यो ।
व्दग्.ञिद्. र्नल् ऽव्योर्. दे.ञिद् र्तग् तु व्ल्त ॥
स्प्योद् लम्. थम्स् चद्. फ्यग्.र्ग्य.छे ल. ग्नस् ।
७४. द्ङोस्.पोऽि. ग्नस् लुग्स्. स्क्ये मेद्. ङङ.ङु. ग्शग् ॥
110b र्लुङ गि. र्क्येन् व्चस्. र्ग्य म्छो. दङ वल् ते. ।
द्वऽ[७]र्लव्स्. छ.यि. ग्ञेर्.म ग्लो वुर् स्क्ये ॥
दे.ञिद्. र्ग्य म्छो.दग्. दङ द्व्येर्.मेद्. दो ।
७५ द्रन.पस्. र्क्येन् व्यस्. र्तोग् प गलो वुर्. स्क्ये ॥
दे ञिद्. स्डर् ग्यि द्रन्.प.मेद्. दङ नि ।

६ त्रिकाय, त्रिमुद्रा

६९ अत उत्पन्न औ उत्पत्ति बुद्धि से परे (है),
आभास शून्य औ योगमे उतार इत्यादि।
अमथित अकृत अज स्व-भूमिमे मुचै,
तहाँ त्रिकाय धर्मकाय औ सभोगकाय ।।

७० नाना भासित निर्माणकाय इति कहिये, निज स्वभाव ही का क.य है।
करुण। शून्यता भिन्न उत्पन्न नही, कर्ममुद्राके आश्रय से अनुभव ।।

७१ अमथित होने से प्रत्ययके वलसे हुई, दूसरेकी अपेक्षासे तत्त्व नही (है)।
धर्ममुद्रा अपक्व नही भी, अनुभवसे असिद्ध नही दीखै ।।

७२. महामुद्रा अनुभूत हो तो, नाना स्मृति की उत्पत्ति का न होना जानै।
वस्तुके-प्रतिभास भावही से शून्य, प्राणी अनुत्पत्ति अभेदके अर्थ।

७३ करुणा उपायसे लखै दृष्टान्तसे दिखावै,
नाना प्रतिमास भी बुद्धिसे परे विषय अचल।
आत्मा ही योगी वही सदा देखै, सारा चर्यामार्ग महामुद्रामें रहे ।।

७४ वस्तुकी व्यवस्था अज हसमें थापै, पवनके प्रत्यय के साथ सागरस्वच्छ में ।।
वेला पानीकी तरग अकस्मात् जनमै, सोई शुद्धसे सागर भिन्न नही ।।

७५. स्मृतिप्रत्यय कृत कल्पना अकस्मात् जनमै, औ सोई पूर्वकी स्मृति नहीं।

स्क्ये.मेद् व्लो ऽदस् दग् गिस् म्छर्. म्छुङस्.ने ॥
दे ल्तर् फ्यग्.र्ग्य.छे.ल. स्त्र्येस्.प स्ङर्.मेद् व्गिन् ।

७६ फियस् क्यङ[1]. कर्येन् गियि स्तोव्स् क्यिस् स्त्र्येस्.न्रिद्. क्यङ ॥
स्क्ये व मेद् प दे दग् द्व्येर्.मेद्. दो ।
ग्सुग्स् चन् म यिन्. कुन् ल ख्यव्.प. दङ ॥
मि ऽग्युर् व दङ दुस्.नंम्स्. थम्स्.चद्.पऽो ।

७७ नम्.म्खऽ ल्त वुर् स्क्ये ऽगग् मेद् प. दङ ॥
थग् प. स्प्रुल् व्मुङ् स्प्रुल्.ग्यि. स्तोङ प. दङ[2] ।
छोस्.स्कु. स्प्रुल्.स्कु लोङ्स् स्कु. स्प्रुल्.स्कु. द्व्येर्.मेद् दे ॥
ङो वो ञिद्. नि. व्लो.यि. युल् लस्. ऽदस् ।

७८ फ्यग् र्ग्य छेन् पो स्कद् चिग्. म्ङोन्. सङस्.र्ग्यस्. ॥
दे ञिद् सेम्स्.चन् दोन्.दे. ग्सुग्स्.स्कुर्. व्युङ ।
र्ग्यु म्थुन्. ऽव्रस् वु र्नम्.स्मिन्. ऽव्रस्.वु दङ ॥
द्रि म मेद् पऽि ऽव्रस् वु ग्शन् दोन्[3] व्येद् ।

७६. गो.ऽफङ स्व्यद् पर् व्जोद्.लस्.ऽदस्. पर् . व्गद् ॥
क्ये हो. म.व्चोस्. फ्यग् र्ग्य. व्दे.व छे ।
द्रन्.मेद् क्लोङ दु. रङ दु. रङ. गर् व ॥
स्क्ये.मेद्. नम् म्खऽ.ल्त.वुर्. ख्यव् ।

८० व्लो लस् ऽदस् पऽि दङ ल ग्नस् ॥
स्नङ.व. स्प्रोस्.व्रल् व्दे.व.छे ।
द्रन मेद्. चिर्. यङ नि. र्तोग्.प ।
द्रन्[4].प स्न छोग्स् सेम्स्.मु. ग्सल् ॥

७. सहज महासुख

८१. व्र्तग्. चिङ. व्चल्. न. द्मिग्स्.सु. मेद् ।
स्क्ये.व मेद्.प ऽजिन्.दङ व्रल् ॥
जिन्.दङ.व्रल्.वऽि. र्ग्यु व. मेद् ।
द्रन्.प. स्न्युं म. रङ रिग्. चम् !

अज शुद्ध बुद्धिसे परे आश्चर्य तुल्य,
ऐसे महामुद्रा से उत्पन्न पहिले न जिमि ।।

७६. बाहर भी प्रत्ययके वल जन्म भव भी, जन्म विना वे अभिन्न हैं ।
रूपी नही सर्वव्याप्त औ, अविकारी औ सर्व कालोवाला ।।

७७ गगन जिमि जन्म विरोधी नही,
औ रज्जु (मे) सर्प की धारणा सर्पकी शून्यता ।
धर्मकाय सभोगकाय निर्माणकाय अभिन्न, स्वभावत बुद्धिके विषयसे परे ।।

७८. महामुद्रा क्षणिक पूर्व बुद्ध (है), सोई प्राणीके अर्थ रूप-कायमे होइ ।
कार्य शक्ति फल विपक्व फल औ, निर्मल फल परके अर्थ करै ।।

७९. कपाट विशेष वर्णनातीत कहिए, अहो अपक्व मुद्रा महासुख ।
विस्मृति वीचिमें स्वय उगै, अजन्मा ख–सम जिमि व्यापी ।।

८० बुद्धिसे परे साथमे रहै, प्रतिभास निष्प्रपच महासुख ।
विस्मृति भी क्यो अविकल्प, नाना स्मृति चित्तमे प्रकाशै ।।

७ सहज महासुख

८१. परख कर ढूँढनेपर आलवन नही, अनुत्पन्न धारणरहित ।
धारणरहित (जो सो) कारण नही, स्मृति माया स्वसवेदन मात्र ।

८२. मायारहित मुक्तिरहित विस्मृति प्रकाशै, अनुत्पन्न सर्व परमार्थ प्रकाशनसे ।
सब बुद्धिसे परे हो भासै, त्रिधातु बुद्धिसे परे ज्ञान ही ।।

८३. सहज तत्त्व (है), स्मृति-मूल अशेष रज्जु काटै ।
स्मृतिरहित अजन्मा धातु मे हूँसै, सोई अपक्व बुद्धि-विषयसे परे ।।

८४. स्मृति वेदक चित्त स्वयं ज्वालाहीमें प्रकाशै,
प्रकाशनसे विकल्प ससार का सखा होवै ।
मोक्ष-मार्ग सोई जानि, स्वयभू जिमि चिन्ता विना रहै ।।

८५, स्मृति स्वयप्रकाशक वस्तु सिद्ध नही अपक्व अक्षय अज महासुख ।
प्रत्यक्ष प्रतिभाससे पार्श्व धरनेको कुछ भी नही,
अर्थहीन विषयमे कही भी देखनेको नही ।।

८६. आश्रयहीनसे सीखना कुछ भी नही, जहाँ मनमें अभेद महामुद्रा ।
निमित्तकी जितनी नाना स्मृति, सोई महामुद्रा में भेद नही ।

८७. कल्पना अकल्पना दोनों पृथक् नही,
नित्य औ उच्छेद अन्तमें न रहै निर्दोष ।
अपने सोई कल्पना करै तो अन्यसे नही, औ आश्रयसंबधी निर्वाण-मार्ग
कहिये ।।

८. मुद्रा, महामुद्रा

८८. अनुत्पन्न समझै तो महामुद्रा, सोई न जानै (तो) कर्ममुद्रा ।

८२. स्यु.मेद् थर् मेद्. द्रन् मेद् ग्सल् ।
स्क्ये.मेद्.दोन्.दम् कुन् ग्सल् वस् ।।
थम्स्.चद्. व्लो लस्. ऽदस् पर्. स्नङ ।
खम्स्.ग्सुम्. व्लो ऽदस् ये शेस् ञिद् ।।

८३ ल्हन्.चिग् स्क्येस् प दे खो न ।
द्रन पऽि. चँ व. म.लुस् थग्.व्चद् दो ।।
द्रन् मेद्. स्क्ये व.मेद् पऽि. द्व्यिङस्.ल. द्गोङ ।
दे. ञिद्. म व्चोस् व्लो यि. युल् लस् ऽदस् ।।

८४. द्रन् रिग्.सेम्स् क्यि रङ ऽवर्. ञिद्.दु. ग्सल् [६] ।
ग्सल् वस् नँम् तोंग्. ऽखोर् वऽि ग्रोंग्स्.सु. ऽग्युर् ।।
थर्.वऽि. लम्. नि. खो.न.ञिद् शेस् नस् ।
रङ ऽव्युङ जि व्शिन् व्सम् (प.)व्रल् ल ग्नस् ।।

८५ द्रन् प. रङ ग्सल्. द्ङोस् पोर् ग्रुव् प. मेद् ।
व्चोस् मेद् द्गोङ्स् प स्क्ये.मेद्. व्दे छेन्. ऽदि ।।
म्ङोन्.सुम्.स्नङ वस्. दोस् [७].ग्सुङ. गङ यङ मेद् ।
दोन् मेद्. युल्.दु. चिर् यङ. म्थोङ व. मेद् ।।

८६ तोंन् (प)दङ व्रल् स्लोव् प. गङ यङ. मेद् ।
गङ्.ल यिद् ल. द्व्येर् मेद् फ्यग्.ग्यँ.छे ।।
म्छन् मऽि द्रन् स्न छोग्स् जि स्ञेद् प ।
दे. ञिद् फ्यग्.ग्यँ.छे ल. द्व्ये.व मेद् ।।

८७ तोंग्स् दङ मि तोंग्स् ग्ञि.ग सो सो.[१] मिन्. ।
तंग् छद् म्थऽ ल मि ग्नस् स्क्योन्.दङ व्रल् ।।
रङ गि दे ञिद् तोंग्स् न ग्गन्.लस्. मिन् ।
तोंन् ऽव्रेल्. म्य ङन् ऽदस्.लम्. व्स्तन्.प दङ ।।

८. मुद्रा, महामुद्रा

८८. स्क्ये व मेद् पर् तोंग्स्.न. फ्यग् ग्यँ छे ।
दे ञिद्. मि शेस् लस् क्यि फ्यग्.ग्यँ दङ. ।।

दम् छिग्. छोस् ल सोग्स् प व्र्चोल् ऽदोद् [2]प ।
दे ञिद्. म्छोन् वऽि द्पे चम् दोन् मि नुस् ॥

८९ ग्सुङ ऽजिन्. व्रल् वऽि फ्यग् ग्र्य छे व्र्तेन् प ।
ग्सेस् प रङ लुग्स् सो म ञिद् ल. व्युङ ।
ऽदोद् मेद् रङ व्ग्न् ग्ञुग् मऽि ङो वोर् ग्नस् ।
थ मल् स्नङ वऽि ग्सेस् प ऽदि ञिद्. व्लो ॥

९० यिन् मिन् द्रन् पऽि सेम्स् ल रङ [3] ग्शन्. यिन् ।
यिद् छेस् रिन् छेन्. ग्दम्स्.ङग् यिद् व्शिन्. ग्तेर् ॥
यिद् ल. व्य दङ मि व्य मेद् पर् ग्शग् ।
रङ रिग्. फ्यग्.ग्र्य छेन्.पो ञिद् यिन् पस् ॥

९१ फ्यग् ग्र्य छेन्.पो.ञिद् ल ञिद् क्यिस् व्स्तन् ।
द्रन प स्न छोग्स् दोन् ल सेम्स् म ऽजुग् ॥
पिय नङ व्रल् ट्स् चोद् मेद् फ्यग् ग्र्य [4]दङ ।
फ्यग्.ग्र्य.छेन् पो. स्रोग् ल्दन् ऽदोद्.प मेद् ॥

९२ ऽदोद् प. व्युङ न. दे यङ द्रन् पऽि ग्र्यु ।
रङ (गि.)सेम्स्.(प)फ्यग् ग्र्य छेन् पो ल ॥
द्रन्. दङ. म द्रन्. थ दद् स्क्ये् व मेद् ।
ख्युल् दङ म ऽख्युल् व्लो यि युल् लस् ऽदस् ॥

९३. द्रन पऽि. ग्ने न्. तोंग् व्र्तस् पस् ऽखोर् वऽि ग्यु ।
ऽोद् ग्सल् [5] फ्यग् ग्र्य. ग्ञुग् मऽि. ङो वो. ञिद् ॥
गङ यङ ऽग्युर् मेद् व्यङ छुव् सेम्स् स ग्चिग् ।
खो न ञिद् ल ग्सुङ ऽजिन् ङो वो व्रल् ॥

९४. स्नङ व् दोन् ल्दन्. ये ग्सेस्. ञिद् दु. म्थोङ ।
वसम् पस् व्र्तग्स् पस् द्रन् पऽि छोग्स् सु ग्र्युस् ॥
स्नङ व स्वये व लोग्.पऽि स्तोव्स् क्यिस् म्थोङ [6] ।
द्रन प द्रन मेद् दङ ल ग्सेस् ऽजुग् प ॥

सद्वचन धर्म इत्यादि अभ्यास की इच्छा,
सोई परखनेके दृष्टान्त मात्र के अर्थ असमर्थ ॥

८९. ग्रहण-धारण-रहित महामुद्रा-आश्रय, ज्ञान स्व-मर्यादा अभिनव ही मे होवै।
इच्छा विना स्व-पर अपने ही भाव मे रहै
मृदु प्रतिभासी ज्ञान(है)यही बुद्धि ।

९०. है—नही स्मृतिके चित्तमे स्व-पर है,
आस्था रत्न अववादवचन चिन्ता(मणि)कोश ।
मनसिकार औ अमनसिकार अभाव मे राखै, स्वसवेद्य महामुद्रा ही होनेसे ।

९१. महामुद्रा हीके समीप से आदेशै, नाना स्मृतिके अर्थ चित्त न प्रविशै ।
बाहर भीतर विना निर्विवाद मुद्रा औ, महामुद्रा प्राणी (की) इच्छा नही ॥

९२ इच्छा हो तो सो भी स्मृति-हेतु, स्व-चित्त महामुद्रा मे ॥
स्मृति औ विस्मृति का भेद उपजै नही,
भ्रम औ अभ्रम बुद्धिके विपयसे परे(है) ॥

९३. स्मृति आसक्ति कल्पना तर्कदर्पसे ससार-कारण,
आभास्वर मुद्रा(है)निज स्वभाव ही ॥
जो भी निर्विकार बोधिसत्त्वभूमि एक,
तत्त्व (है) धारण-ग्रहण (स्व) भाव-रहित ॥

९४ प्रतिभासी अर्थवाला ज्ञानहीमे दीखै,
चिन्तनसे परीक्षासे स्मृतिनमूहमे कारण ।
प्रतिभासना जन्म मिथ्यावलसे दीखै, स्मृति-विस्मृति के साथ ज्ञान प्रवेश ॥

९५ लुस्. दङ यिद् क्यिस् ऽव्द् क्यङ. द्रन् ग्यु मेद् ।
ग्ञिस् सु मेद् न. ऽखोर् वऽि रङ व्गिन् मेद् ॥
द्रन् प. स्न छोगस् ऽग्यु वऽि रङ व्गिन्. ऽदि ।
111f स्न.चे.ऽि. फ्यग्.ग्यं दग्.ल. ये नस्. मेद् ॥

९६ देस् न. फ्यग्.ग्यं छेन्.पो व्सम्.मेद्. व्लङ दोर्[७]. ग्शग् ।
क्ये हो नङ (व.) सव् दङ मि सव् व्स्क्येद् रिम्. दङ ॥
योङस् ग्रुव्. ङो वो ञिद् दङ. द्व्रुग्स् द्व्युङ. दङ ।
ग्युस् ग्दव्. लस् दङ. छोस् क्यि फ्यग्.ग्यं. नि ॥

९७. र्नल् ऽब्योर्. योङ स्.सु.र्जोगस्.पऽि रिम्.प स्ते ।
फ्यग् ग्यं छेन् पो. ङो वो.ञिद्.क्यि. रिग् ॥
दम्.छिग्. फ्यग्.ग्यं योङस्.सु. ग्रुव् पऽि.[१] रिम् ।
कुन् व्र्तगस् (प दङ) योङस्.सु ग्रुव् पऽि ग्यं. ॥

९८. लस् क्यि. फ्यग्.ग्यं. दव्ङ गि. ङो.वो. दङ. ।
द्गऽ.व.व्गि.ल्दन्. थव्स्.क्यि. रङ व्शिन्.चन् ॥
छोस्.क्यि.फ्यग्.ग्यं. स्न.छोगस् स्नङ.व. स्ते ।
द्गऽ.व.व्शिऽि ल्हन् चिग्.स्क्येस् प. ञिद् ॥

९९. फ्यग्.ग्यं.छेन्.पो स्क्ये.व.मेद्.प. ल ।
ग्सुङ ऽजिन्. द्रन्.ब्रल्.[२] ङो वो. व्लो लस् ऽदस् ॥
द्रि.म.मेद् पऽि ऽब्रस्.वु. म्ङोन्.सङस्.ग्युस् ।
दम्.छिग्. फ्यग्.ग्यं. म्छन्.मऽि र्नल् ऽब्योर्. ते ॥

१०० ऽब्रस्.वु. ल्ह.यि द्क्यिल् ऽखोर्. ऽग्रो वऽि. दोन् ।
र्जे वचुन्. फम्. थव्स् दङ गेस्. रव्. म्छोन्. ते ॥
द्गऽ व.व्शि ल्दन्. दम् छिग्. फ्यग्.ग्यं.छे. ।
दे.ल्तर्. थव्स्.क्यि. स्व्योर् व[३]. कुन्.ऽदुल्. यङ ॥

१०१ सव् मो छोस्.क्यि फ्यग्.ग्यं ग्तन्.ल. द्वव् ।
सेम्स् ञिद्. फ्यग्.ग्यं छेन्.पो. रङल व्स्तन्. ॥

९५. काय औ मनसे रत भी स्मृति-कारण नही,
अद्वैतमें संसार का स्वभाव नही (होता) ।
न।न। स्मृतिकारणका स्वमाव यह, नासाग्रकी मुद्राओं मे आदिसे नही ।।

९६. अत. महामुद्रा ध्यानहीन ग्रहण-त्याग थापे,
अहो भीतर गंभीर औ अ-गभीर उत्पत्तिक्रम ।
संसिद्ध(स्व)भाव औ श्वास सभूत, स्नायुपत्र कर्म औ धर्मकी मुद्रा ।।

९७ योगपर्यवेक्षणका क्रम है, महामुद्रास्वभाव ही का क्रम ।
सद्वचन मुद्रा ससिद्धिका क्रम, सर्वपरीक्षा ससिद्धिका कारण ।

९८ कर्ममुद्रा इन्द्रि(य) का स्वभाव औ, चउ आनन्दी उपाय का स्वभाववान् ।
धर्ममुद्रा नाना प्रतिभास (है), चउ आनन्दका सहज ही ।।

९९ अनुत्पन्न महामुद्रा मे, धारण-ग्रहण स्मृति बुद्धि से परे ।
निर्मल फल पूर्व बुद्ध, सद्वचन मुद्रा निमित्त योग (है) ।

१००. फल देवमडल ससारके अर्थ, भट्टारक माता पिता प्रज्ञा औ उपाय लखै ।
चउ आनदयुत सद्-वचन महामुद्रा, ऐसे उपाय प्रयोग सर्व विनय भी ।।

१०१. गभीर धर्ममुद्रा निर्णय, चित्त ही महामुद्रा अपनेको आदेशै ।

दग्ऽ वस्. ग्सुङ वऽि द्रन् प व्कर्.व दङ।
म्छोग् दग् स ऽजिन् पऽि द्रन्. फ्यग् ग्तङ व. दङ ।।

१०२. ल्हन् चिग् स्क्येस् दग्स् द्रन् प व्कर् वस् दङ।
दग्ऽ ब्रल् स्नङ' व. स्क्ये.मेद् द्रन् प ग्सल्. ।।
दे व्गिन् सव् मोऽि छोस् क्यि. फ्यग् ग्र्य व्स्तन् ।
दग्ऽ व्गि ये.शेस्. गङ दु स्क्येस् प दङ ।।

१०३ थ मि दद् चिङ् योङस् सु थिम् पर्. ग्नस् ।
र्तोग्.पऽि ञम्स् म्योङ दग् ल. ग्नस् प दङ ।।
यिद् ल. म द्रन् र्तोग्.प थ.मि दद्. ।
द्पे दङ लम्.स्ते थ स्ञद्. ऽदुल् वर् व्स्तन् ।।

१०४ सेम्स् ञिद् फ्यग् ग्र्य छेन् पो. ऽछर्.व नि ।
स्क्ये मेद् स्क्ये.वऽि छो ऽफ्रुल्. चिर् यङ ऽछर्. ।।
व्लो लस् ऽदस्. प व्सम्.स्क्येस्. ङो वोर्. व्स्तन् ।
म.स्क्येस् प दङ स्क्येस् पऽि द्ङोस् पो ग्ञिस् ।।

१०५ थ दद् मेद् दे ग्ञुग् मऽि. ङो वोर् ग्शग् ।
द्रन प.स्त.छोगुस् गङ ल. ग्यु व ऽदि[६] ।।
द्रन्.मेद् ऽजुग् पस्. र्तोग्.प. मि ऽगग्.प ।
शेस् पर् लेग्स् ग्शग् न. नि. ग्नस्.पर्. ऽग्युर् ।।

१०६ स्नङ. दङ स्तोङ दङ. ग्ञिस् ऽजिन्. स्क्ये.वऽि. ग्र्यु ।
थ.मि.दद् पर् गो न व्दे व.छे ।।
ञम्स् म्योङ शर्.वस् मि.म्थुन् ऽजिन्.प ब्रल् ।

112a. द्रन् प मेद् दे. ऽदि द्रऽि युल् मेद्. प ।।

६. शून्यता, महासुख

१०७ द्रन्.प [७]मेद्. दङ स्नङ स्तोङ थ.मि दद् ।
म.क्येस् म्छन् म मेद्.पऽि. र्नल्ऽव्योर्. ल ।।
म्ञम् ग्शग् र्जेस् थोव् मेद् दे. ग्र्युन् ग्यि. र्नल् ऽव्योर्. ल ।
स्नङ दङ. स्क्ये व द्रन् प गङ स्क्येस् क्यङ ।।

आनन्दसे गृहीत स्मृति कठिन औ,
उत्तम शुद्ध धारण स्मृति अर्थ (उन्मेष) देना ।

१०२ सहज शुद्ध कठिन स्मृति औ, निरानन्द प्रतिभास अज स्मृति प्रकाशै ।।
ऐसे गभीर धर्ममुद्रा आदेशै, चउ-आनद जानै औ कही जनमै ।।

१०३. अभिन्न विलीन रहै, औ कल्पना अनुभव मे रहै ।
मनमे न रमरै कल्पना अभिन्न, दृष्टान्त औ व्यवहार विनयन कहिए ।।

१०४ चित्त ही महामुद्रा उगै, अनुत्पन्न प्रातिहार्य कैसे उगै ।।
बुद्धिसे परे समाधिज भवमें बतावै, अज औ जात दो वरतु ।।

१०५. अभिन्न वह निज (स्व)भावमे थापै, नाना स्मृति जिसका कारण यह ।
विस्मृतिप्रवेशसे कल्पना न निरोधै, ज्ञाने सस्थापित हो तो ठहरै ।।

१०६ प्रतिभास शून्यता-द्वैत धारणा उत्पत्ति-कारण, अभिन्न जानै तो महासुख ।
अनुभूतिके उदयसे विपक्ष धारणा हटै, सो विस्मृति ऐसे निर्विपय ।।

९. शून्यता, महासुख

१०७. विस्मृति औ प्रतिभासशून्यता भिन्न नही, अजात अ-निमित्त योगी को ।
समापत्ति उपलब्धि नही स्रोतके योगमें,
प्रतिभास औ अज स्मृति जो जनमै भी ।।

१०८ दे ञिद् स्तोङ व द्रन् प मेद् ग्नस् पस् ।
द्रन् प यिद् ल व्येर् मेद् स्नङ [1] स्तोङ द्व्येर् मि फ्येद् ॥
दे ञिद् थुग्.फ़द् स्क्ये.मेद् ञमस् म्योङ. ल ।
स्नङ वऽि ङो. वो स्तोङ.व. व्दे.छेन्. शर् ॥

१०९ छ्व् रोम्. छुर् व्शु. व्तुङ ङ् व्तुव् व्शिन्. दु ।
गङ. स्नङ स्क्ये मेद् व्दे व छेन् पोर् छोर् ॥
व्तङ स्ञोम्स् द्रन् प मेद्. दे र्तोग् प. म व्कग् क्यङ ।
व्लो लस् ऽदस् पस् [2] मोंङस् प स्गोम् दङ व्रल् ॥

११०. दि.ल. ग्नस् न व्दे छेन् ञमस् ऽव्युङ. स्ते ।
दङ.पोर् स्नङ व स्तोङ पऽि. ञमस् म्योङ. ऽव्युङ ॥
छ्व् रोम् स्नङ यङ छु ङो शेस् व्शिन् दु ।
ग्ञिस् प द्रन् पऽि. स्नङ व म ऽगग्. पर् ॥

१११ स्तोङ प. व्दे दङ. थ मि.दद्.पर् ऽव्युङ ।
छुव् रोम्. छु[3].रु व्शु वऽि ग्नस् स्कव्स् व्शिन् ॥
द्रन्.प. द्रन् मेद् स्क्ये व मेद्.ल थिम् ।
थम्स्.चद्. थ मि दद्.पस्. व्दे व छेन्.पोर् ग्चिग् ॥

११२ दे ञिद् छ्व् रोम्. छु रु व्शु व व्शिन् ।
थम्स् चद् रङ व्शिन् थुग्स् फ़द् ग्रेस् ग्युर् न ॥
व्चिङ व्क्रोल् दग् गिस्. म व्सुङ द्रन् पऽि ज़ेस् म[4]. ऽव्रङ ।
ऽजुर्.वुस्. व्चिङस् प व्शिन्.दु. सेम्स् मि स्ग्रिव् ॥

११३. ऽजुर्.वु वलोद् न. ग्रोल् शिङ सेम्स् ञिद् गर् द्गर्. व्तङ ।
ल्दोग् पस्. ग्सिङस् ल. ऽफ़ुर् वऽि व्य.रोग् व्शिन् ॥
दे.ञिद्. स्. ग्रे न् स्नङ व लोङस् स्प्योद् यिन् ।
ल्चग्स्.क्युस्. व्तव् पस् ग्लङ छेन् थिम् प व्शिन्[5] ॥

११४. व्य.व्रल्. व्गग्.पस्. ग्लङ छेन्. लोम् व व्शिन ।
द्रन्.प. द्रन्.मेद्. ङो शेस् ग्नोद् प.मेद् ॥

१०८. सोई शून्य विस्मृति ठहरै तो,
स्मृति मन में अभिन्न प्रतिभासशून्य भिन्न न उन्मेषै।
सोई चित्तसर्ग अज अनुभव मे,
प्रतिभास (स्व)भाव शून्यता महासुख उदित होइ ।।

१०६. ओलेके पिघले पानीके पीने के विच्छेद-सा
जो प्रतिभास अज महासुखकी वेदना करै।
उपेक्षा विस्मृति सो कल्पना अनिरुद्ध भी,
बुद्धिसे परे से मूढ भावना रहित ।।

११०. यहाँ बसै तो महासुख सभवै, प्रथम प्रतिभास-शून्यता अनुभव होइ।
ओला प्रतिभासै तो पानी की पहिचान जिमि,
द्वितीय स्मृति-प्रतिभास न निरोधै ।।

१११. शून्यता सुख औ अभिन्न होइ, ओलेके पानी मे पिघली अवस्थिति जिमि।
स्मृति-विस्मृति अजमे विलीन, सव अभिन्न(ता) से महासुखमे एक ।।

११२. सोई ओलेके पानीमें पिघलने सा, सब स्वभाव चित्त संसर्ग जानै तो।
ग्रथिमोचन से अगृहीत स्मृति, ना अनुसरै,
कुदालसे बँधा जिमि चित्त न ढांकै।

११३. कुदाल खोदे मुक्तचित्त ही नाचै उचाटै, निवृत्तिसे सक्रममे कौए-सा।
सोई जानै तो प्रतिभास सभोग है, अकुश देनेसे गजके निमग्न होने-सा।

११४. निष्क्रिय रखने से गज मस्त-सा, स्मृति विस्मृति ज्ञानको ना वांधे।

स्नङ. दङ. स्तोङ.प. श्.स् पस् र्तोग्.दङ.ब्रल् ।
स्क्ये वर्. ग्नस् पस् द्ब्येर् मेद् द्रन् मि.ग्यु ।।

११५ दे ञिद् ख्यव् ब्दग् द्ग्र कुन् ङो शेस् ब्शिन् ।
स्नङ.व. स्तोङ पर् थिम् पस्. लन् छ्व छुर् थिम्.[१] ब्शिन् ।।
द्रन् प द्रन्.मेद्. थिम् प. दे.खो.न ।
स्क्ये व नॅम्.प. ग्ञिस्.ल स्क्ये ग्यु. मेद् ।।

११६ थुग् फ्रद् स्क्ये मेद्. ये शेस् शर् वस् न ।
द्रन्.प ब्लो.यि युल् मेद्. फ्योग्स् मेद् ये शेस् ऽछर् ।।
स्प्र व मे म्छेद्. रङ ऽव्रर्.मे ब्शिन् दु ।
112b ञम्स् ग्योङ स्म्रर् मि ब्तुब् प ग्ग ोन्. नुऽि ब्दे. ब. ब्शिन् ।

११७ स्न छ ोग्स् स्नङ. यङ. द्रन्.पर् मि ऽग्युर् व ।
दल्.वऽि वव्.छु. स. द्पऽ र्लब्स् मि ऽग्युर् पस् ।।
रङ गि. ङो वो ग्सल् वस्. मर्.मे द्रन् ।
दे.ल्तर. फ्यग्.ग्यॅ छेन्.पो. गङ ल मि ब्स्तन् पस् ।।

११८ ब्य सर्. को ने म्खऽ ल. ग्नस् ब्शिन् दु .
र्तोग्स्.पऽि स्प्योद् पस्. ब्लङ.दोर् मि[१].ब्येद्. प ।।
स्रोग् छग्स्. प.त रि.ब्शिन्. शे. छगस् मेद् ।
ब्लो.ऽदस्. ऽब्रस् बु. ऽदोद्.न. मेद्.ग्रुब्.प ।।

११९ स्मन्. म्. छोग् (प.) न पे. त. जि.ब्शिन्. ञिद् ।
क्ये.हो. दे ल्तर् म्खस् प. थव्स् सिन्.गिस्. (न.) नि ।।
द्रन.प.मेद् ल. स्क्ये.मेद्. ग्यॅस्. ब्तव् स्ते ।
द्रन्.प.मेद्.पस् द्रन् मेद्. ग्यॅ यिस्[२] ब्तव् ।।

१२०. स्नङ.बस्. स्तोङ. प ल. ग्यॅस्. ग्दव् ।
स्तोङ्.पस्. स्नङ व.ल. ग्यॅस्. ग्दव् ।।
द्रन दङ. स्नङ.व. ब्दे वऽि रोर् शर्. न ।
स्तोङ दङ द्रन्.मेद्. ग्यॅ.यिस्. थेब्स् प. यिन् ।।

प्रतिभास औ शून्यता ज्ञानसे निर्विकल्प, योनि से अभिन्न स्मृति अकारण ।।

११५. सोई विभूति सर्व शत्रु की पहिचानसी,
प्रतिभास-शून्यता मे विलयन से लवण (सी) पानी में लीन ।
स्मृति विस्मृति विलय सोई, द्विविध उत्पत्तिमे उत्पत्ति-कारण नही ।।

११६. चित्त संसर्ग उपजै नही ज्ञान उदय से यदि,
स्मृति बुद्धि का विषय नही विना पक्षज्ञान उगै ।
तृण दहे स्वयं ज्वलित अग्नि जिमि, अनुभवकथनमे अस्फुट शिशु सुख-सा ।।

११७. नाना प्रतिभासन भी स्मृतिमे विकार नही, मन्द नदी भमि भंग अविकार ।
अपने (स्व) भाव प्रकाशनसे दीपक स्मृति, तैसे महामुद्रा जिसे नही बतावै ।।

११८. सरकोन पक्षी आकाशमें वसै जैसे, अवबोध-चर्यासे लेना-छोडना नहीं करै ।
प्राणी पत्ररी जिमि संसर्ग राग नही,
बुद्धिसे परे फल चाहे तो अभाव सिद्धि ।।

११९. उत्तम औषध हो तो पेत जिमि, अहो तैसे उपाय बद्ध पडित लोग ।
विस्मृतिमे अज विस्तार अर्पित करै,
स्मृतिके विना विस्मृति संतानसे अर्पणा ।

१२०. प्रतिभास-शून्यताका विस्तार रोपना,
शून्यतासे प्रतिभासको विस्तार देना ।
स्मृति औ प्रतिभास सुखके रसमे उदय हो तो,
शून्यता औ विस्मृति विस्तर से ग्रस्त है ।।

१२१. स्नङ. दङ द्रन्.प स्तोङ.पऽि ग्यॅ. दङ. नि।
द्रन्.मेद्. ग्नस् प.दग् गिस्. ग्यॅस्.ग्दब्. न ।।
स्नङ दङ द्रन् प व्दे[3] वऽि रोर् शर् नस् ।
म्छन् मऽि व्स्गोम् पस्. म द्फ्यद् म्छन् मऽि व्लो लस्.ऽदस् ।।

१२२. द्रन. दङ स्नङ ब.दग्.ल स्क्ये मेद् ग्यॅस्. वतव्. प ।
स्क्ये मेद् दग् ल व्लो ऽदस् ग्यॅ यिस् थेव्स् ।।
द्रन पस् द्रन् मेद् व्दे वऽि ग्यॅस् थ्वस्.पस् ।
स्तोङ पर्. म सोङ छद्.पऽि. म्थर् म. ल्हुङ[4] ।।

१२३ ग्नस्.प. स्क्ये.प.दग्.ल. ग्यॅस् थेव्स्.पस् ।
द्ङोस्.पोर्. म सोङ र्तग् पऽि म्थर् म ल्हुङ ।।
थम्स्.चद्. व्लो लस् ऽदस् शिङ. स्क्ये व. मेद् ।
थम्स् चद्. व्दे व छेन्.पोऽि ग्यु.दङ.ल्दन्. ।।

१२४ दे ल्तर् शेस्.पस्. व्तङ. स्ञोम्स्. म्थर्. म. ल्हुङ ।
द्रन प ऽखोर् वऽि द्ङोस् पो दङ[5] द्रन्. प. मेद.पऽि. र्तोग्स्.प. ल. ।।
व्तङ स्ञोम्स्. लम्.दु ख्येर् वर्. व्येद् प. दङ ।
रिग्.पस् ग्ञिग्स् नस्. स्तोङ प व्तङ.स्ञोम्स्. दङ ।।

१२५. ग्सुङ ऽजिन्. व्रल् वऽि. रङ रिग्. व्तङ स्ञोम्स्.पस् ।
व्देन् प.ग्ञिस् व्रल् गञिस् मेद्. व्तङ स्ञोम्स्. वस्गोम्. ।।
गङ दु. म द्रन्[6] व्सम्.ग्तन्. व्तङ.स्ञोम्स् म्छोग् ।
लुङ दु म व्स्तन् व्तङ.स्ञोम्स्. म. यिन्.ते ।।

१२६. शेस्.प सोर् ग्शग् द्रन् मेद् ञम्स्.ऽफो.व ।
द्रन् पऽि म्छन्.म द्रन्. मेद लम्.दु ख्येर् ।।
व्दे व ल म ख्येर् व्लो ऽदस् म.द्मिग्स्.प ।
११३८. म्ञिस्.ल. मि र्तोग् व्दे.व. ग्यु. म छद्[7] ।।

१२७ क्ये हो. ञम्स्. दङ. व्रल् वस्. ग्सुङ ऽजिन् ग्ञिस्.लस्. ग्रोल् ।
देःञिद्. फ्यग् ग्यॅ छेन् पोऽि. दोन्. म्थोङ् ग्युर् ।।

१२१. प्रतिभास औ स्मृति शून्यताका विस्तार,
स्मृति विना रहनेवालोंसे विस्तृत हो तो।
प्रतिभास औ स्मृति सुखके रसमे उदयसे,
तो निमित्त भावनासे अभेद्य निमित्त बुद्धि से परे ॥

१२२. स्मृति और प्रतिभासमे अज विस्तार पड़ै,
अज शुद्धमे बुद्धिसे परे विस्तारसे ग्रस्त।
स्मृतिसे विस्मृति सुखका विस्तृत-ग्रस्त करनेसे,
शून्यतामे न जा उच्छेद अन्तमे ना चुवै ॥

१२३. विहार उत्पत्तिमे विस्तार ग्रस्त होनेसे, वस्तु मे न जावै (तो) शाश्वत अन्त ना ग्रसै।
सारे बुद्धिसे परे होकर उपजै नही, सारे महासुखके कारण वाले ॥

१२४. ऐसे जाननेसे उपेक्षा अन्त न पावै,
स्मृति संसार-वस्तु औ विस्मृतिके अवबोधमे।
उपेक्षा-मार्गमे ले जाना औ, विद्या से विचार कर शून्यता औ उपेक्षा ॥

१२५ ग्रहण-धारण विना स्व(सं)वेद्य उपेक्षासे
सत्य-द्वय रहित अद्वय उपेक्षा भावना।
जहाँ विस्मृति ध्यान उत्तम उपेक्षा अव्याकृत उपेक्षा भावना नही ॥

१२६ ज्ञान अगुलीपर रखा विस्मृति सस्फुट,
स्मृति-निमित्त विस्मृति मार्गमें ले जावै।
सुखमे मत ले जा बुद्धिसे परे निरालवना, द्वैतमे कल्पना हीनसुख कारण ना उच्छिन्न हो ॥

१२७. अहो ध्वंस-रहित ग्रहण-धारण दोनोंसे मुक्त, सोई महामुद्राका अर्थ देखै ।

ऽब्रस् बु. म्थर्.थुग्. रिन्.छेन् ग्तेर्.छेन् ल ।
फ्यग्.र्ग्य छेन्.ल. ग्नस् ऽदोद् गङ ।।
द्रि.मेद् ऽब्रस् बु. र्तोग्स् पर्. शोग् ।

स.र.हऽि शल्.स्ङ नस्[७] ग्सुङ्स् प. स्कुऽि म्जोद् ऽछि मेद् र्दो.जेंऽि. ग्लु. श्.स्. व्य.ब. र्जोग्स्.सो ।

———

अन्त्यावस्थ फल महारत्नकोशमे, महामुद्रा मे बिहारका इच्छुक जो
निर्मल फल का (उसे) अवबोध हो ।।

(इति) सरह श्रीमुखसे कथित कायकोश 'अमृतवज्रगीति' समाप्त ।

---

९. वाक्कोश मंजुघोष वज्रगीति

(भोट, हिन्दी)

६. गसुङ.गि. म्ज़ोद्. 'ऽजम्.दब्यङ्स. दो.जेंऽि. ग्लु'*

(भोट)

ऽजम् द्पल्. ग्श ोन्.नु ग्युर्.व ल. फ्यग्.ऽछ्ल् लो ।

१ क्ये हो[२] तिङ ङे ऽजिन् चें.ग्चिग् रो स्ञ ोम्स् स्प्योद्. प ख्यद्.पर्.चन् ।
द्ङ ोस्.दङ दङ ोस् मेद् यिद् तोंग्स् ऽखोर्.वर्.ग्युं वस् व्तङ.वर् ब्य ।।
स्नङ दङ स्तोङ व सुङ दु. ऽजुग् प द्व्येर् मेद्. दे खो न ।
छोस् क्यि.द्व्यिङस् क्यि रङ व्शिन् थम्स् चद् ऽव्युङ शिङ थिम्.पर्.ग्नस् ।।

२. व्दग्. दङ.[३] ग्शन् दोन्. ग्ञिस् मेद्. द्रन् मेद्. ग्सल्.वऽि.दङ ।
फ्यग्.ग्यं.छेन्. पोऽि नंम् ग्रङ्स् द्पग्.मेद्. व्जोंद् लस्. ऽदस् ।।
द्ङ ोस्. दङ. द्ङ ोस्.मेद्. योङस्.सु. व्तङ. न. ऽखोर्.ऽदस् मेद् ।
जिंङ् वु. ग्लग् व. मेद् न. फ्योग्स् व्शिर् ऽखोर्.लो स्पङ्स् ।।

३. व्यिस् प. म. शेस् तेंन्.ऽब्रेल्[४] ऽखोर्.वर्. ऽजुग् पऽि. ग्युं ।
शेस्.रव् ग्न्.पस्. द्ङ ोस् ऽजिन्. व्दग् ग्शन् दोन् मि.ग्रुव् ।।
मर्.मे स्पर्. यङ. द्मुस् लोङ दग्.ल. स्नङ मि. स्रिद् ।
व्दग् ग्शन्.दोन् ऽदोद्. द्ङ ोस्.ऽजिन्. रङ गिस् रङ ल. ऽजिन ।

४. तोंग्.प. यिन् फ्यिर्. व्तङ मि व्तङ ल. व्तंग्.पर् ब्य ।
स्नङ.[५]मेद् रङ रिग्. तोंग् पऽि थ स्ञद् कुन् दङ व्रल् ।
थव्स् दङ व्रल्.फ्यिर् व्दग् दोन् मि ऽग्रुव् म्छन् मर् ऽग्युर् ।
द्व्येर्.मेद्. दोन् ल ग्नस् पस्. दे.ञिद् स्तोन्.प. दङ ।।

५. छोस्.क्यि द्व्यिङस् ल. ऽजुग्.पऽि म्छन्.ञिद् व्स्तन् पऽो । ˜
व्ल.म लस्. व्स्तन् लुङ. ऽब्रेल्. ग्दम्स्.ङग्.[६] जेंस्.सु स्तोन् ।।

---

* स्तन् ऽग्युर्, ग्युं द् शि, पृष्ठ ११३ क २–११५ ४

६. वाक्कोश 'मंजुघोषगीति'

(हिन्दी)

नमो मजूश्रियै कुमारभूताय

१ अहो समाधि एकशिखर रस अलस-चर्या विशेषी,
वस्तु औ अ-वस्तु मन-कल्पना ससार के कारणमे छोड़िए ।
प्रतिभास-शून्यता[१] युगमे प्रविष्ट भेदरहित तत्त्व,
धर्मधातु स्वभाव सारा होकर रहै विलीन ॥

२ स्व-पर-अर्थ दो नही औ विस्मृतिप्रकाशन,
महामुद्रा पर्याय अमित कथनातीत ।
वस्तु औ अ-वस्तु परित्यागै तो ससार से परे न (होइ),
वापी उरुगुप्त ना तो चउदिसि चक्र फेक ।

३ बाल अजान आश्रय ससारमे उतरने का कारण,
मन्दप्रज्ञ स्वभाव स्व-पर-अर्थ ना साधै ।
दीप जलता भी जन्माधको प्रभासै ना,
स्व-पर-अर्थ इच्छा साधक अपनेहि अपने धारै ॥

४. अवबोध होनेसे त्याग-अत्यागको सदा करै,
प्रतिभास विना स्वसवेद्य अवबोध सर्व-व्यवहार-रहित ।
उपायरहित होनेसे स्व-अर्थ-असिद्ध अ निमित्त होइ,
औ अभिन्न अर्थ मे स्थितिसे सोई शिक्षा ॥

५ धर्मधातुमे प्रविष्ट का लक्षण कहै ।
गुरु-देशना व्याकरण[२]सवव अववादवचन अनुगासै ।

---

१. भावना । २. उपदेश ।

लुङ. दङ रिग्स् पस् रङ गि म्छन् ञिद् तोंग्स् ऽदोद्.प ।
ब्ल.म ल व्र्तेन् ग्दम्स् ङग् ल्दन् प.दग् लस् ञेद् ।।

६. ब्स्ञेन् व्कुर् ठस् न ल्हन्. चिग् व्दे व म्छोग् थोब् ऽग्युर् ।
द्रि म दङ ब्रल् व्य फ्यिर्. व्ल मऽि गवस् ल ऽदुद् ।।

113b म्छोद् न. व्यिन् र्लव्स् छेन् ७पो ऽव्युङ वर् ग्यंल् वस् व्शद् ।
क्ये हो. ग्रोङ ख्येर् चम् अ ओ ङन् कुस् नम् म्खऽर् सोङ व्शिन्.दु ।।

७ थर् वस् ऽवद् न. ग्यंल् वऽि स ल ग्दोन् मि स. ।
व्र्जोद् व्य जोंद् द्वङ.स्कुर्.व्यिन् र्लव्स् स्क्ये.गिङ ऽफेल्. वऽि ग्नस् ।।
स्ङोन्.दु स्लोव् मस् व्य दङ स्लोव् द्पोन् व्य वऽि रिम्.प.[१] दङ।
र्जेस् सु स्लोव्.मस्. व्य. दङ स्व्.मो द्वङ व्स्कुर् व ।।

८ फ्यग् ग्यं. म्छोद् दङ. व्स्तोङ.प दग् गिस्. ग्सोल्.व.ग्दव् ।
स्ञन् पंऽि. छिंग् गिस् ग्सोल् गदव् रिग् प र्चल् द्पङ. दङ ।।
फ्यग् ग्यं.ल व्र्तेन् ग्सङ वऽि द्वङ व्स्कुर् स्दोम्.स्व्यिन् दङ ।
ग्नङ.व. स्व्यिन्. दङ र्जेस्[२].सु स्प्रो व. व्स्तन्.प स्ते ।।

९. स्लोव् मस् जस् द्वुल्. स्व् मोऽि. द्वङ व्स्कुर् दम्. व्चऽ. दङ ।
व्स्ग्येद्.पऽि. रिम् प ल.सोंग्स्. व्स्तन् प. नि ।।
ङो वो ञिद् क्यि रिम्.प व्स्तन्.प दङ ।
ञम्स् म्योङ व्स्गोम् पर् व्य वऽि. व्र्जोद् व्य ल सोंग्स्. कुन् ।

१० गङ.ल मि ग्नस् व्य. सर् को. नि[३] गङ ल. र्तेन्मि ऽछऽ ।
ऽदोद् प. मेद् पऽि व्दे व दग्.ल. मि ग्नस् ते ।।
म सुङ मेद् फ्यिर्. गङ ल. र्तेन् दङ. र्तेन्.व्येद्.ब्रल् ।
ग्ञिस्.मेद्. नंल्.ऽव्योर् रङ ल. ऽछर् वऽि ञम्स् म्योङ. व्दे ।।

११. व्दग् तु र्तोग्.पऽि द्ङोस्.पो व.तङ न.नम्.म्खऽि म्यऽ ल्तर् यङस्.[४] ।
म्य ङन् ऽदस् पऽि. ग्रोङ.ख्येर् दग्.तु. ऽजुग् ऽदोद्. न ।।

व्याकरण औ विद्यासे स्व-लक्षण जानने की इच्छा,
गुरु आश्रय अववादवचन वालोसे लहै ॥

६ उपासना करि सहजे वरसुख पावै,
मलरहित करनेसे गुरुचरण मे लगै ।
पूजि के महा अधिष्ठान संभूत जिनने कहा,
पूजि के महा अधिष्ठान संभूत जिनने कहा,
अहो नगर चउ अंकुश आकाश गमन जिमि ॥

७ मोक्ष से निरत हो तो जिनकी भूमि मे अवश्य,
वाच्य-वाचक अभिषेक अधिष्ठान उपजै वृद्धि का स्थान ।
पहिले शिष्य का करै गुरु क्रिया-क्रम,
पीछे शिष्य का करना औ गंभीर अभिषेक ॥

८. मुद्रा पूजा औ स्तोत्रसे आरोचना,
कल-वचन से आरोचना क्रम विद्या क्रमसाक्षी औ,
मुद्रामे दृढ गुह्य अभिषेक संवर-दान,
उपहारदान औ अनुकम्पा शासन ॥

९. शिष्य द्रव्य निवेदै गभीर अभिषेक प्रतिज्ञा औ,
आरोह-क्रम इत्यादि शासन ।
स्वभाव-क्रम बताना औ,
अनुभवभावना कथनीय इत्यादि सब ॥

१०. जहाँ न बसै सर्.को[१] जहाँ निश्चय ना चाहै,
निष्काम शुद्ध सुख मे ना रहै ।
अचरज विना जहाँ आश्रय औ आश्रयी नही,
अद्वय योगी अपने उदित अनुभव सुख ॥

११ अपने अववुद्ध वस्तु छाडै तो गगन के अन्त-सा विशाल,
शुद्ध निर्वाणनगर मे प्रवेश की इच्छा हो तो,

---

१. एक पक्षी ।

छ ोग्स् द्रुग्. फ़द्. छर्.प. र्ग्युन्.गि्य. र्नल् ऽब्योर्.छे ।
स्नङ.स्तोङ्.प. स्क्ये.मेद् थुग् फ़द् क्र्येन् ल रग्. म.लुस् ।।

१२. ग्ञिस् मेद् गोम्स् पस्. लम् म्युर् खुङ दु ऽजुग् मि ल्दोग् ।
सेम्स् चन्.सङस्.र्ग्यस् रङ व्शिन् यिन्[५] पर् गेस् न चोंल्.व.मेद् ।।
गङ गि रो स्ञ ोम्स्. स्प्योद् प.ल. व्र्तेन्.नस्. ऽब्रस् वु. थोव् ।
स्प्योद्.प.व्यस्.न ऽग्रो.व ऽखोर्.व दग्.लस् थर्.वर् थे.छोम्.मेद् ।।

१३. व्दुद् दङ. मि म्थुन् फ्योगस्.लस् र्नम्.पर्. र्ग्यल्.वर् ऽग्युर् ।
म्छन्.मऽि र्नल्.ऽब्योर् मि.व्य व्तङ स्ञ ोम्स्.[७]र्नल्. ऽब्योर् मिन् ।।
म्खस् पऽि ये गे स् म्युर् दु थोव् चिङ स्ग्रिव् प सद् ।
म्छन्. मऽि स्प्योद्.पस् द्रङ दोन् म्ग्वस् क्यङ मोंङस्.र्नम्स् ऽछिङ ।।

१४. रो स्ञ ोम्स्. फ्यग्.र्ग्य.छेन् पो.ल व्र्तेन् नम् म्खर्. ऽग्रो ।
ग्ञिस् मेद् स्प्योद्.लम् र्ग्युन्.दु. व्स्तन्.न छे. ऽदिर्. थोव् ।।

114a स्नङ व[७]. स्यु.मऽि युल्.ल. मि.ग्नस्. र्तोग्.युल् मेद् ।
ऽजिग्.र्तेन्. छोस् व्र्ग्यद् ऽछिङ वर्. मि.नुस्.व्र्तुल् ग ुग्स्. म्छोग् ।।

१५. स्ञिङ जे. यव्स् थिन्. स्प्योद्.प. छग्स् मेद्. म्खऽ.ल्तर्. यङस् ।
फ्यग्.र्ग्य.छेन्.पो. यन्.लग्.व्गि.ल्दन्. थव्स्.क्यि म्छोग्।।
व्शिर.ल्दन्[३]. फ्यग्.र्ग्य ग्चिग् गि छो ऽफ़ुल्.ग्चिग्.गि. दङ ।
ग्ञिस्.मेद्. दङ. ल फ्यग्.र्ग्य छेन्.पो ग्लोद्. दे. ग्शग् ।।

१६. व्यङ छुव्.सेम्स् ल्दन् व्तङ शग् मेद्. न. ग्लङ छेन् ऽद्र ।
र्तोग्.पऽि ङो वोस्. मो र्तै.ल्तर् स्नङ ऽदोद् न ।।
र्तोग्.मेद्. स्नङ मेद्. दोन् ल. ऽवद् दे र्नल्.ऽब्योर्.व्य ।
स्कु.व्शि[२] म्थर्.फ्यिन्. ऽब्रस् वु. व्दे.व. छेन्.पोऽि. दङ ।।

१७. स्क्ये वर्. स्नङ व. लम् ग्यि. लुस्.र्नम्स्. नि ।
स्कु.गुसुम् मथुर्.ल्दन्. र्तोग्.प. र्नम्.पर् व्रल् ।।
शेस् दङ गेस्.व्यर् र्ग्युद्.पऽि युल् ।
द्ङोस् पोऽि. रङ व्शिन् स्क्ये.वऽि. क्र्येन्.स्नङ. यङ ।।

छ परिषद् संसर्ग वृष्टिस्रोतका महायोगी,
प्रतिभास-शून्यता अज चित्तसंसर्ग प्रत्ययमे ना स्पर्शै।।

१२. अद्वय-भावना से मार्ग शीघ्र पकडमे आवै निस्सन्देह,
प्राणी बुद्ध स्वभाव है (यह) जानै तो अनायास।
जिसमे रस-समचर्या के आश्रयसे फल पावै,
चर्या करै तो जग-संसार से मुक्ति निस्सन्देह ।।

१३ मार औ प्रतिपक्षसे विजय (पूरा) हो जावे,
निमित्त योगी निष्क्रिय उपेक्षा योगी नही।
पंडितका ज्ञान जल्दी पा कर आवरण नाशै,
निमित्त चर्या से स्मृति-अर्थ चतुर भी मूढ बधै ।।

१४ समरस महामुद्रा आश्रय ले आकाश मे जा,
अद्वयचर्या मार्ग-स्रोतमें कहै तो इस समय पावै।
प्रतिभास माया के विषयमे ना रहै कल्पना-विषय नही,
आठ लोकधर्म बाँध न सकै उत्तम व्रत।

१५ करुणा उपाय लीन ? चर्या रागरहित ख-सम विशाल,
महामुद्रा चतुरंगी उत्तम उपाय।
चार एक मुद्रा औ एक प्रतिहार्यका,
अद्वय प्रसन्न महामुद्रा पुन थापै ।।

१६ बोधिचित्ती छोडना नही गज जिमि,
अवबोध-वस्तु से गो-अश्व जिमि प्रतिभास चाहे तो।
निर्विकल्प निष्प्रतिभास अर्थमे निरत सो योग करै,
औ चउ काय (के) अन्त (पर) पहुँचै फल महासुखमें ।।

१७ जन्म प्रतिभास मार्ग के शरीर,
त्रिकाय शक्तिसहित कल्पना-विरहित।
ज्ञान औ ज्ञेय मे सन्तानों का विषय,
वस्तु-स्वभाव उत्पत्ति-प्रत्यय प्रतिभास भी (है)।

१८. म.स्क्येस्.प.यि युल् लम्.ऽदस्[3]. म.स्योङ ।
द्ङोस्.पो. दङोस् मेद्. व्तङ स्न्गोम्स्. ल सोगस्. कुन् ।
ऽप्येद् प.मेद् दे द्रन्.मेद्. स्क्ये.मेद् युल् ।
फ्यग् ग्र्य छे.ल. तँग्.तु. म्छन्.ञिद्.ब्रल् ।।

१९. फुङ.पो. दग्.पऽि ग्सङ.व्ऽि. युल्.लस्.ऽदस् ।
द्गऽ व.व्गि.यि. म्छन्.ञिद् फ्यग्.ग्र्यऽि युल् ।।
रङ ग्र्युद् म.यिन्. गेस्[?]रव्. थव्स् दङ ब्रल् ।
स्न.चें. ल.सोगम् दे.ञिद्. म सिन्. न ।।

२०. दे.ञिद्.दग् ल. स्ग्योर् यङ. दोन् दम् मिन् ।
रङ रिग्. दों. जे.ग्नस्. ते सेम्स् द्पऽि नँल् ऽग्योर् . नि ।।
थम्स् चद् म्ख्येन्. पऽि ङो वो ऽदि द्र. मेद् ।
ग्र्य म्छोऽि द्वऽ लँब्स्. ब्रग्.चऽि ङो.वोर् म्छ ङस् ।।

२१. ग्रङस्.चम्.ञिद्. न गङ दु.ऽङ स्लेव्.प मेद् ।
दम्.छिग्. व्स्रुव् दङ. ऽब्रस्.नँम्. स्य्यर् व ।।
म्छोन् व्य. म्छोन् व्येद्. छिग् गि. थ.स्न्द्. लम् ।
दम् छिग्. ञमस् न. थव्स् सोग्स. ञमस् गङ न ।।

२२. व्लो.लस् ऽदस् पऽि युल्.दु. स्लोव्.प मेद् ।
व्र्तुल्.श.गुस् स्प्योद् पस्. फ्यि. दङ. नङ ऽग्युङ. व[6] ।।
खो न ञिद् दङ ल्दन् न. स्प्यद्.पर्.चन् ।
दे ञिद्. मि.ल्दन् दुद् ऽग्रो.दग् दङ म्छ ङस् ।।

२३ दे ञिद्. स्ङस्.पस्. ल्हन् चिग् स्यक्येस्. व्स्गोम्स् प ।
थव्स् ब्रल्. दम् छिग्. ऽगल्. यङ. ञेस्.प मेद् ।।
ऽदि. दङ. फ.रोल्. ग्रङस् ल मि.ल्तोस्. पर् ।
द.ल्त.ञिद् दु. म्ङोन् ग्युर्. फ्यग् ग्र्य छे ।।

114b २४. दे ञिद्. स्पङस[7]न. नम्.यङ फ़द् मि ग्युर् ।
फ्यग्.ग्र्य.छेन्.पो. स्कद् चिग् थोस् पस्. क्यङ ।।

१८ अजातके विषयसे परे न भोगै,
वस्तु-अवस्तु उपेक्षा इत्यादि सब ।
सो ईर्या[१] नही अ-स्मृति अ-जात विषय,
महामुद्राका सदा लक्षण नही ।

१६ शुद्ध स्कन्धके गुह्य-विषयसे परे,
चउ-आनदका लक्षण मुद्राका विषय ।
स्व-सन्तान नही है प्रज्ञा-उपाय-रहित,
नासिकाग्र इत्यादि सोई न गहै तो ।।

२० सोई शुद्धमें युक्त भी परमार्थ नही,
स्वसंवेद्य वज्र (में) रहै चित्त-योगी ।
सर्वज्ञ (स्व)भाव ऐसा नही,
सागर-तरग की प्रतिध्वनि के स्वभाव तुल्य ।।

२१. गिनने मात्र ही से कही भी पहुँचना नहीं,
सद्वचन प्रतिपादन औ फल विनियोग ।
लक्ष्य-लक्षण (है) शब्दके व्यवहार का मार्ग,
सद्-वचन ध्वस्त हो तो उपाय इत्यादि ध्वस्त जो ।।

२२ बुद्धिसे परे के विषयमे सीखै नही,
व्रतचर्यासे बाहर भीतर होइ ।
तत्त्ववान् हो तो विशेषवान्,
सोई वियुक्त तिर्यक् (पशु)-तुल्य ।।

२३. सोई त्यागनेसे सहज भावना,
उपायरहित सद्वचन विरुद्ध भी दोष नही ।
यह भी परे गिननेमें न अपेक्षासे
अभी ही आविर्भूत (हुई) महामुद्रा ।।

२४ सोई छाडै तो कभी ससर्ग ना होई,
महामुद्रा क्षण (भर) सुननेसे भी ।

---

*ईर्यापथ, साधारण शारीरिक आचरण ।

स्नोद्.दङ ल्दन्. मि.ल्दन्.ल. मि. ल्तोस्.पर् ।
व्स्तन्.प.थम्.ग्यिस्. चें.ग्चिग्. ऽदि.यिस् थोव् ॥

२५. गङ.शिग्. द्रेन्.प.दग् ल. स. येङस्.पऽि. ।
ल्हन्.चिग्.स्क्येस् ङो न्. व्स्गोम्.दङ.ल्दन्.पस्. थोव् ॥
दे ञिद्. रङ¹ यिन्. ग्शन्.ग्यि. छोस्. मि.छोल् ।
दुर्.खोद्. व सोगस् छोल्.फियर्. ऽग्रङस्. ते. फुङ् ॥

२६. क्ये हो.ञम्.से. रिग्स्.ङन् ख्यिम् ऽग्रोस् ऽछोल्.स्लोङ.व्शिन् ॥
सङ ङन्. द्रेस्.प.ग्चिग् ल. ग्चिग्. ग्नोद्. दे ॥
म्छन्.मऽि. नॅल् ऽब्योर्. म्छन् मेद् ढोन्.मि.रिग् ।
म्छन्.म.मेद्.ल. व्ल्तव्स्.प नम्².यङ मेद् ॥

२७. म्छन् म दुस्. दङ ग्रङस्.ल. ल्तोस्.पर्. ऽग्युर् ।
व्स्क्येद्. दङ. र्जोग्स्.पऽि. रिम् प. स्थद्.पर् व्सम्. मि व्य ॥
ग्ञिस्.मेद्. ऽदुस् प. नॅल्.ऽब्योर्. म्छोग् ल्दन्. गङ ।
गङ. यङ. म. गॅस्. द्रन्. मेद्. योङस्. पऽि. युल् ॥

२८. द्रन.पऽि. ग्युंद. स्पङस्. ढे.ल. गोम्स्.पर्. व्य³ ॥
थुन्.मोङ. म. यिन्. ग्सङ.स्ङग्स्. स्थद्.पर् चन् ॥
थोग्.म.ञिद्.नस्. व्ढेन. पऽि. ङो.वो. रे. ग्नस् ।
द्ङोस्.ऽग्रुव्. व्स्दुस्.पस्. ल्हन् चिग् स्क्येस्.ल. थुग् ॥

२९. दे.ञिद्. स्थद्.पर्. रङ.रिग् युल्.लस् ऽदस् ।
दे.ञिद्. व्दे.वऽि. ग्नस्. दङ द्ङोस्.पो. स्तोङ ॥
छोस्.नॅम्स्. दग्.पस्. रङ.व्शिन्⁴. व्दे.वऽि. दोन् ।
गङ.ल. मि.ग्नस्. व्लो.यि. युल्.लस् ऽदस् ॥

३०. युल्.मेद्. ग्नस्.मेद्. र्तेन्.दङ.ब्रल्.वस्. स्तोङ ।
ए. व. द्ङोस्.ग्रुव्. ङो.वो.ञिद्.क्यि ग्यु ॥
दो.र्जे.ऽछङ. दङ. रङ रिग्. व्ल.मऽि. व्कऽ ।
ऽदुस्.पऽि.⁵ ग्युंद्.दु. व्रि.मेद्. फ्यग्.ग्यॅ.छे ॥

पात्रसहित रहित को न देखनेमे,
बताने मात्रसे एकाग्र इससे पावै ॥

२५. जो शुद्ध स्मृति मे न उद्घत,
सहज सम्मुखे भावनावान्‌से पावै ।
सोई स्वय है अन्यका धर्म ना ढूँढै,
श्मशान मृग इत्यादि ढूँढ़ने के लिए अनर्थ ॥

२६. अहो ब्राह्मण हीन-जाति गृह (संकीर्ण गवेषणा-याचना जिमि,
हीन आमिप सकीर्ण एक को एक बाँधे ।
निमित्त योगी निमित्त विना अर्थ ना सवेदै,
अनिमित्तमे ईक्षण कभी नही ॥

२७ निमित्त काल औ सख्यामे दीखै,
उत्पत्ति औ क्षय का क्रम ना विशेषत चिन्तै ।
अद्वय कालिक उत्तम योगवान् जो,
कुछ भी न जानै विस्मृति व्यसनका विषय ॥

२८ स्मृति सन्तान छाडि वहाँ भावना कीजिए,
साधारण नही है मत्र विशिष्ट ।
मूल-आपत्ति से सत्यस्वभाव मे रहै,
सिद्धिसचय से सहज में चित्त ॥

२९ सोई विशेष स्ववेद्य विषय से परे,
सोई सुखका स्थान वस्तु-शून्य ।
शुद्ध धर्मों से स्वभाव सुख का अर्थ,
जहाँ न रहै बुद्धि के विषय से परे ॥

३०. विषय नही वास नही आश्रय-वियोग से शून्य,
एक सिद्धि स्वभावही का कारण ।
वज्रधर औ स्वसवेदन गुरु-आदेश,
समाज-तत्र मे निर्मल महामुद्रा ॥

३१. कुन् जोंब् लस् क्यि फ्यग् र्ग्यं ल सोग्स् कुन्[५] ।
ऽखोर् लोस् स्ग्युर् र्ग्यं ल् द्मङस् क्यि दङ मछ ङस् ॥
फ्यि.नस. सब्.मो ब्स्क्येद् पऽि रिम् प. कुन् ।
जोंग्स् पऽि फ्यग् र्ग्यं ञि स्लऽि. स्कर् फ्रन् ब्शिन् ॥

३२. द्गऽ ब्रल् द्गऽ ब म्छोग्.तु द्गऽ ल सोग्स् ।
ल्हन् चिग् स्क्येस् द्गऽ ऽखोर् लोऽि चं ब ञिद् ॥
द्रि म मेद् पर् दग् ब्येद्[६] दे यि. द्गोङस् पर् ग्सल् ।
दे ञिद् ल्दन् पस् तंग् तु ये श स् म्योङ ॥

३३ द्पयेर् मेद् थुग्स् क्यि स्तोङ ञिद् गो ऽफङ. यङस् ।
लुस् दङ थब्स् ल्दन् थब्स् ल ब्र्तेन् ब्स्गोम् प ॥
द्रन् प स्क्येद् ब्येद् र्ग्यु क्येंन् ऽब्रस् बु स्मिन् ।
लस् चन् द्रङ फ्यिर्. ग्रोल् बऽि थब्स् सु स्व्योर्[७] ॥

115a ३४. लस् क्यि. फ्यग् र्ग्य ञमस् म्योङ ग्रोद् ब स्क्येद् ।
दे ञिद् ल्दन् गोम्स् म्योङ ग्रोल् बऽि लम् ॥
पद् म दोर्जेर् स्व्योर् ब म्थोङ ऽदोद् दङ ।
छग्स् चन्. लम् ग्यिस्. दे ञिद्. ग्रोल् मि ऽग्युर् ॥

३५ ग्शन्. यङ ,लस् क्यि फ्यग् र्ग्य ञमस् म्योङ दग् ब्र्तेन्. ल ।
थ[१].मल्. रङ लुस् फ्यग् र्ग्य छेन् पो स्वर् ॥
फ्यग् र्ग्य छेन् पो. कुन्.दु ख्यब् पऽि. द्पे ।
रिन् पो छे दङ. नम् म्खऽ ल्त बुर् म्छ ङस् ॥

३६ फुङ.पो ल्ङ सोग्स्. ग्सङ ब म्छोग् तु. ऽग्युर् ।
ऽजिग् र्तेन् ऽजिग् र्तेन् ऽदस् प. ल्हन् चिग् ग्नस् ॥
खो न.ञिद्. नि ब्ल.मऽि ब्कऽ द्रिन् ग्यिस्[२] ।
म्छोन्.ग्विङ ब्स्ग्रुब् मि द्गोस् पर्. रङ ल. ञंद् ॥

३७ फ्यग् र्ग्य छेन् पो म्छोग् ञिद् द्रि म ब्रल् ।
गो ऽफङ थोब् पर्.ब्य फ्यिर्. स्प्यद् पर् ब्य ॥

३१. सवृति कर्ममुद्रा इत्यादि सब,
चक्र से परिणत क्षत्रिय शूद्र के तुल्य ।
बाहर भीतर गभीर जन्म का सारा क्रम,
निष्पन्न मुद्रा रवि-शशि क्षुद्रतारा जिमि ।।

३२ निरानन्द उत्तम आनद मे आनन्द इत्यादि,
सहज आनंद चक्र का मूल ही ।
निर्मल शोधक सोई आशय मे प्रकाशै,
सोई सयोग से सदा ज्ञान अनुभवै ।।

३३ अनुद्घाटित चित्त का शून्यता विशाल कपाट,
शरीर वाक् उपायवान् उपाय मे दृढ भावै
स्मृति-उत्पादक कारण प्रत्यय पक्व फल,
कर्मवान् आकर्षण के (कारण) मोक्ष-उपायमे जुड़ै ।।

३४. कर्ममुद्रा अनुभव लास्य उपजै,
सोई सहित भावना अनुभव मोक्षका मार्ग ।
पद्म-वज्र-सयोग देखनेकी इच्छा औ,
सकाम मार्ग से सोई मुक्त न होइ ।।

३५ अपि तु कर्ममुद्रा शुद्ध अनुभवके आश्रयमे,
नश्वर स्व-शरीर (मे) महामुद्रा ज्वालै ।
महामुद्रा सर्वव्यापन का दृष्टान्त,
रत्न औ गगन सदृश तुल्य ।।

३६. पंच स्कन्ध इत्यादि गुह्य उत्तम हुआ,
लोक लोकातीत साथ रहै ।
सोई गुरु दया द्वारा,
लखि, साधन ना चाहिए स्वय लहै ।।

३७. महामुद्रा उत्तम निर्मल ही (है),
कपाट प्राप्त करने के लिए चर्या करै ।

तँग् छद्. ग्ञिस्.मेद्. म्ञम् स्ब्योर्. ग्चिग्. ञिद् ग्शग् ।।
लुङ. दङ मन्.ङग्. रिग्.पस् शेस् पर् ब्य ।।

३८. खो न.ञिद्. नि. ब्स्ग्रुब्स् न. ग्दोन्. मि.[3] स् ।
फ्यग्.ग्र्य.छेन् पो. ग्सल्. ते. शेस्. गोम्स् न ।।
खो.न ञिद्. नि तोंग्स् पर्. थे.छोम्.मेद् ।।
दे.ञिद्. शेस् न. गोम्स्.पऽि. स्तोब्स्.क्यिस्. स्प्योद् ।।

३९. दे ञिद् म.शेस् स्तोङ. स्गो.ऽगेस्गो दङ ।
रिग्.म.ल. ब्र्तेन्. ग्सुम्.पो. ग्चोर् ब्येद् दङ ।।
छु.ब्य.ल.सोग्स्. दङ. दुद्.ऽग्रोर्. म्छ्ुङ्स्[4] ।
रङ् रिग्. ग्युंद् ल. थ.स्ञद्. ऽजल्.ब्येद्. दङ ।।

४०. फ्यि.नङ. ग्शिग्स्.नस्. रङ ब्शिन्.मेद्. ऽदोद् न ।
ऽजिग्.तेंन्. च.चो. यिन्. मेद्. स्म्रद्. मेद्. म्छ्ुङ्स् ।।
ब्देन्. दङ तेंन्.ब्रेल्. स्गो नस्. थर् ऽदोद्. दङ ।
द्बङ.पो. ब्स्डम्स्. पस्. थर्.लम् ऽद्रेन्.ऽदोद्. दङ ।।

४१. ब्यिस्.प. छङ.प. स्तोङ[5].पस्. ऽन्रिद् द्गऽ स्ते ।
देस्.न. ब्य ब. ब्येद्. ऽदोद्. थर्.मेद्. ब्र्जुन्.ग्यिस् ब्स्लुस् ।।
ग्रङ्स्.चन् रिग्स्.सोग्स् ग्चेर् बु. ब्ये ऽब्रग्. ऽदोद् ।
ब्येद्. दङ ग्युर् ल्त.ल.सोग्स् ग्यि. न ऽख्यम् ।।

४२. क्ये हो दे.नस्. ऽखोर् ब. जि.ल्तर्. ग्तङ बर् ऽग्युर् ।
ग्र्यु.क्र्येन्.मेद्.पस्. तोंग्स्.युल्. म.यिन्.[6]पऽि ।
सेम्स् क्यि. दे.ञिद्. फ्यग्.ग्र्य छे.ल. ग्नस् ।
दे.ञिद् स्तोब्स्.क्यि. म्छन्.म दङ ब्रल् शि ङ ।

४३. छे ग्चिग् फ्यग् ग्र्य छेन् पो. थोब्.पर्. ऽग्युर् ।
क्ये हो. ङो.म्छर् ग्सल्.बऽि. स्प्योद् युल् ऽदि ।।
स्मन्.पऽि. ग्र्येल् पो तोंग्स्.लस् स्क्ये मेद् ऽछर् ।
115b ये.शेस्. ल्ङ सोग्स्. म्छन्.ञिद् रङ [7]ल.ल्दन् ।।

नित्य उच्छिन्न अद्वय समयोग एक ही थापै,
व्याकरण औ उपदेश विद्यासे जानै ।।

३८. तत्त्व साधै तो अवश्य,
महामुद्रा प्रकाशै ज्ञान भावै जो ।
तत्व ही लखै निस्सन्देह,
सोई जाने तो भावना-बलसे आचरै ।।

३९. सोई ना जानै उपरि औ निम्न द्वार,
औ विद्या को आलंबै त्रयी प्रधान कारी
जलपक्षी इत्यादि मत्स्य औ तिर्यक् तुल्य,
स्वसवेद्य सन्तानमे व्यवहार औ याप्य ।।

४०. बाहर भीतर कल्पना करके अस्वभाव इच्छा हो तो,
लोक कोलाहल है किन्तु अविशेष तुल्य ।
इच्छा सत्यआश्रय द्वारसे मोक्ष,
औ इन्द्रियसंबरसे मोक्ष-मार्ग (में) खीचने की इच्छा ।।

४१. बालक मद्य शून्यता से वंचित आनन्दित,
ततः क्रिया करनेकी इच्छाकर मोक्ष नही मिथ्यासे डालै ।।
साख्य जाति आदि नग्न विभाषा चाहै,
कर्ता औ हेतु दृष्टि इत्यादि का घूमना ।।

४२. अहो उससे संसार त्यक्त होइ जिमि,
हेतु-प्रत्यय रहितसे कल्पना-विषय ना होये ।
चित्त सोई महामुद्रामे रहै,
सोई बलके निमित्त-रहित ।

४३ एकदा महामुद्रा प्राप्त होइ,
अहो अद्भुत प्रकट चर्या विषय यह ।
वैद्यराज कल्पनासे अजात उगै,
पंच ज्ञान इत्यादि लक्षण अपने साथ ।।

४४. दङ.पोऽि. लस् चन् रिग्स् क्यिस्. खो.न. म्थोङ।
म्छन् म.ल. व्र्तेन्. द्रन् पस्. ग्येङ वऽि. ग्युं ।।
खो न ञिद् ल. फ्यि.रोल् म.द्मिग्स्. न ।
म्छन्मऽि स्प्योद् युल् द्रन्.मेद् दङ ल. थिम् ।।

४५. म्छन्.मऽि र्नल् ऽब्योर्. खम्स् गसुम् ऽखोर्.वऽि लम् ।
म्छन्.[१]मऽि. द्ङोस्.पो वग् मेद् स.वोन् ब्चस् ।।
द्रन्मेद्. र्नल् ऽब्योर्. नम् म्खऽि द्क्यिल्. दङ. म्छुङस् ।
सो.सोर् मेद्.न. ङो वो. म स्क्येस्.फ्यिर् ।।

४६. स्क्ये.वो.ग्शन् ग्यि व्लो.यि. स्प्योद्.युल्. मिन् ।
दे.ञिद् ल्त.ल. म्खस्.पस् स्प्यद्.व्यर्. ऽव्युङ ।
द्रन्.प. र्नम् र्तोग् ग्सुग्स्.सु ग्नस् प [२] दङ ।
द्रन्.मेद्. खम्स्. ग्सुम् दग् पऽि ग्नस् सु. स्पङस् ।।

४७. दे ञिद्. म स्क्येस्. द्ङोस्.ग्रुव्. कुन्.ग्यि. ग्नस् ।
फ्यि. दङ. नङ रोल् म द्मिग्स् थम्स् चद्. ग्रुव् ।।
क्ये हो. फ्यग्.र्ग्य छेन् पो योन्.तन् म्छोग्.ल्दन्. गङ ।
व्ल म म्ञेस् पर् व्य.फ्यिर्. द्ङोस् ग्रुव् कुन् ग्य. ग्शिङ ।।

४८. व्ल.म[३] द्कोन् म्छोग्. मि स्पोङ योन् तन् ऽव्युङ ;
गङ गिग्. दद्.पऽि सेम्स् ल्दन् व्र्ग्य लम् न ।।
र्नल् व्योर्.र्नम्स् क्यिस् गग्.ङ ऽदि. र्तोग्स् पर् गोग् ।

ग्सुङ. गि. म्जोद् ऽजम्. द्व्यङ्स्. दो. र्जेऽि. ग्लु स. र. हस् ग्सुङ्स्. प. र्जोग्स् सो ।।

४४. प्रथम कर्मी जातिसे सो देखें,
निमित्त का आश्रय ले स्मृतिसे उद्धत कारण ।
तत्त्वमें बाह्य उपलभ न हो तो,
निमित्त चर्या विषय विस्मृति के साथ निमग्न ।।

४५ निमित्त योगी त्रिभुवन ससार मार्ग,
निमित्त-वस्तु प्रसाद बीज-सहित ।
स्मृति विना योगी गगनमडल तुल्य
पृथक् नही तो (स्व)भाव न उत्पन्न होइ ।।

४६ अन्य पुरुषकी बुद्धि के गोचर नही,
सोई देखने मे पडित चर्या क्रिया मे होइ ।
स्मृति विकल्प रूपमे रहता औ,
स्मृति विना त्रिभुवन शुद्ध-आवास मे त्यक्त ।।

४७ सोई अ-जात सर्वसिद्धि का स्थान,
बाह्य औ अन्तर अलब्ध सर्वसिद्ध ।
अहो महामुद्रा वरगुणवती जो,
गुरु प्रमोद क्रिया-हेतु लिये सर्वसिद्धि-मूल ।।

४८. गुरु रत्न न छाड गुण सभून,
जो श्रद्धालु चित्त विशद मार्गमे ।
योगियो को इस ग्रथ का अवबोध हो,

इति सरह-कथित ग्रन्थ-कोश "मजुघोषवज्रगीति" समाप्त ।।

७. चित्तकोश 'अजवज्रगीति'

(भोट, हिन्दी)

७. थुग्स्. किय. म्ज़ोद्. 'स्क्ये. मेद्.दों.जें ऽग्लु'*

(भोट)

ऽजम् द्पल् गृशोन् नुर् ग्युर् व ल फ्यग् ऽछल् लो ।

१ स्क्ये बो. ल्हन् चिग्. स्क्येस् पऽि ये शेस् नि ।
रङ गि ञ्जमस् सु म्योङ व दे खो न ।
रिग् दङ्. म रिग् रङ रिग्. ग्सल् व दे खो न ।
मर् मे मुन् ग्सल्[५] रङ गि. रङ ग्सल् रङ.ल सद् ।।

२ ऽ.म् ग्यि. पद् म ऽदम्.ल म शेन् ख.दोग् लेग्स्. ।
ग्सुङ ऽज़िन् द्रि म -म. स्पङस्. स्ञिङ पो. ग्सल् ।।
नग्स् छोद् ग्नस् पऽि रि दग्स् गचिग् पुर् ग्र्यु ।
ग्र्यु.ल म शेन् ऽन्नस्.वु दे.खो न ।।

३. स्नङ दङ. मि स्नङ युल्. मेद्. शेन् मेद् ग्सल्[६] ।
दृङोस् स्तोङ. म द्रन् द्रन् मेद् वर्जेद् प मेद् ।।
ल्हन् चिग् स्क्येस्.प र्नम् ग्सुम्. ञमस् सु. वदे ।
शेन् प.मेद्.फ्यिर् र्तोग् गि युल् लस् ऽदस् ।।

४ स्न छोग्स् द्रन् फ्यिर् र्जेस् सु ऽन्नङ.ब. मेद् ।
ग्सल् दङ. मि मञाम्. ये शेस्. स्ञिङ पो ञिद् ।।
116 मुन् सेल् ञि. न स्प्रोन् मेऽि. ख दोग्[७] ल्तर्
रङ.रिग् रङ ल ऽवर् न. ऽजिन् र्तोग्.मद् ।।

५ स्प्रिव्.प. सद् फ्यिर् द्रन.मेद् येङस्.प मेद् ।
ग्ञिस्. दङ योद्.मेद् थ.स्ञाद् म.स्क्येद् चिग् ।।
फ्यग्.ग्र्य.छेन्.पो. वसम्.मेद्. वलो लस् ऽदस् ।
रङ रिग्. दों.जें.ऽजिन् प. र्नल् ऽब्योर् प ।।

---

*स्तन्. ऽग्युर ग्र्युंद्.शि पृष्ठ ११५ ख ४–११८ क २.

७. चित्तकोश 'अजवज्रगीति'

(हिन्दी)

नमो मंजुश्रियै कुमारभूताय ।

१. सहज पुरुषका ज्ञान, अपने अनुभव का तत्त्व ।
विद्या औ अविद्या स्वसवेद्य प्रकाश तत्व,
तिमिरनाशक दीप स्वयंप्रकाश अपनेको नाशै ।।

२ पंकका पद्म पंकमे अलिप्त सुवर्ण, गहै-धारै मल न छाड सार प्रकटै ।
वनखंड-वासी मृग अकेला कारण, कारणमे न लिप्त हो फल तत्त्व ।।

३. प्रतिभास औ अ-प्रतिभास निर्विषय निर्लेप प्रकाशै,
वस्तु शून्य ना स्मृति ले विस्मृति कहै नही ।
सहज त्रिविधसम मुख निर्लेप होनेसे कल्पना-विषय-अतीत ।।

४ नाना स्मृति के कारण अनुसरै नही, प्रकट औ असम ज्ञान सार ही ।
तिमिरनाशक सूर्य दीपक वर्ण जिमि,
स्वसंवेद्य अपने मे जलकर ग्रहण कल्पना मारै ।।

५ नीवरण नाशनसे विस्मृति उद्धत नही.
द्वैत औ अ-भाव व्यवहार न उपजावै ।
महामुद्रा अचिन्त्(य) बुद्धि-अतीत स्ववेद्य वज्रधर योगी ।।

६. ऽदऽ द्गऽ ल्हन्[1] चिग्.स्क्येस्.पऽि. मर् मे ति ।
थब्स्. दङ. शेस्.रब्. सुङ ढु. ऽजुग् पऽि. दोन्. ॥
स्क्ये.मेद् स्तोङ ऽोद् ग्सल्. रिस् दङ.ब्रल् ।
ख्यद् पर् चन् ग्यि ये गेस् खो न ञिद् ॥

७ ग्ञिस्.ल मि. ल्तोस् ब्दे व. ग्युन् मि. ऽछद्. ।
रङ ब्युङ र्तोग् मेद् व्ग् छग्स्. चँद् नस् ग्चोद् ॥
सेम्स् चन्[2] सङस् र्ग्यस्. ख्यद् पर्. ब्सम्.यस्. बयङ ।
स्प्योद्.लस् दग् न र्ग्युन्.ग्यि. नँल्.ऽब्योर्.छे ॥

८. द्रन.पऽि. रङ.ब्शिन् ब्सम.ग्यिस् मि ख्यब् क्यङ. ।
ग्ज़ोद्.नस् दग्.पस्. द्रन्.मेद्. द्ब्यिङस्.ल थिम् ॥
रङ दोन् स्क्ये मेद्. ग्ञिस्.ब्रल् र्तोग्स्.पऽि. दोन् ।
ऽब्रस् बु दग्.पस् ब्लो ऽद्स्.युल्.मेद्[3] ब्रल् ॥

९ र्तोग्स् पऽि थब्स् र्ग्युन् रङ ब्शिन् कुन् ल.ख्यब् ।
थब्स्.क्यि. ऽग्रो दोन्. स्ञिङ र्जे. ब्सम्.यस् क्यङ ॥
ये शेस् रङ ब्शिन् स्क्ये ऽगग् मेद्.पर्. र्तोग्स्. ।
थब्स्.क्यि ब्दे.ब स्क्येस्. क्यङ दे.मेद् म.सिन् ऽछिङ ॥

१० ग्रोल्.बऽि ये.शेस् रङ ल ल्हन्.चिग् ऽब्युङ ।
ब्स्गोम् ब्य स्गोम्[4].ब्येद् द्मिग्स् पऽि ब्लो लस्.ऽदस् ॥
सङस्.र्ग्यस्. सेम्स्.चन्. ब्सम्.ग्यिस्. मि.ख्यब्प ।
स्क्ये.मेद्. र्तोग्स्.पऽि युल्.न ब्लोर् मि. स्नङ ॥

११. दे ञिद्. सद पस् ब्दे.ब. स्तोङ पस्. म्छोन् ।
ब्स्गोम्.ब्यऽि ङो बो. स्नङ बऽि क्येंन् लस्. ऽब्युङ ॥
मि.र्तोग् र्तोग्स् पस्. कुन् र्जोब्. थ.स्नद्. ग्रुब्[5] ।
ग्ञिस् सु.मेद् पऽि. स्नङ बऽि. क्येंन्.मेद् ल ॥

१२ रङ.ब्शिन् दग्.प. स्क्ये बऽि नॅम् स्फुल्. शर्. ।
ब्रल्. दङ म ब्रल्. मि.र्तोग् ब्लो लस्.ऽदस् ॥

६ अतीत(?) आनद सहज दीप, प्रज्ञा-उपाय कल्प प्रवेश के अर्थ।
अज शून्य आभास निकाय-रहित, विशिष्ट ज्ञान तत्त्व ।।

७. द्वैत देखे विना सुख-स्रोत न निरुद्धै, स्वयभू निर्विकल्प वासना मूलसे कटै।
प्राणी बुद्ध विशेष अनंताशय भी, शुद्धचर्या मार्गमे स्रोत का महायोग ।।

८. स्मृति-स्वभाव अचिन्त्य भी, प्रथम से शुद्ध विस्मृति धातुमे लीन।
स्वार्थ अज अद्वैत कल्पना-अर्थ,
शुद्ध फल से बुद्धि-अतीत निर्विषय वियोग ।।

९ कल्पनाके उपाय का स्रोत स्वभाव सर्वव्याप्त,
उपायकी गतिके लिये करुणा अचिन्त्य भी।
ज्ञान स्वभाव जन्मविरोधी नही लखि,
उपायका सुख उत्पन्न हो भी उसके विना ना वंधै ।।

१० मोक्ष-ज्ञान अपनेमे सह संभवै, ध्येय धारण उपलब्धि बुद्धि-अतीत।
बुद्ध प्राणी अचिन्त्य अज कल्पना, विषयमे बुद्धिमे न भासै ।।

११. मोई विबोध-सुख शून्यतासे लखै,
ध्येय क्रिया का स्वभाव प्रतिभासकी प्रत्ययसे होवै।
अवितर्क कल्पनासे संवृति व्यवहारसिद्ध,
अद्वय प्रतिभास के प्रत्यय के अभावमे ।।

१२. शुद्ध स्वभाव उत्पन्न ऋद्धि उगै, वियोग औ संयोग (है),
निर्विकल्प बुद्धि से परे।

ग्ञिस्.मेद्. तोंग्स्.ब्यर् स्क्ये.मेद्. युल्.दु ऽग्युर् ।
स्तोङ पर्. स्म्र व्रस्. दे ञिद्. तोंग्स् मि ऽग्युर् ।

१३. ब्लो.लस्.ऽदस्. म्नो.ब्सम् युल्. म यिन्[६] म्थऽ ।
ग्सुम्.तंग्.ऽदोद्.दग् गिस्. ञोंद् पर् द्गऽ ।।
द्गऽ.ब्गि. दग् ल द्मिग्स्. क्यङ दे ञिद् द्कऽ ।
छोग्स् ड्रुग्. रङ छस्. ये.शेस्. म्छोग्.ल्दन् पस् ।।

१४. ग्ञिस् मेद् ब्चुद् क्यि स्नङ.ब रङ.ल. ऽछद् ।
क्ये हो. फ्यग् ग्यं छेन्.पो तोंग्स्.ब्रल्. कुन् ग्यि. ग्गि ।।
116b द्ङोस् ग्रुब् ऽब्युङ [७]वस् ङो म्छर् मेंद् दु. छे ।
ग्ञिस् मेद्. बग्.छग्स्. सद्.नस् रङ रिग् ब्रल् ।।

१५. ग्सुङ ऽजिन् ब्रल् बऽि फ्यग् ग्यं.छेन् पो नि ।
म्छन्.ञिद् ब्स्तन् पस्. ञान्.थोस् ल.सोग्स्. स्क्रग् ।।
चों ग्चिग्. ब्ल्तस् न. योन्.तन्. म्थर्.थुग्.ल्दन् ।
चों.ग्चिग् ब्यस्. क्यङ. चुङ सद्. ब्स्गोम् दु मेद् ।।

१६. नंम् तोंग्. रङ ऽब्र् द्रन्. मेद् ग्सोस् सु. नि. ।
द्रन् मेद् स्नङ मेद् मे.लोङ ग्सुग्स् ब्र्ञन् ऽद्र ।।
थ.स्ञद् ब्रल् बस् स्क्ये मेद्. ब्लो ऽदस्. लम् ।
म्छन्. म.ञि द्रन् द्रि. मेद् बग् छग्स् ब्स्तन् ।।

१७ थोग्.म्थऽ.ब्रल्.गिङ स्ङ फ्यिऽि. दुस्. मि.द्मिग्स् ।
क्ये हो. फ्यिर्. द्ङोस्.मेद् ये[२] शेस् तोंग्स्.पऽि लम् ।
जि.ल्तर् ब्ग्.छग्स्.ब्रल्.बऽि छुल्. ग्. न ।
ग्ञिस्.सु म ग्सुङ ग्दोद् म्थऽ ब्रल्.बस्. गि ।।

१८ बग्.छग्स्.ब्रल् बस्. फ्योग्स् मेद्. ग्युं.ब स्तोङ ।
मुङ्.दु. ऽजुग्.प सङस् ग्यंस्. ङो.बो ञिद् ।
शेस्.रब्. नंम्.ग्सुम्. युल् दङ थब्स्.सु ग्सुङस् ।
द्पे[१] .दङ.ब्रल् बस् म्छोन् पऽि युल् लस्.ऽदस् ।।

अद्वय कल्पनीय अज विषय में होइ, शून्यता वादी सोई लखा न होइ ।।

१३ बुद्धि-अतीत से समाधिचित्त-विषय का नहीं है अन्त,
तीन नित्यकामनाओ से लहै आनद ।
चारो आनन्दो मे उपलभ भी सोई कठिन,
छ परिषद् स्व-भाग से वरज्ञानवानो को ।।

१४. अद्वयरस का प्रतिभास अपने मे विच्छिन्न,
अहो महामुद्रा निर्विकल्प सवका अधिकरण ।
सिद्धि होनेसे से आश्चर्य महा, अद्वयवासना नाशै स्वसवेदन-रहित ।।

१५. ग्रहण-धारणरहित महामुद्रा, लक्षण वतानेसे श्रावक आदि डरै ।
एकाग्र देखे तो गुण अतावस्था का,
एकाग्र करके भावना मे कुछ भी नही ।

१६. विकल्प स्वय-ज्वलित विस्मृति प्रत्यय (भैषज्य),
विस्मृति प्रतिभासै नही दर्पण मे रूप-प्रतिविव सी ।
निर्व्यवहार से अज वुद्धि से परे मार्ग, निमित्त-स्मृति निर्गंध वासना कहिए ।।

१७. आदि-अन्त-रहित (जहाँ), पूर्व-पर काल न उपलभै,
अहो अपर वस्तु नही ज्ञान अववोध-मार्ग ।
जिमि वासना रहित शील आसक्त,
द्वैत ना गहै प्रथम अनन्त से शान्त होइ ।।

१८. वासनारहित से निष्पक्ष कारण शून्य, कल्प?—प्रवेश करना है वुद्धत्व ही ।
त्रिविध प्रज्ञा विषय औ उपाय मे गहै, उपमारहित लक्षण-विषय से परे ।।

१६. स्क्ये व. ऽदि ल दम् पऽि स्ञिङ पो. मिन् ।
थब्स् क्यि स्व्योर् वस् छोग्स् द्रुग् रङ सर् शि ।।
फुङ पो ल्ङ सोग्स् योन् तन् दग् पऽि शिङ ।
कुन् मख्येन् ग्ञिस् मेद् स्नङ युल् गनॅ्.दङ.व्रल् ।।

२० दोन् दम् स्त्र मेद् कुन् जोंव् तोंग् गे चम्[४] ।
म्य ङन् ऽदस् लम् ऽखोर् वऽि स्नङ व ञिद् ।।
व्ल म दम् पऽि द्गोङस् प थुग् फ्रद्. दु ।
ञोंद् नस् ऽखोर् वऽि लम् लस् ग्रोल्.वर्. ऽग्युर् ।।

२१ नॅल् ऽब्योर् द्गोङस् पऽि ञम्स् ञोंद् जोंग्स् ग ङस् गॅ्यस् ।
म नोर् लम्.दु ल्हन् चिग् .खो न यिन् ।।
वये हो ग्ञिस् मेद्. दोन् दु[५] ग्सङ स्ङग्स् व्र्द यिस् व्क्रोल् ।
योन् तन् मि सद् र्ग्य मछो नोर् वु मछ्ङस् ।।

२२ थब्स् मछोग् सिन् न. व्चु व्शिऽि स ल ग्नस् ।
गङ दु ग्नस्. क्यङ ये शेस् रङ लस् ञोंद् ।।
ग्तेर् ञोंद् व्दग् ग्शन् ग्ञिस् कऽि दोन्. ल मोंङस् ।
स्ञिङ गि गऽु नि पद् मऽि. मे तोग् द्क्यिल्[६] ।।

२३ थब्स् दङ ल्दन् प स्व्योर् व दे नस् ग्येद् ।
ऽखोर् लोऽि फ्योग्स् क्यि चॅ ग्नस्. गङ दु यङ ।।
ऽदोद् दङ व्रल् वस् छग्स् मेद् नम् मखऽ ल ।
ग्येन् थुर् ऽव्रेन् दङ ऽखोर् लो व्स्कोर् व यङ ।।

२४ थब्स् क्यि ऽव्रेन् छुल् दोन् ग्यि ग्तिङ मि ञोंद् ।
ग्मुङ दङ. ऽफङ दङ स्व्यर्[७] दङ स्व्यर् व. यङ ।।
117. व्लुन् पो द्वुग्म् मि व्दे दङ ख्यद् मेद् मछ्ङस् ।
तोंग्स्.पर् ऽदोद्.पस् दे ञिद् तॅग् तु व्ल्त ।

२५. गुस् दङ दङ वस् व्ल म द्कोन् मछोग् वतॅन् ।
ग्सङ वऽि योन् तन्. व्ल.म मछोग् लस् ऽब्युङ ।।

१९. इस उत्पत्तिमे अच्छा सार नही,
उपाय के योगसे छ सामग्री? स्वभूमि मे शान्त।
पच स्कन्ध आदि शुद्ध गुण का क्षेत्र,
सर्वज्ञ अद्वय प्रतिभाम विषय आसक्ति-रहित॥

२० परमार्थवाद नही सवृति[1] तर्क मात्र (है),
निर्वाणमार्ग (है) ससार का प्रतिभास भी।
सद्गुरु आशय वित्त-सम्पर्गमे, लाभ से ससार-मार्गसे मुक्त होइ॥

२१. योगी आशय अनुलाभ? कर सबुद्ध,
अविपरीत मार्गमे सह(ज) सोई है।
अहो अद्वय अर्थ मे मत्र सकेत से रोकना?,
गुण न नाशै सागरमणि तुल्य॥

२२. वर-उपाय गहि चौदह भुवनमे वसै, जहाँ वसि भी ज्ञान स्वय लहै।
कोश लहै आत्म-पर दोनोके अर्थ मूढ, सारके सतुष्ट कमल-पुष्प के अन्दर॥

२३. उपायवान् उस योग से सरम्भ, चक्र-पक्षका मूल-स्थान जहाँ भी।
इच्छा न रहनेस राग विना आकाशमे,
ऊपर-नीचे कर्षण औ चक्रपरिवर्तन भी।

२४. उपाय के कर्षण से शीलके अर्थ की थाह न लहे,
धारण औ क्षेपण जोडना औ जलना भी।
मूढ श्वासरोग औ अविशेष तुल्य, अवबोध इच्छासे सोई सदा देखै॥

२५. सत्कार औ प्रसन्नता पूर्वक गुरु-रत्न का आश्रय ले,
गुह्य गुण वरगुरुसे उपजै।

---

१ व्यवहार।

दोन् ल्दन् म्छन् ञिद् ऽोन् मोंङस्' ग्युल्. लस् ग्यॅल् ।
ग्सङ वऽि दोन्. ञिद् दोन् दङ रब् ल्दन्.पऽि ।।

२६. ब्ल म. स्लोब् द्पोन् लुङ दङ. रब् ल्दन् नस् ।
मि. ग्िस्. स्गो.नस्. ऽग्रो.व. ग्रोल् ऽग्युर्. शोग् ।।

थुग्स्.ख्यि म्जोद्. स्कोये.मेद्. दों.र्जेऽि ग्लु स्ञिङ्पो ग्सङ् वऽि दोन् ।
द्पल्'स र.ह.ऽि शल् स्ङ् नस् ग्सुङ्स्.प. जोंग्स् सो.[२] ।।

इच्छुकके लक्षण (है) क्लेश-युद्धमे विजयी, गुह्य अर्थ ही अर्थ औ उत्तम ।।

२६ गुरु आचार्य आगम औ प्रकर्ष से, दो मनुष्य द्वारो जगत् मुक्त हो ।

इति चित्तकोश 'अजवज्रगीति' गुह्य सारार्थ श्रीसरह के श्रीमुख से भाषित समाप्त ।।

---

८. काय-वाक्-चित्त अमनसिकार

(भोट हिन्दी)

८. स्कु.ग्सुङ.थुग्स्.यिद्.ल.मि.व्येद्.प*

(भोट)

म्छन् म रव् तु मि ग्नस् प ल. पयग् ऽछल् लो ।

दों र्जे ऽज़िन् प ल फयग् ऽछल् लो ।

१ गङ गिग् स्कु यि स्यद् पर् व्दुद् व्गि रव् तु ऽजोम्स्[३] म्सद् चिङ ।
नॅल् ऽब्योर् नॅम् पर् ग्रे ल् पस् म्ज़द् प गङ गिम्. नि ।।
ऽदोद् पऽि दोन् नि यङ दग् स्व्यिन् पर् गङ ज्युर् व ।
ग्रोल व्यम्स् पऽि छ लुग्स् म्छोग् गि. दोन् स्तोन् प ।।

२ दोन् दम् रव् तु मि ग्नस् द्गोङस् प. ग्यॅल् वऽि थुग्स् ।
गङ. गि सेम्स् ल. ऽदि. कुन्[४]. व्सम्. ड्. मेद्.दो वये ।।
स्योद् फ्रिन् लस् यन् लग् मङ पो स्तोन् म्ज़द् चिङ ।
द्ग्येस् गिङ नम् म्खऽि खम्स् कुन् थम्स् चद् ऽगेङस् पर् व्येद् ।।

३ ग्मुङ म्छोग् यन् लग् द्रुग् चुस् स्ग्र स्कद्. स्न.छोग्स्.स्ग्रोग्स् ।
थुग्स् क्यि स्यद् पर् द्गोङस् प. द्व्यिङस् लस् मि. व्स्वयोद् वयङ[५] ।।
थम्स्.चद् छिम् गिङ म्गु.नस्. रव् तु व्स्तोद्.पर् व्येद् ।
व्य म्स् दङ स्निङ जॅऽि ग्दुग्स् क्यि द्क्यिल्.ऽखोर् ग्सल् वर् स्तोन् ।।

४ म हा दे व उ म दे व. रव् तु ऽजोम्स् पर्. व्येद् ।
फ्योग्स् वचु. दुस्.ग्सुम् सङस्.ग्यॅस् कुन् ग्यि व्दग् ग्निद्.दे ।।
थर् पऽि स्गो. नि. नॅल् ऽब्योर् नॅम्स्.क्यि[६] लम्. ऽदि. ग्निद् ।
गङ यङ ग्चो म्छोग् ल्दन्.पऽि स्व्योर् व.दग् गिस् रव्. तु मि द्व्ये.वर् ।।

---

* स्तन्. ऽग्युर ग्यॅद् शि पृ८ ११७ क ३-१२२ क ३

८(ख) कायवाक्चित्त अमनसिकार

(हिन्दी)

नमो ऽप्रतिष्ठितनिमित्ताय । नमो वज्रधराय ।

१. जो काय-विशिष्ट चार मारो का प्रमर्दक,
विमुक्त योग किया कृत जिसमे ही ।
इच्छित अर्थ को सम्यक् देवै जो,
जगत मैत्री वर वेप का अर्थ बतावै ।।

२. परमार्थ अप्रतिष्ठित-आशय जिसकी करुणा,
जिसके चित्त में यह सव भाव नही रे।
तूने समुदाचार अग बहुत वखाने,
मुदित सब आकाशधातु सर्व-विजयकारी ।।

३. वर वचन के साठ अग से नाना शब्द भापा घोप,
करुणा-विशिष्ट आशय धातुत अचल भी।
सब अतृप्त आह्लाद से सस्तुति करै,
मैत्री औ करुणा प्रकट छत्रमडल बतावै ।।

४. महादेव उमादेवी प्रमर्दन करै,
दश दिशि तीन काल सर्व बुद्धात्मा वह।
मोक्षद्वार योगियो का यही मार्ग
जो भी सर्वस्व (?मुल्यवर) या प्रयोगो से प्रभिन्न नही ।।

५. र्नेल्.ऽब्योर्.छेन्.पो थ मि.दद्.प. यिन्।
गङ गिस् दे. नि. मि. शेस् पऽि।
द्रि.मऽि. छुल् ग्यिस्. गङ. यङ. म्थोङ.व. मेद्।
गङ गिस्. दे.कुन् ऽछङ.वर् ब्येद्.प. दे.यिस्. नि ॥

६. ग्ञिस्. म्दङस्.[१] ग्ञिस्.लस् व्र्तेन्. ते नस्.कुन् स्तोन्.पर् ब्येद्।
व्दग्.मेद्. रो. ग्चिग्. स्यव् पर् ब्येद् पऽि. ग्सुग्स्.ल्दन् नि ॥
ऽदि. न. मि ग्नस्. कुन्. क्यङ. ऽग्रो.वर्. व्येद्।
स्ङग्स्. दङ म्दो स्दे कुन्.ग्यि. र्ग्यल् पोर्. द्वङ.व्स्कुर् वस् ॥

७. ऽदि.दग्. कुन् ग्यि. चँ व. यिद्. ल. मि. ब्येद्.पर्।
स्येद् क्यिस्.[१] ग्चिग्. दङ ग्ञिस्.ल. म सेम्. म्.क्ये ॥
कुन्. ज्ञीव्. द्रन्.पऽि. छो ऽफ्रुल्. स्न.छोग्स्.पर् स्तोन्.प.।
दोन्.दम्. मि.द्मिग्स्.प यि. द्व्यिङस्.नु. रो ग्चिग्.ञिद् ॥

८ दुग्. ल्ङ. ल.सोग्स्. नद् क्यिस् ञोन् पऽि मुन् प.सेल्।
थोग्.मऽि. म्थऽ. दङ थ. मऽि. द्ङोम् ग्ञि म म्थोङ.वर् ॥
दुस्.[२] म व्यस्.ल. यिद्.क्यि. द्मिग्स्.सु मेद्.दो. क्ये।
गसुङ ऽज़िन्. ग्ञिस्.क्यि. वर्. न मिङ दङ व्रल्. ऽब्लुग्.प ॥

९. यन्.लग्. लोग्. न. ग्चिग् गि ङो.वो. ञिद्।
गेस्.पर् ब्य. दङ ब्यऽो. चिग्.गि. थ स्ञद्. कुन्।
ऽदि.लस्. ग्शन्. दु. ल्त.व म्.छुन् मम्. म्योङ.वर्. ग्युर्।
स्र.चन् सिन्.ग्यिस्. स्ल[३]. व्स्.ऽोस्.प. जि व्गिन् ते ॥

१०. म. म्थोङ व. ञिद्. व्यिस्. दङ. वर्.नस् गोर्.वर्. ऽग्युर्।
येङ्स्. दङ. ग्नस्.पऽि वर्.न. ङो.वो. ऽदि. गेस्. मेद् ॥
र्ग्यु.मेद्. र्क्येन्.व्रल्. स्क्ये व.मेद्.प. ग्ञिस् पर्. न।
लोग् पर्. ल्त.वऽि. छोग्स्.क्यिस्. ऽदि. ल. ग्गोल् दु. मेद् ॥

११. गि.वङ. गुर्.गुम्. चन्दन्. यिग्.ले.[४] व्रिस्.प व्गिन्. ते।
स्.ल.व. व्सुङ.पो. र्ग्यु.स्कर.ऽोद्.क्यिस्. ऽगेव्स्.प. ञिद् ॥

५. महायोगी अभिन्न है, सो न जानै,
मलस्वरूप द्वारा जो भी दीखै नही,
जो सो सब धारै (वह) सोई ।।

६. तेज कान्ति दोनो के आश्रय सब कार्य आदेशै,
अनात्मा एकरस व्यापक रूपवाला ।
इसमे न बसि सभी गमन करे,
सब मंत्र औ सूत्र-राज मे अभिषेक से ।।

७. इस सबका मूल अमनसिकार है,
तू एक औ दो को ना चिन्तै रे ।
संवृति स्मृति का नाना प्रातिहार्य कहै,
परमार्थ अनुपलब्ध धातु मे एक रस ही ।।

८ पचविष इत्यादि रोग से दोषतम नाशै,
आदि के अन्त औ अपर वस्तु-अधिकरण न देखै ।
असस्कृत मे मनका आलबन नही रे,
धारणग्रहण दोनो के बीच नामरहित रहै ।।

९. मिथ्या-अग मे एकका ही स्वभाव,
ज्ञेय औ कर्तव्य का सर्व व्यवहार ।
इससे अन्यत्र दृष्टि-निमित्त से अनुभव होइ,
जिमि राहु चन्द्र को ग्रसै ।।

१०. न देखे ही बालक औ बीच से गिरै,
उठने औ बसने के बीच यह वस्तु ना जानै ।
अकारण अप्रत्यय अज दूसरा (हो) तो,
मिथ्या-दृष्टि समाज यहाँ निम्न होवै नही ।।

११. गोरोचन-कुकुम, चन्दनकेतिलक का लेप जिमि,
भद्र चन्द्र नक्षत्र का किरणो से ढंकना हो ।

स्ञिङ पोऽि ऽोद्.कियम् यन्. लग् मिल् गियम् ग्नोन् पर् ग्युर् ।
ऽदि नस् ऽदि रु सद् चेस्. ऽदि व्यु.ङ वृनंग् द्कङ. ञिद्. ॥

१२ गङ गिस् नम्.म्खऽ दग् ल. लोङस् स्प्योद् पऽि ।
ऽदोद् पऽि योन् तन् ऽदि ल[५] ऽफेल् ऽग्रिब् मेद् पर् व्युङ.
गङ शिग् नोर् बु द्रि म मेद्.प ऽछङ व यि ।
सेमस् किय. योन् तन् अगतेर् छेन् ऽदि लस्. व्युङ ग्युर ते ॥

१३ म्थोङ व.मेद्पऽि छुल्.गियस् तंग् तु व्लत व ञिद् ।
छोस् ञिद् म्छ़ोन् पऽि ङो वो. ऽदि.व्ग स् ऽदस् ऽग्युर् व ॥
व्लो म्छोग् नंमस् कियस्[६]. कयङ नि. फिग्स् पर्. नुस्. म. यिन् ।
ग्ञिस् मेद् छल् गियस् दे व्गिन्. ग्गे ग्स् ग्ङ ञिद्. ॥

१४ दि नस् सोङ व गङ. यङ. मेद्पर् गेस् प दे ।
ऽदि. नि मि ग्नस् गङ नऽङ ग्नस् प. मेद् ॥
युल् मेद् ऽदि ल तंग् तु. ल्त.व दङ व्रल् ञिद्
ऽदि नस् गङ दु ऽग्रो वऽि फ्योगस् म्छमस्[७] दे कुन् न ॥

१५. ऽजिग्स् पर् व्येद्.पऽि स्म्र यिस्. म. ख्येर् वर् ।
चि व्दे. दङ ल्हन् चिग्. दग्.तु व्योस्. ॥
क्ये हो. ग्रोग्स्.दग् ऽदि ल. सेमस्.ग्ञिस् योद्. दे. मेद्.
किय वृतंग्. प. कुन् ।
नंम्.तोंग्. लुंङ.गिस्. व्स्योन् पऽि. छिग्.तु ऽग्युर् ॥

१६. स्म्यो वर् ग्युर् नस्. र्ग्य म्छोर् ल्हुङ व. ञिद् ।
छङस् प ङुंल् दङ. म्छन् मऽि मुन्.प दग् दङ. म. व्रल्.व ॥
दे ञिद् ग्ञिस् व्रल् तोंग्स् पर्. ऽदोद् प दङ ।
र्ग्य म्छो स दङ ग्शग् मर् नोर्.वु. ग्युर् म्थोङ ञिद् ॥

१७ वृतुल् शुग्स् म्य.ङन् ऽदऽ वऽि. स्प्योद् प. गङ व्येद् प ।
ऽदि नि मि गेस् दे ऽद्रर् स्तोन्.पर्[२] व्येद् ॥
व्देन् प.ग्ञिस्.व्रल् स्ग्रो स्कुङ मेद्. पऽि. ग्ञुग् म गङ ।
गङ दु म्थोङ व.मेद् प दे. यिन् ते ॥

सारकी प्रभा से अग लीपै,
इससे यहाँ नाशै यह होना दुष्परीक्ष्य ही ॥

१२. क्योकि शुद्ध-आकाश मे भोग्यकी,
कामना का, गुण की वृद्धि-क्षय का यहा अभाव होइ ।
जो निर्मल मणिधारी,
चित्त के इस गुणमहाकोश से उपजा ॥

१३. अदृष्ट स्वरूप से ही सदा देखै,
लखेकी वस्तु यह धर्मता ज्ञानातीत हुई ।
वरबुधि भी बेधन ना कर सके,
जो ही अद्वय स्वरूप सो तथागत है ॥

१४. यहा से गमन कही नही, सो ज्ञान (है),
यहा न वसै तो कही भी रहै नही ।
निर्विषय यहा (है) सदा दृष्टि-रहित ही,
यहा से कही गमनकी दिशा, सो सब सीमा मे ॥

१५. भयकर शब्द ना ले जावै,
क्या है सुख औ सह(ज) शोधो (सो) ।
अहो साथियो यहा दो चित्त के अभाव नही की सारी परीक्षा,
विकल्प पवन ने उन्मत्त शब्द किया ॥

१६ उन्माद होनेसे सागरमे गिरै ही,
ब्रह्म-रज औ निमित्त-तिमिर शुद्ध औ अन्तरहित ।
सौई अ-द्वैत अवबोध की इच्छा औ,
सागर-भूमि मे रखी मणि हुई देखते ही ॥

१७. व्रत निर्वाणी की चर्या जो करै,
यह ना जानि वैसी देशना करै ।
सत्यद्वय विना गुप्त फलक-रहित जो निज,
जहा नही दीखै (वह) सो है ॥

१८. ङेस्.पर्. ग्रुव् चिङ. ऽदि ल रङ वृशिन् मेद् पर्. ग्युर् ।।
गङ गिस्. म मृथोद. व लस् दे नि ग्र्येल्. पर्. ऽग्युर् ।।
थेग् प गसुम्.ग्यिम् म्य.ङन् ऽदस् स्तोन्प ।
ऽदि रु म शेस्. [३] दे ञिद् मृथोङ.व मेद् ।।

१९ र्नम् ग्रोल् लम् स्तोन्. वये.व्रग् गङ दुऽङ. फ्ये व मेद्.
व्यिस् प र्नम्स् क्यिस्. शेस्.पर्. ऽग्युर्. म यिन् ।।
गङ गिग् ऽदोद्.छगस्.व्रल्व. र्तोगस्.पर् ऽदोद् प दे ।
स्डुग्.स्ङल् गसुम्. मम् वृर्ये द् ल सोगस् प. कुन् स्पङस् ञिद् ।।

२०. वृदेन्.प.गञिस् [४८] लस्. मि. ऽदऽ थव्स्. छुल्. स्न.छोगस्.क्यिस् ।
ग्रो वऽि दोन् मृजद् ऽोद्.सेर् ग्यस्. ग्योन्. रव् तु. ऽग्येद् ।।
वुम्.रिल् ख स्वुव्. म दग् प ञिद् दग् स्तोन् प ।
छुङ. छिङ. ऽव्रेल्वऽि. युल् द्रुग् ल सोगस् रव् तु ऽजोम्स् ।।

२१. थम्स्.चद् मृख्येन् ल्दन्. सुस्. क्यङ. मृथोङ व.मेद्. प [५] दे ।
ग्रगस् प ल सोगस् कुन् ग्यिस् वृस्तोङ दङ वृस्क्य ऽोद्. प. मेद् ।।
क्ये हो. ऽदि.ल्तर ग्नस्.न कुन् ग्यिस्. शेस्.ऽग्युर्. ते ।
थोग्.मृथऽ मेद्.नस्. स्रिद्.पऽि. र्ग्यगम्छो. ग्येङस्.ग्युर्. व ।

२२ स्दुग्.स्ङल्.ञिद्.किय. चे व ऽदि.रु व्यस् ।
ऽदि. ल. शेस्. ञोन्.मोङस्. ल सोगस् पऽि ।
द्रि.मस्. मृगोस्.ऽदम्. ग्यि,. पद्.म. वृशिन् ।
ग. ऽद्रस्. युल्. ल. सो सोर. स्नङ ।।

२३. स्यु.मर्. तोगस्. चम्. गर्.मृखन्. मिग्.ऽफ्रुल् वृशिन् ।
ऽदु.व्येद्. स्न्.छोगस्. गङ.ल. वृसगस्.प. दे. ।।

१८. नियत सिद्ध इसका स्वभाव नही होइ,
जिससे अ-दृष्ट कर्म सोई जिन होइ ।
तीनों यान निर्वाण बतावै,
यहा अज्ञात सोई अ-दृष्ट ।।

१९ विमुक्ति-मार्ग देशना-व्युत्पत्ति जहा भी अभिन्न,
सोई बालोंको ज्ञात नही होइ ।
जो वीतराग बोध के इच्छुक, सो
तीनो दुख या आठ इत्यादि सब छोडै ।।

२०. सत्यद्वय से न परे नाना उपायस्वरूप
जगतके अर्थ करै दाहिने बाये वहु सग्राम ।
घट करक चुक्कड अशुद्धही, को शुद्ध बतलावै,
इन्द्रिय-अनुवर्घी छ विषय इत्यादि भूलै ।।

२१. किसी सर्वज्ञ ने भी उसे न देखा,
कीर्ति इत्यादि सबके द्वारा स्तुति औ निन्दा नही ।
अहो ऐसे रहै तो सब जानै,
आदि-अन्त के अभाव से भवसागर मत्त होइ ।।

२२. दुख ही का मूल यहा बनाया, इसे जान औ क्लेश इत्यादि को ।
मंले गिर से पके पद्म जिमि, रग न खीचै विषय मे पृथक् प्रतिभा से ।।

२३. माया कल्पना मात्र नटके इन्द्रजाल जिमि नाना सस्कार, जहा से,

ऽदि. गोम्स्. गङ.यङ. ग्रेस्.पर मि.ऽग्युर् ते ।।
ग्लो.बुर्तेन् ऽब्रेल्.दग्.लस्. गोम्स्पऽि. म्तोब्स्म् ।।

२४ म गोम्स्.पस् न. थम्स्.चद् शेम्.पर्. ऽग्युर् ।
ऽद्रस्.पऽि छोस् नि. ग.ङ्यङ ग्नस्.पर्. मि. ब्येद्. दो ।।
स्कु ग्सुम्. थुग्स्. दङ फ्यग्.ग्र्य.ल मोगस्. रिम्.प कुन् ।
ऽदि·ल स्कद् चिग्. चम्. दु. तोग्स्.पर. म.ब्येद्. चिग् ।।

२५ ऽजिग्.तन्. ब्स्तन् ब्चोस्.दग् दङ ग्लगस् ब्रम् ग्यिस् ।
ग्मुङ गि ब्दग् ञिद्. ब्र्जोद्.पर् ब्य्.ब मिन्. ञि म र.ल ।
ञि म.ग्ल ब.ग्ञिस् सु.ग्नम् ऽग्युर् ब ।
दे दङ ग्चिग्.तु. ऽद्रस् पर ग्युर् नस्. नि ।।

२६ गङ गिस्. गङ. स्प्योद् दे.यिस्. रब्.तु.ब्र्ग्यन् ।
स्क्ये ब. मेद् पऽि. नम् पर्.ङेस् ब्जोद् पऽि ।।
द्बुस् सु ब्जोद् पस् म्थऽ नम्स् रब् तु स्पङस् ।
जिल्तर्. ब्स्तन् पस् गो पर् मि. ऽग्युर् वऽि ।।

२७ ऽजिग्.र्तेन् खम्स् सु. ग्तन्. ऽख्यम्स्.रिग्स् छद् दे ।
वग् छग्स्.लस् क्यिस्. म्नर्.ब. म्छोर् बस् ।
छोस् ञिद् द्रि म मेद्.पऽि. दोन्. मि म्थोङ ।
गङ यङ ऽदि. दङ ब्रल्. ब मेद्. प. दे ।।

२८ द्रन्.ऽजिन्. लुस् लस् म्युर् दु स्कद्.चिग्. ग्रोल् ।
र्दो.र्जेऽि सेम्स्. नि योङस्.सु.ब्र्तग्. द्कऽ.ब ।।
सेम्स् ल. सेम्स् सु. म्थोङ रो स्ञोम्स्. स्ञोम्स् नस् ।
फ्यि नङ. ब्सम् ग्तन्. चॅ.मोस्. ब्र्तग्स्.पस्. स्तोङ ।।

२९. नेल् मऽि. दोन् ल. ग्नस्.पऽि नल् ऽब्योर्. नि ।
ये शेस्. शेस् रब्. ग्सङ वऽि द्ब्यिङस् ल जोग्स् ।।
रङ गिस्. म.म्थोङ म्छन्.ञिद्. कुन् ल्दन् प ।
श्रेस्. नि. ब्सङग्स्.प. ब्जोद्.पर् ऽग्युर् वऽि ।।

अकस्मात् शुद्ध आश्रय से भावना-बल, यह भावना कोई भी ना जानै ॥

२४. भावना न हो तो सब ज्ञात होइ, सकीर्ण धर्म जो भी न स्थापित करै ।
काय-वाक्-चित्त मुद्रा इत्यादि सब क्रम, इसकी क्षण-मात्र कलपना न करै ॥

२५. लौकिक शास्त्र औ वाचन-ग्रंथ से वाणी आत्मा कहा न जाइ ।
रवि-शशि दोनों मे बसि, उसके साथ एकत्र मिश्रित होने से ॥

२६. जिससे जो आचरै उससे बहु-भूषित, अज के विनिश्चय कहनेके ।
मध्यमें कहने के अन्तो को खूब छाड, जिमि शासनसे जानै नही ॥

२७. लोकधातुमे सदा भ्रमण जाति उच्छीजै, वासना कर्म से पीडा सहै ।
निर्मल-अर्थ धर्म ही न देखै, जो भी इसके विना सो नही ॥

२८. स्मृतिधर शरीरसे तुरत क्षण-मुक्त, वज्रसत्त्व की परीक्षा कठिन ।
चित्तको चित्तमे देख समरस, बाहर-भीतर सम धिशिखर से परीक्षा-शून्य ।

२९. समाप्ति अर्थमे विहरै योगी, ज्ञान प्रज्ञा गुह्य-धातु मे समापै ।
स्वयं अ-देख सर्वलक्षण, इति[१] मत्र वर्णित ॥

---

१ शल्

३०. द्रन् मेद् स्ञाम्. पऽि. द्विग्‌ङस्. ल. स्कुर्. ग्नल्. मोस्.प.
मेद्. पर् स्प्योद् ।
थुग्स् जेंस्. मि ग्निग्म्. स्कु ग्सुङ थुग्म्.क्यिस्. म गोस्.प ॥
ग्ञिस् मु म.म्थोङ. ग्सुम्.ग्यि द्रि.म.बल् ।
स्न.छोग्स्. पर्. स्नङगङ. ल. ङोम् ग्मुङ मेद्.प स्ते ॥

३१ लुस् ङग्. यिद्. ग्सुम्. ऽबद् पऽि चोंल् बम् ग्दुङ वर्.म ब्येद् चिग् ।
ङस्. नि. दों.जेंऽि ग्लु दङ लोङ ग्तम् ग्योंब्. सोद्. दङ ॥
ऽग्रो व. कुन् ग्यिस्. शेस् प दग्. दङ गर्. ब्देर् स्प्योद्
मि स्म्रिम्. मि ल्त मि.ग्प्योद् ऽदि. दङ ऽग्रल् म. म्योङ ।

३२. ये.नस् म ब्चोस् थम्स्.चद् ऽब्युङ ऽजुग्. गो ऽफङ यङ ।
क्ये हो. स्न छोग्स् गङ यङ रुङ व. ऽदि ल ब्सम् पऽि
सेम्स्. ब्रल् वस् ॥
यिद् क्यि तोंग्.प स्न छोग्स् ऽदि नि. ङन्. पऽि सेम्स्. यिन् ते ।
गङ यङ ग्सुग्स् दर्च ङ व. मेद्. प दग् लम्. म्क्येस्. प यिन् ॥

३३. थ.मल्. शेस्. प. म. ब्सङ ब्दे छेन् ग्यंल्.पो[1] ञिद् ।
119a म्छन्. ञिद् चिर. यङ म म्थोङ. पयोग्स् छ कुन् दङ ब्रल् ॥
ख्रुल्.पस्. ब्र्तग्स् पऽि ब्जोंद्. ऽदि. नि. ग्लो बुर् ते ।
ब्लो. लस् व्युङ फ्यिर. ब्लो.यिस्. ब्स्गोम्. दु. ग ल योङ ॥

३४. गङ.ल.यन् लग् मेद् प. दे. ञिद्. कुन्.ग्यि.स्यिम्. दु ल्हुङ.वर् ऽग्युर्. ।
गो वऽि छो न. चि. यङ मद् प. स्ते ।
द्ङोस्. कुन् चि. यङ ग्सल् म्थोङ व मेद् ।
गङ् ल म्य.ङन् ऽदस् दङ स्रिद्.प. ख स्प्यर् व ॥

३५. ग्ञिस्.सु. स्नङ व. ख्योद्. ल तेन् दङ. ऽब्युङ वर् ऽग्युर् व. यिन्. ।
ग्यंल्. व. ल सोग्स्. कुन् दु. स्प्रुल् प. स्न छोग्स् स्तोन् म्जद्. प. ।
दग्.पऽि. रिग्स्.नेंम्स् कुन् ल. ख्योद्.क्यिस् स्प्योद् ।
मि.ब्सम्. थुग्स्.जे. रङ ऽब्युङ. स्प्रल्.प. नि.

३० विस्मृति समधातु में अम्ल प्रकट[२] अभिलाषा विना चरै,
करुणा से ना निध्यावे काय-वाक्-चित्त से अनपेक्षित।
द्वैत ना देखै तीन मलहित, नाना प्रतिभास जहाँ सधारै नही॥

३१ शरीर वाणी चित्त तीनों यत्न-व्यायाम से ना जलावै,
अहसे वज्रगीति अन्धकथा औ तारण-मारण[३]।
सब जग जानै शुद्ध नृत्य सुख आचरै,
न यतन करै न देखै न आचरै इसके विना न अनुभवै॥

३२ प्रथमत[४] ना खोले सर्व-भव-प्रवेश का कपाट भी,
अहो नाना जो भी विहित यहा आशयके अचित्तसे।
मनकी नाना कल्पना है यह दुष्ट चित्त,
जो भी रूप औ अमूल से उपजै॥

३३. प्राकृत ज्ञान ना गहै महासुख-राज ही,
लक्षण क्यो ना देखै सर्व दिशांशसे रहित।
भ्रान्तिसे परीक्षा वचन यह उलटी,
बुद्धिसे सभव होनेसे बुद्धिद्वोरा भावनामे कहाँ आवै॥

३४. जिसका अग नही सोई सबके घरमे गिरै,
समझने के समय कुछ भी नही,
सारी वस्तु कुछ भी स्पष्ट ेखै नही,
जहां निर्वाण औ भव मुह जोड़े(है)।

३५. द्वैत-प्रतिभास तुझे आधारके साथ उत्पन्न हुआ,
जिन इत्यादि सर्वत्र नाना निर्मित करै।
सब शुद्ध न्यायसर्वत्र तू आचरै,
अचिन्त्य स्वयभू करुणा निर्मित[५]॥

---

२ स्कुर् ग्सल् ३ र्योब् सोद् ४ ये-नस् ५ ऋद्धि-निर्मित पुरुष।

३६. नोर्.बु रिन् छेन्. ल्त.बुर्. ऽफेल्. ऽग्रिब्. मेद् पर्.ब्युङ्. ।।
दृङोस् पो.मेद्.पस् नम्स्. क्यङ. र्तोगस्.मिन्.पस्. ।
ब्तङ ग्शन् मेद् चिङ. रङ ब्शिन्. नॅम् पर्.ग्रोल्. ।
ऽजिन् मेद्. यिद् ल ब्य.मेद् नॅल् ऽब्योर् बस्. ग्तन्. ञिद्. ।।

३७ गङ्ल. मि ब्स्गोम् गङ दुऽङ. ब्चल् ब मेद्.प. दे. ।
ब्सम्.दु मेद् पस् यिद् ल मि ब्येद्. रो. स्ञोम्स्. क्ये. ।
ये. ब्तङ रङ. यन्. छोगस् द्रुग् ल्हग् पऽि स्प्योद्. प. ऽदि. ।.
छोगस् द्रुग् जॅस् सु स्प्योर्.बऽि म्खस्. पस् ब्तङ ग्शग्. मेद्. ।।

३८. खो. न ञिद्. क्यि नॅल् ऽब्योर् ल्हग्. ब्सम् ब्रल्. बस्.
दे ब्शिन् ञिद् ल. मि. ग्नस् गङ ल रङ ब्शिन्. मेद्.पर्.ग्रोल्. ।
ऽोद् ग्सल् जॅगस्.दङ थिम्. दङ. ऽगग्स्.पर् ऽग्युर्.ब गङ ।
जि ल्तर्. ब्स्गोम्स्. दङ छगस्. पर्. ऽग्युर्.प. म्छन्. म. स्ते. ।।

३९ फुङ पो. खम्स् दङ स्क्ये. म्छेद् यन् लग्. थम्स्.चद्. कुन्. ।
ग्चिग्.गि. द्ब्यिङस् न. मि म्ङोन् फ बऽि. छुल्.दु. ग्नस्. ।
गॅ.य म्छोऽि द्ब्यिङस्.नस् नोर् बु रिन्. छेन्. ऽोद्. ऽम्युर्. ब ।
छु.स्निन्. द्रुङ. दङ. गदुग्.प चन्. ग्यिस्. म्थोङ. मि. ऽग्युर ।।

४०. फग्. दोग्. स्निद्.पऽि. ऽोन्. मोङस् ल.सोगस्.पऽि. ।
म्छन्.मऽि द्ब्यिङस्.नस्. ङोस्. ब्सुङ. मेद्.पर्. म्थोङ. ।।
ग्सुम्.ल.सोगस् पऽि स्गो नस् ऽजुग् पर् ब्येद्.प. नि ।
नॅम्.रिग् ब्देन् प. ग्ञिस् क्यि स्गो.नस् चॅल्.बर्.ब्येद्. ।

४१. जि.ल्तर्. स्नङ ब्शिन्.ऽजिग्.र्तेन थ.स्न्याद्. लम् ।
नॅम्. थर्. स्गो. ग्सुम्. ब्स्लब्. प. नॅम् प. ग्सुम्. ।
म्छन्. मऽि. यिद्. ल. ब्येद्. पऽि नॅल. ऽब्योर् ते ।
नॅल्. ऽब्योर छेन्. पो. ऽदि. ल. गग्स्. मि. ब्येद्. ।।

४२ गङ .गिग्. शेल्. स्गोङ दग्.प. ल्त. बुर् नि ।
रिन्. पो. छे. ल्तर् द्गोस्. ऽदोद् थम्स्.चद्. ऽब्युङ ।।

३६. जिमि बृद्धि-क्षय विनु, मणि-रत्न सभवै वस्तुविना भी निर्विकल्प।
अनन्य त्याग विमुक्त-स्वभाव अधार क मनमे निष्क्रिय योगी ध्यावै ॥

३७. जहा न भावना विक्रम भी जहा नही
सो आशय अभावसे अमनसिकार समरस रे।
प्रथम छाड स्व अग छ समाज मुक्त चर्या यह,
अनुयोग-चतुर छाडै नही।
खसम ज्ञान भावना विनु अमथित सारार्थ।
यहां बुद्धि से आवै बोलै नही रे॥

३८. तत्त्व-योग अध्याशय विना, तैसे ही मे
न बसै, जहा स्वभाव अभाव होइ।
प्रभा समाप्ति औ लय औ निरोध जो,
जैसे भावना से राग होना निमित्त है।

३९. स्कन्ध धातु औ आयतन सर्वांग सारे,
एक धातुमे प्रकट सूक्ष्म स्वरूपमे रहै ॥
सागर धातु से मणिरत्न लाभ होइ, मकरशंख औ विषधर देखै नही ॥

४०. ईर्ष्या भव-क्लेश इत्यादिके निमित्त धातुसे वस्तुग्रहण नही दीखै ॥
ञ्यादि द्वारसे प्रवेश करै, दो विज्ञप्ति सत्य द्वारसे यतन करै ॥

४१. यथा सदृश लोकव्यवहार-मार्ग, तीन विमुक्ति द्वार शिक्षा तीन प्रकार।
निमित्त के मन मे करने का योग, महायोगी यहा वास नही करै।

४२ शुद्ध काच कोश जिमि कोई, रत्न जिमि प्रयोजन इच्छा सब संभवै।

योङ्स् सु सद् प सद् फियर् म्छन् ञिद्।
द्ङोस् मेद् व्देन् प.ग्ञिस् ब्रल्.ग्चिग्.गि द्ङो स्स पो.सतोङ

४३ म्छन् म थम्स् चद् ये नस् मेद् पऽि. फियर्।
म्थोङ्.थोस् ल सोग्स् म्थऽ.यि र्तोग् प मेद्॥
मेद् ल मेद्. पर् ऽजिन् प थ.स्ञद्. दे।
ऽदि नि छोर्.वर् नुस् प म यिन् दो॥

४४. ऽदि नि.र्च.व कुन् ग्यि.जेस्.सु.र्तोग् पर् म व्येद्.चिग्।
ऽदि ल.गङ.छे.र्तोग् पर् व्येद्.प.दङ।
व्स्कल् पर् व्ग्रङस् क्यङ दे ञिद् ञेद् प मिन्.
म्गल् मे.गचुव् शिङ ल्त.बुर् म्छेद्.ऽवर्.व व्गिन्।

४५. ऽदि कुन् म्छेद्.नस्. थम्स् चद् स्रेग् पर् व्येद्।
क्ये हो. ग्रोग्स्. दग् र्ग्य म्छो नोर् वु ल्त.वुऽि.सेम्स् नि.ऽदि.
ञिद् यिन्.ते.क्ये॥
म.हे.र्व.रुर् सेङ.गेऽि ऽो म गङ्ग व्लुग्स् प।
नोर्.वु रिन् छेन् ऽवर्.व दे यिस् थोव् पर्.ग्युर्॥

४६. ञोन् मोङस्.प.मस् रव् तु स्कम्स् पऽि ऽोद्.सेर् ऽदि।
ङन् ऽग्रो. ल सोग्स्. लोग्.पर् ल्त वस् ऽजिग्स्.प. मेद् प दे॥
गङ.दग् ञेद् प दे दग्. ग्गल्.ग्यिस् मि.लङ.ङो।
जि.ल्तर्. छोस्. क्यि्. द्व्यिङस् सु.स्नङ व्दे सिद्. दु॥

४७ सग्. प. मेद् गङ.थमस्.चद्.दे यिस् स्प्यद्. प.यिन्।
दुग् स्त्रुल्. फग्. र्गोद् ग्लङ छेन्. सेङगेस्. स्रोस् प व्शिन्॥
दे.व्गिन्. ञिद् दङ म्यङन्.ऽदस्.प स्युर् मि.ऽदस्।
व्स्कल्.प. व्र्जोद्. दु. मेद् पर् व्र्ग्य. स्तोङ. दु. म रु॥

४८. ञोन्. मोङस्. ल. सोग्स्. व्सग्स्.पऽि.स.वोन्. नि।
सेम्स्. ग्चिग्-स्नङ वर्.ऽग्युर्.वस्.ऽव्रस्.वु ग्चिग् तु लोग् पर्.ऽग्युर्

परिक्षय क्षय होनेसे लक्षण, नही
अवस्तु सत्यद्‌वय-रहित क शून्य-वस्तु ।।

४३. सर्व निमित्त प्रथमतः न होनेसे,
देखना सुनना इत्यादि अन्तकी कल्पना नही ।
अभाव मे अभाव धारै सो व्यवहार, यह वेदना शक्ति नही है ।।

४४. यह सबका मूल के अनु (वि)तर्क न करै, औ जब यहा तर्क करै ।
कल्प (भर) गिन भी सो लहै नही,
अलात-अरणी जिमि अग्नि जिमि जलना ।।

४५. यह सब दहै सब जलावै, अहो साथियो सागररत्न जिमि चित्त यही है रे ।।
भैंस की सीगमे सिंहीका क्षीर गिरै जो, मणिरत्न ज्वाला सोई पावै ।।

४६ मूढोकी प्रतापक किरण यह
दुर्गति इत्यादि मिथ्यादृष्टिसे भय नही सो ।
जो लहै सो अमित (है), जिमि धर्मधातु-प्रतिभासी सुख भवमे ।।

४७ जो सब अनास्रव सो आचरित,
विषसर्प शूकर मत्त-गज सिंह द्वारा खाया जिमि ।।
तिमि भव औ निर्वाण गोष्ठीसे परे नही, अनेक शतसहस्र
अवचनीय कल्पमे ।

४८. क्लेश (मल) इत्यादि संचित बीज,
एक चित्त प्रतिभाससे एक फलमे परिवर्तित ।।

स्ग्रोन्. मे. खङ. वुर्. नोर्.बु. ग्नस्. ग्युर्. पऽि।
ऽोद्.क्यिस् थ्म्स.चद्. सिल्. ग्यिस्. म्नन्. पर्. ऽग्युर्॥

४९. द्मन्. पऽि. ल्त. स्प्योद् ञ्नन्. थोस् ल् सोग्स् पऽि।
सेम्स्. दे. यङ दग्. व्लङस्. नस् ऽजुग्. पर्. ग्युर्
ऽदि ल गङ न व्यङ छुव्.सेम्स् द्पर् ग्युर् प. दे।
जॅगिस्. पऽि. सङस्. ग्र्यस् दकऽ वर् ग्युर्. व. म यिन् नो॥

५०. सेम्स्. क्यि. स्कद्. चिग्.ऽदि. ल म्थऽ यस्. मु. मेद्. दे।
यन्. लग् थम्स् चद् स्कद्. चिग् ऽदि ल लोग्. पर्. ऽग्यु.
छोस् र्नम्स् थम्स् चद् खो. न ञ्जिद् ल. जोग्स् पर् ग्युर् व. यि.
ग्शन्.मेद्. गङ गिग् गङ नस्.ऽो ङस् पर्.ऽग्युर्.प म यिन् नो॥

५१. स.ल वऽि स्ञ्जिङ पो मुन् पऽि. ग्युल् लस् ग्र्यल्. वर्.ऽग्युर् व गङ।
ऽजिग्. तेन् मि. लम्. ल्त वु ऽदि ल यङ. दग्. ञ्जॅद् पर्. ऽग्युर्॥
120a वर्जुन् प.गङ यिन् ऽदि ल.यङ.दग्. सुस् म्थोङ.व।
ब्ल्तर्. मेद्. दे. ल. ग्स ग्स् सु.म्थोङ वर् ग.ल ऽग्युर्॥

५२. दोन्.दम्.पर् नि.गङ यङ योद्. पर् ऽग्युर्.व म.यिन्.न।
फ.रोल् ग्शन् दु म्थोङ नस् ऽग्रो वर्. ऽत्रोद् पऽि गङ.सग्.दे।
ऽदि. लस्. ग्गन्.दु.ऽग्रो. वऽि ख्यद्.प र स. ध्रि चन्.व्गिन् नो।
ऽदि. नि फ रोल्. व्र्तोल वस्. गङ द्. म. वोर् वर्॥

५३. ग्चिग्. क्यङ. फ्यिन् प. मेद् पर् ऽदिस्. व्र्तोल्.लो।
क्ये.हो. गङ. ऽदि थ.स्ञ्जद् लम् ऽदिस्. व्चल् म.यिन्।
थर्. प. र्तग् तु प्यि.ल. ल्त वुऽि म्छोङस्.पस्.नग्स् सु.ल्तुङ
वर्.ऽग्युर्॥
गल् ते.स्तग्.दङ.व्.मो. ल्त वुऽि. स्तोव्स्. नि.गो व्स्लोग्.न॥

५४. दे.ञ्जिद्. योद्.पस्. दे ल चि शिग् फन् पर् मि.ऽग्युर्.रो।
दे.ञ्जिद्.शेस् न.मि व्सम् मि.र्तोग् पर्.।

दीप कोठरी मे स्थापित मणि-प्रभासे सर्व (तम) पराभूत होइ ।।

४९. श्रावक इत्यादिकी हीनदृष्टि चर्या, सो चित्त ठीकसे लेकर प्रविशै ।
यहा जहां बोधिसत्व हो, सो, सबुद्ध होवै दुष्कर नही ।।

५०. चित्तका क्षणिक (होना) यहा अनंत अपर्यंत्त,
सब अग क्षणिक यहा मिथ्या होइ ।
तत्वमे सब धर्म समाप्त, अन्य नही जो जिससे आया नही ।

५१. चन्द्रगर्भ तम-युद्धमें जो विजयी हुआ,
लोक स्वप्न जिमि यहा सुलाभ हुआ ।
जो झूठा है उसमे ठीक किसने देखा,
उस असदृशमे रूप देखना कहां हुआ ।।

५२. परमार्थमे जो सद्भूत नही है,
परे अन्यत्र देखि जानेका इच्छुक पुद्गल सो ।।
यहा से अन्यत्र छेदन दुर्गन्ध जिमि, यह परे ले जानेसे कहा न छाडै ।

५३ एक भी पहुचा नही इसका ले गया,
अहो, जो यह व्यवहार-मार्ग (है) इससे ना ढूँढै ।
मोक्ष सदा विडाल जिमि लाघके वनमे पीवै,
यदि वाघ ग्रो श्वापद सदृश वल वाये ।।

५४ सोई होनेसे उसको क्या अहित होइ,
सोई जाने तो ना ध्यावै ना तर्क करै ।

ग्सुग्स् म्थोङ. त्सिर् यङ म्नङ् वऽि युल्.नि. हे रु स्तोङ.पर् ऽग्युर्।
ऽदि ल.येङस्.नस्.दे ल. ग्नम्.पर् ग्युर्.व.म्छोर् रो ॥

५५ द्रन् दङ. ग्रोस्.व्गिन् ग्ञिस् नि. वर् ग्यि. दे ल गङ.यङ म.
म्थोङ स्ते।
छोस्.कुन् स्तोर्.न ऽदि यि खोङ नस् ग्नम् पर् ऽग्युर्.व.यिन्।
दि.ल. द्ङो पो.मेद्. त्शिङ.व्सम्.दु.मेद्. प.दे।
ख्योद्. क्यिस् चेर् व. म्छोग् चम्. दु ग्ञिस् क मेद् पर्. व्योस्॥

५६ क्ये.हो.मङप्.गेर् यस् कुन् ग्यि. यन् लग् व्गि यि ऽदि. कुन् ग्सुम्.
दु. स्तोन्.पर्. नि।
ख्योद् क्यिस् यङ नस्. यङ.दु व्सम् पस् म्थोङ व.गङ मेद् मोद् क्ये
ऽखोर्. वऽि द्रन् पस्. तेंन् ऽव्रल् दग्. लस्. ऽव्युङ.व. नि।
स्न. छोग्स्. वर्. स्नङ. रङ. गि. ङो वो.म. स्क्येस्. फ्यिर्॥

५७. मि.ऽग्युर्.व्दे.व छेन्.पोऽि. रङ.व्गिन् दग् दङ ल्हन् चिग्.स्क्येस्।
सेम्स् क्यि. दोन् दङ. दे. व्गिन्. ग्शेग्स्. प थम्स्.चद्.क्यि।
रङ व्गिन्. नम्.पर्. दग् पऽि योन् तन् ञिद्।
छोस्.नम्स्. थम्स् चद्. ग्ञिस्.सु ग्दोद्.नस्.म व्युङ स्ते॥

५८. ग्ञिस्. दङ. ग्चिग्.गि द्रन् पस् ङ.म दङ व्रल्. वर्. ऽग्युर्।
गङ.यङ व्जोद्.पर्.व्य वऽि द्ङोस् पो गङ गिग्. रङ गिस् स्तोङ प.स्ते
व्लो. लस्. ऽदस्.फ्यिर् म्छन्. म. रव् तु.ऽजोम्स्।
दे. मेद्.प. दे. गङ.न. ग्नस् पर् मि.ऽग्युर् रो॥

५९. ग्युंन्. मि. ऽछद्. पऽि.व्सम्.ग्तन्. गङ छे. थोव्. पर् ऽग्युर् व.ल।
व्रल्.वस्. ऽदि लस् ग्गन्.दु. सो ङ वस् म म्थोङ ङो.॥
ग्सङ. स्प्रग्स् ऽदि कुन्. चेर् व. दे.लस् व्स्क्येद्. पर्. नि।
दे.मेद्.प.लस्.ऽव्युङ.वर्.ऽग्युर्.व गङ.यङ योद् प.म.यिन्.क्यं॥

६०. सु.गगि. ऽदि ल.ॱ तोंग् पर्. व्येद्.पऽि व्लुन्.पो. दे।
120b व्स्कल्.प. व्ग्युर्. यङ. म्छोग्.गि. दोन् मि. म्थोङ॥

रूपदेखे क्यो प्रतिभास-विपय वहा शून्य होइ,
यहा उद्धतिसे वहा वास छोडै ॥

५५. स्मृति औ ज्ञान जिमि दो ही बीचमे वहा कुछ भी ना देखै,
सर्व धर्म भ्रमि इसके अन्धसे वास होइ।
यहा(जो) वस्तु अभाव आशयमे अभाव सो,
तू उत्तम मूल मात्रमे दोनों अभाव करे॥

५६. अहो सर्व बुद्धका चतुरंग यह सब तीनमे आदेश,
पुन पुन आशय दर्शन किंतु कुछ भी नही रे।
ससार-स्मृतिद्वारा आश्रयसे सभूत,
नाना अन्तर् प्रतिभास स्वभाव अनुत्पत्ति से॥

५७. निर्विकार महासुख का स्वभाव शुद्ध औ सहज (है),
चित्तका अर्थ औ सर्व तथागतका।
स्वभाव विशुद्ध गुण ही, द्वैतमे सर्व धर्म प्रथमसे नही सभूत॥

५८. दो औ एककी स्मृतिसे अनेक रहित होइ;
जो भी वाच्य वस्तु सो स्वय शून्य (है)।
बुद्धिसे परे अतः निमित्त प्रमर्दित, उसके विना वह कही न रहै॥

५९. अविच्छिन्न सन्तान ध्यान जब पावै,
तो इस वियोग से अन्यत्र गमन न दीखै।

यह सब मत्र उस मूलसे उत्प ,
उसके विना सभव जो सत्ता नही है, रे॥

६०. जो यहा तर्क करै मूढ सो, कल्प सौ मे भी उत्तम अर्थ ना देखै।

गङ शिग् यिद् ल. ब्येद् पऽि म्छन्.मम् व्ग्यंल्. व कुन् ।
व्तङ ग्शग्. ग्नल् दङ थोव् पर् मि ज्ग्युर् ग्यंल्. स्रिद्. वशिन् ॥

६१. चुङ. सद् द्रोद् थोव् व्यङ छुव् सेम्स् द्पऽ दग्
गङ दु ग्योव् प मेद् प. म्छोर्. रो ।
नंम् पर् तोंग् चन् लम् दु ग्नुग्स् पऽि फ्यिर् ।
व्यङ छुव्. सेम्स् किय थिग् ले लंुङ ल गङ व्स्क्योन्. प ॥

६२ सवोन् देस्.नि ऽखोर् व ऽदि रु. सग्म् पर् ऽग्युर् ।
यङ दग् प यि दे ञिद् थोव् पर् मि ऽग्युर् शिङ ।
छ्ङ छिङ द्र वऽि ग्सेव् तु. ऽवेल् वर्. ऽग्युर् ।
शेस् रव् मिग् गिस् लोग्.पर् छर् व्चद् न ॥

६३ ग्शन् ग्यि. लोग् पर् ल्त व. रङ गि दे रु ग्रोल् ।
द्कऽ.थुव् ल सोग्स् ग्शन्.दु ऽवद्.प मेद् ॥
व्दग्. मेद् पर् नि. रङ व्युङ यङ नंम् प. स्न. छोग्स्. ञिद् ।
ग्यु.ग्येन् ल सोग्स् ऽब्रेल्.प. ऽदि.रु. स्तोङ पर् व्योस् ॥

६४. नंल्.ऽब्योर्. ऽदि.ल. व्दग्.गि ग्नस्.सु. ऽदुग्.प म म्थोङ ङो ।
स. दङ फ रोल् फ्यिन् पऽि लोङ.व. गङ ऽछल्. ऽदिस् ।
स्रिद् पऽि. द्र व खुङ नस्. ग्यं म्छोर्. म्छोङ वर्.व्येद् ।
दे ल. ग्रु. मेद् गं् य.म्छोऽि सव्स् सु. सग् पर्. ऽग्युर् ॥

६५. थोग्.म्थऽ मेद् पऽि. फ्यग् ग्यं. छेन्.पो. ऽदि ।
स्रिद्. दङ म्य. ङन् ऽदस्. ग्रोल् ञोन् मोङस्ग्.यं. म्छो.स्केम्स्. पर्.
ऽग्युर्. ।
दे. ल. सेम्स्. ग्युंन् ऽछद्. दो स्ञम्. दु. सेम्स्. शिङ स्तोङ. पर्. यिद्.
ल. म.व्येद्. चिग् ।
गङ ल. दोन्. ग्यि बंर्तुल्. शुग्स्. छन्. पो ऽदि ञिद् म. थोव्. पर् ॥

जो मनसिकार-निमित्त से सब जीते,
त्याग-रूप बिना औ अप्राप्त राज्य जिमि ।।

६१. किंचिद् उष्म पाई बोधिसत्व, जहा अकपित अवतरै ।
विकल्पमार्ग अवगाहन के लिये, बोधिसत्व-तिलक जो पवनमे दोप ।।

६२. उस बीजसे इस ससारमे च्युत, सम्यक् (तत्व) सोई न पावे ।।
लतासदृश बीच मे बद्ध, प्रज्ञा नेत्रसे मिथ्या नाश करै तो ।।

६३. अन्यकी मिथ्यादृष्टि स्वय यहा छूटै, तप इत्यादिक अन्यमे न यत्न करै ।
अनात्मा स्वयभू जो नाना विध,
हेतु-प्रत्यय इत्यादि सवध यहा शून्य करै ।।

६४. इस योगी को अपने स्थान मे बैठा न देखै
भूमि औ पारमिता अन्ध इस वनसे ।
भवजालछिद्रसे सागरमे छलाग मारै,
वहा नाव विना सागरकी गहराइमे जा लगै ।।

६५. आदि-अन्त-रहित यह महामुद्रा,
भव औ निर्वाण मुक्त, क्लेशसागर सूख ।
वहा चित्तस्रोत टूटा ओ चित्तवृक्ष शून्य मनमे ना करै,
यहा अर्थमहाव्रत सोई ना पावै ।।

६६. वृन्दिन्. गुनम् म्योद्. पʼि. दुवङ्म्. गिम्. दे. न म. रेग्. श्ये ।
    ख्यिन्. ग्यिम्. वृलेङ्म्. दङ. वृलेंव्. व्य. मेद्.पम्. ङो.मृछर् छे.व.
    ञिद्. ।

    गुञिम्. मेद्. म्गो.म्दुर्. कृन्. व. जʼि. न. गुनम्.प. गङ ।
    नॅन्. दङ. कृन्.वʼि. छुन्.ग्यिम् गुनम्.पर्. ज्युर् ॥

६७. जो.व.कुन्.ग्यिम्. दे.म्नर्. वेम्.पर्. ज्युर् गङ ति ।
    ञिद्. दङ. म्य. ङन्. ज्दम्. पʼि. छोम्. नॅमुम्. रङ. गि. सेमुम्. ग्यिन्.
    पर् ।

    गुनुन्. दु. वृन्न. व. मेद्. पर्. थग्.छोद्. वृमम्. मेद्. वृनो.ज्दन्.
    ञिद्. ॥

६८. दे. न. वृमोम्न्. दङ म.वृमोम्सु. नम्. पर् तॉग्.प.दङ ।
    मृछन्.म.जग्म्. दङ.स्पङ बर्. ब्य.व. मि. दृगोस्.ते ।
    दे.न. ञि. ब्य. गङ. यङ. म. ब्यस्. दे. ञिद्. गुनल्. बर्. ज्युर् ।
    जि.ल्तर्. नॅम्.तॉग्. म. वृकग्. म.म्यङ्म्.पर् ॥

६९. गुनन् दु. म मृयोङ. दे.ञिद्. गुनल्.ज्युर्. न ।
121a दे. नि. गङ.ल. गुनम्. क्यङ.गुनन्.दु. मृयोङ. बर्. ज्युर् व.
    म. ग्यिन्. नो ।

    म. वृमोम्न्. छेद्. दु. व्यम्. ज्रन्. व. मेद्. पʼि. ग्ङ्. वृाग्नन्. ते ।
    दुस्. नमुम्. कुन्. दु. जʼि. वोन्. नेस्. पʼि. मृछन् म. जʼि. न. तॉग्. पर्.
    म. व्येद्. चिग् ॥

७०. ल्हन्. चिग्. गुनल्. वʼि. स्नङ. व्रिद्. जʼि. न. नॉग्. मेद्. चिङ ।
    दे. लम्. गुनन्. दु. तॉगम् पʼि. वृलो. चन्, जजिम्. नि. र्ये. मृ.छो. नङ.
    गि. नोर्. वु. मेद्. मि. ज्युर् ।
    गङ. नम्. व्युङ. गिङ. गङ. दु. गुनम्. पʼि. उजिन्. प. जʼि. नि. म्क्ये. व.
    मेद्. ज्युर्. न ।
    ग्युन्.दु.जग्.प.मेद्. पन्.गमुङ.जजिन्.दे. न. म्क्येम्. पन्. ये. वेन्. ञिद्. ।

६६. व्रतचर्या के वश वहा ना लग रे,
अधिष्ठान औ शिक्षा विना महा अद्भुत ।
अद्वय गमन विनु यहा जो बैठा, निराश्रय स्वरूपसे वैठ गया ।।

६७. सर्व जगत ऐसे जो जान गया,
भव-निर्वाण सबका अर्थ (सो) जान गया ।
भव-निर्वाणका धर्म अपना चित्त है तो,
अन्यत्र देखे विना समाप्त अचिन्त्य बुद्धि से परे ।।

६८ वहा भावना औ अभावना विकल्प,
और निमित्तका प्रवारण करना ना चाहिये ।
वहा क्या करना, जोई अकृत सोई प्रकटा,
जैसे विकल्प अ-वारित अ-त्यक्त ।।

६९. अन्यत्र ना देखा सोई प्रकटै तो, कही बैठ भी अन्यत्र देखै नही ।
अभावना नाशे अकृत अभावस्वभाव (है),
सब कालो इस अर्थज्ञके निमित्त पर तर्क ना कर ।

७० सहज प्रकाश प्रतिभास इस भावमे अतर्क्य,
उससे अन्यत्र कल्पनाबुद्धि सागर मे मणि ना पावै ।
जहासे उत्पन्न जहा का यह वासी अजन्मा हो जो,
सकेतमें अनिरोध से धारण-ग्रहण अजन्मा से ज्ञान ही ।।

७१ ङो.वो. दे ल द्रि म. म स्पङस् दे. ञिद् म. ब्स्गोम्स्. पर्।
नगस् ख्रोद् दग् न ग्नम्.पऽि ग्लङ पो यन् पर्. ख्ये।
म्छन् मऽि युल् ग्यि र्नम् ग्येङ. र्तोग्.प ब्सम् ग्यिस्.मि.ख्यब्.पस्।
ग्नोद् चिङ. दे. ल ग्येङ वर्. मि ग्युर् ते॥

७२. म्छोन् छ अल् बऽि छोम् र्कुन् दग्.गिस् ग्सद् ब्चद्.म यिन् नो।
म्छन् म दे ञिद् स्ञिङ पो. मेद् ग्युर्. व॥
सायु मऽि. द्पे. ब्र्ग्यद्. ल्त. बुर्. रङ ब्शिन् मेद् पर्. ब्योस्।
गङ्.म्थोङ. सेम्स्. यिन्. दे ल द्ङोस् पो मेद्.ग्युर् पस्॥

७३. द्रन् मेद् व्लो.ल. मि ग्नस्. छोस् र्नम्स् थम्स्.चद्.नि।
दे लस् ब्युङ शिङ. दे रु स्नङ नस्. दे. ञिद्.ऽदस्.ग्युर् वस्॥
ऽदि. लस्. ग्शन् द्. ग्यो.ब. गङ्. यङ. मेद् प ञिद्।
दे ल दे ञिद्. चेम्. दु. म्ख्येन्. ग्यिस्. यिद्.ल म.ब्येद्.क्ये॥

७४. क्ये हो. ग्रोग्स्.दग्. व्लो.ल.चि. स्क्येस् सेम्स्. दे. नि।
दुङ्. र्नम्स् कुन्.दु. ग्सल् ब.म.यिन्. नो॥
दे.ल.ग्सल्.ग्यु चि.यङ मेद् प स्ते।
ब्र्चेद् प कुन् दङ अल् बर्.नि॥

७५. रङ् ग्नस् पस् नि ग्रोल् वर् ग्युर्.जि ल्तर्।
छुल् छोस् ब्यस् पऽि सङस् र्ग्यस् ऽदि. कुन् नि॥
द्गे.स्लोङ्.म. यिन्. र्ग्य म्छोऽि नङ् दु ल्तुङ।
दि ञिद्. लस्. नि. ग्शन् दग्. तु॥

७६ ग्चिग्.क्यङ ल्त.वर् मि ब्येद् प।
देस् नि. थम्स्.चद् म्थोङ वऽि द्गे स्लोङ यिन्॥
गङ्. शिग्.ब्र्जुन्. ल. गोम्स् पऽि. ग्नस् ब्र्तन् देस्।
स्रिद्.प. ञम् थग्. ऽदि लस् ब्युङ बर् नुस् म. यिन्॥

७७. गङ. गिस्. स्रिद्. पऽि छु वो. ऽदि. ब्र्जुन्. पर्।
शेस्.प दे नि. ग्नस् ब्र्तन् म्छोग् थोब् ग्युर्॥

७१. उस वस्तुमें मल ना छाडे ना सोई भावै,
वनप्रस्थोंमे वसा गज स्वानन्द सुत ।
निमित्त-विषय का विपक्ष तर्क से चित्तसे अव्याप्त,
उस वाधा में उद्धत ना होइ ।।

७२. शस्त्ररहित दस्युओं द्वारा मारण-छेदन नही, सोई निमित्त निस्सार होइ ।
जिमि माया के आठ दृष्टात निःस्वभाव कर,
जो दर्शक चित्त, वहाँ वस्तु का अभाव हुआ ।।

७३. स्मृति बुद्धिमे धर्म सारे न स्थित,
उससे सभूत वहा प्रतिभासनसे सोई अतीत ।
इससे अन्यत्र चचल कोई(वस्तु) नही,वहा सो मात्र जान मनमे ना कर रे ।।

७४. अहो साथियो, बुद्धि मे जो उपजै सोई चित्त, धूयें ना सर्वत्र प्रकट।
वहां प्रकाशहेतु कुछ भी नही, (जो) सर्व वाद से हीन ।।

७५. स्वयं स्थिति से मुक्त होइ जिमि, शीलधर्म किया यह सब बुद्ध ।
भिक्षु नही है सागरके भीतर गिरा, इसीसे अन्यो मे ।।

७६. एक भी दृष्टिमे ना करै, तिससे (सो) सर्वदर्शी भिक्षु है ।।
जो झूमे ध्यानी स्थविर, अत इम वेचारे भव से सभ ना हो सकै ।।

७७. जिसने इम भवसरिता को झूठ जाना, उसने उत्तम दृढ स्थान पाया ।

नंल्. ऽब्योर् दे यि स्प्योद्. युल्. नि ।
ल्ह दङ्. स्ङग्स्. दङ्. फ्यग्. ग्र्यऽि. यन्. लग्. कुन् ॥

७८. दि. कुन्. ग्शेस्.न. द्बव्.तु. योद्.प. म. यिन्. नो ।
दे ञिद्. ग्शेस्.प. दे.ल. दे. कुन्. म्थोङ व. मेद् ॥
दे. ल्तर्. ऽदि. लस्. म. र्तोग्स्. पऽि. ।
ऽदु.शेस्. युल्.ग्शन्. दग्.लस्. नि ।

121b७९. स्क्ये. वर्. ऽग्युर्.व योद्. म यिन् । युल्. चन्. गङ. गि फ्योग्स. दग्. तु ॥
ग्ञिस्.सु. म्थोङ्. व. मेद्.पर्. ग्युर्.व. दे ।
नंम् प स्न. छ्ोग्स्. दे. ञिद्. ग्रोल्.व. यिन् ॥

८०. गङ्. शिग् फ्योग्स्.सु ल्त वर्. ग्युर्.प. दे ।
म्छ्न् मऽि. द्रन्. रिग् फ. रग्स् गोम्स. मिन् ॥
गङ.शिग् ऽदि लस् गोम्स्. ऽग्युर् पस्. ।
स्प्योद् प.जि. स्तर्. ब्यस्. प. कुन् ॥

८१. दोन्.दङ ल्दन्.पर्. ऽग्युर्.व. म.यिन्.ते ।
ञाम् थग्. म्छ्न्.मस्. म्युर्.दु. ऽछिङ. पर्. ऽग्युर् ॥
गङ.शिग् ऽदि दङ. फ्योग्स् सु.नि । ग्तङ ल.गोम्स्. सु. योद्. म.यिन् ॥

८२ व्सम्.मेद्. यिद्.ल. गोम्स्.सु मेद् ।
क्ये हो. ग्रोग्स् दग्. रिग्.पऽि. ये.ग्शेस् ग्ञिस् सु. मेद् प. नि ॥
ये. शेस्. व्ल.न.मेद्.पऽि. द्वङ व्स्कुर् छेन् पो. स्ते ।
ज्ोग्स्.ल्दन्. द्पल्. ल्दन्. व्ल.म.दग्.गिस्. नि ॥

८३. व्स्कुर्. दु. मेद् पऽि. छ्ुल्.ग्यिस् थोव्.पर्. ब्येद् छ्.प. नि ।
म्छोग्.गि. नंल्.ऽब्योर्.नंम्स्.क्यिस्. द्वङ.व्स्कुर्. ते ॥
थोव्.व्य मेद्.पऽि छुल्.ग्यि. थमस् चद्. ज्ोग्स् ।
दे ञिद्. म.शेस्. लोग् स्नेद्.चन्.ग्यि. द्वङ. नंम्स्. नि ॥

८४ म्छ्न् मऽि. र्तोग्.प दग्.गिस् ग्सुम्.दु. सग्.पर्. ऽग्युर् ।
ऽदि ल. ञान् मोङस्. शेस्. ब्यऽि. स्त्रिव्.प लस्. व्सग्स्. कुन् ॥

उस योगी के गोचर(है), देव, मंत्र औ मुद्रा के सारे अंग ।।

७८. यह सब जानि पतन होवै नही, सोई जाने (जो) उसे सो सब देखना नही।
तथा इससे निर्विकल्प, अन्य सज्ञा-विपर्योसे ।।

७९. उपजा हुआ है नही, जिस विषयी की दिशाओंमे ।
द्वैत देखना सो लुप्त हुआ, नाना विध सोई मोक्ष है ।।

८०. जो दिशाओ मे दीखै सो, निमित्त की स्मृति-विद्या सूक्ष्म स्पर्श ध्यान है ।।
जो इससे ध्यावै, (उसने) चर्या अनुरूप सब किया ।।

८१. अर्थसहित होवै नही, बेचारे निमित्त से तुरत बद्ध होइ ।
जो इसके साथ दिशा मे, त्याग ध्यान मे नही ।।

८२. ध्यान-रहित मनमे भावना नही,
अहो साथियो, विद्या का ज्ञान अद्वय (है)।
अनुत्तर ज्ञान का अभिषेक महान्, निष्पन्न (हो) श्रीगुरुओ से ।।

८३. व्याख्यान-रहित शीलसे पावै, उत्तम योगियो द्वारा अभिषिक्त ।
अप्राप्य (कुछ) शीलका सब समाप्त,
सोई ना जान मिथ्यालोभी अधिकारी *।

८४. निमित्तकी कल्पनाओंसे तीनमें आसक्त होइ,
यहा ज्ञेयके आवरण क्लेश से सब ढका ।।

---

* यन्.पर्.ध्ये

गेस् रब् तिङ ऽजिन् मि द्गोस् .नंम्.पर्.ग्रोल् बर् ज्ग्युर् ।
ख्रो ग्न्ोर् मेद् पस्. सुग्. दु थम्स्. चद् ज्जोम्स्. पर् नि ॥

८५. म स्क्येस्.प.यि छुल् ग्यिस् ऽजिन् पर् मि. ब्येद्. दो ।
स्नङ ब ऽगग्. प ऽदि ल ग्सल् बऽि. र्तोग्. पस् यिद्. लम्. ब्येद्. चिग् ।
फ्यिन् चि लोग् दङ नंम्.पर् र्तोग् प थमम् चद् नि ।
ञ्ोन्. मोङस् लङ यि ग्नस् सु थमस् चद् पर् ऽग्युर्. ब. यिन् ॥

८६ ग्शन् दग् ऽढि ञ्चिद् गेस्. पस् ऽखोर् बऽि. द्र ब दग् गिस्.स्तोङ .प.
ञ्चिद् ॥

उ दुम् ब रऽि ल्त बुर् द्कोन् ऽग्युर्.बऽि ।
र्मोङस् पऽि मुन्.सेल् स्ञ्जिङ पो ग्सङ .बऽि दोन् ।
सुस् क्यङ गेस्.प मेद्.पर् कुन् ल ग्सल् ऽग्युर् ब ॥

८७. स्ञ्जिङ. गर् ग्नस् पऽि दोन् ल द्रि म मेद् ऽग्युर् ते ।
र्तुल् गुग्स् स्प्योद् पस् गङ दे म्थोङ ब. म.यिन् नो ॥
ऽदि नंम्स् जोंग्स् ल स्व्योर्.बर् नुस् प दे ।
यन्.लग् थिम् नस्. स्तोङ .प ञ्चिद् दु. ग्नस् ॥

८८ क्ये. हो. ग्रोगस्.दग्. ग्यद् दङ जे. रिग्स् जि ब्गिन् दु ॥
गङ .गिस्. खेङस् पर्. म्युर् दु. थोब्. पर्.ऽग्युर् ॥
रिम्. पर् स्व्यद्. प. गङ . यङ योद्.प म.यिन्. नो ।
छोस् नंम्स् थम्स्. चद् स्तोङ . प. ञ्चिद्. दु. रो. ग्चिग्. दङ ॥

८९. ख्योद्. क्यिस् जोंग्स्.पर् ऽग्युर्. बस् थोब् प. म. यिन्. नो ।
122a गङ . छे. ऽदि. ल चं ब मेद्.पर्. र्तोग्स् प. नि ॥
द ल्त ञ्चिद् दु. ग्ञ्चिस् मेद् ङेस्ः पर्. ऽग्युर् ब. यिन् ।
जि.ल्तर् स्रिन् बु स्प्योद् पस् ब्चिङस्. पर् गङ ऽग्युर् ब ॥

९०. ऽदि. नंम्स्. रो ल छगस्. पस्ऽ छिङ . बर् ऽग्युर् प स्ते ।
छङ . छिङ . ऽदि. ल. स. बर् नुस् प. गङ गिस् नि ॥

प्रज्ञा समाधि न चाहिये मुक्त होइ, उर्मि विना सारी पीड़ा नशै ।

८५ अजात रूपसे ग्रहण ना करै,
इस प्रतिभास-निरोधमे स्फुट कल्पनासे मानस-मार्ग बनावै ।
बाहर जो मिथ्या सब ही विकल्प, पच क्लेश के स्थानमे सब गिरा ।

८६. दूसरे यही जानि संसारजालोंसे शून्यता, उदुंवर(पुष्प) जिमि दुर्लभ ।
मोहतमनाशक गुह्य सार अर्थ को, कोई भी न जाने (सो) सब प्रकाशै ।।

८७. दोनों स्थानके अर्थ मे निर्मल होइ, व्रतचर्या से जो उसे देखै नही ।
इनकी समाप्तिमे जोड़ सकै, सो अग के लय से शून्यतामें वसै ।।

८८ अहो साथियो, विक्रमी वैश्य जिमि, जिसने अति शीघ्र पाया ।।
क्रमसे धोने (से)कुछ भी होवै नही, सारे धर्म शून्यता मे एकरस (हैं) ।

८९ तू समाप्ति से पावै नही, जब इसमे निर्मूल कल्पना ।
अभी अद्वय निश्चित होई, जिमि कृमि जो चर्यासे वेष्ठित हुआ ।।

९०. ये रसके रागसे वंधे, इस लतामें जो खा सकै ।

ऽखोर्.लो थम्स्.चद्. ग्युन्.दु. व्स्कोर्. त्रर् ऽग्युर व. यिन् ।
सङ्स्. र्ग्यस् नंम्स्. क्यि. स्कु ग्सुङ थुग्स् ग्सल्. व ॥

९१. ऽदि. कुन्. गङ गिस् यिद्. ल म. व्यस्. पर् ।
स्तोन् पऽि. व्ल म दों. र्जे ऽजिन्. ल ऽदुद् ॥

॥ स्कु. ग्सुङ थुग्स् यिद्. ल मि. व्यद् पऽि पयग र्ग्य छेन्.पो. शेस्. ब्य. ब. सङ्स्. र्ग्यस्. गञिस्. प. ल्तर् ग्रग्स्. प. नंल् ऽब्योर् ग्यि द्वङ फ्युग्. छेन्. पो. दपल्. स. र. ह. पऽि. शल्. स्ङ. नस्. ग्सुङ. प. ज ोग्स्. सो ॥

॥ल्त्. म. नग्. पोस्. रङ.ऽग्युर्. दु. नङ. गबऽो । गु.य स.म.प.त.मि.थि ॥

सर्व (संसार) चक्र स्रोतमें घूमा है,
बुद्धोंके काय-वाक्-चित्त (का) प्राकट्य ।।

६१. यह सब जिसने मनमें न किया, (उस) शास्ता-गुरु वज्रधर को नमः ।।

।। इति कायवाक्चितअमनसिकार महामुद्रा (उपदेश) द्वितीयबुद्ध जिमि प्रसिद्ध महायोगीश्वर श्री सरह के श्रीमुख से भाषित समाप्त ।।

गुरु कृष्ण ने स्वय अनुवादित किया। गु (ह्) यसमाप्तमिति ।।

६. दोहाकोश महामुद्रोपदेश

(भोट, हिन्दी)

६. (क) दो.ह. मज़ोद्. फ्यग्.ग्यँ. छेन्.पोऽि. मन्.ङग्*

(भोट)

122a द्पल्. दॅर्ो जे नॅल्. ऽब्योर्.म ल फ्यग्. ऽछल्. लो । ल्हन्. चिग्. स्क्येस् पऽि ये. गेस् छोस् कि्य. स्कु व्दे. व. छेन् पो. ल फ्यग्. ऽछल्. लो ।

१ जि ल्तर् द्ङोस् दङ द्ङोस् मेद् स्नङ स्तोङ. दङ ।
ग्र्यु दङ. मि. ग्र्यु ग्यो. दङ मि ग्यो. व ।।
थम्स् चद्. म लुस् नम् म्खऽि रङ व्शिन्. लस् ।
दुस् नॅम्स् कुन् दु. नम् यङ ग्यो. व. मेद् ।।

२ नम् मखऽ नम् म्खऽ गेम् नि. रव्. व्जॅोद्. क्यङ ।
नम्. म्खऽि ङो.वो चिर् यङ. ग्रुव् प मेद् ।।
योद्. दङ मेद् दङ योद् मिन् मेद् मिन् दङ ।
दे लस्. ग्शन् दुऽङ म्छन् पऽि युल् लस्. ऽदस् ।।

३. दे ल्तर् नम् म्खऽ सेम्स् दङ. छोस् ञिद्. ल ।
थ दद्. चुङ सद्. योद् प म यिन् ते ।।
थ दद्. मिङ नि ग्लो वुर् व्तग्स् प चम् ।
दे. ल दोन् मेद्. व्जॅुन् ग्यि. छिग् तु. सद् ।।

४. छोस्.नॅम्स् थम्स् चद् रङ.गि सेम्स् यिन्. ते ।
सेम्स् लस्. म ग्तोग्स्. छोस् ग्शन् ङॅुल्. चम्. मेद् ।।
गङ गिस् ग्दोद् नस् सेम्स् मेद्. तोग्स् प.यिस् ।
दुस् ग्सुम्. ग्र्यल् वऽि द्गोङ्स्.प. दम्.प. ञॅोद् ।।

---

* स्तन्. ऽग्युर्, शि, पृष्ठ १२२ क ३—१२४६

६ (ख) दोहाकोश महामुद्रा-उपदेश

(हिन्दी)

नमो वज्रयोगिन्यै । नम सहजज्ञानधर्मकायमहासुखाय ।

१. जिमि वस्तु औ अवस्तु प्रतिभास शून्य,
कारण औ अकारण चल औ अचल ।
तिमि सकल अशेष आकाशस्वभाव,
सब कालोमे कभी न चल ॥

२. आकाश आकाश इति प्रोक्त भी,
आकाश-स्वभाव कुछ भी ना सिद्ध ।
है नही औ न है-न नही,
इससे अन्यत्र भी निमित्त-विषयसे परे ॥

३. जैसे आकाश चित्त औ धर्मतामे,
भेद कुछ भी है नही ।
भेद नाम आकस्मिक गौण मात्र,
उसे अर्थहीन मिथ्यावाक्य मे डालै ॥

४. सारे ही धर्म अपना चित्त (है),
चित्तसे अतिरिक्त अन्य धर्म कुछ भी नही ।
जिसने प्रथम से अचित्त कल्पना की,
(उसने) त्रिकाल जिने[1]के अभिप्राय पा लिया ।

---

१ बुद्ध

५. छोस्. क्यि. स्. म्तोग्. चेस् योङ्स्.सु. ग्दग्स् ।
दे. यङ. लोग् पऽि छोस्. ग्शन् म यिन्. ते ॥
ग्सोद् नस्. ल्हन्. चिग्.स्क्येस् पऽि. रङ. व्शिन्. नो ।
122b दे यि दे ञिद् व्स्तन् दु. योद्. मिन्. ते ॥

६. व्र्जोद् मेद्.पस्. सुस्.क्यङ. गो.व्र. मेद् ।
गल् ते व्दग्.पो योद्. न. नोर् योद् दे ॥
ये.नस्. व्दग्.मेद् दे ल. चि. शिग् योद् ।
सेम्स्. योद्. ग्युर्. न छोस्.कुन्. योद्. रिग्स्. ते ॥

७. सेम्स्.मेद्.प.ल. छोस्. शिग्. सु यिस्. तोग्स्. ।
सेम्स्. दङ. छोस्.सु. स्नङ. व. थम्स्.चद्. नि. ॥
व्चल्. न. मि. ञेद् छोल्. म्खन्. गोङ नस्. मेद्. ।
मेद्.प दुस्.गसुम् म.स्क्येस्. मि. ऽगग्.पस्. ॥

८. दे. ञिद्. ग्शन्.दु. ऽग्युर्.व. मेद्.प. नि. ।
रङ.व्शिन्. व्दे.व. छेन्.पोऽि. ग्नस्.लुग्स्. यिन्. ॥
दे.फियर् स्नङ.व. थम्स्.चद्. छोस्.क्यि. स्कु. ।
ऽग्रो.व.सेम्स्.चन्.र्नम्स् नि. सङ्स्.र्ग्यस्. ञिद्. ॥

९. ऽदु व्येद्.लस् कुन्. ये.नस्. छोस्.क्यि. द्व्यिङ्स्. ।
व्तग्स्.पऽि. छोस्.र्नम्स्. रि.बोङ. र्वे. दङ ऽद्र. ॥
क्ये म. ञि.म. स्प्रिन्.व्रल्. ऽोद्.स्र्. कुन्.स्यव्. क्यङ. ।
मिग्. मेद्. र्नम्स् ल. मुन्. प. र्नम्स् सु स्नङ. ॥

१०. ल्हन्.चिग् स्क्येस्.पस्. कुन्.ल. स्यव्.ग्युर्. क्यङ् ।
र्मोङ्स्.प. दग्.ल दे ञिद्. गिन् तु. रिङ. ॥
ऽग्रो.व.र्नम्स् क्यिस् सेम्स्.मेद्. म. र्तोग्स्. पस्. ।
व्तग्स्.पऽि. सेम्स्.क्यिस्. सेम्स् ञिद् रव्. तु. व्चिङ्स्. ॥

११. जि.ल्तर्. ग्दोन्.ग्यिस्. व्र्लवस् पऽि. स्म्योन्.प. दग्. ।
द्वङ.मेद्. दोन्.मेद्. स्दुग्.स्डल्. व्येद्.प. ल्तर्. ॥

५. धर्म-फरडक इति परिहास¹, सो भी मिथ्या धर्म (छोड़) अन्य नहीं।
आदि से सहज स्वभाव (है) उसका, सोई उसके श·मन मे नहीं ।।

६. अकथ को कोई ना जानै, यदि पति है (कहै) तो भ्रम है।
आदितः अनात्मा वहाँ क्या है, चित्तसत्ता हो तो सर्व-धर्म सत्ता-युक्त ।।

७. चित्त के अभाव मे धर्म किसने समझा, चित्त औ धर्म मे सारा प्रतिभास ।
ढूँढे तो न लहै गवेषक पूर्व से नही, अभाव त्रिकाल (में) अजात अनिरुद्ध ।।

८. सोई अन्यत्र निर्विकार, (उसका) स्वभाव महासुख की व्यवस्था है।
अत सर्व प्रतिभास धर्मकाय (है), जगत् प्राणी (सारे है) बुद्ध ही ।।

९. सस्कार सारे आदि से धर्म-धातु, गौण धर्म (है) शशशृंग से ।
अहो निरभ्र मे सूर्य किरण (से) सर्वव्यापी तोभी, नेत्रहीनो को
अन्धकार प्रतिभासै ।।

१०. सहज सब मे व्याप्त भी, मूढो को सोई अति दूर ।
सासारी अचित्त को न समझ (अत·) गौण चित्त से चित्त अतिवद्ध ।।

११. जिमि आग्रह से शिक्षा-उन्मत्त, अनधिकार अनर्थक दुख करै।

---

१ गद्. गस् २ उपदेश

दुङ्गोस्. ऽजिन् नंम् नोंग्. ग्दोन्.छेन्. सिन्.प.यि. ।
स्क्ये वो. दोन्.मेद्. स्दुग्.ब्स्ङल्. ऽब्ऽ गिग् ब्येद्. ॥

१२ ख.चिग् ब्लो यि. द्व्ये.बम् मोंङस् नंम्स्. ब्चिङस्. ।
ब्दग्.पो ख्यिम् दु. ब्गग्.नम् ग्गन्. दू. छोल्. ॥
ख.चिग्. ग्सुग्स्. बर्नान्.दग्.ल. ग्दोन् दु. ऽजिन्. ।
ख चिग्. चं.व बोर् नम् लो ऽब्व् श्रेग् ॥

१३. जि ल्तर्. ब्यस्. क्यङ ब्स्लुस् प. म. छोर् रो. ।
क्ये हो बुस् व नंम्स् क्यिस् दे ञिद् म रिग् क्यङ. ॥
दे. ञिद्. ङङ लम्. ग्योम्.मेद् ङ यिस् नोंग्स्. ।
ङ यिस्. यिर् थोग् (प.) म्थऽ गेम् ग्युर् पस्. ॥

१४ ङ.यिस्. म्थोङ. रङ ञिद्. ग्चिग्. पुर्. लुम्. ।
ग्चिग्.पो ञिद् ल. ब्ल्तस् पम् ग्चिग्. म. म्थोङ. ॥
म्थोङ ब्य म्थोङ ब्येद्. ब्रल् बस्. ब्जोंद् दु. मेद्. ।
ब्जोद्.दु. मेद्.प. सु यिस् गो बर् ऽग्युर् ॥

१५. ग्ञुग्.मऽि. यिद्. ल. गङ छे. स्व्यङस्. ग्युर्. प. ।
दे.छे. रि. द्वग्स्. ङ.यि. तोंग्स्.पर्. ऽजुग्. ॥
सेङ.गेऽि ऽो म. स्नोद्.ङन्. फल् बर्. मिन् ।
जि ल्तर्. नग्स्.न. सेङ गेऽि. ङ रो.यिस्. ॥

१६. रि.द्वग्स्. फ.मो. थम्स्.चद्. स्क्रग्.ग्युर्. क्यङ ।
123a सेङ फ्रग् नंम्स्. नि. द्गऽ.वस्. ब्र्ग्युग्.प. ल्तर्. ॥
ग्दोद् नस्. म.स्क्येस् ब्दे.छेन्. ऽदि ब्स्तन्.पम् ।
मोंङस्.प. लोग् तोंग्.चन्.नंम्स्. स्क्रग्. ग्युर् क्यङ. ॥

१७. स्कल्.ल्दन्. रव् तु.द्गऽ. वस्.पु. सिङ ब्येद् ।
क्ये.हो. म येङ्स्. सेम्स्.क्यिस्. रङ ल. ल्तोस्. ॥
रङ.गि. दे ञिद्. रङ गिस् तोंग्स्.ग्युर्. म. ।
येङ्स्.पऽि सेम्स्. क्यङ फ्यग् र्ग्य छेन् पोर्. ऽछर्. ॥

वस्तुग्राही विकल्प महाआग्रह-बद्ध, पुरुष निरर्थक केवल दुख करै ।।

१२. कोई बुद्धि-भेद से मूढो को बाधै, स्वामी घर मे रहै और अन्यत्र ढूंढे ।
कोई प्रतिरूपो मे आग्रह पकडै, कोई मूल छाड़ि पत्ते को सीचै ।।

१३. की गई बचना जिमि ना वेदन करै, अहो शिशु सोई ना जानै ।
हससे अकपित सोई मै समझूं, मैने आदि अन्त जाने ।।

१४. मैने स्वय ही अकेले देखा शरीर, अकेले मे ही देखते क न दीखै ।
दृश्य-दर्शन रहित (होने) से कथन मे नही (आवै), अकथ को किसने जाना ।।

१५. अपने मन मे जब घोष हुआ, तव शबर मेरी कल्पना मे पइठा ।
सिहिनी का दूध कुपात्र मे (रखना) ठीक नही,
जिमि वन मे सिह की गर्जन से ।।

१६. सारे छोटे मृग भीत होवे, सिह शिशु आनन्द से दौडे जिमि ।
प्रथमतः यह अज महासुख वताने से, मूढ मिथ्या तार्किक भीत होवे ।।

१७. भव्य प्रमुदित रोम हर्ष करै, अहो अनुद्धत चित्त अपने ही अपने देखै ।
अपने सोई अपने से समझे तो, उद्धत चित्त भी महामुद्रा मे उदित होइ ।।

१८. म्छन्म. रङ ग्रोल्. ब्दे.ब छेन्.पोऽि. दङ. ।
मि लम्.दग् गि ब्दे दङ स्दग्.ब्स्ङल्. कुन् ।।
सद् पऽि दुस् न रङ ब्शिन् मेद् पऽि. फियर्. ।
रे. दङ. द्गोस्.पऽि ब्सम्.पस्. कुन्. ब्स्लङ. नस् ।।

१९ द्गग् दङ स्ग्रुब् पऽि ब्सम् प सु शिग् ब्येद् ।
ऽखोर् दङ म्य ङन्.ऽदस् पऽि छोस्.नम्स् कुन्. ।।
दे ञिद् म्थोङ वस् रङ ब्शिन् मेद्.पऽि फियर् ।
रे दङ द्गोस् पऽि ब्लो नि. सद् ग्युर् पस्. ।।

२० स्पङ दङ ब्लङ. बऽि बद् चोॅल् चि ब्यर् योद् ।
स्नङ ग्रग्स् थम्स्. चद् स्ग्यु.म. स्मिग् र्ग्यु दङ. ।।
ग्मुग्स् ब्र्ञन्. दङ म्छुङस् द्ङोस्.पो. म्छन्. म. मेद् ।
स्ग्यु मर् स्नङ म्खन् सेम्स्. ञिद् नम् म्खऽि स्ते ।।

२१ म्थऽ ब्रल् द्बुस्.मर् सुस् क्यङ गेस् मि. ऽग्युर् ।
गङ गा ल सोग्स् छु क्लुङ स्न छोग्स् प ।।
ब छ.चन् ग्यि र्ग्य म्छोर् रो ग्चिग् ल्तर्. ।
ब्तग्स् पऽि. सेम्स्. दङ. सेम्स् ब्युङ. स्न छोग्स् कुन्. ।।

२२ छोस् क्यि द्ब्यिङस् सु रो ग्चिग् गेस् पर्. ब्योस् ।
गङ गिग् नम् म्खऽि खम्स् नि योङस् ब्चल् क्यङ ।।
म्थऽ दङ द्बुस् मेद् म्थोङ ब योङस् सु. ऽगग् ।
दे ब्शिन् सेम्स् दङ छोस् नि. योङस् ब्चल् वस् ।।

२३ स्ञिङ पो ङोॅल् चम्. र्ञेद् पर्. मग युर्. ते ।
योङस् सु छोल् बऽि सेम्स्. क्यङ मि द्मिग्स् पस् ।।
चि यङ म म्थोङ ब ञिद् दे. म्थोङ यिन् ।
जि ल्तर् ग्सिङस् ल ऽफुर् बऽि. ब्य रोग्. नि ।।

२४ फ्योग्स् नम्स् ब्स्कोर् शिङ स्लर् यङ दे रु ऽबब् ।
ऽदोद् पऽि सेम्स् क्यिस् ब्स्तन् पऽि. र्जेस्. ब्चद् क्यङ ।।

१८. स्वयं मुक्त निमित्त महासुख और, स्वप्नो के सुख औ दुख सारे।
प्रात. काल स्वभाव-रहित होने से, आशा औ अपेक्षा की बुद्धि नष्ट होइ ॥

१९. निरोध औ साधन मे चित्त कौन करै, संसार औ निर्वाण सारे धर्म।
सोई देखने से नि स्वभाव के लिये, आशा औ उपेक्षा की बुद्धि नष्ट होइ ॥

२०. त्याग-ग्रहण का यत्न-व्यायाम करे क्या होवे,
प्रतिभास प्रसिद्धि सारी माया-मरीचि (है)।
प्रतिबिंब-तुल्य निर्निमित्त वस्तु, माया प्रतिभासी चित्त ही आकाश-सम ॥

२१. अन्तरहित मध्य को कोई भी न जान पाया,
गंगा इत्यादि नाना नदी,
लवण-सागर मे एकरस (होइ),
जिमि, गौण चित्त और चैतसिक नाना सारे,

२२. धर्मधातुमे एकरस जानो
जिमि आकाशधातु परिगवेषै भी अन्त और मध्य-रहित मे दृष्टि रुकै।
तिमि चित्त औ धर्म परिगवेषै तो सार अणु-मात्र वहा ना लहै ॥

२३ परिगवेषक चित्त भी ना मिलै, कुछ भी ना देखै सोई देखना है।
जिमि नावमे उडता काक,

२४. दिशाओमे घूमि पुन वहा उतरै ॥
राग चित्तसे शासन अनुच्छिन्न भी, प्रथम चित्त निज मे ही उतरै।

दङ पोऽि. सेम्स् ञिद्. गञ्ुग्.म. ञिद्.दु. ऽव्रव् ।
ब्र्येन् ग्यिस्. मि ऽगुल् रे.वऽि. यि छद्. प ॥

२५. दोग्स्.पऽि स्कुग्स् स ग्यिस्.पस्. र्दो र्जे सेम्स् ।
र्च व. छोद् पऽि सेम्स्. ञिद् नम् म्ख ऽद्र ॥
स्गोम् दु मेद् पस्. यिद् ल. मि. ब्य. स्ते ।
थ मल् शेस् प. रङ लुग्स् गञ्ुग्.म ल ॥

२६. ब्चोस्.मऽि. द्मिग्स् प. दग् गिस्. ब्स्लङ.ब. दे ।
123 a रङ ब्शिन्. दग् पऽि. सेम्स् ल ब्चोस् मि.द्गोस् ॥
म. ब्सुङ म ब्तङ रङ दगऽ ञिद्.दु. ग्रोग् ।
गल् ते म र्तोग्स्. ब्लो.ल स्गोम् र्ग्यु मेद् ॥

२७ र्तोग्स् प चन् ल ब्स्गोम् ब्य. स्गोम् ब्येद् मेद् ।
जि ल्तर् नम्.म्खस्. नम् म्खऽ द्मिग्स् सु. मेद् ॥
दे ल्तर्. स्तोङ पस्. स्तोङ प ब्स्गोम्.दु. मेद् ।
ग्ञिस् मेद् शेस्.पस्. छु दङ ऽो म. ल्तर् ॥

२८. स्न. छोग्स्. रो.ग्चिग्. ब्दे.छेन्. र्ग्युन्. छद्. मेद् ।
दि.ल्तर्. दुस् ग्सुम्. र्नम् प. थम्स्.चद् दु ॥
यिद्.ल्. ब्य.ब.मेद्. चिङ म.ब्रल्. गञ्ुग्. मऽि दङ ।
दे. ञिद्. स्क्योङ. ल. स्गोम् शेस्. थ.स्ञद्. ग्दग्स् ॥

२९. लुङ. नि. मि. ब्सुङ. यिद्. नि. मि. ब्चिङ. वर् ।
म. ब्चोस्. शेस् प. बु.छुङ ल्त.बुर्. ग्रोग् ॥
द्रन् र्तोग्. ब्युङ न दे. ञिद् रङ.ल. ल्तोस् ।
छु. दङ. र्लब्स्. ग्ञिस्. थ. ऽद्.म र्तोग्स्. शिग् ॥

३० यिद्.ल. मि. ब्येद्. फ्यग्.र्ग्य.छेन्. पो. ल ।
स्गोम् र्ग्यु. र्डुल्. चम् मेद्.पस्. मि. ब्स्गोम्. स्ते ॥
स्गोम् मेद्. दोन्. दङ.ब्रल्.मेद्. स्गोम्.पऽि छोग् ।
ग्ञिस्.मेद्. ल्हन्.चिग्. ब्दे.ब.छेन्.पोऽि. रो ॥

प्रत्यय द्वारा अकम्प आशा मे (चित्त-) लयन ।।

२५. शका राजपथ भूमि विचारसे[1] वज्रसत्त्व तीक्ष्ण-छेदक चित्त खसम ही।
अभावना मनमे ना करै, इत्वर जानना निजमे स्वमर्यादा ।।

२६. कृत्रिम अवलम्बनों से उसे ना उठा,
स्वभाव शुद्ध चित्तको पकाना ना चाहिये ।
ना पकडै ना छोडै स्वच्छन्द ही रहै,
यदि निर्विकल्प बुद्धि मे भावना करै नही ।।

२७. कल्पनावान्को ध्येय औ धारणा नही,
जिमि आकाशका आकाश आलवन नही ।
तिमि शून्यतासे शून्यता भावना नही, अद्वय ज्ञानसे नीर-क्षीर इव ।।

२८. नाना एकरस महासुख-स्रोत अनुच्छिन्न, तिमि त्रिकाल सर्व प्रकार।
अमनसिकार अविरहित निज औ, सोई रक्षामे भावना इति व्यवहार गौण ।

२९. पवन ना गहै मन ना बाधै, ज्ञान ना पकाये शिशु जिमि रहै ।
स्मृति तर्क उपजै तो सोई अपने मे देखै,
जल औ वेला दो भिन्न ना समझै ।।

३०. मनमें ना करै महामुद्रा को, भावना अभाव से अणुमात्र ना भावे।
अभावना निरर्थक नहीं भावना उत्तम, अद्वय सहज महासुखका रस ।।

३१. जि.ल्तर्. छु ल. छु ग्ग्ग् रो ग्चिग् ल्तर् ।
जि.व्शिन् ङङ दु दे व्शिन् ग्नस् पऽि छे ।।
द्मिग्स् ऽजिन्. शेन् पऽि यिद् नि रव् तु. शि ।
क्ये हो ग्ञिस्.मेद्. ग्ञ्ग् मऽि र्नल् ऽब्योर् गङ दे ल ।।

३२. स्पङ दङ व्लङ वऽि द्ङोस्.पो चि शिग् योद् ।
ङस् नि. छोस् कुन् म. व्तङ वस् ।।
व्. स्योद्. ऽदि यिस् व्य व मि स्म्रऽो ।
जि ल्तर् नोर्.वु. दे. द्ङोस् मेद्.प ल्तर् ।।

३३ र्नल् ऽब्योर्. स्प्योद्.प दे द्ङोस् मेद् प. स्ते ।
दु.व्येद्. स्न छोग्स्. चल्.चोल्. गङ स्म्रस् क्यङ ।।
र्नल् ऽब्योर् व्लो नि. ग्चिग्.लस् मि. ऽदऽो ।
ग्चिग् ञिद् न. नि ग्चिग् क्यङ योद् मिन्.पस् ।,

३४ र्नम्.प स्न.छोग्स् चर् व. व्रल्.ग्युर् ते ।
स्प्योन्.प. व्गिन् दु. चेस्.मेद्. यन्.प ल ।।
व्यर् मेद्. स्प्योद्.प. वु.छुङ. व्शिन्.दु ग्नस् ।
ग्रे.म. स्रिद् पऽि ऽदम्.स्क्येस्. पद्.म ल्त वुऽि सेम्स् ।।

३५ ञोस् प गङ गि गङ.ल. गोस्.प मेद् ।
स. शिङ ऽथुङ ल. ग्ञिस्. स्प्रोद् व्दे व दङ ।।
गल्.ते. लुस्. सेम्स् रव्.तु ग्दुङ. ग्युर् दङ ।
र्नम.प. स्न.छोग्स्.गङ ल स्प्योद् ग्युर्.प ।।

३६. गङ गिस्. म व्चिङस् म.ग्रोल् गोस्.प. मेद् ।
र्तोग्स् पऽि रङ. स्प्योद्. चिस्.मेद् दङ दे.नस् ।।
124a र्मोङस्.पऽि ऽग्रो.व. ञम्.थग् म्ङोन् ग्युर्. छे ।
मि. व्सोद् स्ञिङ र्जेऽि. ग्रुग्स् क्यिस्. म्छिम्.व्युङ ।।

३७ व्दग्. ग्गन्. व्स्ल ग्.नस्. फन्.प. ञिद्. ल ऽजुग् ।
दोन्.व्र्तग्स्.प. न. द्मिग्स् पं. ग्सुम् व्रल् वस् ।।

३१ जिमि जलमें जल डाले रस एकसा, जैसे चंचल तिमि स्थिरकाले।
आलम्बनमें आसक्त मन प्रशान्त, अहो, अद्वय निज जो योगी उसे ।।

३२. छोडने-लेने की वस्तु क्या है, मैंने सर्व धर्म ना छोडा।
बच्चे अत तू क्रिया मत कहै, जिमि वह मणि अवस्तु तिमि ।।

३३ योगचर्या सो अवस्तु (है), नाना संस्कार जो कहना भी बेकार।
योगबुद्धि एकसे ना अतीत, एक तो एक भी है नहीं ।

३४. नाना विधमूल-रहित होइ, पागल जिमि अनगिनत विनु स्वानद में ।
चर्या निष्क्रिय शिशु जिमि रहै, अहो भव पकमें उपजै पद्म सा चित्त ।।

३५. जिसका दोष जिसको चाहिये नही, खाओ पीओ दोनों दान औ सुख।
यदि काय-चित्त प्रतप्त, नानाविध जहां चर्या होइ ।।

३६. जिसे न बधन औ न-मोक्ष ना चाहिये,
कल्पनाकी अगणित स्व-चर्या उससे ।
मूढ़ जगत् बेचारा साक्षात्कार-काले, अ-च्युत करुणा-बलसे न अ-तृप्त गया ।।

३७. स्व-पर निवारि हित मे ही निमग्न हो,
अर्थप्रत्यवेक्षण तो तीन आलवन-रहित ।

१. स्कुग्स् स शिग्स् पस

यङ.दग्. म. यिन्. मि.लम्. स्ग्यु.ऽद्र. स्ते. ।
छ्गस्. थोगस्.[1] ब्रल्.बस् द्कऽ.गिङ. स्कय.मेद् प. ॥

३८. स्ग्यु.म म्ङस्.प. स्म्यु मऽि दोन्. व्येद्. मछुङ्स् ।
ग्डोद् नस्. दग् प. नम्.म्खऽि रङ.ब्शिन्. ल॥
स्पङस् दङ. थोब्.पऽि द्ङोस्.पो. ऽगऽ. यङ मेद् ।
यिद्.ल ब्यर् मेद्. फ्यग् ग्यं छेन्.पो. नि ॥

३९ ऽत्रस्. बु गङ.दुऽङ रे ब. म. ब्येद्. चिग् ।
रे. बऽि. सेम्स्.[2] नि. ग्डोद्.नस् म. स्कयेस्. पस् ॥
स.पङस्. दङ थोब्.पऽि. द्ङोस् पो. चि. शिग्. योद् ।
गल् ते. गङ.गिस्. थोब्.पऽि. द्ङोस्.पो चि. शिग्. योद् ॥

४०. गल्. ते. गङ. गिस्. थोब् पऽि द्ङोस्. योद्.न ।
ब्स्तन् पऽि. फ्यग्.ग्यं. नम् ब्शिस्. चि. शिग्. ब्येद् ॥
जिज. ल्तर्. रि.दगस् ऽख्रुल् पस्. ग्दुङस् प.यिस्[3] ।
स्मिग् र्ग्युऽि छु.ल रब्.तु. ब्र्ग्युग्.प. ल्तर् ॥
४१. र्मोङस्.प गङ शिग्. ऽदोद्.पस्. रब्.ग्दुङस्.पस् ॥
जि.ल्तर्. ऽबद्. क्यङ. स्लर्. नि रिङ. बर्. ऽग्युर् ॥
ये. नस्. म. स्क.येस्. रङ. ब शिन्ऽनम्. दग्. पस् ।
दे लस्. ब्यद् पर्. चुङ सद्. योद्. मिन्. ते ॥
४२.ब्तग्स्.पऽि यिद्. नि. द्ब्यिङस्. सु.[4] दग्. ऽग्युर्. प ।
दे. ल र्दो.र्जे. ऽछङ ग्सुस्. ब्तग्स्.प. चम् ॥
जि.ल्तर्. ए.वङ. स्कम्.पोऽि. सि.मग्.ग्यं. दग् ।
छु.र्.स.नङ छु. नि गृन्सिस्.सु मेद्.प. ल्तर् ॥
४३. ब्सोद्.नस् दग् प. ब्तग्स्.पऽि. यिद्. सङस्. प ।
दे ल. तंग् छद्. ग्न्सिस्.सु ब्जोद्.दु. मेद् ॥
यिद् ब्शिन्. नोर्.बु द्पग् ब्सम्.[5] शिङ ब्शिन् दु ।
स्मोन्.लम्. द्बङ गिस् रे. ब. योङस्. स्कोङ ब ॥

सम्यग् नही स्वप्नमाया सदृश,
काम उपादान से रहित कठिन क्षेत्र उत्पन्न नही ॥

३८. मायाकुशल के माया-अर्थ करने तुल्य, प्रथम से शुद्ध आकाश स्वभाव सदृश ।
त्यक्त औ प्राप्त वस्तु कोई नही, अमनसिकार महामुद्रा ॥

३९. किसी फल मे भी आंशा ना करै, आशा-चित्त प्रथम से न उपजावै तो
त्यक्त औ प्राप्त वस्तु क्या है, जिसके द्वारा प्राप्त वस्तु क्या हो ॥

४०. यदि जिसके द्वारा प्राप्त वस्तु है तो, शासन की चार विध मुद्रा क्या करै ।
जिमि मृग भ्रमसे सन्तप्त ? (माया) मरीचि जल मे बहुत भागै ॥

४१. मूढ जो राग से सन्तप्त, निरत भी पुन जिमि दूर होइ ।
आदि से अजन्मा स्वभाव विशुद्ध, उससे विशेष कुछ है नी ॥

४२. गौण मन धातु मे शुद्ध भूत, वहाँ वज्रपाणि इति गौण मात्र ।
जिमि शुष्क मरु की शुद्ध मरीचिका, जल प्रतिभासी जल अद्वय (है) ॥

४३. आदि से शुद्ध गौण मन शुद्धेति, वहाँ नित्य उच्छेद दोनों कहने को नही ।
चिन्तामणि कल्पलता सदृश, अधिष्ठान वश आशा परिपूरै ।

४४. दे. यङ ऽजिग्.र्तेन् थ.स्न्याद्. कुन्.जोंब् स.ते।
दम्.पऽि. दोन्. दु.ऽगऽ यङ दोन्. म. यिन्॥

दो. ह. म्ज़ोद्. चेस्. व्य. फ्यग्.ग्र्य. छेन्. पोऽि. मन्. ङग्. द्पल्. रि. ख्रोद्. प. छेन्
पोस्. न र. हऽि. शल्. स.ङ. नस्. मजद्. प. जोग्स् स सो॥

ग्र्य. गर् गि. म्खन्. पो. श्री. वै. रो. च. न. र. क्षि. तस्. रङ्.ऽग्युर्. दु. म्ज़द्.पऽो॥

---

४४. सो भी जगव्यवहार संवृति (है), परमार्थ मे कोई भी अर्थ नहीं।

॥ इति दोहाकोष महामुद्रोपदेश महाशवर सरह के श्रीमुखसे रचित समाप्त ॥

भारत के उपाध्याय श्री वैरोचनरक्षित ने स्वयं अनुवादित किया ॥

---

१०. द्वादश उपदेशगाथा

(भोट और हिन्दी)

१०. मन्.ङग्. ळ्गिस्.सु. ब्चद्.प. ब्चु.ग्जिस्.प.[1]

(भोट)

द्पल्.दो.र्जे.सेम्स्.द्पऽ.ल. फ्यग् ऽछल्.लो ।।

124b १. व्यङ. छुब्. सेम्स्. ेनि. शि. व स्ते ।
दे. ल. ग्नस्. प. गङ. यिन्. प ।।
नम्. म्खऽ. ब्शिन्. दु. शि. वर्. ऽग्युर् ।
लुस्. दङ. यिद्. लस्. ब्युङ. व यि ।।

२. दे.ल. चुङ.सद्. ऽग्युर्.व मेद् ।
यङ.दग्. ये.गे स्.लस्. ऽदस्.प ।।
नॅम्.पर्. मि.र्तोग्. शि.वर्. ऽग्युर् ।
र्तोग्.प. गि.वस्. सङस्.र्ग्यस्. ञिद् ।।

३. दे.ञिद्.[1] नॅम्.प.म्ख्येन्. ञिद्. दो ।
द्ङोस्.पो. द्ङोस्.पो. म्थोङ.नस्. नि ।।
दे.ल्तर्. नॅम्.र्तोग्. गङ. व्युङ.व ।
दे.नि. र्तोग्.मेद्. ये.शेस्. यिन् ।।

४. ऽग्रो.व. थ.दद्. ऽजिन्. फ्यिर् रो ।
दङोस्.पो. कुन्.ग्यि. रङ.ब्शिन्. नो ।।
थम्स्.चद्. दु. नि. सो.सोर्. ग्नस् ।
दे.दग्.ल. नि. ख्यद्.पर्.दु ।।

५. ङ.र्ग्यल्.मेद्.[2] चिङ. मोंङस्.प. मेद् ।
दे. फ्योगस्.ग्चिग्. प. द्ङोस्.पो. ल ।।

---

१. स्नन्.ऽग्युर् र्ग्युद्, शि, पृष्ठ १२४ क७—१२५क. ३

१०. द्वादश उपदेशगाथा

(हिन्दी)

नमो वज्रसत्त्वाय

१. बोधिचित्त शान्त है, वहाँ रहनेवाला जो।
आकाश जिमि शान्त होइ, काया औ मन से भये का।

२. वहाँ कुछ भी विकार नही, सम्यग् ज्ञान से परे।
निर्विकल्प शान्त होइ, कल्पना शान्ति से (है) बुद्ध ही।।

३. सोई प्रकार–विज्ञता, वस्तु वस्तु देख कर।
तिमि जो विकल्प (उत्पन्न) होइ, सोई निर्विकल्प ज्ञान है।।

४. जग (के) भेद ग्रहण के कारण, सब वस्तु का स्वभाव (है)।
सब मे पृथक् रहे, उनके विशेष मे (कर)।।

५. निरहंकारी मूढ नही, सो एकपक्षी वस्तु को।

ब्दग् तु ऽजिन् प जि ल्तर् गङ ब्युङ व ।
दे नि. र्तोग् मेद् ये शेस्. यिन् ॥

६ दुद् ऽग्रो ल सोग्स् रङ ब्गिन् नो ।
फ्योग्स् ग्चिग. चम् लस् गङ ब्युङ. व ॥
दे.यि. ङो.बोर् ब्गद् पर्. ब्य ।
यङ. दग्. सेम्स् क्यिस् ग्सुङ वर् ब्योस् ॥

७ स्तग् नि. फुग्. न ३ ग्नस् प दङ. ।
स्बल्. प. स्तोङ प छेन् पो.दङ ॥
ब्यि ल.व स्प ल्दङ व दङ ।
व लङ ल सोग्स्.लुस् पो स्प्रुग् ॥

८ स्बुल् ल ब्सऽ ब मेद् प दङ् ।
ब्य. नंम्स् म्खऽ ल ऽग्रो.व दङ ॥
स्रिन्.बु.मे ख्येर्.ऽोद् ऽफ्रो. दङ ।
र्ङ.मो स्ब्रुल्. नंम्स्.ऽगुग्स् प दङ ॥

९. र्म.ब्य स्कोम्. लस्.ग्.यल्.व.दङ ।
बुङ. बस् दुग्.नंम्स् सोस्.प.दङ ॥
छु ब्यस् द्वङ.पो ब्स्ङम्स् प दङ ।
सेङ गे ऽजिग्स्.प मेद्.प दङ ॥

१० ऽग्.पस् म्छन् मऽि म्थोङ.व दङ ।
ब्य.गोंद् रिन्. छेन् र्तोग्स् प. दङ ॥
स्ब्रुल् ग्यि दुग्. नि. ब्येद्. प दङ ।
र्म ब्यस् दुग्.नंम्स् स व.[५] दङ ॥

११. दुर् प म ऽोङस्. शेस्.प. दङ ।
नि. छे छिग्स् ल म्खस् प दङ ॥
स्ब्रङ. बुस्. जेंस्. नंम्स्. स्दुद् प. दङ ।
ऽदुद् ऽग्रो ल. रङ रिग् ऽग्रो ॥

आत्मग्रहण-सा जो हुआ, सो निर्विकल्प ज्ञान है ।।

६. पशु इत्यादि स्वभाव एकपक्ष मात्र से जो हुआ ।
उसका (स्व) भाव कथनीय, सम्यक् चित्त से कथन कर ।।

७. बाघ गुफा मे बसता औ, मेडक महाशून्य (मे) ।
मूष कम्बललोम उडै औ, गौ इत्यादि शरीर धोवै ।

८. साप का खाना नही औ, चिडियोंका आकाशमे जाना ।
जुगनू की स्फुट किरण औ, ऊँट साँपो (का) आमंत्रण ।।

९. मोर प्यास विजयी औ, भ्रमर विपो को खाता ।
जलपक्षी (बगला) का इन्द्रिय-सयम और, सिंह का निर्भय होना ।।

१०. उल्लू का रात मे देखना औ, गिद्ध का रत्न समझना ।
साँपका विष बनाना औ, मोर का विपो का खाना ।।

११. चकवे का भविष्य जानना औ, तोतेका शब्द में पण्डित (होना) ।
मधुमक्खी का मधु-सचयन औ, तिर्यक् इत्यादि का स्वसवेदन ज्ञान ।।

१२. ङङ.पस्.छु.दङ.ऽो.म व्येद्।
वुङ वऽि स्कद्.नि शिन् तु.स्ञान्॥
छु.स्क्यर्.म्छिल्.मस्.से.म्स्.चन्.ऽज्रिन्।
स्त्रुल् ग्यि.मिग्.गिस्.[6] थोस्.प.दङ॥

१३ रि.दग्स् लस्.नि.ग्ल न्चि.ऽब्युङ।
गु.नस्.नि.ञिद् मिग्.गिस्.स्नोम्॥
छु यि.नङ.न ग्नस्.पऽि.ञ।
स्रोग् दङ चोल् वस् ऽगोग् पर्.ब्येद्॥

१४. छुल् ङन् व्स्लस् प व्रम्.से.यिस्।
ये.शेस् म्छोग्.तु.थल्.वर् ऽग्युर्॥

125 a स्तग् ल स ोग्स् पऽि. स ोग्. छग्स् कुन्।
स्ङ मऽि. वग् छग्स्.लस्. व्युङ वऽि॥

१५ रङ व्गिन् योन्.तन् ऽब्युङ वर् ऽग्युर्।
दे. दग्. ऽजिग्. र्तेन्. ये शेस् चन्॥
द्कऽ. थुव् म यिन्. ग्रोल् व मिन्।
म्ङ मऽि. वग् छग्स्.लस् व्युङ वऽि॥

१६ दे.दग्. सो. सोर् ग्नस्. प यिन्।
दे च्म्. ये.शेस्. यिन्. न. नि॥
दुद् ऽग्रो.नेम्स्. क्यङ. ग्रोल् वर्. ऽग्युर्।
दे.ल्तर्. शेस् ते शेन् स्पङ्म् नस्॥

१७. यङ.दग्. ये शेस्. स्प्यद् पर्. व्य।
गङ.गिस्. व्यङ.छुव्. दम्. प दग्॥
द्ङोस् ग्रुव् दम्.प ऽब्युङ.वर्. ऽग्युर्।

मन्. ङग्. गि. छिग्स्. सु. व्चद्. प. व्चु. ग्ञिस्. प. ब्रम्. से. छेन्. प. स े. र. हृऽि. शल्. नस्. ग्सुङ्स् प. जोग्स्. सो॥

---

१२. हस का नीर-क्षीर पृथक् करना, भ्रमर का शब्द अति मधुर ।
बगला राल थूक से प्राणि धरै, साँप आँख से सुनै ।।

१३. मृग से कस्तूरी होइ, घुन (?) आँख से सूँघै ।
जलके भीतर बसती मछली, श्वास औ व्यायाम से रोधै ।

१४. दु शील जपी ब्राह्मण, उत्तम ज्ञान मे प्रसक्त होइ ।
बाघ आदि सारे प्राणी, पूर्वकी वासना से उत्पन्न .।

१५ स्वभाव गुण (से) हुआ, सो ससारी ज्ञानी ।
तपस्या नही मोक्ष नही पूर्व की वासना से उत्पन्न ।।

१६. वे सब पृथक्-पृथक् रहै, उतना मात्र ज्ञान है तो ।
पशु भी मुक्त होवे, ऐसे ज्ञान (हो तो) आसक्ति त्याग से ।

१७. सम्यग् ज्ञान चर्या कर, जिससे परमबोधि शुद्ध ।
परम सिद्धि होइ ।।

इति द्वादस-उपदेश गाथा, महान् ब्राह्मण सरह के श्रीमुख से भाषित समाप्त ।।

---

११. स्वाधिष्ठान-क्रम

(भोट और हिन्दी)

११. रङ्. ब्यिन्. ग्यिस्. ब्र्लब्.पऽि. रिम्-प*

(भोट)

द्पल्.र्दो र्जे. सेम्स्.द्पऽ.ल. फ्यग् ऽछल् लो ।

१. ब्दग्.ल .ब्यिन्. ग्यिस्. ब्र्लब्. पऽि. स्यद्. पर्. ब्स्तन्. पस् स्प्रुल्.[५]
प.स्न्यु. मऽि. ब्दग् ।।

द्पल्. ल्दन्. र्दो. र्जे. स्गेग्. मो ञिद् ल. ल्हग्. पर्. रोल्. पऽि रो.
गङ. चि. यङ .रुङ ।।

र्दो.र्जे.ब्दुद्. चि. द्पल्. ल्दन्. गङ ल गङ. गिस् ब्स्तोङ. प.दे.
ल्तऽङ ऽख्रुल् पऽि. रङ ब्शिन्.न ।।

जि. ल्तर्. ब्र्जोद्. प.ऽदि. लस्. ग्शन्. सु. ब्चोम्. ल्दन् दे. ल कुन् नस्.
फ्यग्. ऽछल्.[६] लो. ।।

२. गङ. यङ म्ङोन् द्गऽि ग्यँल् बऽि. स्कु. म्जेस्. ग्चिग् पु. ञिद् ।।

सु. यङ म्खस् नँम्स्. स्ञिङ स्द्. मि ऽग्युर्. ब ।।

गङ.शिग्. शर् बस्. म्ञान्.पऽि. दुस्. न. द्बङ पो. दङ. ।

युल्. नँम्स्. ब्चस् प. नुब्. प. दे. ल. फ्यग् ऽछल् लो. ।।

३. गङ ल. स्प्रोस्.प. द्पल्. ल्दन्.[७] ब्दे. बऽि रङ ब्शिन्. र्दो. र्जेऽि.
म्छोन्. ऽजिन्. चिङ. ।

गङ. शिग् छ. ब्यद्. स्प्रोस्. ब्रल्. द्रि मेद्. ग्सेस् रब्. रङ. ब्शिन्.
कुन् दु. ऽग्रो. ।।

द्पग्. ब्सम् ल्जुग्. मस्. म्ङोन्. मछ्ङस् ग्नस् ग्सुम्.ञोन्.
मोङस् द्र ब ग्चोद्. प. गङ. ।

द्पल्. ल्दन्. र्दो. र्जे छिग् म्छन् ब्चुन्. मो. दे ल. कुन्. नस् फ्यग्.
ऽछल्.[८] लो. ।।

---

* स्तन्-ऽग्युर्, ऽग्युद्, शि, पृष्ठ--१२५ क ३-१२६ क ६ ।

११. स्वाधिष्ठानक्रम

(हिन्दी)

नमो वज्रसत्त्वाय

१. आत्मा-अधिष्ठान के विशेष आदेशसे निर्मित माया-पति
श्री वज्रशृंगारिणी ही मे अधिक ललित रस जिसे कुछ पसन्द ।
बज्रामृत श्री जहाँ, जिसे शुन्य, सो दृष्टि भी भ्रम-स्वभाव,
यथा कथित इससे अन्य भगवान् को सर्वत: नमस्कार ।।

२. जो भी अभिनन्दित जिन (प्रभु) के अकेला सुन्दर शरीर ही,
कोई भी पडित हृदय विवुद्ध नही हुआ ।
जो उदय से श्रवणकाल मे इन्द्रिय औ,
विषयो के सहित अस्त हुआ उसे नमस्कार ।।

३. जिसका प्रपञ्च श्रीसुखस्वभाव (जो) वज्रायुधधरा,
अशकर निष्प्रपच निर्मल प्रज्ञास्वभाव सर्वगामिनी ।
कामना से साक्षात्तुल्य त्रिभूमिक[1] क्लेश-जाल-छेदिका जो,
श्रीवज्रपदलाछ्न उस पटरानी को सर्वत. नमस्कार ।।

---

१. तिनमजिला

४. गङ. शिग्. दों. जें. यन्. लग्. म. गेस्. कुन्. नस्. दन्. पस्. क्यङ. ।
ञोन् मोङस्. ब्रल्. बऽि. ब्दे ब. ञ्चऽ शिग्. सेर् नि. ब्दे ऽग्रो ब ।।
दे ल. मि. फ्येद्. गुस्. पऽि खुर् ग्यि ल्चिद्. क्यिस्. म्ग्रिन्. स्नङ नस्. ।
दे. यि. शब्स् क्यि. पद् मऽि ड्रुल् ल स्प्यि. बोस् फ्यग्. ऽछल्. लो. ।।

125b५. गङ. गिस्. ब्कऽ[7] ड्रिन् सेर्. ग्यिस् स्प्रोस् प ब्दग् गिस् दे ञिद् नि. ।
रिन् छेन् ऽोद्. क्यिस् ब्स्कोर् बस् मुन्. पऽि. छोगस् नि. रब्.
ब्चोम्. शिङ. ।।
ञोंग् मेद् मिग् गिस् रङ गि नंम् पर् रोल् प. रिङ म्थोङ. बऽि. ।
ब्ल. म. नंम् पर् स्नङ ब्येद्. दे ल. यङ. ढुग्. ऽदुद्. ।।

६. गङ. गिग् स्निद्. प दङ नि शि. ग्नस्.[1] ऽग्रम् दु द्गऽ. ग्युं. म्थन्. ऽबब्.।
ये शेस् नम् म्खऽि छु. बोम् यिद् ग्येस् द्पल् ल्दन् ब्ल म
ग्सुम्. प ञिद्. ।।
द्पल्. ल्दन्. दों. जें स्गोग्. मो. ब्चुन्. मोऽि. छोगस्. नंम्स् शेस्.
रब् फ. रोल्. फ्यिन्. रङ. ब्गिन्. ।
गङ गिग्. ग्नस् ग्सुम्. स्तोन्. प ग्चिग्. पु दम्. पऽि द्वङ. फ्युग्.[2]
दम्. पऽि. सेम्स् ल. ब्दग्. स्क्यब्स्. म्छि ।।

७. गङ. गिस्. सेम्स्. नि. म्ञम्. प. ञिद्. क्यि. युल्. दु. ऽजोग्. चिङ.
दुग्. ऽद्र बऽि. ।
ऽखोर्. ब ब्चुद्. क्यिस्. लेन्. ग्यि. नंम्. पर्. म्जद्. प. रङ द्वङ.
स्ङग्स् ऽद्र. ब ।।
गङ.गिस् स. स्तेङ. द्वङ पोऽि ब्लो यिस्. मिन्. ऽग्रो. ग्सुम्.
खङ. छुङ. गि. ।
द्रि म[3] ऽखुद् नस् ग्चिग् पु ब्ल. म. दम्. पऽि. डग्. ल. फ्यग् ऽछल्. लो. ।।

८. गङ गङ. द्रन् पर् यङ. दग्. ग्नस्. पस्. स्ञिङ. ग. पद्. मऽि म्दुद्. प. नि. ।
द्बुग्स्. ऽब्यिन्. ग्रोल्. बर् स्ब्योर्. बऽि. ब्ल. मऽि. ब्कऽ. लुङ दे. ङस्. नि. ।

४. जो वज्रागिनी रति सर्वतः स्मृति द्वारा भी,
निःक्लेश सुख केवल भूमि मे मुखगामी।
वहाँ न अर्थ-भक्तिभार भरसे कठ प्रतिभास से,
उसके चरणाकमलरजको ललाट से नमस्कार ।।

५. जिसने करुणाकिरणसे प्रपचित किया,
मैने उसी रत्नप्रभामडल से तनसमूह प्रध्वस्त किया।
अनाविल नयन से स्वविलास दीर्घदर्शी,
उस वैरोचन गुरुको सम्यक् नमस्कार ।।

६ दो भयके साथ शान्त वसि आनन्दहेतु अनुकूल तटपर उतरा,
ज्ञान आकाश नदी से विपुलहृदय तृतीय श्रीगुरु।
श्रीवज्रश्रृगारिणी (जिसकी) अग्रमहिषी प्रज्ञापारमितास्वभाव,
जो तीनो स्थानोके अकेले शास्ता परमेश्वर परमचित्त (उस) की मै शरण हूँ ।।

७. जिसका चित्त समता-विपय मे प्रविष्ट विष समान,
ससार रसायनग्रहण का निर्माण स्ववशमन्त्रसम।
जो भू-पर इन्द्रिय-बुद्धि से अगम तीन कोठरी का,
मल धोवे अकेला सद्गुरु (उस) के वचन को नमस्कार ।।

८. जी जो स्मृति मे सम्यक् रहने से हृदय-पद्म की ग्रंथि,
श्वास के ग्रहण मोक्ष की योजक गुरुकी आज्ञा को।

ञि फ्येद् ऽोद् छोगस् क्यिस् ग्नस् ग्सुम्. खड.वुऽि.[४] मुन्. ऽजोम्स्.
शिङ. ।

मोंङस्. दङ ऽगल्. ल. व्दग् नि दुल्. वर्. व्चस्. पस् फ्यग् ऽछल्.लो ॥

९. व्ल मऽि ग्वस्. क्यि ङुल् ऽदि चुङ सद्. व्रन्. प यि ।
योन्. तन् स्म्रोस्. प. योङस्. सु. ग्युर्. पस् द्पल् ल्दन्. प ॥
मि व्दे. व यि व्दग्. ञिद्. क्यङ. नि म्छोग् व्दे. वर् ।
गल्. ते [५]ग्रुव् न ऽदि लस्. व्स्ग्रुव् व्य ग्शन् मेद्. दो ॥

१०. व्दग् नि व्ल.मऽि ग्वस् क्यि ङुल् ल. गुस् दङ ल्दन्.पस्. गं. शि. दङ ।
नद् दङ. स्दुग्. व्स्डल् स्न छोगस् म्दऽ ऽद्रऽि सुग् ङुऽि छोगस्.
ऽदिस्. ञल्. व. मेद् ॥
लुस् चन्. नंम्स्. ल. ये. शेस्. व्दुद्. चि. स्कल्. व. म. व्गोस्. मि नुस्
पस्.[६] । गङ गिग्. व्दग्. गिस्. स्व्यद्. प. दे. नि. योङस् सु ग्दुङ. व. छे ॥

११. व्लो. यि युल् मिन् देस् न गङ गि स्प्योद्. युल् मिन् ।
ग्शि. यि. ग्तम् ग्यि. रिम् प व्ल मस् ग्सुङस्. प रिङ ॥
दे. यि. रिम्. पस् स्ञिङ. जें ल सोग्स्. योन्. तन् दग् ॥
दद्. ल्दन्. नंम्स्. ल. स्ञिङ गि. ग्नस्. सु. रङ ञिद्. स्क्य ॥

126a १२. ङ्डोस्. पो. ऽदि कुन् ग्चिग्. प दङ ।
ङ. मऽि. रङ. व्शिन्. छ. व्रल्. ते ॥
ऽदि. नि. शेन्.पऽि. स्व्योर् व्रल्. वस् ।
चोंलि. वऽि. नंल्. ऽव्योर्. नंम् पर्. ऽग्युर् ॥

१३. स्पु. लङस्. म्यु. गुऽि. छोगस्. क्यिस् रव्. द्गऽ. यि ।
म्छिम्स्. मिग्. गङ. ज. म. वक्रुस्. नस् सु[१] ॥
छेस्. व्स्तन्. गुस्. पऽि. खुर् ग्यिस्. म्गो. ऽजिन्. नि ।
द्पल्. व्सम्. व्ल. म. दम्. ल. ऽदुद्. दो ॥

१४. ग्सल्. वर्. स्प्यि. वोर् लग् स्डर्. चुङ. सद्. व्य़ेद् ।
रव्. द्गऽ. व्चस्. पस्. नोर्. ऽजिन् यन्.लग्. ऽस्युङ ॥

मध्यान्ह रश्मि सा समूह से त्रिभूमिक कोठरी के तमका नाशक,
(उस) मूढ(ता) विरोधी को विनयसहित नमस्कार ।।

९. यह गुरुचरणरज थोडी स्मृति, गुणप्रपच परिभूत श्रीमान् ।
असुखी भी उत्तम सुखे यदि सिद्ध,(तो) इससे अन्य साध्य नही ।।

१०. मै गुरुचरणरेणुमे भक्तिमान् जरामरण औ,
रोग-दुख के नानावाण-शल्यसमूह से अशान्त ।।
शरीरियों को ज्ञान-अमृत भागी न (कर) सके,
जो मैने आचरा सो महापरिदाह ।।

११. बुद्धि का विषय नही वह, जिसका गोचरविषय नही,
मूलकथा का क्रम गुरु-कथित दीर्घ।
उसके क्रमसे करुणा इत्यादि गुण,
भक्तिमान् के हृदयस्थान में स्वयं उपजै ।।

१२. यह सारी वस्तु अकेली औ, अनेकस्वभाव अंशरहित है ।
यह व्यसनयोगरहित अभ्यासी योगी होइ विकारी ।।

१३. रोमांच अकुरसमूहसे बहुआनन्दित, निर्झरे जो रोम धोवै ।
अति शासनभक्ति के भारसे (नमित)कन्धा, श्रीचेतन सद्‌गुरुको नमस्कार ।।

१४. उज्जवल मुर्धा में पहिले थोडा हाथ कर, प्रमोदसहित वसुधा को अंग लगा ।

यङ. दग्. गुगु. पऽि. स्कुद्. पस्. यिद्. क्यि. मे. तोग्. नि ।
म्दुद्. पर्.[2] व्ग्युस् पऽि. व्दग्. गि. फ्रेङ. व.ऽदि. व्शेस् शिग् ॥

१५ म्गोन्. पो. ख्योद्. क्यि. व्कऽ ग्नद् ञ्ङ. ऽदुस् शेस्. रब्. नि ।
ग्यॆल्. पोऽि. बु. मो. छ. लस्. म्खस्. ऽद्र. द्वङ. दु. ब्येद् ॥
ऽग्रो. व. नॆम्स्. क्यि. रङ व्शिन्. रोल्. पऽि. रो. यि. व्दे व. नि ।
ऽवऽ. शिग्. जॆस्. स्. म्योङ. व. दे. नि. यिद्. ग्चिग्.[3] व्सोद्. नम्. चन् ॥

१६. लङ. छोऽि. स्त्रिङ. जॆस् व्र्लन्. पस् ख्योद्. क्यिस्. स्ङो. न्. मॆद्. लम्
ग्सङ्स्. प ।
ऽग्रो. व व्ग्रोद् व्य. मेद् दङ ऽग्रो मेद्. चॆस्. व्य ङो म्छर्. छे ॥
गङ. दु. गोम् प. वोर्. व. चम् ग्यिस् म्ञाम् मेद् व्द. वऽि. ग्युन्. व्चस्.
गङ. छे स्त्रिद्. दङ. शि. व. चुङ सद्. थ[4] दद्. म म्थोङ. ङो ॥

र्नल्.ऽव्योर्. ग्यि. द्वङ. पयुग्. द्पल्. स. र. ह. छेन्. पोस् म्जद्. प. व्दग्. विदन्.
ग्यिस् व्र्लब्. प ग्रुब्. प. जोंग्स्. सो ॥

पण्. डि.त. छेन्: पो प. ज्ञा. न्त. भ. द्रऽि. शल् स्ङ. नस्. दङ, बोद्. क्यि. लो.
च्. ब. र्म. बन्. छोस्. ऽबर्. ग्यिस्. व्स्युर्. चिङ. श_स. ते. गतन्.[5] ल. फब्. पऽो ॥

तृतीय सम्यक् सूत्रसे मनके पुष्प को,
गूँथ मेरी यह माला ग्रहण करो ।।

१५. नाथ तुम्हारी आशा अल्प समये प्रज्ञा,
राजकन्या-अंश चतुर-सम स्ववश करै ।
जगतीके स्वभाव ललित-रस का सुख,
केवल अनुभवै सो एकमना पुण्यवान् ।।

१६. तरुण करुणा से आर्द्र तुमने अपूर्व मार्ग बताया,
जग अपथ नही औ अगम नही इति महाआश्चर्य ।
जहाँ पद त्याग मात्रसे (होइ) विषम सुखसन्तान सहित,
जब भव औ शान्ति में कुछ भेद न दीखै ।।

।। इति योगीश्वर श्रीमहासरह-कृत स्वाधिस्ठानक्रम साधन समाप्त ।।
।। महापडित प्रशान्तभद्र के श्रीमुख से भोट के लो.च्.व[1]. र्म. वन्. ।।
छोस्. वर् द्वारा अनुवादित पूछ कर निर्णीत ।।

---

१. लोकचक्षु = अनुवादक

१२. तत्त्वोपदेशशिखर दोहागीति

(भोट और हिन्दी)

१२. दे.खो.न.ञिद्.किय. मन्.ङग्. चें. मो. दो. हऽि. ग्लु.*

(भोट)

ऽफग्स्.प. ऽजम् द्पल्. ल. फयग् ऽछल् लो. ।

१. म ग्यो स्कु. ग्सुङ. थुग्स्. किय. रङ.[१] व्शिन्. ल. ।।
दो. जें. चें. मो चिग् चिर् ग्लु. ब्लङस्. दोन्. ।
गङ. छे. ल्हन्. चिग्. स्क्येस्. प. दग् ।
गो. व द्गु. यिस्. तोंग्स्. पर् व्य।।

२. ग्युं म्छन् ग्शल् व्य. ल सोग्स्. मेद् ।
द्ङोस्.पो.नंम्स्. किय. खो. न. ञिद् ।

12bb द्गग्. दङ. स्गुब् प. मेद्.प स्ते. ।
द्व्य. व ल. सोग्स्. मेद्. पर्.[७] व्शद् ।।

३. मि. म्थुन् फ्योग्स्. नंम्स्. ग्ञेन्. पो. मेद्. ।
ऽछल् पऽि. छुल्. खिम्स्. सेर् स्न. दङ ।।
ले.लो.खोङ.ख्रो. नंम्.पर्.ग्येङ. ।
म. रिग् स्पङ. व्य. ल. सोग्स्. दङ. ।।

४. स्पोङ. व्येद्. फरोल्. फियन्. प. मेद्. ।
द्ङोस्. कुन्. मेद्. पर्. व्शद्. प. स्ते. ।।
तोंग्. मेद्. स्ञम्. सेम्स्. कुन्.[१] दङ. व्रल्. ।
ऽखोर्.व.लस्. ग्शन्. फ्यग्.र्ग्य. छे. ।।

५. ग्चिग्. क्यङ. पोग्. पर्. म. व्शद्. गङ. ।
दे. ञिद्. जोंग्स्. पऽि. सङस्. ग्यंस्. लम्. ।।

---

*स्तन् ऽग्युर् ,र्ग्युद्, शि, पृष्ठ १२६ क४–१२७ ख १.

१२. तत्त्वोपदेशशिखर दोहागीति

(हिन्दी)

नम आर्यमंजुश्रियै ।

१. अचल कायवाक्चित्त-स्वभाव, वज्रशिखर सद्य. गीत गाने के अर्थ ।
जब सहज शुद्ध, नौ से अवबोध करै ।।

२ कारण लक्षण प्रमेय इत्यादि नही, (यही) वस्तुओ का तत्त्व ।
बाधन औ साधन नही है, भेद इत्यादि का अभाव कहो ।।

३. प्रतिपक्षो का बन्धु कुछ नही, औ दु शीलता पीत-प्रतिभास ।
आलस्य प्रतिहिंसा विद्वेष, औ अविद्या प्रहाण इत्यादि ।।

४ प्रहाणपारमिता नही, (क्योकि) सर्व वस्तु का अभाव कहा है ।
निर्विकल्प सर्व समचित्त से रहित, संसार से अन्य (है) महामुद्रा ।।

५ एक भी धप(?) जो न कहना, सोई सबुद्ध का मार्ग ।

ऽदोद्. योन्. ल.सोग्स्. म. स्मद्. पस्. ।
ऽन्नस्. वु. रे. व. मेद्. प. स्ते.[2] ॥

६. स्कु.ग्सुम्. लम्.ग्यि. ङो.वो. गङ. ।
चि. फ्यिर्. ग्े. न. मि. र्तोग्. स्ते. ॥
खो. न. ञिद्. नि. जि. ल्तर्. र्तोग्स्. ।
ग्शन्. ल, मि. रे. गङ. गिस्. पर्. ॥

७, रिन्. छेन्. ग्तेर्. दङ. र्ग्यल्. पोऽि. द्कोर् ।
फल्. प. यि. नि. वङ. म्जोद्, व्शिन्. ॥
म्छोग्. तु. ग्चेस्. प. रङ. ल. ग्नस्. ।
सेम्स्. लस् म. ग्तोग्स्. फ्यि. रोल्. दोन्. ॥

८. ग्चिग्. क्यङ. योद्. प. म. व्गद्. दे[3] . ।
सेम्स्. ञिद्. कुन्. दु. ऽोद्. ग्सल्. वऽो. ॥
दे. वस्. सेम्स्. लस्. ग्शन्. पऽि. छोस्. ।
यङ. दग्. पर्. नि. व्र्तग्स्. न. मेद्. ॥

९. द्ङोस्. कुन्. सुङ. ऽजुग्. रङ.व्शिन्. ल. ।
स्क्ये. वऽि. रङ. व्शिन्. योद्. म. यिन्. ॥
ङो. वो. म. स्क्येस्. र.तोङ. प. गङ. ।
ग्शन्. योद्. प. म. यिन्. ते.[4]।

१०. ग्ञिस्. दङ. योद्. मेद्. थ. स्ञद्. व्रल्. ॥
ग्चिग्. दङ. दु.म. ल. सोग्स्. क्यिस्. ।
व्र्तग्स्. त. मेद्. प. म. यिन्. ते. ।
योद्. प. म. यिन्. मेद्. म. यिन्. ॥

११. रिग्स्.पस्. ऽग्रुव्.प. म.यिन्. नो ।
द्ङोस्. पोर्. स्नङ.वऽि. छोस्. र्नम्स्. कुन् ॥
ङो.वो. ञिद्.लस्. म.ऽदस्. ते. ।
र्ग्य. म्छोङ.[5] सुग्स्. व्र्ञन्. मे. लोङ. व्शिन्. ॥

इच्छा गुण इत्यादि ना निन्दै, है फल (की) आशा नही ।।

६. त्रिकाय मार्ग का स्वभाव जो, क्यो आसक्त विना समझै ।
तत्त्व जिमि समझै, अन्यत्र ना आशा जिससे अन्तराल मे ।।

७. रत्ननिधि औ राज-धन, प्राकृत (जन) का मंजूषाकोश जिमि ।
उत्तम प्रिय अपने मे बसै, चित्त से अन्यत्र बाह्य अर्थ, ।।

८. एक भी है (यह) ना कह, चित्त ही सर्वत्र आभासै ।
तत चित्त से अन्य धर्म को, सम्यक्[1] निरूपण ना करै ।।

९. सर्व युग वस्तु उतरै स्वभावमे, उत्पत्ति का नही स्वभाव है ।
भाव[2] ना उपजै जो (है) शून्य, अन्य सत्ता है नही ।।

१०. द्वैत औ अभाव (है) व्यवहार-रहित, एक औ अनेक इत्यादि से ।
निरूपण (हो) तो अभाव नही, भाव नही अभाव नही है ।।

११. युक्ति से सिद्ध नही है, वस्तु के तौर पर प्रतिभासी सारे धर्म ।।
भाव ही से न (है) परे, सागर प्रतिविंव दर्पण मे जिमि ।।

---

१. भला, ठीक २. वस्तु

१२. ब्रन् मेद्. द्म्यिङस्. नस्. कुन्. ऽब्युङ वस्. ।
रङ. ब्शिन् ञिद् दु. दुस्. देर्. रिग्. ॥
ग्ञिस्.मेद् ग्ञिस्. सु. मेद्. मिन्. पस्. ।
म. ऽदस्. द्ब्येर्.मेद्. रो.ग्चिग्. ल. ॥

१३. ग्चिग्. तु. ग्शग्. पर्. व्य. वऽङ. मेद्. ।
दृङस्. म. दे. ञिद् म. बूस्लद्. पऽि.[6] ॥
खो. न. ञिद्. क्यिस्. गर्. म. ग्योस्. ।
खो. न. ञिद्. क्यि. शेस्. प. ल. ॥

१४. ऽजिन्. प. मेद्. दे. ङो. वो. व्रल् ।
चिर्. यङ. मि. ऽजिन्. छोस्. क्यि. स्कु ॥
ङो. वो. ञिद्. ल. द्व्य. व. मेद् ।
ऽजिन्. पऽि. छु. नम्. वूर्तंग्स्. प. गङ ॥

१५. स्क्ये.मेद्. द्ब्यिङस्. क्यि. रङ. ब्शिन्. ल ।
सङ. दु. ऽजुग्. पस्. थ. मि. दद्[7] ॥
127a स्त्रो. स्कुर्. ब्रल्. वस्. ग्ञुग्. मर्. ब्शद् ।
ग्शल्. यस्. खङ. दङ. म्छन्. द्पे. दङ ॥

१६. स्न. छोग्स्. स्प्रुल्. स्कु. गङ. स्तोन्. प ।
ग्दुल्. व्य. लम्. ल. ग गुस्. पऽि. स्तोव्स् ॥
म्दऽ. ब्स्मुन्. ठग्. गिस्. गङ. स्म्रस्.प ।
ऽदि.ल. द्मिग्स्. सु. ब्रुल्. चम्. मेद्[1] ॥

१७. फ्यिन्. चि. लोग्. गि. स्क्ये. वो. ल ।
ञोन्.मोङस्. युल्. ग्यि. दुग्. ऽग्युर्. ते ॥
जि. ल्तर. स्नङ. वऽि. रिम्. प. यिस् ।
द्ब्येर्. मेद्. छ्ल्. दु ग्नस्. प. स्ने ॥

१८. ऽोद्. ग्सल्. व. ञिद्. नंम्. पर्. ब्गद् ।
रङ ब्शिन्. मेद्. पऽि. ङो.वो. ब्रल् ॥

१२. विस्मृति धातु से सर्वभू (होने) से, स्वभाव ही मे काल वहाँ विदित (है) ।
द्वैत नही अद्वैत नही, परे नही भेद नही एकरस मे ।।

१३. एक मे स्थापनीय नही, अच्छा सोई न कलुपित ।
तत्त्व से लोह ना हिलै, तत्त्व के ज्ञान मे ।।

१४ धारणा नही सो नि स्वभाव, क्यो ना धारै धर्मकाय ।
(स्व)भाव मे भेद नही, धारण-अश से निरूपित जो ।।

१५ अजात धातु के स्वभाव को, बधन मे उतरने से भेद नही ।
पक्ष प्रेषण विना निजहि कहै, कूटागार औ लक्षण इव[3] ।।

१६. नाना निर्माण-काय जो शास्ता, विनेय मार्ग में आरूढ वल ।
मैं सरह ने जो कहा, इसमें आलम्बन अणु मात्र नही ।।

१७ विपर्यास (वाले) पुरुपको, क्लेश-विप का विप होइ ।
जिमि प्रतिभास के क्रम से, अभेद स्वरूप मे रहै ।।

१८. आभास्वर ही वखानै, नि.स्वभाव (है) वस्तुरहित ।

---

३. दृष्टान्त

थ.दद्.म.यिन्.ग्ञिस्.सु.मेद् ।
खम्स्.[2] ग्सुम्.ब्लो.ऽदस्.ये.शेस्.ल. ।।

१९. ऽदि.शेस्.व्य वऽि. मिङ. ङम्. व्र्दे ।
म्दऽ व्स्मुन्. दम्. गिस्. ग्सुङ. दु मेद् ।।
द्व्येर्. मेद्. रो. ग्चिग्.म. र्तोग्स्. न ।
ग्ञिस्. सु. स्नङ. वऽि. छोस्. र्नम्स्. क्यिस् ।।

२०. गल्. ते व्स्कल्. पर्. ञेद्. मि. ऽग्युर् ।
म्छोग्. गि. गो. ऽफङ. मि[3] ऽथोव् स्ते ।।
खो न ञिद्.क्यि. रङ. व्शिन्. ल ।
द्गग्. दङ. स्ग्रुव्. प. ङङ गिस् व्रल् ।।

२१. ग्ञिस्. मेद्. ङङ. लस् म. ग्योस्. पस् ।
गङ ऽदिर्. यिद्. क्यि. ये. शेस्. नि ।।
ग्चिग्. क्यङ. व्रल्. व म. यिन् नो ।
ल्हन्. चिग्. स्क्येस्. गङ. व्दे. वऽि. रो ।।

२२. र्ग्युन्. मि. ऽछद्.पऽि. व्दग्. ञिद्. दे[4] ।
छु. वोऽि. र्ग्युन्. दङ. नम्. म्खऽ. व्शिन् ।।
मि. ऽग्युर्. दुस्. र्नमस्. कुन्. दु. ग्नस् ।
र्तोग्. पऽि. र्जेस् व्रङस्. म्छन्. मऽि व्लोस् ।।

२३. नम्.यङ.शेस्.प.म.यिन्.नो ।
व्सम्.मेद्.युल्.ल.व्र्तग्.तु.मेद् ।
युल्. मेद्. व्स्गोम्. पर्. ग. लस्. ऽग्युर् ।
व्स्गोम्. मेद्.[5] ञिद्. क्यङ. योद्. म. यिन् ।।

२४. द्पे.यि. दोन्.ल. गङ. द्रिस्.प ।
सङस्. र्ग्यस्. कुन्. ग्यि,. थुग्स्. लऽङ. म्ञम् ।।
व्रो. गर्. ग्लु. दङ. रोल्. मो. यिस् ।
फ्योग्स्. र्नम्स्. कुन्. दु. स्त्र.स्ग्रोग्स्. शिङ ।।

भेद नही द्वैत नही, तीन भुवन बुद्धि से परे ज्ञान में ।।

१९. इस ज्ञेय का नाम या संकेत, मुझ सरह को कहना नही ।
अभेद एकरस निर्विकल्प तो, द्वैतप्रतिभासी, (है) धर्मो से ।।

२०. यदि कल्प (भर) लाभ न होइ, उत्तम पद ना पावै ।
तत्त्व के स्वभाव मे, बाधन साधन साथ रहित ।।

२१. अद्वय संग से ना काँपै, जो यहाँ मन का ज्ञान ।
एक भी वियोग नही, सहज जो सुख का रस ।।

२२. अविच्छिन्न स्रोत अपने ही सो, नदी-स्रोत औ आकाश जिमि ।
अविकार सब कालो मे रहै, तर्क के अनुसारी निमित्त की वुद्धि से ।।

२३ कदापि ज्ञात नही, अचिन्त विषय मे तर्क नही ।
विषय-रहित भावना कहाँ से होइ, अभावना भी है नही ।।

२४. उपमा के अर्थ जो पूछै, सर्व वुद्ध के चित्त मे भी समान ।
नट नाटक गीत औ वाद्य से, सब दिशाओं मे निर्घोष (करै) ।।

२५. र्नल्. ऽब्योर्.मस्. नि. ग्योन्.नस्. व्स्कोर् ।
द्मिग्स्. ग्तङ. ब्रल्.वऽि. रङ.व्शिन्. ग्यिस् ।।
ऽवद्.प.मेद्. पर्. कुन्.दु. स्प्यद् ।
ग्ञिस्.सु.स्नङ.वऽि. र्तोग्. प. थम्स्. चद् व्चोम्. ग्युर् नस् ।।
व्जोद्. मेद्. र्नम्. मेद् ऽग्रस् वु. थोव्. ऽग्युर्. शोग् ।

र्नल्. ऽब्योर्. फ्यि. द्वङ. फ्युग् छेन् पो. द्पल् स. र. हऽि. शल्. नस्. ग्सुङ्स्. प, पयग्.र्ग्य.छेन् पो. दे.खो.न.ञिद् [7] चें.मो. दो. हऽि. ग्लु. शेस्. ब्य. व. र्जोग्स्. सो ।।
कृष्णपण्डितस्. रङ ऽग्युर्. दु. म्जद्. पऽो ।।

---

२५. योगिनी बाये से घूमै, ग्रहण-त्याग विनु स्वभाव से।
प्रयास विना सर्वत्र आचरै, द्वैत प्रतिभासी सब कल्पना मर्दित (होने) से।।
अवाच्य अप्रकार फल प्राप्त होइ।

।। इति महायोगीश्वर श्री सरहके श्रीमुख से भाषित 'महामुद्रातत्त्वोपदेशशिखर'
दोहागीति समाप्त ।।

कृष्ण पण्डित द्वारा स्वय अनुवादित ।

१३. वसन्ततिलक दोहागीति

(भोट और हिन्दी)

१३. द्प्यिद्.क्यि. थिग्.ले. दो. ह. म्ज़ोद. क्यि. ग्लु*

(भोट)

द्पल् हे.रु क.ल. फ्यग्.ऽछल्.लो ॥

१. से.भु स्कु.ग्सुम् ल.सोग्स.क्यि।
सोस् कऽि मे तोग्. म्थोङ.व.यि ॥
ग्शोन्.नु.ब्दग् [२] नि.म्योस् पर् ऽग्युर्।
हे. रु.क. ल छग्स् प. यिस् ॥

२. सोस् कऽि दङ पो. दङ. ऽदिर् (न)।
ख्योद्. क्यिस्. ब्दग्. नि व्सुङ. वर् म्जोद् ॥
ग्दुङ वस्. ऽगुम् पर्. म. म्जद् चिग्।
मे तोग्. अ. भ.क.रु.ण. ॥

३. द्रि.ब्सुङ. ल्दन्. पस् द्ग्येस् पर् ऽग्युर्।
श रिस्.पस् नि ब्दुंडस्.पस् ब्दुंडस् ॥
मे.मर्.खुर् नस्. च.ण्ड ली।
रि.मो. ब्दग्.ल. वब्. बो. ग्सेस् ॥

४. क.न.प नि ग्शेग्स्. पर्.रे।
सो गऽि दङ.पो. द्प्यिद्.दुस्.ल ॥
ख्योद् क्यिस् ब्दग्. नि. व्सुङ. बर् म्जोद्।
ग्दुङ वस्. ऽगुम् पर्. म म्जद् चिग् ॥

---

* स्तन्. ऽग्युर ग्र्युद्, छि, पृष्ठ ५ ख २–६

१३. वसन्ततिलक दोहागीति

(हिन्दी)

नम. श्रीहेरुकाय ।

१. सेभू त्रिकाय इत्यादि ग्रीष्म पुष्प देखनेवाला ।
तरुण पति मस्त होइ, हेरुक के राग से ॥

२. ग्रीष्म मे पहिले यहाँ, तू अपने को रक्षित कर ।
दाह से च्युति ना कर, पुष्प अभ करुणा ॥

३. प्रश्नभाणक मुदित होइ, सर्षप-कुटान कुटाया ।
आग घी ढो कर चंडाली, चित्र पति मे उतरी इति ॥

४. कँपा गया, ग्रीष्म के पहिले वसन्त काल मे ।
तू अपने को रक्षा कर, दाह से च्युति ना कर ॥

५. फ्योग्स् ब्चुर् ब्ल्तस्. न. ब्दग्.गिस्. नि ।
ख्योद्.लस् ग्शन् नि म्थोङ.व मेद् ॥
ग्दुङ.[४] वऽि. मो यिस् ब्दग्.गिस्. नि ।
ब्दग्.गि. लुस्. क्यङ. ब्सम्. प. मेद् ॥

६ र्नल् ऽब्योर्.म. बग्यॅद् लस्. ब्शि. नि ।
ब्दग्. चग्. ग्सोल्.ब. ब्तब्.प यिस् ॥
ब्चोम्. ल्दन्. ऽदस्. नि. ब्गऽस्. पर्. म्जद् ।

द्प्यिद्. क्यि थिग्. ले. दो. ह. मजोद्. क्यि.ग्लु. श्स्. ब्य. व. स्लोब्. द्पोन्. नग्. पो. नस्. बर्ग्युद्. प. स्लोब्. द्पोन्. स. र. हस्.[५] म्जद्. प. जोग्स् सो ॥

---

५. दश दिशि देखे अपने ही, तुझसे अन्य दीखै नही ।
दाहिका ने अपने ही, स्वकाया की भी चिन्ता नही ॥

६. आठ योगिनियों मे से चार, हमने प्रार्थना की,
भगवान् उत्थान करो ॥

॥ इति आचार्य कृष्ण-परंपरा से 'वसन्ततिलक' दोहाकोशगीति आचार्य सरह कृत समाप्त ॥

१४. महामुद्रोपदेश वज्रगुह्यगीति

(भोट और हिन्दी)

१४. फ्यग्.ग्यं.छेन्. पोऽि. मन्. ङग्. दों. जैऽि ग्लु

(भोट)

व्‌चोम् ल्दन्.[७] ऽदस्. गेस्. रब्. क्यि. फ. रोल् दु. फियन्. प. ल. फ्यग् ऽछल्. लो।

१. क्ये. हो. ग्यंल्. पोऽि. रिग्स्. ग्युंद्. ब्रु यिस्. ऽजिन् ग्युर्. ग्यि।
गसेर् ग्युर् चि. यि. रिग्. ब्येद् ऽछद्. गिस्. तोंग्स् ।।
ग्यं. म्छोऽि. लम्. ग्युंस् रिग् ल्दन्. देद्. द्पोन्. म्खस् ।
ख्रि. स्क्ान्. ,मिग्.गिस्. नोर्[१] बुऽि. नुस्. प.ल्त ।।

२. रि लु. ग्रुब्.पस्. ब्रम् सेऽि. ब्य ब. जोंग्स् ।
गङ्स्. लस्. बब्. पऽि. छु. ल. द्रिम. मेद् ।
मु. द्र. लस्. ब्तोन्. ग्सुग्स्. नंम्स्. थ.मि.दद् ।
ग्सेर्. ल. द्ङुल्. ग्यि. र. मेद्. स. ले स्त्रम् ।।

३. म्खन्. ब्सोस्. म. ब्यस्. ब्से रु. ग्शग्स्. पऽि ग्सुग्स् ।
जिङ्स्. क्यि थग्. प.[२] लु.गु ग्युंद्. दु. स्त्रल् ।।
म ग. ध प. द्कोर्. म्जोद् बु ल. ज्वोग्स् ।
म्दऽ. ब्दग्. छिग् ल. ब्चुन्. मो. सुर्. मि ग्यो ।।

४. म्छङ. गेस्. द्कऽ. ब. म. यिन्. स्यु.मऽि. ऽफुल् ।
स्त्रद् गोंद्. ऽथुङ्स् पऽि. नुस्. पस् युन्. मि. थोग्स् ।।
क. ऽजि मि. द्गोस् रङ.गिस्. ब्सग्स् पऽि ग्सेर् ।
द्मुस्. लोङ. मिग्.[३] फ्ये. युल् नंम्स् रङ. ङोस्. सिन् ।।

---

* स्तन् ग्युर्. ग्युंद्. छि, पृष्ठ ५५ क७–६२ क ५

१४. महामुद्रोपदेश वज्रगीति

(हिन्दी)

नमो भगवत्यै प्रज्ञापारमितायै ।

१ अहो राजवशिक पुत्र से गृहीत, सुवर्णभूत औषधि-भेद अन्तर समझै ।
सागरपथ पता जानै सार्थवाह चतुर,
दश-सहस्र-कलनेत्र से मणिसामर्थ्य जिमि ।

२. गुटिका-सिद्ध ब्राह्मण की क्रिया समाप्त हिम-स्रवित जल से मल नही ।
मुद्रा से निर्गत रूपो का भेद नही, सोने मे रजत का छाग नही सुवर्णपिड[1] ।।

३. पडित-ग्रास न हुआ गैडे का पाटित रूप,
वापी की रज्जु मेष-सन्तान मे सर्प ।
मागध धनकोश वालक का प्रावरण[2], वाणपति शब्द मे गानी कोण न चलै ।।

४. ब्रह्मज्ञान कठिन है ना माया, मधुमत्त पान मे समर्थ काल (है) अव्याहत ।
पट न चाहिए अपना सचित सुवर्ण,
जन्माध नेत्र के बाहर विषयो को गहे निज धाम ।।

---

१. स्वम् २ दुशाला

५. रिन्.छेन्. ग्सेर्.गिय स्कुद्. प. खद्. श ुल्. ऽग्रिम् ।
गि्लङ. लस्. स्क्योल्. वऽि. देद्. द्पोन्. थे. छ्योम्. ब्रल् ।।
द्रङ. स्रोङ. गिस्. नि. ग्सो.रिग्. म्छद्.र्नम्स्. गो ।
स्.ल. व. म्थोङ. वऽि. रि. वोङ. स्न्ोम्स्. लस् ग्रोल् ।।

६. लम्. नोर्. ङो. श ेस्. दे दुस्. ग्ञिद्. दु. ल्दोग् ।
ग. बुर्. नुस्. प.[४] छद्. पऽि. स्तेङ. दु. ग्युंग् ।।
नोर्. बु. लुस्. ल. व्तग्स्. न. ऽदु . ब. ऽब्युङ ।
ल्तो. ग्रोस्. द्रि. छोर्. म्तिग्. ल. ऽब्रोस् ।।

७ फ्युग्स्. ब्दग् म्थोङ. वस् उ. म्चोद्. प. न. ब्स्रोल् ।
र्मं ब्यऽि फ्रुगु. दङ.पोऽि छङ. मि. ऽदोद् ।।
देद्. द्पोन्. गि्लङ लोन्. नोर्. ल. शे. मि. ग्दुङ ।
ऽङेऽ. बोऽि. ब्र्चे ग्दुङ. ग्रोग्स्. क्यिस्. ब्स्लुस्. छे. शिग्[५] ।।

८. ङल्. वर्. मि. ऽदुग्. ग्सेर् छोन्. ञोद्. पऽि मि ।
देद् द्पोन्. र्गन् पोऽि गि्लङ. दोन्. ग्शन् ग्यिस् फ्येद् ।।
सुर्. म मिग् नस् ब्तोन् पऽि. ञाग् थग्. म्ञोन् ।
र्बं. लस्. ऽब्योल् बऽि. ग्रु. प. यन्. लग्. ब्रेल् ।।

९. नोर्. वुऽि. ऽोद्. ल. र्लुद् गिस्. ग्नोद् मि ऽग्युर् ।
नग्स् ल. ग्नस् पऽि. ग्लङ. पो. रङ.द्वङ थोब् ।।
ऽछि 'वऽि दुस् देर् र्ग्यल्. स्रिद् चुङ शिग्. बय् ।
ग्दन् सेर् ब्युङ.वऽि. ल्ह स्रस्. र्ग्यल्.स. थोब् ।।

१०. द्रि म. दग्. पऽि. ग्सेर्. बुम्. गङ. न. म्जेस् ।
खोङ ग्सेर्. ब्रल् वऽि. देद् द्पोन्.ल ल्तोस्. दङ ।।
गर् छद्. ऽथुङस्. पऽि ग्यद्. क्यि. यङ. स्तोर्.व ।
र्लेम्. सेम्स्. मि. स्क्ये. र्ग्यल्. ङोशेस् पऽि: मि ।।

56b ११. दद् प. र्क्येन्. ग्यिस्. ब्स्कुल्. बु. शिऽि. म ।
ख्रि. मोन्. नङ. दु. ग्सेर्. स्प्रोग्. चि. शिग्. ब्य ।।

५. महार्घ सुवर्णसूत्र सूई के छिद्र मे पिरो, द्वीप से चलित सार्थवाह सन्देहरहित।
ऋषि कुटिल चिकित्सा विद्या जानै, चन्द्र मे दीखता शश अतुल ।।

६. भूले मार्ग का परिचित उसी समय लौटै, कपूरकी सामर्थ्य ज्वर के ऊपर दौड़ै,।
मणि काया पर फेके तो धुआँ उपजै, भक्षित कटक गंध की ओर दौड़ै ।।

७. पुशुपति के देखने से उमा विवाद रोपै, मयूरशावक प्रथम मद्य ना चाहै ।
सार्थवाह द्वीप के धन की आसक्ति से अपीडित ।
पूर्व दया पीडित साथी से वचन काले लुप्त ।।

८ थका नहीं सुवर्णवर्ण लाभी पुरुष,
बूढे सार्थवाह के द्वीप के अर्थ अन्य ने आधा (किया) ।
मृदु कटाक्ष से निर्गत एक रस्सी कोमल, तटसे भागते नाविक के अगको बाधै ।

९. मणिप्रभा पवन से बाधित ना होइ, वन का वासी गज स्वच्छंदता पावै ।
मरणकाले तह राज्य अल्प करै, पीठभूमि उत्पन्न देवपुत्र राजधानी पावै ।।

१०. शुद्ध सुगंधी सुवर्णकलश जहँ सोहै,
औ सो सुवर्णहीन सार्थवाह को दीखै ।
नृत्य मद्यपान के ओज मे पुनः भ्रमै,
अजात पत्र चित्त राजपरिचित पुरुष ।।

११. श्रद्धा कारण प्रेरित मृत-पुत्र की मा,
राजकिरात[1] के भीतर सुवर्ण घोपणा कैसे करै ।

---

१. खि.मोन्=सिंहासनीय किरात

ग्सिङ्स् क्यि. स्तेङ. दु ठेद्. द्पोन्. मिग्. ब्म्. ग्चेस् ।
ग्लिङ लस्. ब्लङ्स् पऽि. नोर् बु ग्चेस्. स्प्रस्. थोब् ॥
१२. ग्सिङ्स्. क्यि ब्सो छुर्. ठेद् द्पोन् गोल्.मि थेब्स्. ।
छ. ग्रङ. ग्ञिस्.क सेल्. ब. सेङ गेऽि स्कु ॥
ब्सऽ. ब्तुङ. मि द्रन्. द्गुन्.[१] छु. ऽथुङ्स् पऽि स्तुद् ।
सो ब्तङ. बुम्. पर्. ग्सेर्. ग्यि स्नोद्. ग्यङ ब्तुब् ॥
१३ रि. ब्रग्स्. वर्. ग्यि. सेङ गे. द्रुल. मि. स्नाग् ।
स्यु. म्छोग्. योङ म्खन्. गिङ. गि. म्थऽ. मि. म्योङ ॥
ग्चिग् पुर्. ग्नस्. पऽि. ब्से.रु स्दुग्. ब्स्ङल् ब्रल् ।
ब्रङ. त्रोङ ग्यॆल्. म्छन्. म्गोन्. ब्स्नङ स्नोम्.प. मेद् ॥
१४ ऽग्रो वर् म्छद् ग्लिङ.[२] लस्. वोद्. प. मि. ऽग्युर् ।
ङ.ोङ. ल ब्र्चें. वऽि स्प्रेऽु. स्ङिाङ रे. जें ॥
ऽन्द् ग्गोग्. ग्र्यस्.पऽि. फ्रुगु. नद्. नस्. ऽफुर् ।
स्क्युग्. नद्.चन्. देस्. सुस्. क्यि. ऽख्रि. व. छोद् ॥
१५. रब्. पु. ब्युङ छे. द्मन्. प. ऽदोर् ।
रि. दग्स्. नद्. प. ब्यु. नस्. ऽगर्. न. ब्दे ॥
रिग्स्.ङन्. बु.मोस्. ऽजे. स्नोग्. स्पङ्स्. नस्. ऽदुग् ।
दुर्. खुङ. मि. ल. म्ज़ऽ. बोस् चि. गिग्.[३] ब्य ॥
१६. रब्. गुब्. म. ब्चस् द्पऽ वोस् ग्युल्. मि. ल्दोग् ।
ल्जोन्. शिङ. ग्रिब्. ल. दुब्. पऽि. सेम्स्. ङल्. सोस् ॥
र्ग्यन्. ग्यिस्. स्प्रस्.पऽि. ब्चुन्. मोस्. ग्गन्. यिद्. ऽफ्रोग् ।
ऽदोद्. द्गुऽि. ऽब्युङ. ग्नस्. रिन्. छेन्. ग्तेर्. ग्यि. स्गोम् ॥
१७ थब्स्. ल. मि. रे. ऽज्ञ. ल. ऽव्र्. वऽि. नद् ।
द्पोन्. ल. मि. ब्र्तेन्. रिग्. ब्येद्.[४] छुर्. वऽि. मि ॥
रङ. गि. म्येब्. म्जुब्. ग्शन्. ग्यि. लग्. प. मिन् ।
गर्. यङ ब्दे. ब. लङ. छो. ग्यॆस्. पऽि. लुस् ॥

पोत के ऊपर सार्थवाह नेत्र-प्रिय,
द्वीप से उठी प्रिय उज्जवल मणि पावै ॥

१२. पोत निर्माण समाप्त सार्थवाह फलक न गिरै,
शीत-उष्ण दोनो नाशक सिह-काया ।

खान-पान विस्मृत हेमन्त-जल-पायी सर्प,
दात लगा कलश के सुवर्ण-पात्र को भी काटे ॥

१३. शैल के सिंहचन्द्र ना बाघ, वृषभ देखे क्षेत्र का अन्त न देखै ।
अकेले बैठा गैंडा निर्द्वन्द, कपिध्वज नाथ राखै ना वधै ॥

१४ गमन टूटा द्वीप से ना पुकार, कंपन मे अनुकपा वानर की करुणा ।
महा पक्ष बच्चा रोग से उडै, वमन-रोगी भोजन कर खाट कटावै ॥

१५ प्रभव काले हीन त्यक्त, रोगी मृग वैल से नाचै सुखी ।
कुजाति कन्या नाच छोड बैठी,
श्मशान-रक्षक पुरुप को प्रिय से क्या करना ॥

१६ वहु निन्दा सहित वीर युद्ध से ना फिरै,
वृक्षछाया थके का चित्त-श्रम हरै ।
अलकृत रानी दूसरे का हृदय हरै,
नौ कामनाओ की आकर रत्ननिधि-मजूषा ॥

१७. चूल्हे को अग्नि-ज्वाला जलने की व्याधि,
स्वामीको अनाश्रित वेद समाप्त पुरुप ।
अपनी तर्जनी दूसरेके हाथ मे नही,
जहा भी सुख फुल्ल तरुण शरीर ॥

१८ म्थोङ वस् छोग्.प. चि. म्छोग्. ग्सेर् ऽग्युर् व्सो ।
ख्यिम् मि द्गऽ. व वु. मोऽि. ब्लो. मि ऽफोग्स् ।।
उ र्ग्यन्. दुर्. ख्रोद्. स्त्रिन्.मो ग्रोस्. पऽि स ।
थुब् पऽि व्श ग्स् म मि. नुब्. र्दो र्जेऽि ग्दन् ।।

१९ द्गोस् पऽि. र्ग्येन्. छोग्स् क. लिङ. कऽि ग्नस् ।
ग्यें. म्छोऽि. वस् म्थर् स्त्रल्. ग्यि दुग् मि. ऽब्युङ ।।
रिन् छेन् जोंद् ल ऽजिग्स्. पऽि यङ नि व्रल् ।
ग्यो स्ग्यु स्पङस् प म ग ध. पऽि. मि ।।

२० स्म्र वर् मि फोद् व्चुन्. मो व्स्नोल् ग्यि म्छङ ।
ग्दिङ ल डर् थोग्स् ग्चन् ग्सन्. सेङ. गेऽि. वु ।।
थुर्. ग्गोल्. लम्. दु शिङ. तं. ऽग्रो. वर्. ब्र्चोन् ।
मे ल चेऽि. वर् मेद्. बु. ग्चिग्. फ यि. म ।।

२१. ग्यं म्छोऽि. लम् व्ग्यंग्स् देद् द्पोन्. ञाम्स् ल. द्रिस् ।
ग्सो. रस् छर्. ब्स्रुङ ग्लिङ लोन् खोम् पर् ग्चेस् ।।
57*a*. ग्सिङस्. क्यि. छ र्ग्येन् देद् द्पोन् खो छग्स्. ब्येद् ।
युल्. ग्यि ऽखि्र व ञग्.[७] थग् व्चद् दुस् गिग् ।।

२२. ऽदोद् पऽि. र्लुङ. व्युङ देद् द्पोन् ब्लो. सेम्स् व्दे ।
ग्लिङ. दोन्. म. ग्रुब् देद्.द्पोन्. फ्यिर्. मि ल्दोग् ।।
ऽग्युर्. व. मेद्. प. ग्यंल्. पोस्. ग्सङस् पऽि. छिग् ।
स्त्रङ छङ. ऽवेव्स्. दुस्. यिद्. ल. गो. छ. व्येद् ।।

२३. गर् छङ. व्लुङ पो ऽछम् पऽि तंग्स् ।
मिग्[१] ग्सेर् म्थोङ वऽि. लस् मिस्. व्दे स्दुग् स्पङस् ।।
दर्. ग्यि. स्त्रिन् बु ख. छ. सग्स् पस्. फुङ ।
दे नि. ग्गन्.ग्यिस्. म लन् रङ लस् म्क्येस् ।।

२४. छङ ल ञेस्. स्क्योन्. योद् पद्. म यिन् नो ।
म. रिग्. स्तोव्स्. क्यिस् ख. छु मङ दु स्क्युग् ।।

१८. देखने से पर्याप्त उत्तम-औषध सुवर्ण शिल्प,
घरमें अप्रसन्न लडकी की वुद्धि ना हरै।
ओडियान श्मशान राक्षसी की क्रोधभूमि,
मुनिका निवास वज्रासन न अस्त (होइ) ।।

१९. प्रयोजन प्रत्यय-समूह कलिंग स्थान,
सागर के छोर पर सर्प-विष ना उपजै।
रत्नदुर्ग में भी निर्भय,
वलात्कार-त्याग मागध मानुष ।।

२०. कहने मे ना उत्सहै रानी वक्र गति,
आस्तरण मे मृणालधारी श्वापद सिह-शिशु।
निम्न-उन्नत मार्ग रथ गमन प्रयास,
अग्नि-शिखा निरन्तर एकपुत्र पिता माता ।।

२१ सागर मार्ग मत्त सार्थवाह विनाश पूछै,
उपल-वर्षा रक्षक द्वीप-गामी क्षण प्रिय।
पोत अश हेतु सार्थवाह सो पादुका करै,
विषय दीवा पीठ-रज्जु छेदते समय नष्ट ।।

२२ कामवायु होइ सार्थवाह वुद्धि चिन्तै सुख,
द्वीप-अर्थ ना साधि सार्थवाह वाहर ना लौटे।
ना वदलै राजा की कही वात,
मधुमद्य आवेग के समय मन का कवच वनै ।।

२३. नृत्य मद्य गायन नृत्य-चिह्न,
कामला-दृष्टि कर्मी सुखदुख छाडै।
रेशमकीट की च्युत-राल की राशि,
सो अन्य से ना ले अपने उपजावै ।।

२४. मद्य मे दोष पाप है नहीं,
अविद्या वश थूक वहुत वमन करै।

रङ. ञिद् फुङ. वर्. व्रस्. क्यिस्. गृगन् दु मिन् ।
ल्वगृस्. ञेग्.[2] म. गृजि. मे. छोगृस्. म. व्रुस्क्येद् ॥

२५. व्यर्. चि. ङो गेम्. छेद्. दु चे व गृलेन् ।
स्मिग्. गर्यु छुर् मृथोङ रि. दगृस् स्ञिङ. रे. जें ॥
थिग्. ले. म. यल्. गर्य खोल् दल् मि. ऽग्युर् ।
वेर्. क गृञिस्. फोग्. मि दे. त्रि रु. रङ ॥

२६. गृतेर्. ग्यि. व्दग्. पो. मि. रे. रिगृस्. ङन् वु ।
दुद् पस्. मि ऽजिगृस् चि मेद् स्त्रङ मऽि.[3] छङ ॥
ऽछि. व्दग्. ख रु मृछ ुङ. स्क्ये ऽग्रो. व गङ ।
लुस्. ल. ऽव्युङ. व. म ऽखृ गृम्. दो. जे. ग्रि. मि ॥

२७ मिङ नस् वोस्. पस् शि व ल्दोग् गम्. चि ।
मृथोङ स्नङ दृग्र. रु. ग्ेद्. प. दुग् स्त्रुल्. मिग् ॥
ख्योद् ल शिङ नोस्. गृनोद् प स्क्यल् व मेद् ।
ऋग् चऽि स्र. ल व्रुस् प. व्स्तन्. स्दुग् चिस् ॥

२८ मि लम्. गृतेर्.[4] ञोंद्. नद्. छे म्य ङन्. व्येद् ।
गृयोद खेङस्. लङस्. पऽि. स्प्यद्. कि. र. ल. मुंगृस् ॥
वगृम्. पऽि. रिगृस्. चन्. दृग्र. ल. वु. रु. ल्त ।
गृनोद्. प म्क्यल्. दुस् म्लर्. ल गृचेस्. पर् ऽजिन् ॥

२९ फन् लेन्. म. व्तगृस्. स्क्ये ऽग्रो नंमृस्.क्यिस्. मेद् ।
ख्यि. ख्रोस् दों. ल ऽछुऽ. व. स्ञिङ. जेंऽि युल् ॥
चृ व. मे. रुम् दु. वस् दुस्.[5] दु व. ऽछ्द् ।
मृथोङ. स्नङ. लोग् पऽि. गि दगृस्. व्दे. व. स्तोर् ॥

३० लुस् ल. रङ. द्वङ म. थोव्. स्दृग्. व्स्ङल्. व्र्तन् ।
छे. मृथऽ. रिङ.पस्. फुङ.व दृम्यल्. वऽि. लुस् ॥
ऽदि. ल. व्दे. वऽि. वर्. मृछम्स्. ऽदुग्. गस्. चि ।
म. वोन्. म. रुल्. न्य. ग्रो. लो. ऽत्रस्. गर्यु ॥

स्वय ही राशि अतिथि अन्यत्र नही,
लोहा तप्त भूमि आधार अग्निसमूह ना उपजावै ।।

२५. क्रिया औषधि परिचय हेतु खेलै अज्ञ,
मृग मायाजाल देखि अहो करुण ।
तिलक ना वड़ी शाखा मन्थर दास न होइ,
दो लाठी पातै सो आदमी क्यो उचित ।

२६. निधि-पति मानुष कुजाति-पुत्र,
धूप से ना डरै औपध विना मधु-मदिरा ।
यम-मुख से समुत्पन्न जो, देह जन्मा सिवाय डरै वज्र-पुरुष ।।

२७. नाम पुकारे (से) मृत लौटे क्या,
दृष्टि प्रतिभासी रिपु मे है बैठी सर्प-चक्षु ।
तुझे पत्र से बाधा प्लवन मे नही,
प्रतिध्वनि-शब्द फूक दिखावे प्रिय औषध ।।

२८. स्वप्न मे निधि लहि जागते समय शोक करै,
शठता मद से उठि सियार वकरे को काटै ।
आर्य रिपु को पुत्र (सा) देखै,
बाधा दीर्घ-काल मे पुन (वि-)चित्र धरै ।।

२९. हित-ग्रहण अलख ना जगवालो से,
क्रुद्ध कुक्कुर पत्थरको काटे(अहो) करुण विषय ।
तृण को अग्नि वीच मारते समय धुआँ फूटै,
मिथ्या-दृष्टि प्रतिभा से मृग सुख से भ्रमै ।।

३०. शरीर को स्वच्छन्द न पा दुख आलवै,
दीर्घ-जीवन-अन्त से व्यर्थ नरक शरीर ।
यहाँ सुख के भीतर सीमा हो तो क्या,
वीज विना सडे वट के फल का कारण ।।

३१. देद् द्पोन्. स्ञिङ ख्रग्. ऽथुङस् प स्कल् वर्.ल्द्न ।
थिग्स् प. व्सग्स् पऽि ग्यं म्छो ङो म्छर्. छे ॥
नम् म्खऽ म्थोङ वस् द्व्यिङस् क्यि. फ्योग्स्. ऽजिन्. शि ग् ।
युद्. चम्. म्थुद्.पस् व्स्कल् (प.) ऽजद्. पर् ल्तोस् ॥

३२ ग्युस् स्कुद् लम् स्त ऽख्रिद् प. फग् गोंद्. स्पु ।
ख्रि स्नान् पग्स् प म गोन्. ब्रङ.स्रोङ मिन् ॥
57b ग्रु व. प. यन्. लग्[7] ब्रेल्. व. रङ. गि. छेद् ।
दव्.ग्गोग् ग्यस्.छे छङ न दुग्. क्यङ म्खऽ ॥

३३ यिद् व्शिन्.नोर्.वुऽि. द्गोस् प गङ यिन्. ल्तोस् ।
मे तोग्. लस्. व्युङ. स्गङ. वु. दुस्. सु स्मिन् ॥
वुम् प व्सङ प. द्गोस् ऽदोद् ऽव्युङ वऽि. स्नोद् ।
मर्. ग्यि. ग्यु.नि ऽो. म यिन् पर् ङेस् ॥

३४. ञेद् पर् मि ऽग्युर्. सेर्. पो. दोर् वऽि ग्सेर् ।
ञि मऽि सेर्. ग्यिस्. मुन्. पऽि. ग्य रुम्. ऽजोम्स् ॥
ग्सेर्. दु. स्नङ. वऽि. द्ङुल्. छु ग्गन्. दु. मिन् ।
छु. ल. छु. व्गग् थ दद्. मि. स्नङ. ङो ॥

३५. मर् .ल मर् व्गग् दे. च्शिन्. ञिद्. दु. वस् ।
म्थऽ. थन्. न. र ग्ञिस्. सु. गङ. गिस्. ऽव्येद् ॥
ग्य मछोऽि. लेंडस्. प स्प्रिन्. ग्यि. ङो. वोर्. ग्चिग् ।
म्खऽ.[2] ल. ल्चग्स्. द्व्युग.गुल्. ल. व्यद्.पर्. मेद् ॥

३६. चि लेन्. प. यि. स्ग्रङ म. ल. ल्तोस्. दङ ।
ग्लङ. पोऽि. ग्यंव् खल्. ग्रोग्. मऽि. ल्तो. रु. ऽजद् ॥
ग्येल्. पोऽि स्कु द्रि. मस्. गङ छे. ऽगोस्. ऽगोस् ।
फ. रव्. ङुल्. ग्यि. नुस्. प. ङो. म्छर्. छे ॥

३७. म्खस् पऽि. व्सो नि. रिम्. प. व्शिन्. दु. छर् ।
थव्स्. ल्दन्. गिङ. प.[3] स्गिस्. स्नङ. म्छु. रु. व्स्रिङ ॥

३१. सार्थवाह हृदय-रक्त पीवै भाग्यवान्,
विन्दु से सचित सागर महाश्चर्य।
आकाश देखि स्वर-धातु-दिशा पकड,
क्षण मात्र कटे से कल्प-समाप्ति देख ॥

३२. कारण-सूत्रमार्ग नाक पकडना शूकर-रोमाच,
मृदु आस्तरण चर्म ना पहिने ऋषि नही।
नाविक अग-संबध स्वय हेतु,
वह पत्रछद समय पक्ति मे रहै आकाश।

३३ चिन्तामणि चाहै जो (उसे)
देख, फूल से उत्पन्न वाल समय पके।
भद्रघट प्रयोजन की इच्छा से उत्पन्न पात्र,
घीका का कारण दूध है निश्चय ॥

३४ लाभ न होवै पीन त्यक्त सुवर्ण,
सूर्यकिरण तमपुज नाशै।
सुवर्ण दीखना पारद अन्यत्र,
जल मे जलफेन भिन्न ना दीखै ॥

३५. घी मे घृत-फेन तैसे ही अतिथि, अन्त ग्राह (अन्) उचित जो द्वैत करै।
सागर-वाष्प मेघ का एक (स्व-) भाव,
आकाश लौहदड मार्ग मे निर्विशेष ॥

३६. औषध लेनेवाली (मधु-) मक्खी को देख औ,
गज पीठ पलान मे चीटी का पेट समाप्त॰।
राजा के शरीर को गध जव चाहिये,
परमाणु रेणु की शक्ति महा अद्भुत ॥

३७ चतुर का शिल्प (कर्म) यथाक्रम समापै,
उपाययुक्त किसान कुलभासी चचु, ओठ मे वटै।

ख्योद्. क्यिस्. युर्. ब. ऽगग्स् प. फ्यर्. सोल् चिग् ।
दुस्. पऽि. खम्. शिङ. ऽब्रस्. बु. ल. ल्तोस्. दङ ।।

३८. चन्दन्. स्दोङ. बो. स्प्रुल्. ग्यि. स्क्यब्स्. ग्नस्. स ।
छु. थिग्स्. ग्यं. म्छोर्. बोर्. ब. स्कम्. मि. ऽग्युर् ।।
ग्यंन्. नंम्स्. ऽब्युङ. ब. शुन्. स्व्यङस्. छर्. पऽि ग्सेर् ।
बु. छिस्.[4] मि. द्रन्. ग्यं. म्छोऽि. ग्रु. शिग्. मि ।।

३९. स्प्र. मि. स्ञान्. प. नोर्. ल. शि. मि. ग्दुङ ।
गलिङ. दोन्. मिग्. ञोर्. देद्.द्पोन्. चि. रु. रुङ ।।
सु. शिग्. ब्दे. ऽदोद्. ग्यंब्. क्यि. खुर्. छ. बोर् ।
द्मुस्. लोङ. फ्ये. बऽि. मि. ल. द्रिन्. ब्सो. रिग्स् ।।

४०. बं. ऽखोर्. फ्योग्स्. नस् ब्स्लोग्. पऽि. देद्. द्पोन्. ब्कुर् ।
मुन्. रुम्. नङ. दु. म्खऽ. ल. स्ल. ब. ग्चेस् ।।
ऽदम्. नस्. ऽदोन् पऽि. मि. ल. सु. शिग्. गोंल् ।
ग्लिङ. ब्लन्. देद्.द्पोन्. स्प्य. बोर्. लोङ. शिग्. दङ ।।

४१. शर्. नस्. न. बुन्. उत्पल्. छु. ल. मेद् ।
थद्. कर्. मि. ग्नस्. म्खऽ. ल. शर्. बऽि. ऽजऽ ।।
ङिङ. गि. छु नि. फिग्. पर्. ग्युर्. छे. ऽजद्. ।
छुनि. थुर्. ग्शोल्. ग्येन्. ल. ब्स्लोग्. मि.[6] ऽग्युर् ।।

४२. ग्रो. दोन्. मि. म्जद्. थुब् प चि. फ्यर्. ऽदऽ ।
स्मिग्. र्थुऽि. क्लुङ. ल. छु. यि. ऽदु. शेस् बोर् ।।
ब्देन्. प. म. यिन् मि लम्. ग्तेर्. ञोंद्. दुस् ।
ऽखुल्. ग्यि. बु. मो. ऽदि. ल. म छग्स्. शिग् ।।

४३. म्छङ. चन्. ग्शेद्. मस्. सिन् पऽि सेम्स्. दे. ल्तोस् ।
ग्सेर्. दङ. ग्रेस्. म. स्प्रेग्. गि. ङो. बोर्. म्ञाम्[7] ।।
58a म. स्रोस्. बु. रम्. म्थोङ. बस्. म्ङर्. मि. ऽग्युर् ।
म. द्क्रोग्स्. शो. यि. नङ. नस्. मर्. मि. ञोंद् ।।

तू थाला-बाँधने के लिये वाहर रख ?,

सामयिक जामुन वृक्ष फल को देख ।।

३८. चन्दन-वृक्ष सर्प का शरणस्थान,

जलविन्दु सागर से निकाले सूख ना जावै ।

भूपण-उत्पत्ति सदेह धातुनिप्ठ सुवर्ण,

पुत्रमरण विसरे भग्न सागरपोत मनुष्य ।।

३९. अमधुर शब्द के भ्रम मे ना चित्त जरे,

द्वीपार्थ अव्यवहार सार्थवाह कहाँ अभव्य ।

कौन सुखार्थी (सो) पीठ के महाभार को छाडै,

जन्मान्ध नष्ट मनुष्य पर दया उचित ।।

४० तट के आवर्त की दिशासे लौटे सार्थवाह,

तनगर्भ के भीतर आकाशे चन्द्र प्रिव ।

पक से वधे मनुष्य को कौन प्रेरित करै,

द्वीप से लौटे सार्थवाह शिर मे एक अन्ध ।।

४१. कुहरा उदय उत्पल-जल मे नही,

प्राकारे ना रहै आकाशे उदित चन्द्रधनुप ।

तडाग जल भेदन होते समय समाप्त,

जल-निम्न उभड ऊपर ना लौटे ।।

४२. जगहित न कर (सो) मुनि कैसे,

माया-नदी मे पानी की सज्ञा त्याग ।

सत्य नही स्वप्ननिधि लाभ के समय,

इस भ्रम की कन्या मे राग न करै ।।

४३. सुन्दर व्याध ने पकडा उस चित्त को देख,

कचन-रज्जु की साँकड मे स्वभाव (एक) समान ।

खाये विना गुड देखने से मीठा न होवै,

विना मथे दही के भीतर से मक्खन ना लहै ।।

४४. म. ऽथुङस् ग बुर्. छद्. प. सल्. लम्. चि ।
म्छोग्. गि. नोर्. वु. स्प वर् न्य व. मिन् ।।
र्दुम्. बोऽि. लग्. तु. स्त रेऽि. नुस्. प. स्तोर् ।
फोल्. ऽब्रस्. मॅल्. द्गोस्. पर्. म्थोङ ब सु[1] ।।

४५. छु. शिङ. सि्ञाङ. पो ञेद्. पऽि. मि दे. गङ ।
ग्सेर्. मेद्. प. यि. लस्. क द्गोस्. प. मेद् ।।
म्थोङ. व्शिन्. दु. नि. दोङ. दु. ऽग्रो. मि. रिग्स् ।
ङुग्. छु. ऽथुङ. ऽफ्रो ञाम्. छद् व्दे. मि ऽग्युर् ।।

४६. हु. ल. सोङ. वऽि. स्मन्. मर्. चि रु. रुङ ।
दुस्. दे. ञिद् दु. स्त्रङ छद् ऽथुङस्. पस् व्सि ।।
ऽग्रो. दुस्. फुङ. पो. ञि यि. ग्सन् लेन्[2] व्यस् ।
र्मोङस्. प. ञिन्. मोस्. चोद्. पन्. व्चिङस् ल द्गऽ ।।

४७. म्छिल् पस्. सिन् पस् ञ. यि व्दे व. स्तोर् ।
ऽछि. ऽदोद्. नद्. ल द्रङ स्रोङ. ङग् मि. ञान् ।।
दे नि. ग्नोद् पऽि. ख सस्. स्तेन्. ल. द्गऽ ।
फन्. पऽि स्मन्. ल ग्चेस्. पऽि ऽदु गेस्. वोर् ।।

४८ दु. व. व्स्क्येद् पऽि. स्प्योद्. लम्.छेद्. दु. व्येद् ।
स्मन्[3]. ल्. नुस् प. मिङ्.-चेस्. र्मो र्मोङस्. प.स्म्र ।।
मि. ग्रुव्. खस्. व्लङस्. ग्येल् पोऽि. व्कऽ छद्. ग्नस् ।
व गेल् र्जेस्. मि. सुङ. रङ. ल ग्नोद्. पर्. वस् ।।

४९ नोर्. वुऽि. नुस्. प थल्. वस्. व्यिव्स् छे. स्तोर् ।
सेङ.गेऽि. ऽो. म र्जे. यिन्. नङ दु. मिन् ।।
छद्. मेद्. दु वऽि. वुस् प. श रे छद् ।
व्स्तेन्. ऽफ्रो व्चद् पर्. मि.[4] रिग्स् फन्. पऽि. स्मन् ।।

५०. स्तोद्. लोग्. मि. व्य. रिन्. छेन्. ग्लिङ. गि. मि ।
गल्. दु. मि. रुङ. ऽखोर्. लोस् स्युर्. ग्येल्. ग्ञऽ ।।

४४. विना पीये कपूर ना ज्वर विनाशै,
उत्तम मणि को ना गोपन करै।
पागल के हाथ मे कुठार का बल न ठीक,
पुरुष के फल बर्तने का प्रयोजन देखै कौन॥

४५. केला के साथ का लाभ सोई आदमी कहै,
जो सोने के विना कर्म न चाहै।
देखते हुए जैसे गड्हे मे जाना नही ठीक,
विषजल पीकर साफ विच्छिन्न हो ना सुखी होई॥

४६ हल ? गति की औषधि घी क्या चाहिए,
उसी समय मधु के मद्य को पीने से मतवाला।
जाल स्वीकारै चलते समय स्कन्ध
मूढ यक्षिणी द्वारा मुकुट बाँधने में प्रसन्न॥

४७. बसी से पकड़ी मछली का सुख जाई,
मरण-इच्छुक रोगी ऋषि-वचन ना सुनै।
सोई हानिकर भोजन सेवन में प्रसन्न,
हित-औषध के प्रिय ज्ञान को त्यगै॥

४८ नाना वृद्धि की चर्या मार्ग का प्रयोजन करै,
औषध मे समर्थ नाम है, यह मूढ कहै।
असिद्ध स्वीकार कर राजाज्ञा तोड बैठे,
स्फटिक न अपने को अनुरक्षै हानिकारक॥

४९. मणि की शक्ति धूल से ढँके समय भ्रान्त,
सिह नी का दूध मिट्टी के वर्तन में न रहै।
निरन्तर धुआँ फेकना मास-छेदन,
स्पष्ट उपदेश तोडना ना हित-औषध॥

५०. झूठे शून्य ना करै रत्नदीप का मानव,
तैरने मे ना ठीक चक्र घुमाना राजचिह्न।

म्छुर्. मेद्. ग्सेर्. ग्यिस्. द्ङुल्. छु. ल्चग्स्. मि. ऽग्युर् ।
रङ. ञम्स्. म. लोन्. ग्यद्. ल. व्स्दो. मि. रिग्स् ॥

५१. व्रस्. वु स्मिन्. पस्. ग्ञुग्. मऽि. चें. व. व्र्लेग् ।
फ्युग्स्. थ्रदग्. लिङ.[5] म्छोद्. पऽि. द्रि. मस्. स्प्येर् ॥
स्ञुल्. पऽि. ग्र्यल्. पो. वङस्. क्यि ग्योग्. तु. गँस् ।
ङो. म्छर्. छे. व. ग्सेर् मछोग्. ग्सेर्. ऽग्यूर् चि ॥

५२. म्दोङ्स् ल. ल्त. वऽि मँ. व्य. गुद्. नस्. ऽछि ।
दुग्. गि. छु. नि. व्तुङ. वर्. व्य. व. मिन् ॥
ञम्. स छङ. गिस्. व्सि. व्चोस्. व्यस्. दुस्. लद् ।
मिग् गि रिन्. ल. चि. व्तुव्. सोम्स्.[6] दङ. क्ये ॥

५३. ग्युस्. मेद्. छोद्. ल्दोङ. लुस्. ल. वेर्. क. ऽफोग् ।
व्सो. यि रिग्. व्येद्. छोङ. ल. ग्शुग्. प. मिन् ॥
स्तग्. गि रि. मो. व्क्रव्स्. ग्योद्. लग्. तु. गस् ।
लुस्. ल. लुंङ म्खिस्. फ्यि. नस्. शुग्स्. प मिन् ॥

58*b* ५४ चर्ल्. ग्सुम्. जोंग्स्. पस् फुङ व सेङ गेऽि. लुस् ।
दोम्. ग्यि. स्दुग्. व्स्डल्. स्व्रङ चि ञोंद्. दुस्[7] व्लङ ॥
छो.ङ दुस्. द्वुस्. सु. दोन्. स्तोर्. दोन्. मि ऽग्रुव् ।
व्से. रु. छोल् वऽि. मि दे. स्दुग्. व्स्डल् छे ॥

५५. ढोग्स्. पस्. न वऽि खोङ. न. दुग्. योद् मिन् ।
क्लु. म्छोग् म्गो. वो. दे ञिद् स्दुग्. व्स्ङल्. तेंन् ॥
द्रि. सऽि वु. नि. ग्र्युद् मङस् स्प्र यिस्. व्चिङ्स् ।
स्व्रङ. मऽि. छङ नि चि. मङ. सोग्. पस् फुङ ॥

५६. थर्. लम्.[1] ऽदोद्. पस्. ख्यि. यि. स्ञिङ. फ्युङ. चिग् ।
ल्चगस् क्यु. दङ. भ्रल्. ग्लङ पो. व्दे. वर्. ग्नस् ॥
ग्र्यल्. पोऽि. गव्स् तोग् वस्डो व्ग्रङस्. व्यस्. छे. यल् ।
व्ये. यि. फ्रु गुऽि. ग्चेस्. ऽजिन् द्गोस्. प. गङ ॥

सुवर्ण से पारा लोहा न होवै,
स्व-निधन विना विक्रम चाहना नहि ठीक ।।

५१. पका फल निज मूल मे लगा,
पशुपति द्वीप पूजा गन्ध से ले जावै ।
झगड़ू राजा के वस मे नौकर बूढा,
महाश्रद्भुत उत्तम सोना औषध होइ ।।

५२. मुख देखि मोर विपत्ति से मरे,
विष का जल पीने योग्य नहिं ।
ब्राह्मण मद्य से मतवाला होते समय,
नेत्र के मूल्य को क्या काटै रे ।।

५३. अकारण वैश्य देह पर दण्ड मारै,
शिल्प-वेद दूकान में न रहै ।
बाघ का चित्र मगल करता रक्खै,
देह मे खाना न खीच बाहर ना रहै ।।

५४. त्रिविक्रम निष्पन्न राशि सिह का देह,
भालू का दु ख मधुप्राप्ति के समय पावे ।
विक्रय के समय बीच मे अर्थ छाड़ि अर्थसिद्ध ना होई,
गैंडे की गवेपणा आदमी के लिए महादु ख ।।

५५. शंका-रोग के भीतर विष है नहीं,
उत्तम नाग सोई दु ख का आश्रय ।
गन्धर्वकुमार वंशी शब्द से बंधा,
मक्खी का मधु बड़ी औषध पयालपुंज ।।

५६. मुक्तिमार्ग की इच्छा से कुत्ते का हृदय,
अकुश विना गज सुख से रहै ।
राजसेवक गवेषणा करते समय,
पक्षिशावक का प्रिय चाहै जो ।।

५७. दृङ्गुल्. छु. स्नोद्. दु. सग्स्. पर्. ग्युर्. त. रे।
स्निन्. वु. मे. ख्येर्. ब्रेग्स्. पस्. ग्यल्. रिन्. मेद्॥
ने. छेऽि. फ्रु. गु. स्म्र. म.[2] शेस्. पस्. म्छद्।
स्न्रङ. छङ. म्थोङ. वऽि. दोम्. मिग्. म्खऽ. ल. ल्त॥

५८. दे. दुस्. सिम्. वुम्. म्योङ. स्दुग्. व्स्ङल्. ग्. यु।
ख. व्रग्. लम् दु. ग्युंस्. मेद्. मि. थे. छोम्॥
छु. क्लुङ. मु. रन्. स्दोङ. ग्रु. ज्ञल्. वऽि. स्ङस्।
स्न्रङ. चि. स्योस्. पस्. ङं. मोग्.योद्. ल. ग्तुग्स्॥

५९. वग्. मस्. ल्तद्. मो. म. म्थोङ. छोद्. दुस्. द्वुस्।
सोस्.[3] व्शिन्. व्स्तेन्. न. स्मन्. म्छोग्. दुग्. तु. ऽग्युर्॥
दोन्. ग्चिग्. मि. ऽग्रुब्. ग्ञिस्. ऽजिन्. चन्. ग्यि. ब्लो।
ख्यिम्. लस्. म. ऽफग्स्. देद्.द्पोन्. ग्लिङ. मि. लोन्॥

६०. व्तंग्. पऽि. म्छङ मेद्. नोर्. वु. द्व्यिग्. ल. व्दर्।
स्तोद्. ल. म्नन्. पऽि. स्प्रेऽु. कंङ. लग्. व्रेल्॥
नद्. ङोस्. म. सिन्. व्चोस्. क. खो. लोग्. व्स्युर्।
देद्.[4] द्पोन्. म्जोद्. म्थोङ. ख्यिम्. व्दग्. दंङ. ङो. ल्दङ॥

६१. सेङ. गेऽि. म्गो. ङो. म्युर्. ग्यि. फ्यर्. मि. ऽब्रङ।
म्खऽ. ल्दिङ. ग्शोग्. ज्रोग्स्. छङ. ल. मिग्. मि. ल्त॥
र्ल. वो. म्थोङ. दुस्. व्से. रु. गुद्. दु. गव्।
ग्रोङ. लस्. ग्रिङ्स्. पऽि. चे. र्प्यङ. लुस्. सेम्स्. व्दे॥

६२. द्ग्र. यि. स्दुग्. व्स्ङल्. व्रल्. व. ग्चेर्. वुऽि. लुस्[5]।
ऽत्रग्. गि. रिग्. व्येद्. ग्सो. यि.व्सो. ल.ग्नोद्॥
म. हेऽि. स्पिय.द्. स्योल्. ऽग्रो. लम्. थुर्. ग्शोल्.व्दे।
म्खस्. पस्. मि. छुन्. व्लुन्. पोस्. स्व्यङ्स्. पऽि. ग्लङ॥

६३. ल्तो. रु. दुग्. सोस्. शु. जेंस्. व्दे. मि. ऽग्युर्।
मोंङ्स्. पऽि. दग्. ल. ज्ञन्. फस्. ऽछेङ्स्. प. गङ॥

५७ पारे के बर्तन मे च्युत होइ,
जुगनू दर्प से महामूल्यवान् नही ।
शुकशावक पूरा बोलना ना जानै,
मधु-मद्य देखते भालू का नेत्र आकाश देखै ।।

५८. उस समय कोमल न अनुभवै दु ख-हेतु,
शिलाकीर्ण मार्ग मे अपरिचित आदमी निस्सदेह ।
नदी पुरान काष्ठपोत शय्या उपधान,
मस्त मक्खी ऊँट के ऊपर नवै ।।

५९. वहू का तमाशा ना दखै हाट बीच,
लौकी आश्रय ले उत्तम औषध होवै विष ।
एक अर्थ न साधि दूसरे को लेनेवाली बुद्धि,
घरसे विना उठे सेठ द्वीप न लेइ ।।

६०. अपूर्ण परीक्षित मणि धन मे प्रविशै ।
उन्मार्ग मे कूदता वानर हाथ-पैर से फँसै ।
व्याधि स्वभाव न पकड़ै मिथ्या परिवर्तन ।
सेठ-कोश देखै गृहपति सोपान चढ़ै ।।

६१. सिंह सिर के घूमै अनुसरै ।
गरुड़ पक्ष-सहित पाँती मे ना ढूँढै ।
चन्द्रदर्शनके समय गैंड़ा सिकुड़ छिपै ।
वस्ती से भागे सियार के देहचित्त मे सुख ।।

६२. शत्रु के दु ख से रहित नग्न का देह ।
पुतली बेद चिकित्सा शिल्प वाधै ।
भैस-जाँघ विषम मार्ग सुखी ।
चतुर न मानै मूर्ख महावत गज ।।

६३. उरग के विष को खा पचा कर सुखी ना होइ ।
मूढ की वानी सुने कौन अर्थ ।

थर्. नस्. ब्चर्ोन् रर् स्ङगस्. प. स्ञिङ जेऽि. युल् ।[6]
लु. गु. ग्युंद्. क्यि. खोङ. स्प्रिल्. ब्चद्. पर्. द्कऽ ॥

६४. ल्ह. यि. शे. स्डङ. स्क्ये. स. चुंव् ऽयुर् छल् ।
द्गे. स्लोङ. दुगस्. प. चन्. मोऽि. ख्रोद्. म. यिन् ॥
ग्रगस्. पस्. थेब्स् दुस्. स्प्रेऽु नगस्. दङ. ब्रल् ।
सुन्. ब्ग्न्. दङ. टु. लेन् प स्दे. वऽि. द्पोन् ॥

59a ६५. ग्सेर्. म्गर्. म्गुल्. दु. रङ गि. ग्यंन्. म थोगस् ।
ब्रन्.[7] मोस्. ञोंद्. क्यङ नोर्. बु. जें. वोस् ऽख्येर् ॥
न. सो. गंस्. पऽि. देद्. द्पोन्. ग्लिङ. मि लोन् ।
बु. यिस् ब्र्दुङस्. क्यङ छ वो. ग्चेस्. पर्. ऽजिन् ॥

६६. दुर् ख्रोद्. नङ. दु. सेङ. गेऽि चंल्. मि. ऽव्यङस् ।
व. दोम् स्प्योद्. पस्. स्दे. छगस्. सिल्. मि. नोन् ॥
ग्रुम्. प. दङ. ऽग्रोगस् स्ञिङ. स्तोब्स्.[1] ञमस्. ग्युर्. नस् ।
ब्यि. मोस् ऽब्रङस्. फ्यि युल्. मि. सिन् ॥

६७. गङस् दङ. ब्रल्. बस्. ख्यि. यिस्. म्छे. व. ग्ञेर् ।
ख्र. यिस् देद्. पऽि. स्क्यर्. मो. ञ. यिस्. लन् ॥
ध्रि. म मि. छगस् ल्हुङ. ब्सेद्. स्तोङ पऽि. स्नोद् ।
ऽखोर्. लोऽि स्ग्रम्. ग्यिस्. शिङ. र्त. दल् मि. स्तेर् ॥

६८. ग्यंल्. पो. द्मङस्. स्प्योद्. सु. यि. मिग्.[2] स्ङर्. जेस् ।
च्चि. ल. छगस्. पऽि. स्ब्रङ. म. दुद्. पस्. ऽछल् ॥
पद्मऽि. स्तेङ. न. ऽफुल्. ग्यि. बुम्. प म्जेस् ।
दुंल्. ग्य. म्गोस्. ग्यऽ. मेद्. ङस्. प. नि ॥

६९ स्क्योन्. दङ ब्रल्. वऽि ऽोद्. सेर्. र. व. चन् ।
लुङ. थग् म्र. ब्तगस्. ञि. स्लऽि. ग्यंन्. ग्यिस्. स्प्रस् ॥
ञोंद् पर् द्कऽ. फ्यिर्. ब्चर्ोद्. पर्. फोङस् प यिन्[3] ।
पद्मऽि. ल्व. व थुर्. ल. ख. मि. ऽव्ये ॥

मुक्त हो कारा में डूबै अहो करुणा ।
मेष-शावक का वन्धन तोडना कठिन ।।

६४. देवता के दोष उपजै परुषक वन ।
भिक्षु का निवास रानी का प्रकोष्ठ नही ।
पाश मे पडते समय बानर बिना वन ।
दोष जिमि साथ लेवै सेनापति ।।

६५. सोनार अपने कण्ठ मे भूषण न धारै ।
दासी पा भी मणि-स्वामी ले जावें ।
रुग्ण-दंत वृद्ध सेठ द्वीप ना लेवै ।
पुत्र ताडै तो नाती प्रिय धरै ।।

६६. गुहा मे सिंह पराक्रम ना शोधै ।
मृग भालू की चाल से सेना-राग ना परिभवै ।।
दल और मित्र हृदय-बल के व्याघात से ।
मूषिका अनुसरि पितृदेश ना धरै ।

६७. कुत्ते खुले ओष्ठ मे बलि लेइ ।
कौवे का साथ वक मीन छाडै ।
गन्ध अलिप्त पिण्ड पात्र सूना वर्त्तन ।
चक्का उतारि रथ क्षण न देइ ।।

६८. राजा हीना-चारी किसकी आँख मे पहले सुन्दर ।
मधु-इच्छुक नम्र मक्खी का वन ।
पद्म पर माया का सुन्दर कलश ।
रज-अलिप्त अकटु चमकता ।।

६९. निर्दोष निष्प्रभ प्रकारवान् ।
नगर पास ना ढूँढै रवि-शशि भूषण से सज्जित ।
दुर्लभ होने से प्रेरणा दरिद्र है ।
पद्म-कली मुख ना खोलै ।

७०. चन्दन्. छु. नि. स्क्योन्. ब्रल्. स्नोद्. दु ब्लुग्स् ।
दड्‌ुल्. ग्शोड. म. फियस्. ग्यंल् पोऽि ग्सङ. मि ऽद्रेन् ॥
म्खर्. मऽि. स्प्यद्. दु. सो. व. व्लुग्स् मि व्य ।
छु. ब्रो व्शि. ऽव्रब्. ग्यं. म्छो. रोम्स्. मि. ऽग्युर् ॥

७१. देद्. द्पोन्. ञ्गेंद्. दुस्. ग्लिङ. दोन् व्स्ग्रुव्. पर्. व्य ।
व्शि. म्दोऽि. छोङ. ऽदि. ग्सिङस्. क्यि. ऽग्रोस्.ल. ग्नोद् ॥
छेस्. ग्सुम् स्ल. व. गंस् पऽि दुस्. ल. व्स्नोन् ।
छु. गड. ऽखोर्. मस् देद्. द्पोन्. दोन् स्तव्स्. ग्चोग् ॥

७२ ख्रि. मोन्. ख. रु. ल्ह. यि. स्रस्. मो. ब्यर् ।
ग्लिङ ल तोंल्. बऽि. छोङ. पऽि व्लो. मि. व्र्तन् ॥
ढुग्. स्त्रुल्. ग्चुग् गि. नोर्. बु व्लङ मि. व्य ।
ग्यद्. फ्रुग्. चंल्. स्व्यङ. सेम्स् दे. दोङ. चिग् दङ[5] ॥

७३. ब्चुन्. मोऽि. व्सुङ. म्छोन्. म. ल ब्चोल्. व मिन् ।
थर्. प. ऽदोद्. न. म्छल्. ग्यि. थिग्. ले. व्सुव्स् ॥
दम्. योद्. प. छु. ञ्गोंग्. पस्. दङस्. मि. ऽग्युर् ।
ख्यि. गोंद्. म्थोङ. ढुस्. मि स्नोग्. रङ. ब्चोम्. स्क्युर् ॥

७४. द्रि. सऽि. ग्रोङ. ख्येर्. व्ल्त. बर्. व्य. व मिन् ।
ग्रोग्. मऽि. स्प्योद्. प. बोर्. न. ङेस्. पर्. व्दे ॥
तिल्. ग्यि.[6] मे. तोग्. मि व्तोग्. व्चद् पर्. फङस् ।
शिङ. लोऽि. स्तेङ. न. दुर्. स्त्रुङ. यन्. लग्. दल् ॥

७५. वुद्. मेद्. ख्यिम्. ग्यिस्. सुन्. प. दे. ल. ल्तोस् ।
स्तोव्स्. क्यिस्. ऽख्रुल्. पऽि. ऽखोर्. लोऽि. ग्शोग्. प. ब्रेल् ॥
चि. यिस्. सिन्. पऽि. ल्चग्स्. ऽदि. ग्सेर् दु. ऽग्युर् ।
ग्सेर्. लङस्. स. वोन्. योङस् सु. व्स्दो. मि. व्य[7] ॥

59b७६. नम्. मखऽि. डङ ल. गर्. ल्हो. फ्योग्स्. म्छम्स् मेद् ।
दर्. ग्यिस्. छोस्. क्यिस्. शेल्. गोङ दोग्. स्युर् ॥

७०. चन्दनजल निर्दोषपात्र मे डालै ।
रजतनिधि न खोले राज-रहस्य ना खीचै ।
खेत के ऊपर घास ना डालै ।
चार नदी उतर सागर ना मिलै ।।

७१. सेठ लाभ समय द्वीप का अर्थ साधै ।
चार सूत्र पण्य यह संक्रम की शपथ बाँधै ।
तृतीया का चाँद जीर्ण होते समय सेवे ।
पूर्ण-जलावर्त मे सेठ का अर्थबल खडै ।।

७२ राजकिरात मुख मे देवकन्या होइ ।
द्वीप छिद्रक वणिक् की बुद्धि अदृढ ।
विषसर्प की शिखामणि ना लेवै ।
वच्चा विक्रम पाल चित्त त्यागै ।।

७३. रानी की रक्षिका को प्रार्थै नही ।
मोक्षकामी वन-तिलक रक्षै ।
पकिल पानी का स्पर्श स्वच्छ ना करै ।
चंड श्वान देखते समय मानव-प्राण स्वय ध्वस्त ।

७४. गन्धर्व नगर दीखता नही ।
चीटी की चाल छाड़ि सुख निश्चय ।
तिल-पुष्प न खनि छेदै प्रिय ।
पर्ण के ऊपर श्मशानिक मन्द अग ।।

७५. स्त्री गृह-दूषित वहाँ देख ।
वल-भ्रमित चक्र-पक्ष-हीन ।
पारस छूते लोहा सोना होइ ।
सुवर्ण उठ बीज ना अकुरै ।

७६. आकाश की ओर पूर्व दक्षिण दिशा नही समान ।।
रेशमी रंग से काच वर्ण होइ ।

मृदोगस्. द्ब्यिब्स्. थ. दद् स्प्रिन्. ग्यि युल्. स. मृखऽ।
मो. ग्शम्. बु. यि. वग्. म. डस्. म. मृथोङ ॥

७७. कार्षापणिस्. दुद्. गि. ख. दोग् मृछोन्।
नम्. मृखऽ. स्क्येद्. पर्. ब्येद्. पऽि. ऽम्. सु ॥
जिग्.[1] छग्स्. ब्स्कल्. पस्. नम्. मखऽ. ग्यो. मि. ऽग्युर्।
द्कर्. नग्. छोन्. ग्यिस् मृखऽ. ल. गोस्. प. मिन् ॥

७८. . . . . ।
नम्. मृखऽ. गङ. नस्. ब्लङस्. प. ख्योद्. क्यिस्. स्म्रोस्।
ऽजऽ यि ख. दोग् ग्यॅङ नस् ऽोद्. दु. ग्सल्॥
गम् दु फ्यिन् नस् ब्चल् वस्म प ञ्योद्[2] दो।

७९. योद्. मेद् ग्ञिस्. सु स्म्र व गङ गिस्. नुस्॥
ल्चग्स् क्यि. थोब् प. गङ गिस्. फिग्. प यिन्।
द्र. व. द्बङ पोऽि ग्थु ऽदि मृखऽ. ल यल्॥
स्बल्. वऽि. स्पु यि ल व सु ल. योद्।

८० ब्रग्. चऽि स्म्र. ऽदि गङ गि ख. नस् ब्जोद्॥
छु रल. छोल् वऽि स्प्रेऽ. स्ञिङ रे. जें।
कु वऽि नङ ऽदि चि यिस् ब्रग्.[3] प यिन्॥
मृखऽ ल. ऽजऽ. खर्. छोस्. नम्स्. ब्तन्. नस्. सोङ।

८१. नम् मृखऽ. ऽफेल्. दु. म सोङ ल्तोस् दङ क्ये॥
ए. म. नुब्. पर्. क्यङ. नि ग्युर् म. यिन्।
छग्स्. पऽि. तेन्. स. गङ लस् व्यम्. पर्. ऽग्युर्॥
ऽदि. यि. ग्र्यु क्येन्. चि लस्. व्यस्. प. यिन्।

८२. फन्. छुन्. थ. दद्. मेद्. पर्. ङो मृछर् छे॥
क्ये[4] हो. स्यु. मऽि. स्क्यस्. बुऽि. ऽदु. गस्. स्तोर्।
ऽदोन् ब्येद्. मि. नुस्. मि. लम्. नोर् ग्यि. ग्सेब्॥
दों. यि. मि. यि. रिग्. ब्यद्. गङ. दु. सोङ।

वर्ण-आकृति भेद का लोपस्थान आकाश ।
वन्ध्यापुत्र की वह मैंने ना देखी ॥

७७. कार्षापण से शंख का वर्ण लखै ।
आकाश का जन्मदाता कौन ।
वह भय-प्रीति से आकाश नच लै ।
श्वेत कृष्ण वर्ण से आकाश अनावृत ॥

७८. रजनीकाल से आकाश ना संभवै ।
आकाश कहां से उद्भूत, बताओ ।
इन्द्रधनुष का रंग समीप से भासै ।
पेटिका मे जो ढूँढै ना पावै ॥

७९ भाव-अभाव दोनो कौन कहि सकै ।
लोहे का मुद्गर किसने फेका ॥
जाल इन्द्रधनुष यह आकाशे लुप्त ।
मेष-लोम का कम्बल किसका है ॥

८० शिलाखण्ड यह शब्द किसके मुह से निकलै ।
वानर जल-चन्द्र ढूँढै अहो करुण ॥
लोटे के भीतर क्षिप्त रोग यह नर से क्षुब्ध है ।
आकाश मे इन्द्रधनुप उदित धर्मदेशना से समाप्त ॥

८१ आकाश मे विस्तारे न जा देख रे ।
अहो अस्त भी नही हुआ ॥
राग का आश्रय स्थान जहाँ से बना ।
इसका हेतु-प्रत्यय किससे किया ॥

८२ परस्पर भेद नही यह महा-आश्चर्य ।
अहो माया-पुरुष की सज्ञा भ्रम ॥
अर्थ-क्रिया मे असमर्थ[1] स्वप्न-धन की पेटिका ।
शिलापुत्र की वेदना कहाँ गई ॥

---

१. "अर्थक्रिया समर्थ यत् तत्र परमार्थसत्"--धर्मकीर्ति (प्रमाणवार्तिक-२) ।

८३. ग्लङ. पोऽि. म्गोल्. वें. मेद् छग्. ठोग्स्. प. ब्रल् ॥
छु. शिङ. स्ञिङ. पो. फ्यि नङ. गञिस्. कर्. मेद् ।
दुग्. स्ब्रुल्. म. व्ल्तस्. स्गोङ. व्लङ. व. मि. रुङ ॥
ब्रङ स्रोङ. नद्. क्यि. ग्रोग्स्. दङ गञान्.[5] पो सेम्स् ।

८४. देद्. द्पोन्. बु. नि. यब्. ल. ग्लिङ. ग्युंस्. ऽद्रि ॥
ग्रु. छेन्. ल ग्नोद्. द्ग्र. नेंम्स् फ्यि रु सेल् ।
द्गोस्. पऽि. क्यॆन्. दङ मि ऽब्रल्. छर्. व ग्रिमस् ॥
ञा. स्ब्रुल् श. नि. नोर्. ञान्. छे वस्. वृतंग् ।

८५. ग्रो म्गोन्. ग्यिस्. क्यङ नम् म्खऽि मु. म ग्सिग्स् ॥
द्म्यल्. वऽि. लुस्. ल. छ ग्रङ. गो. स्कब्स्. मेद्[6] ।
ख. दोग्. ब्स्युर्. सिन् म्छुर् ढु. स्पङस्. न. ल्ङङ ॥
ग्सो. रस्. थल्. खुर्. ऽजुग्. प. द्रि. म. मेद् ।

८६. ि. ब्र शिङ. लो. ऽब्रस्. स्मिन्. पर् ग्युर्. छे. चोंग् ॥
गल्. नङ सस्. लेन्. दे. दुस्. ञिद्. दु. फुङ ।
छोङ. खङ. नङ. गि. ऽग्रोन्. पो. स्ङ. रिम्. ऽग्येस् ॥
स्रिन्. ग्यि. ख. छुस्. रङ. ञिद्. ऽछिङ. वर्. ऽग्युर् ।

८७. चंव. यि. स्ग्रोन्. मे.[7] म्छेद्. प. रव्. तु. क्यॆन् ॥
ग्यं. म्छो. स्ग्रोल्. वऽि. ग्रु ल. सग्. ल्हन्. ग्चिस् ।
ड्रेग्स्. पस्. म्योस्. पर्. मि. ऽग्युर्. नद्. पऽि. लुस् ॥
रङ. स्रोग्. स्तेर्. वऽि. ब्रङ. स्रोङ. लन्. लोन्. चिग् ।

८८. फन्. पऽि. स्मन्. मर्. ऽब्रोर्. वर्. व्य. व. मिन् ॥
ग्यं. म्छोऽि. ल्वु. व. यल्. वऽि. जेंस्. मि. ल्त ।
ग्दन्.[1] स. म. स्पङस्. ग्यंल् पोस्. छोस्. मि. ऽग्रुब् ॥
स्यिम्. दोर्. नग्स्. सु. ऽदुग्. पऽि. मि. दे. व्दे ।

८९. दोम्. ग्यि. स्ञिङ. खग्. म. ऽथुब्. ख. ल. ल्तोस् ॥
मे. तोग्. चि. यिस्. स्रङ. म. दल्. मि. स्तेर् ।

८३ गजके सिरमें सींग नही राग-रग रहित ।
केला मे सार भीतर बाहर दोनो नही ।।
विषसर्प न देखि अण्डा उठाना ना उचित ।
ऋषि रोगमे सखा और मित्र समझै ।।

८४ सेठ का पुत्र पिता से द्वीप का पता पूछै ।
महापोत-भग शत्रु बाहर से मारै ।
इच्छित प्रत्यय और अरहित लवण मग्न ?
मीन सर्प का मास धन अतिहृष्ट परखै ।।

८५ मार्गदर्शक भी अनेता आकाश निरेखै ।
नरक-देहमे गर्मी-सर्दीका अवकाश नही ।।
वर्ण-परिवर्तन ग्रहै वर्ण छाड़ि उठै ।
भृगी धूल धोइ निर्मल ।।

८६ लता वर्षफल पकते समय अशुद्ध ।
जब भीतर अन्न ले तो राशि होइ ।।
दूकान के भीतर की कौडी पचक्रम होय ।
(रेशम) कीट थूकसे स्वय वधि जाइ ।।

८७ लुकारी जलानेका भारी हेतु ।
सागरगामी पोत एक वार चुवै ।।
मद से उन्मत्त न हो रोगी का देह ।
स्वप्राणदाता ऋषि उत्तर दे ।।

८८. हित भैषज्य त्यागै नही ।
सागरका फेन लुप्त हो फिर ना दीखै ।।
आसन ना त्यगि नृप धर्म ना साधै ।
घर छोड वनमे वसे आदमी सो मुवी ।।

८९ भालूका हृदय-रक्त न छेदि मुँह देखै ।
पुष्प-औषधि मे मक्खी क्षण नही गवानी ।।

वु. रम्. मुर्. गऽि कुग्स्. म. ख. रोग्. ऽदुग् ॥
ग्लिङ. ल. द्वङ. वऽि. ग्यंल्. पो वु. दङ. ऽग्रोग्स् ।

६०. ऽखोर्. लोस्.[2] व्चल्. वऽि. लम्. ल. शुग्स् पर्. व्य ॥
खङ. व्सङ. रिन्. छेन्. स्पङ. दु. मि. रुङ. ङो ।
द्रि. म. चन्. ग्यि. सस्. स्कोम्. मि. व्र्तेन्. चिङ ॥
ख्यिम्. व्द्ग्. द्पऽ. वो. फ्यि. रु. मि. व्स्कद्. दो ।

६१. छे. ऽदिऽि. छो. थव्स्. व. शिग् प. दुर्. स्नुङ मि ।
ग्दोल्. पऽि. म्गुल्. दु. रिन्. छेन् र्ग्यन्. मि. दोग्स् ।
यव्. क्यि स्प्योद्. लम्. स्नग्.[3] प. देद् द्पोन्. वु ॥
स्म्योन्. पऽि. स्प्योद्. प. ग्सव्स् ग्तद्. व्रल्. नस् ऽदुग् ।

६२. ल्कुग्स्. मऽि. ग्सङ. छिग्. खु रु. मि. ऽदोन्. नो ॥
ञो. व. दग्र्. ग्युर्. व्लो. ग्रोस्. द्रि. युल्. शिग् ।
ग्सुग्स्. क्यि. चर्ोल् स्गुव्. मि. व्येद्. लोङ वऽि. ग्रोग्स् ॥
फ्यग्. दर्. खोद्. प. थोङ. ग्शोल्. ञो. मि. ऽग्युर् ।

६३. नद्. प छु. स्क्युग्. गङगा. ल. मि.[4] ल्त ॥
ग्सेर् ग्यि. म्गर्. व. व्य. व. ग्शन्. मि. स्गुव् ।
दर्. छेन्. दर्. सव्स्. फग्. जि. गोन्. मि. ऽग्युर् ॥
छङस्. स्प्योद्. मि. नुस्. स्म्युग्. म. म्खन्. ग्यि. ख्यिम् ।

६४. स्म्र. म्खस्. थव्स्. ल्दन्. नि. छो. ख्यु. नस्. ऽव्योल् ॥
ऽफ्येस्. पऽि. ग्लिङ. पो. वुर् शिङ. व्रेस्. मि स्नोग्स् ।
ग्सेर्. स्ग्रोग्. व्चुग् क्यङ ऽछ्म् ऽग्रोस्.[5] व्येद् मि. नस् ॥
देद्. दपोन्. वु. नि. व्रे. स्रोङ. ल. मि. ल्त ।

६५. ग्लिङ. दोन्. खर्. ऽव्तोन्. शि. यङ. ख्यिम्. मि. ऽदुग् ॥
छोङ. फ्रुग्. ऽदुस् छे. न. यङ जिङ स. ल. स्नग् ।
ऽदोद्. पऽि. लुंङ. नि. रेस्. ग्सोर्. दग्. गिस्. ऽगुग्स् ॥
जि. स्निद्. नोर्. वु. म. लोन्. फ्यिर्. मि. व्युङ ।

ऊखके छोर पर कौवा बैठा ।
द्वीपमें शक्तिमान् राजपुत्र और साथी ॥

६० नक्रसे ढूँढ़ने मार्गे वज्र करो ।
सुन्दर गृहरत्न त्यागना ना ठीक ॥
गन्धयुक्त खानपान ना आलम्बो ।
शूर गृहपति बाहर ना प्रवासैं ॥

६१ इस समय महाउपाय नष्ट श्मशानिक पुरुष ।
चडाल के कण्ठ मे रत्नभूपण ना बँधै ॥
पिताके आचरित मार्गमे मग्न सेठ का पुत्र ।
पागल का आचरण त्याग दान बिना रहै ॥

६२. गूगे का गुह्य शब्द मुख से न निकलै ।
पास की शत्रु सी बुद्धि से गन्ध-विषय ध्वस्त ॥
रूप-अध्यास ना साधि अन्धा साथी ।
पाँसुकूलिक[1] हलका फाल न खरीदै ॥

६३. रोगी पानी थूक गगा ना देखै ।
सोनार दूसरा कार्य न साधै ॥
रेशम का थान सूअर के बाल के मूल्य का ना होइ ।
ब्रह्मचर्य ना कर सकै बसौरके[2] घर ॥

६४. वाक्चतुर उपायवान् शुक झुण्डसे भागै ।
पगु गज ऊख-पुज ना पकडै[3] ॥
कचनश्रृंखला (बद्ध) नृत्य कर सकै नही ।
सेठ का पुत्र आढक शकट को ना देखै ॥

६५. द्वीप के अर्थ बाहर जा मर भी घर ना रहै ।
सेठ का पुत्र चिरकाल भी पुष्करिणी मे डूबे ॥
कामना वायु कभी फूटनेसे रुकै ।
जैसे मणि न पा बाहर से घर ना आवै ॥

---

१. गूदड़धारी । २. वशकार । ३. स्न्गोग्स् ।

९६. ब्रग् लस्. स्क्येस् पऽि छु. व्य.म्छो. ल स्ञग् ॥
नग्स्.[6] व्यि. फ्र व. द्गुन्. ग्यि . च्ँव. मि. सोग् ।
ग्दोन्. ग्यिस्. व्र्लम्स्. छे. दोन्. दे लम्. दु. स्तोर् ॥
ञ यिस् व्र्नङस् पऽि स्क्यर् मो दग्. ल. ऽव्योल् ।

९७ ग्चिग् तु मि ग्नस् ग्नस् स्तग् मो ग्रुस्. मऽि छ्ङ ॥
ग्रोन् पो. लम्. ग्.ग्स् ग्सेर् र्ग्यल् फियर् मि. ऽखुर् ।
ग्च्ो वोऽि ग्सङ. ग्रोस् ख्रोम् दु व्र्जोंद्. मि. ऽग्युर्[7] ॥
स्ग्रग् पर् मि. व्येद् वङ म्जोद्. व्र्कुस्. पऽि. मि ।

९८ व्रम् मेऽि. रिग्. व्येद्. वु. लस् ग्शन् दु मिन् ॥
योन्. दोर् मि स्तेर्. चि म्छोग् ग्सेर्. ऽग्युर् थव्स् ।
म्छन् द्पेस् रब् स्प्रस्. ऽखोर्. लोस् स्युर् ग्यॅल्. लुस् ॥
छङस् पऽि द्व्यङस्. ल. यन्. लग्. द्रुग्. चुर्. ल्दन् ।

९९ थुव् पऽि थुग्स् नि. योन् तन् कुन्.[1] ग्यि. म्ज़ोद् ॥
नोर् वु रिन् छेन् द्गोस् ऽदोद्. ऽव्युङ वऽि र्तेन् ।
ग्यॅल्. पोऽि. व्गुल्. स्न ग्सेर् ग्यि ऽखोर् लोस्. द्रेन् ॥
गिन्. र्जेऽि. मे. तोग् र्लुङ. गिस्. व्स्क्योद्. पर् स्ल ।

१००. दुस् सु. स्मिन्. पऽि पद्म. ख. दोग्. ग्सल् ॥
ऽव्युङ वऽि द्ग्र र्नम्स् व्चोम् प. र्दो जेऽि. स्कु ।
ग्रङस्. पर्. स्क्येन् प. व्रस् प. छुङ वऽि. ल्तो ॥
र्गस् दङ व्रल् व द्ङुल्. छु ऽथुङस्. पऽि लुस् ।

१०१ स्मन् म्छोग् व्सिल् म्ङर्. थुन् ल छे. मि. द्गोस् ॥
चि स्म्रस्. दोन्. दु. ऽग्युर्. व द्रङ. सोङ. छ्गि् ।
ग्लिङ लस् व्लङस्. पऽि. मे. तोग्. द्गोस्. मेद्. मिन् ॥
द्गे स्लोङ छ्गि्. ल. ग्तम्. ग्यि दोन् मि. व्युङ ।

१०२ स्मन् ग्यि. ग्नस् सु. दुग्. गि. स्क्ये द्रुङस्[3] ऽगग्स् ॥
ऽफ्रुल् ग्यि मे. लोङ फ्यि. नङ. ग्ञिस्. कर्. ग्सल् ।

९६ शिला-उत्पन्न जलपक्षी सरोवर मे डूबै ।
वनमूषिका जाड़े मे तृण ना करै ।
आरम्भ से बाधा के समय वह अर्थ के मार्ग पर भ्रमै ।
मछली रोकने से छिद्र से भागै ।

९७. एकत्र ना रहै व्याघ्री की पूरी पाँती ।
अतिथि मार्ग मे स्थित सुवर्णभाण्ड बाहर न ले जावे ।।
प्रधान रहस्य सचिव बाजार मे न बोलै ।
चुपके ना करै पेटिका धन चोर आदमी ।।

९८ ब्राह्मण-माणवक से अन्यत्र नही वेद ।
छोड नही दे उत्तम औषध सोना होने के उपाय ।
लक्षण से ज्ञात चक्रवर्ती राजा,
ब्रह्मघोष मे साठ अंग सहित ।।

९९. मुनि का हृदय सब गुणो का कोश ।
मणि रत्न इच्छा-आश्रित सम्भूत ।।
राजमार्ग नासा-सुवर्णचक्र खीचै ।
गिजा का फूल वायु उडा चलै ।

१०० काले मे पक्व पद्मवर्ण प्रकाशै । भूत शत्रु नाशक-वज्रकाय ।।
सर्दी से समुदित फूँक का कोश ।
निर्जर पारा पिये देह ।

१०१ उत्तम भैषज्य मधुर-प्रहार स्वभाव बडी ना चाहिये ।
जो कहै सार्थक सत्य ऋषिवचन ।।
द्वीप से ना उठावै अनिच्छित पुष्प ।
भिक्षुवचन मे कथा का अर्थ नही होइ ।

१०२ भैषज्य के स्थान विषज मल रोके,
ऋद्धि-दर्पण का भीतर बाहर दोनो स्वच्छ ।।

मङ दु ब्र्चेगस्. क्यङ. ग्स ुग्स् रञ्न्. ऽग्रिव्. मि ऽग्युर् ॥
वुग्. प. योद्. व्शिन्. सङ. थल्. युल्. मि. ऽगग् ।

१०३ स्ग्यु र्चल् ऽव्योङस्. पऽि ग्यद् नि. फ्यि. फियर् रिम् ॥
स्मिग्. र्ग्युऽि. म्छङ्ग शेस्. छु. यिस्. ऽदु. गेस्. गिग् ।
शिङ. ल. मे. योद्.[4] दे. छे.दु. ब. ऽव्युङ ॥
ख. लॅङस्. स्ग्रोन्. मेर्. ग्युर्. प मे. ख्येर् यिन् ।

१०४. रि. व्रगस्. वर्. न. स्मिग्. र्ग्यु. योद् म यिन् ॥
ञा. र्ग्यस्. ऱ्ल. व ञि मऽि. ऽोद्. दङ. व्रल् ।
रेग्. व्य. ग्म ुग्स् क्यिस् स्तोङ प खोल् मऽि. नङ ॥
ऱ्ड. ल्तस् गर् वऽि वु मो व्च ुन् मोर् ऽग्युर् ।

१०५ वि. चि ऽथुङस् पऽि. मिग्. ल म्छन् मो.[5] मेद् ॥
ल्ह. खङ. स्गो. फ्ये. दे. दुस्. स्कु ग्स ुग्स् म्थोङ ।
फ्युग्स्. जिऽि. लग् व्दे गङगाऽि फ्योग्स्सु. व्येद् ॥
स्त्रङ चिस् व्सिङस्. पऽि. छङ ऽथुङस्. लुस् पो स्त्रिद् ।

१०६. ग्ग ोर्. ल व्सिग्स्. पऽि ऱ्वो ग ग्तिङ मि. ऽज ुल् ॥
ऽफ्योङ. र्दो. व्तग्स्. पऽि. ग्सिङस् ल ग्यो. ल्दग्. मेद् ।
द्ङ ुल्. ग्यि. मे. लोङ[6] फिय न ग्सल्. वर्. ऽग्युर् ॥
गल्. त. छुङ. पऽि मि. दे. स्डर् स्प्योद्. ऽदोर् ।

१०७ फ्योग्स्. म्छम्स्. कुन्. दु ऽफुर्. क्यङ ञाल् सर्. छङ ॥
सो. व. खेङस्. दुस्. दे. छे दप्यद्. थग्. ऽद्रेन् ।
ग. छग्स्. मिस्. सिन्. दे. यि. गेस्. प ल्तोस् ॥
61a फ्रिन्. यिग् लेग्स्. प. म्थोङ. दुस् सेम्स्. डल् सोस् ।

१०८. मि. ऽग्युर्.[7] म्खऽ. ल. ल्देङ. वऽि ग्गोग्. प. व्रेल् ॥
द्रेग्स्. पर्. व्सो. वऽि. व्गिन्. दे. खोङ. दु. छुद् ।
व्यङ. छुव्. शिङ. दु. थुव्. पऽि स्प्योद्. लम् व्दे ॥
शुस् ल. वव्. पऽि. ग्सेर्. म्गर्. ग्येङस्. दङ व्रल् ।

बहुधा कूट भी रूप का आधार नही गन्दा ।
सच्छिद्र सा पीतल भस्म विषय ना रोकै ।

१०३. कला शोधन का प्रयास बाह्य क्रम ।
मृगजल मे पानी की संज्ञा नष्ट ।।
काष्ठ अग्नि हो तो धुआँ निकले ।
दीपक प्रतिज्ञा ना होइ अग्निवाहक ।

१०४ पर्वतशिला के बीच मृगजल नही होइ ।
महामत्स्य चन्द्र-सूर्य प्रकाश-रहित ।।
वेदनीय रूप से खाली गवाक्ष के भीतर ।
पूर्व निमित्त मे उदित मध्य-रात की रानी होइ ।

१०५ बी (?) औषधि पियेक आँख मे रात नही ।
मन्दिरद्वार खुलते समय पूर्ति का रूप देखै ।।
पशु जम्बाल के हाथ का सकेत गगा की दिशा मे करै ।
मक्खी मधु-मद्य पी शरीर छीके पर ।

१०६ उठा फेक फेन का नीचे ना डूबै ।
निकष-पाषाण परीक्षा पोत गरुड़ नही ।।
रूपे के दर्पण बाहर स्पष्ट हुआ ।
चौकीदार वह आदमी,पहले-कर्म आचरन छोडे ।

१०७. तुल्य दिशा में सर्वत्र उड के भी शयन स्थाने उड़ै ।
शिल्पकार तव निर्माणकाल समीप खीचै ।।
मांस-इच्छुक मनुष्य ने कहा उसका ज्ञान देख ।
राजादेश देखते समय चित अभिमानी होइ ।

१०८ निर्विकार आकाश मे गरुडपक्ष का सम्बन्ध ।
मदकार जिमि सो भीतर रख ।।
बौधिवृक्ष के नीचे मुनिचर्या मार्ग का मुख ।
माग के उतरा सोना किरण रहित ।

१०६ ग्युल्. दु डल् वऽि ग्लङ पो. ल्तोस् दङ क्ये ।।
ऽत्रऽ. यिस्. नोन्. पऽि रि. वोङ.[1] चन्. मि. म्थोङ ।
खोग्. चेस् व्कव् पऽि. मि यि दुद्. प. लुव्स् ।।
स्प्र. व्स्ो छर्. दुस् म्थन् पो यङ. यङ. ल्त ।

११०. पर् ति. क. न. ग्रोग्स् प म्जऽ दुस् ऽव्रल् ।।
स्मन् ग्यि छोङ. पऽि. ऽग्रो फ्योग्स् ल्तोस्. शिग्. दङ ।
गुंन् ऽव्रुस् थङ. म मि स्पुङ फ्योग्स् व्शिर् व्र्दल् ।।
व्य. व सिन् पऽि र्जे. स्प्यद्. फिय[2] छिस्. मिन् ।

१११. स्क्येद्. मेद् नद् प. स्मन् ग्शन्. व्स्तेन् पर्. रिगस् ।
म्खस् प लङ पो. द्रग् दल् गञिस् सु स्प्योद्
वुस् प मि सद् गुन् मर् स्व्यिन् म व्य ।।
फग्. गि. ल्चे. यिस्. ख म्ङर्. स्पङस् नस्. ऽदुग् ।

११२. व्रम् स् स्कुद् प ऽखल् व. ल्तोस्. शिग् दङ ।।
द्वऽ. क्लोङ. ऽखुग्स्. दुस् थव्स्. ल्दन्. ऽफ्योङ.[3]ढो. ऽदोग्स् ।
सु शिग्. व्दे ऽदोङ स्व्रङ मऽि स्प्योद् प वोर् ।।
ग्र्यल्. खिम्स्. छोस्. छे. व्लोन् पोऽि. चर्ोल् व. शिग् ।

११३. नोर्. वु. लोन् पऽि देद्. द्पोन्. सेम्स् लस् व्रल् ।।
ग्र्यल्. पोऽि. वु. मो. ग्शन्. ग्यि ग्र्यन्. मि. ल्त ।
स्दोङ. दुम्. म. ग्सल् गिङ र्त. ऽग्रोर्. मि. व्तुव् ।।
स्मन्. ग्यि. लो. ऽव्रस्. द्रङ. स्नोङ. बु ल. स्तोन् ।

११४. व्चो.[4] मऽि ऽो ऽोद् ल. ग्सेर्. म्खन्. म्दोग्. मि. ऽदोन् ।।
स्पु. ग्रि ति. ल ल दर्. व्लुद्. मिग्. मि. ऽदोद् ।
वु. यि. स्त्रद्. सिन्. ग्र्यल् पोऽि व्य व. र्जोग्स् ।।
दुग्. छोर्. मि. द. ल्हग्. म. स्. मि. ऽग्युर् ।

११५ व्रम्. स्ऽि. रिग्. व्यद्. सोङ. दुस्. व्य. ग्शन्. ऽदोर् ।।
व्र्च. मेद्. व्स्त्व्. म. व्स्कोर्. वर्. मि. व्यऽो ।

१०९ देश में विनीत गज देख रे।
मृग द्वारा विक्रान्त शश न देख।।
महामंडप-मनुष्य को नमो कहै।
समाप्ति समय आचार्य फिर-फिर देखै।

११० प्रतीक मे प्रिय साथी काल-रहित।
औषधि-विक्रेता के जाने की दिशा देख।।
द्राक्षा-स्थली पुरुष चारो दिशा स्थली असेचित।
क्रियावान् द्रव्य चर्चा बाह्य सधि नहीं।

१११ अपुत्पन्न रोग मे अन्य औषधि कहना उचित।
चतुर गज टहलते दोनो चलै।।
फुफुकार न मार घरे दान न कर।
शूकरजिह्वा से मधुर मुख छोडे रक्खै।

११२. ब्राह्मण का सूत्र पहनना देखै,
वेला वीचि प्रतिकूल काल मे उठी।।
जो कोई सुख चाहै मक्खी का आचरन छोड़ै।
राजविधान के समय अमात्य बनौ।

११३. मणि लेना सार्थवाह चित से छोडे।
राजकन्या दूसरे का भूषण ना देख।
घटा (रव) प्रकटे विना रथ नही जावै।
औषध वर्ग का फल ऋषि पुत्र को बतावै।

११४. जाबूनद पर सोनार रंग नही रगैता।
छुरा को तिल से तीक्ष्ण करने से छेद नही होवे।।
पुत्र के राज्य संभाल लेने पर राजा का कार्य समाप्त है,
तीव्र विष आदमी जूठ ना खावै।

११५ ब्राह्मण वेद पढते समय दूसरा काम छोडै।
निष्करुण मथानी ना घुमावै।

गॅ्यल्. पो. ऽछि. दुस्. ख्रिम्स्.[5] यिग्. ल. मि. ल्त ॥
नोर्. वऽि. लम्. दु. ऽजुग्प. पर्. मि. रिग्स्. सो ।

११६. नग्. छुर्. मि द्गोस्. ऽजम्. वु. छु. वोऽि. ग्सेर् ॥
पद्म. ऽदम् गि्य स्क्योन्. दङ. ब्रल्नस्. ऽदग् ।
दग्. मेद्. रङ. द्वङ. थोव् प सेङ गेऽि. वु ॥
ग्न्गऽ. शिङ ब्क्रोल्. वऽि म. हृ. गर् द्गर्. ऽग्रो ।

११७. र. म. शुग्स्. पऽि. ग्सेर् नि. गु लङ. म ॥
छे. र. म[6] पियन्. पऽि. शुल्. दे. ब्रु व मिन् ।
च्ोर्. स्गो. फ्येद्. पऽि दे. स्रोग् मि ऽदोन् ॥
शे. स्गो. श्ो यिस्. ग्रङस्. प. ल. ल्तोस् शिग् ।

११८. ग्सो. रस् ङ्ॅ वल् व्स्दम्स्. प. द्रग्स् पस्. ऽछिङस् ॥
स्ग्र. ञ्गन्. पऽि. फग्. र्गोद्. ग्दम्स्. प स्तोन् ।
ङन्. स्ग्रस्. व्स्तोद्. छिग् स्ग्यद्. मेद्. र्दो. यि मि ॥
61b स्मिग्. र्ग्युऽि. क्लुङ न. छु.[7] थिग्स् योद्. म यिन् ।

११९. स्क्ये. दङ. ऽछि. व. मो ग्शम्. वुस्. म. व्यस् ॥
म्दोग्. द्व्यिव्स्. थ. दद् छु. ब्रन्. र्ग्य. म्छ्ोर्. ग्रोल् ।
नम्. म्खऽ ल. नि. द्वुस्. दङ. मु. म. म्छिस् ॥
रो. गु्ञिस्. म्थोङ वऽि. कङक. म्खऽ. ल. ल्दिङ ।

१२० स्तोव्स्. ल्दन्. सेङ. गे. स्र्ोग्. गि. मेल्. छे. स्तोर् ॥
क्ये. हो. स्म्योन् वऽि स्रो स्कोस्. स्ेम्स्.[1] दङ क्ये ।
च स्प्यङ मिग् ऽदि ङ्ो. म्छ्र्. छे व. यिन् ॥
म. ल. य. न चन्दन्. मे. रु. ऽव्रुद् ।

१२१ सेङ गे. गङस्. दङ. ब्रल् वर् मि. व्यऽो ॥
स्मन् पऽि गॅ्यल्. पो. ग्सो. रिग्. लुङ दङ ऽग्रोग्स् ।
म्खन् पोस्. लेग्स् ग्सुङस्. द्गे स्लोङ. गिस्. मि. ग्तोङ ॥
द्पऽ. वो. ग्युल्. दु. ऽजुग्. छे. गो. मि. ऽव्रुद् ।

राजा की मृत्यु के समय विधान ना देखै ।।

भूले मार्ग में रहना ना ठीक ।

११६. वनप्रान्ते न चाहिये जाम्बूनद सुवर्ण ।

पद्मपत्र का दोष ना रहै ।

शत्रु विना स्वतन्त्रता प्राप्त सिंहकुमार ।।

जूआ ढोता भैंसा नाचता जावै ।

११७. राम (जिसके) घुसा (सो) सोना हुआ है ।

कंटक (निगल) जाने का सौ मार्ग वचै नही ।

चोर द्वार खोल के कई प्राण ना निकाले ।

काचपात्र दही भरा दीखे ।

११८. भंग ऊँट केश से बँधा अहंकार बंधै ।

शब्द सुन अरण्यशूकर बन्धन मे बंधै ।

दुरुक्त स्तोत्रशब्द समान शिलापुरुष ।

मृगतृष्णा नदी मे जलविन्दु ना होइ ।

११९. जन्म-मरण वन्ध्यापुत्र ना करै ।

वर्ण-आकृति-रहितहो नदी समुद्र मे मुक्त ।

आकाश के मध्य और सीमा नही ।

दो शव देखता काक आकाश मे उडै ।

१२०. बली सिंह को प्राण प्रहार समय का डर नही ।

मै अहो पागल देखता विचारो ।

सियार की आँख यह महा आश्चर्य ।।

मलय चन्दन आग मे फूँकै ।

१२१. सिह सर्दी का अभाव ना करै ।

वैद्यराज चिकित्सा आगम औ साधी ।।

पण्डित-सुभाषित (करना) भिक्षु ना छोडै ।।

शूर युद्ध करते समय ना जानै फुफकारना ।

१२२ ञ्ग्रो.[2] व. व्सङ. मोस् ञ्ो. व स्ो. सोर् ऽजिन् ॥
ग्येङ. व. मेद्. प. दुर् ख्रोद् द्वुस् क्यि मि ।
दुर्. ख्रोद् मि यि लुस् ङस् थ. मल्. स्पङस् ॥
ल्तो ग्यँब् शुगुस् लस् ऽब्युङ व. दुर्. ख्रोद् मि ।

१२३ दुर्. ख्रोद् मि ल. फ. म. ख म्छु. मेद् ॥
द्गोस् प म्दुन्. दु ञ्ग्रुब् प दुर् ख्रोद् मि ।
ग्लङ पोऽि ञ्ग्रो स ग्रम्. पऽि[3] ग्सेव्. म यिन् ॥
मे. छुऽि. द्ग्र ल छोद् योद् व्यर् मि रुङ ।

१२४ शिङ. पस् स यि म्दोग् ल लुद् रिग्स् स्व्योर् ॥
ग्यँल् पोऽि. शबस्. नस् व्तेग्. छे व्कऽ ल ऽदोग्स् ।
क्ये हो. स्तग् छङ योद्. पऽि. सर् मि. ञ्ग्रो ॥
ग्यँल् पोऽि. ब्कऽ. ब्तग्स्. थोव्. दुस् द्ग्र दङ ब्रल् ।

१२५. न. छ मेद् पऽि. दुस्. दे[4] ब्दे वर् ग्नस् ॥
व्सङ ङन् ग्ञिस् ल स्स् क्यि म छुन् मेद् ।
म्य. ङन् ग्दुङ वस् शि. वऽि. बु दे म्थोङ ॥
व्ज्ुन्. स्पङस् ब्रङ. स्नोङ.दग् गि फ्रिन् लस् ग्रुव् ।

१२६ ग्यद् ल रल्. ग्रि व्तग्स् ते. ग्यँल् पो. मञेस् ॥
नग्स् क्यि. स्व्रङ म गि वङ द्रि. ल. स्नोम् ।
म गि त ल व्सिल् ब्रोद् नुस्. प. छङ[5] ॥
र्चि स्व्योर् ऽथुङस् पस् लुस् क्यि स्ो. म्दोग् व्दे ॥

१२७. तिल् छङ ल्तोर् ग्रोद् रिग् प. ङर् ग्यिस् ख्योग्स् ॥
यिद् व्गिन् नोर् वु कुन्. ग्यिस्. ल्त वर् म्जेस् ।
ग्यँल् नि पो. ल. सु शिग्. गोंल्. वर् नुस् ॥
वु. ग्चिग् प ल. म. स्निद्. ग्दुङ. सेम्स् ल्दन् ।

१२८ गस्. छे म्ग्रोन्. ल वोस्. प. गङ मि. ऽोङ ॥
पङ. दु. ऽोङ दुस्.[6] वु. ल. ऽ. म द्गऽ ।

१२२. भद्र जगत परस्पर समीप गहै ।
ना बँधै गुहा के बीच का मानव ।
गुहा मानव कायवाक् मल त्यागै ।
भक्षण पश्चात् शक्ति (युक्त) हुआ महामानव ।

१२३. श्मशानी मानव का चुगली मुकदमा नही ।
अभिलापा सिद्ध श्मशानिक मानव ।
गज गमन मार्ग में किनारा अन्दर नही ।
आग-जल-शत्रु को तप्त करना नही उचित ।

१२४. किसान भूमि के रग–आगम–जाति से जुडा ।
राज-चरण से उत्क्षेप समये वचन-वद्ध ।
अहा, वाघ की माँद की जगह न जावै ।
राजवचन पाये समय शत्रु नही ।

१२५. रोग न हो तो सुख से वसै ।
अच्छा वुरा दोनो मे भोजन अजीर्ण नहीं ।
शोकमग्न उस मरे पुत्र को देखै ।।
मिथ्या छोडि ऋपियो के आदेश से साधै।

१२६. विक्रम मे असि उठा राजा मुदित ।
वनमक्खी गोरोचन की गन्ध सूँघै ।
मगित के शीतोष्ण मे समर्थ चूल्ही ।।
औपधयोग पीया देह के रचनावर्ण (से)सुखी ।

१२७. तिल शराव खाकर कुविद्या स्वत. भागै ।
चिन्तामणि चारो ओर से देखने में सुन्दर ।
राजा से कौन वाद कर सकै ।।
एक पुत्रवाली मौसी ज्वर चित्तयुक्त ।

१२८. पूछते समय पथिक को वुलावे, जो न आवै ।
गोद मे आये समय पुत्र की माता खुश ।

नम्. म्खऽ. दङस्. पऽि. ङङ ल द्रि. म. मेद् ॥
छेगस्. मेद्. ग्नद्. ऽफ्रोद्. रिग्. ब्येद्. ग्सेर्. ऽग्युर्. चि ।

१२९. ग्लङ. पो. म. म्थोङ. फग्. पऽि. लुस् द्व्यिव्स्. ल्तोस् ॥
द्मन्. पऽि. लस्. ल मि. शुग्स्. गँ्यल्. पोऽि. लुग्स् ।
वे. दऽि ऽब्रस्. बु. सु वोन्. दुस् सु. ऽग्रुव् ॥
62a मं. ब्यऽि.' म्दोङस्. ल. ऽद्रि. म्खन्. योद्. म. यिन् ।

१३०. थुब्. द्वङ. लग्. गि. र्दो. र्जे. व्स्क्योड. मि. नुस् ॥
ऽदम्. नस्. व्तोन् पऽि. उत्पल्. ल्तोस्. दङ. क्ये ।
व्दे. व. दङ. ल्दन्. सेर्. स्क्यर् ग्न्यिद्. लोग्. दुस् ॥
रङ. ख थोन् प ऽजम् वु छु वोऽि. ग्सेर् ।

१३१ छव्. रोम् रङ. व्शिन्. छु यि. ङो वो. यिन् ॥
स्वल्[1] पऽि स्पु. यि ल व. ग्सर्. ञ्यिङ व्रल् ।
दम्. ग्यि. क्येन्. ग्यिस् पद्म्. ख. ढोग्. गुङस् ॥
थव्स्. क्यिस्. छुन्. छे. दे. दुस्. द्ग्र. दे. व्गेस् ।

१३२. ग्यंल् मो. क रऽि ग्स्.ग्स्. ल. थ. दद्. मेद् ॥
छु. ञ्यिद्. ग्यं म्छोऽि. ग्यं. म्छो दङ. ञ्यिद्. छु ।
चि. यिस्. सिन्. पऽि. मि. दे. रि. वो. म्गुल् ॥
द्वऽ. लंव्स्. छे. ऽव्रिङ. ग्चङ. पोऽि. द्व्यिङस्. ल थिम् ।

१३३. मुन्. प. दग्. पर्. व्येद् प. मर्. मेऽि. ऽोद् ॥
शग्. मिग्. प. ल. ञ्यि. म. मुन्. पर् व्स्रोस् ।
स्मद्. ऽछोङ. बु. सु. यि. रिग्स्. ग्युंद्. यिन् ॥
दुर्. ख्रोद्. चे. स्प्यङ. छङ. ल म्ङोन्. गेन्. मेद् ।

१३४. ग्दोन्. ग्यिस्. व्लंम्स्. पऽि ग्तम्. दे. स्न. छोग्स्. स्म्र ॥
व्यिस् पऽि. रङ. व्शिन्. ग्चिग्. तु. ऽदुग्[3] मि. ऽग्युर् ।
नग्स् क्यि. रि. दग्स्. शिङ. व्रुऽि. फ्योग्स्. रिस्. स्पङस् ॥
ल्ह. र्जस्. रिन्. छेन् नुस्. प. सु. यिस्. व्यिन् ।

अच्छे आकाश का हँस निर्मल ।।

निरुपद्रव पथ्य वेद सुवर्ण होइ ।

१२९ गज न देख शूकर देह की आकृति देखै ।

वैद्यकार्य मेंन रहे राजा की नीति ।

सुखफल बीज के समय सिद्ध ।

मोर की पिच्छ का चित्रकार नही होइ ।

१३० मुनीन्द्र के हाथ का वज्र पाल ना सकै ।

पक से निकला उत्पल देख रे ।

सुखावती कपिलवस्तु निद्रा से उठते समय ।

अपने मुख से निकला जाम्बूनद सुवर्ण ।

१३१. ओले का स्वभाव है जलवस्तु ।

मेढक के रोम का कम्बल न नया न पुराना ।

उपाय से जाने तो वह शत्रु है मित्र ।

पक के कारण पद्म का वर्ण धुला ।।

१३२. रानी शक्कर के रूप मे भेद नही ।

पानी हो समुद्र और ही पानी ।

औषधि ग्राही सो मानव पर्वत के समीप ।।

महामध्यम वेला नदी धातु मे विलीन ।

१३३. तम शोधै दीप-प्रभा ।

अन्धे को सूर्य अन्धेरा करे ।

वेश्या का पुत्र किस जाति का है ।

गुहा मे सियार पूरा अभी प्रविष्ट नही ।

१३४. सन्देही दुर्वचनकथा नाना कहै ।

वाल-स्वभाव एकत्र न रहै ।

वन-मृग फल की ओर झुण्ड त्यागै ।

देव द्रव्य रत्न को शक्ति कौन देवै ।।

१३५. नोर्. बु. रिन्. छेन्. थोग्. मर्. गङ. नस्. ऽोङस् ॥
यिद्. ब्शिन्. नोर्. बुस्. द्गोस्. ऽदोद्. स्तेर्. म. म्योङ ।
म्छोग्. गि. नोर्. बुऽि. रिन्. थङ. स्मोस्. क्यङ. क्ये. ॥
नोर्. बुऽि. ब्दग्. पो. द्ब्रुल्. बऽि. स्दुग्.[4] ब्स्ङल्. ब्रल् ॥

ग्र्यं. छेन्. पोऽि. मन्. ङग्. र्दो. र्जे. गसङ्. बऽि. म्गुर्. शेस्. ब्य. ब. नंस्. ऽब्रोर्. ग्यि. द्बङ्. पयुग्. द्पल् <u>स. र ह</u>. पऽि शल्. नस् गुसुङ्स्. प. र्जोग्स्. सो ॥

र्ग्य गर्. ग्यि. म्खन्. पो क. म ल. शी. ल. दङ, बोद्. क्यि. बन्दे. लो. च ब श्. म स्तोन् प सेङ गे. र्ग्य. ल. पो. ब्स्ग्युर्. चिङ्. श ुस्. ते. ग्तन्. ल. फब्[6] पऽो ॥

---

१३५. मणिरत्न आदित· कहाँ से आवै।
चिन्तामणि लोभ की इच्छा नही छोडे।
उत्तम मणिका मूल्य सूचित करै तो रे।
मणिका पति प्रदाने दु:ख-विना ॥

॥ इति योगीश्वर श्रीसग्हमुखकथित 'महामुद्रोपदेश' वज्रगुह्यगीति नाम समाप्त ॥

॥ भारतीय आचार्य कमलशील और भोट के वन्दनीय लो. च. व श म. स्वामी सिंहराज द्वारा अनुवादित लिखकर निर्णीत ॥

———

१५. चत्तगुह्य दोहा

(भोट और हिन्दी)

१५. चित्तगुह्य दोहा

(१) स्तन्. ऽग्युर्. ग्र्युद् (पृष्ठ ६७ क३—७१ क ७) में 'चित्तगुह्यदोहा' ('थुग्स्. क्यि. ग्सङ. ब. ग्लुर्. ग्लङस्. प) ग्रंथ है, जिसमें निम्नलिखित सिद्धों और दूसरो की सूक्तियाँ हैं—

सरह, नागार्जुन, प्रशांफल, शातरक्षित, स्थिरमति, वागीश्वर, वज्रघटा, शंकर, शांतिपा, विरूपा, ज्ञानपाद, शान्तिदेव, ज्ञानगर्भ, निरुपा, कालपा, भूसुक, लुइपा, कृष्णपा, इन्द्रभूति, रत्नकीर्ति, कौकर्त, सहज, महागजचर्म वसुधर, हेरुक, कनकोति, रविमूल, रत्नवज्र, त्रेउत्र, अनगवज्र, जवरीपा, कम्बलपा, गुदरीया, डोम्बिहेरुक, रविगुप्त, गुण(म)ति, पद्मवज्र, ज्ञानश्री, परहित, कामश्री, मि. थुब्. स्ल. व (अलाभ चद्र), जालन्धर, मैत्रीकमल, पद्मवज्र, नागबोधि, मजुमित्र, राजहस्ति, भद्रश्री, लीलाभद्र, मधूतिय, दारुपर्ण, शवरीपा आदि।

इसमें सरह का निम्नलिखित दोहा मिलता है—

(ब्रम.से. छेन्.पो सरहस्. थुग्स्.क्यि.तोंग्स्.प. म्गुर्. दु. ब्शेङस्.प.)

१. क्ये.हो ऽखोर् ऽदस्.कुन् ग्यि. चों.व.सेम्स् क्यि रङ.ब्शिन् ते।
तोंग्स् न.स्गोम् दु. मेद् क्यि म व्चोस् ल्हुग् पर्. ग्.गे ॥
रङ ल. व्शग्. नस्. शन्. लस् छोल् व अ रे. ऽख्रुल्।
ऽदि. यिन्. ऽदि. मिन्. मेद् दो.थम्स् चद् ग्ञग्. मऽि.ङङ ॥

इस सग्रह मे सबसे पहिले 'सरहपाद' का दोहा दिया गया है।

अनुवाद के बारे में लिखा है—"ग्. ले. दग्. पऽि. फ्रेङ. व. शस्. व्य. ब. ग्रुब्. थोब्. व्र्ग्यद् चुऽि तोंग्स्. वर्जोद्. प म्खऽ. ऽग्रो. मस्. यि. गेर्. ब्तब्. स्ते. ग्सङ म्जोद्. न. ग्नस्. प. लस् द्ब्यिङस्. क्यि. फो. मो. नेम्स्. क्यिस्. वकऽ. ब्ग्रोस्. नस. जे. दम्. प. ग्र्य. गर्. ल. ग्नङ व. श म. लो. च. वस्. लेग्स्. पर. ब्स्ग्युर्. वऽो"॥

(२) इससे आगे* श. म लोचव द्वारा अनुवादित "ग्रुब. थोब. ल्ङ. बचुऽि. तोंग्स्. प. बर्जोद. प. शिग. ले. ऽोद्. क्यि. फ्रेङ. ब." (७१ ख १—७४ क ८) है, जिसमें निम्नलिखित सिद्धो और दूसरो की उक्तियाँ हैं—आर्यदेव,

---

*पृष्ठ. ७१ ख १—७४ क ७।

१५. चित्तगुह्य दोहा

(हिन्दी)

नमो मजुश्रियै कुमारभताय ।

महान् ब्राह्मण सरह ने करुणायुक्त (यह) अववोध गीत रचा ।

१. अहो ससार से परे सर्वमूलचित्त का स्वभाव सोइ ।
समुझ ध्यान मे मथे विन मुक्त होइ ।
अपने को रखके अन्य का अन्वेपण अरे भ्रम ।
'यह है', 'यह नही', सब निज टूटै ।

नागार्जुन, वज्रघंटा, लूइ. शान्तिदेव, भिमपा, ग्योग् पो. ल्जोत्.प. चन् (दास गुहावाला), अवधूतिपा शवरीश्वर, ज्ञानपाल, लीलापा, रविगुप्त, धरणीधर, विनुस, (?), दिङनाग, वज्रघटा, लीलाभद्र, नागबोधि, तोग. चे.प (कुद्दालिपा), कालपा, भिनपा, पद्मांकुर सरोरुहवज्र, (सरह), गुदरी तिलोपा, नारोपा, कृष्णपा, भद्दल, डोम्बिहेरुक, कनपा, वज्रवज्र, कवल, प्रज्ञाफल, श्रीवत्स, अद्वयगुप्त, इन्द्रभूति, कपचरी, कुलमरि, रत्नबोधि, पदमवज्र, रसफल, नागबोधि, कर्मवज्र, चन्द्रकीर्ति, सुकरसिद्ध ज्ञानवज्र, सरोरुहवज्र (?सरह), रत्रित तथा बहुत-सी डाकिनियाँ। सरोरुह सरह का दूसरा नाम है, इसलिए यहाँ इस नाम से उद्धृत पद्य शायद सरह ही का हो। पद्य निम्नलिखित हैं—

१. ल्ते. व. म्खऽ द्ब्यिङ्स्. ग्रु ग्सुम्. दु ।
रिग्. पऽि. ल्ह. मोऽि स्कुर् ग्सल्. ते ॥
ऽोद् सेर्. स.प्रो. ब्स्दुस्. ऽग्रो. दोन्. ब्येद् ।
स्कु. ग्सुम्. ग्शन्. नस्. व्चल्. मि. द्गोस् ॥

और

२. द्पे. यि. ये. शेस् म्छोन्. दु. मेद् ।
दोन्. ग्यि ये. शे. स् स्गोम्. दु. मेद् ।
थब्स्. क्यि. मन्. ङन् स.म्र. रु. मेद्. ।
ब्ल मऽि द्रिन्. लन्. ऽखोर्. थब्स्. मेद् ॥

सरोरुहवचने--

१, नाभि गगन धातु के त्रिकोण मे ।

अम्ल विद्यादेवी प्रकटै ।

प्रभा उत्साह का संग्रह जगत् के अर्थ करै ।

त्रिकाय को अन्यत्र ढूँढ़ना नही चाहिए ।।

२. उपमा ज्ञान वेदने नहीं,

अर्थज्ञान ध्याने नहीं ;

उपाय-उपदेश स्मरणे नही,

गुरु कृपा उत्तर चक्र उपाय नहीं ।।

—इति कहा

---

१६. सरह के पद

(मूल, छाया)

१६. सरह के पद

दोहा, चौपाई के अतिरिक्त सरहपाद ने कितने ही गीत भी रचे है, जिनकी सख्या काफी रही होगी, पर हमारे पास तक उनमे से थोडे ही पहुँचे। गीतो के साथ उनके रागो को भी दिया गया है, जिससे यह भी पता लगता है, कि यह परिपाटी ईसा की आठवी सदी मे भी प्रचलित थी। राग गुजरी शायद गुर्जरी है, भैरवी आज भी एक प्रसिद्ध रागिनी है, मालसी मालवश्री है, देशाख भी एक पुराना राग था। भूमिका मे हम वतला चुके है, कि सरह के साथ हमारे साहित्य मे बहुत-से नये तत्त्व प्रविष्ट होते देखे जाते है। क्या इसी (अपभ्रश-)काल से राग-रागनियो की परिपाटी तो शुरू नही हुई ?

चर्या-पदो के पुराने पाठ के लिए हम अधिक अच्छी स्थिति मे नही है। नेपाल या भारत की जो प्रतिया मिली है, वह उस समय की है, जब कि भूतकाल का 'इल' प्रत्यय प्रचलित हो चुका था। सरहपाद से ५–६ शताब्दियो वाद उनके गीतो मे भारी परिवर्त्तन हो जाना स्वाभाविक है। मीराबाई के शुद्ध राजस्थानी पद कैसे विकृत रूपो मे मिलते है, यह मालूम ही है। 'चर्यापद' के लिए वहुत खीचातानी की आवश्यकता नही है। बोधि–चर्या की तरह सिद्ध-चर्या या वज्रयान-चर्या भी रही है। चर्या का अर्थ आचरण, अभ्यास या अनुष्ठान है, दिन-चर्या कहते हम उसी भाव को हिन्दी मे देखते है। नेपाल के बौद्ध अपनी गुप्त पूजा को 'चर्या या 'चचा' कहते है, जिसमे ये पद गाये जाते है। इसीलिए इन्हे चर्या-पद कहा गया। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री द्वारा सपादित चर्यापदों मे निम्नलिखित चार सरहपाद के है—

राग-गुंजरी

(१)

अपणे रचि रचि भव-निर्वाणा ।
मिछे लोअ वन्धावइ अपणा ॥
अम्हे ण जाणहुँ अचिन्त जोई ।
जाम मरण वि कइसन होई ॥
जइसो जाम, मरण वि तइसो ।
जीवन्ते मइले नाहि विशेसो ॥
जा एथु जाम मरणे विसंका ।
सो करउ रस-रसानेरे कखा ॥
जे सचराचर तिसअ भमन्ति ।
ते अजरामर किमपि न होन्ति ॥
जामे काम कि कामे जाम ।
सरह भणइ अचिन्त सो धाम ॥

(२)

राग—देशाख

नाद न बिन्दु न रवि न शशिमंडल ।
चिअराअ सहावे मूकल ॥
उज रे उजु छाड़ि मा लेहु रे वंक ।
निअहि बोहि मा जाहु रे लंक ॥
हाथेर कांकण मा लेहु दापण ।
अपणे अपा बूझते निअ मण ॥
पार-उआरें सोई गाजइ ।
दुज्जण संगे अवसरि जाइ ॥
वाम दहिण जो खाल-विखला ।
सरह भणइ वापा उज बाट भाइला ॥

(१)

निज मने रचि रचि भव निर्वाणा ।
वृथा लोक बँधावै अपना ।।
हम न जानै अचिन्त योगी ।
जनम मरण कैसा होई ।।
जैसा जनम मरणहु तैसा ।
जीवत मरत नाहि विशेषा ।।
जो यह जनम मरण की करे शंका ।
सो करै रस-रसयन कांछा ।।
जे सचराचर तृषित भ्रमन्ति ।
ते अजरामर किमपि न होन्ति ।।
जनमे कर्म कि कर्मे जन्म ।
सरह भनै अचिन्त्य सो धाम ।।

(२)

नाद न विन्दु न रवि न शशिमंडल ।
चित्तराज स्वभावे मुक्त ।।
ऋजु रे ऋजु छाडि ना लेहु रे वक ।
नियरे वोधि, ना जाहु रे लंक ।।
हाथे रे कंकण ना लेहु दर्पण ।
अपने आप वूझहु निज मन ।।
पार-वार सोई गाजै ।
दुर्जन-संगे डूवे जाये ।।
वाये दाहिने जो खाल-वेखाला ।
सरह भनै वप्पा ऋजु वाट भइला ।।

(३)

राग—भैरवी

काअ णावडि खाण्टि मण केडुआल ।
सद्गुरु-वअणे धर पतवाल ॥
चीअ थिर करि धरहु रे नाइ ।
आन उपाये पार न जाइ ॥
नौवाही नौका टानअ गुणे ।
मेलि मेल सहजे जाउ ण आणे ॥
वाटत भअ खाण्ट वि वलआ ।
भव उलोले सब वि बोलिआ ॥
कूल लइ खर सोन्ते उजाअ ।
सरह भनै गअणे समाअ ॥

(४)

राग—मालशी

मुइणेहो विदारिअ निअ मन तोहरे दोसे ।
गुरु-वअण-विहारें रे थाकिव तइ घुण्ट कइसे ॥
एक्र ट भवइ गअणा ।
वङ्गे जाया निलेसि परे भागेल तोहोर विणाणा ॥
अदभुअ भव मोहो रे दीसइ पर अप्पाणा ।
ए जग जलविम्वाकारे सहजे सूण अपणा ॥
अमिअ अच्छन्ते विस गिलेसि रे चिअ परवस अपा ।
घरे परेक वुझिले रे खाइव मइ दुठ कुण्डवाँ ॥
सरह भणन्ति वर सूण गोहाली कि मो दुठ वलन्दे ।
एकेले जग नाशिअ रे बिहरहु सुच्छन्दे ॥

(३)

काया नावडी खाँटी मन केडुआल।
सद्गुरु-वचने धरु पतवार॥
चित्त थिर करि धरहु रे नाव।
आन उपाये पार न जाव॥
नौवाहक नौका टानै गुणे।
मेलि मेल सहजे जाहु न आने॥
बाटते भय, दस्यु बलवान्।
रव हिलोरें सर्व कपमान॥
कूल से खर स्रोते उजाय।
सरह भने (जाइ) गगने समाय॥

(४)

सपने न विदारि अरे निज मन तोहरे दोसे।
गुरु-वचन विहारे रहव तैं मूढ कैसे॥
अद्भुत हुकार-भव (चित्त) गगने।
(अद्वय) वंगे लीलेसि जाया परे भागल तोर विज्ञाना॥
अद्भुत भव-मोह रे दीसइ पर आपना।
एहु जग जल-बिम्बाकार सहजे शून्य अपना॥
अमिय अछतै विष गिलेसी रे चित्त परवश आपा।
घरे परैक बूझी रे खाइव मैं दुष्ट कुडवा॥
सरह भनै वरु सूनी गोशाला कि मोर दुष्ट बलदा।
अकेले जग नाशिय रे विहरहु स्वच्छन्दे॥
॥ इति राहुल सांकृत्यायन-सम्पादित सरह दोहाकोशावलि समाप्त॥

परिशिष्ट १

१. विनयश्री की गीतियाँ[१]–

(१)

2a निमूल तरुवर डाल न पाती ।
निभर फुल्लिल्ल पेखु बिम्राती ।। ध्रु० ।।१।।
भणइ विनयश्री नोखौ तरुअर। फुल्लए करुणा फलइ अणुत्तर।
करुणामोदे सएलवि तोसए। फल संपतिएँ से भव नाशए।।२।।
से चिन्तामणि जे जइ स वासए। से फल मेलए नहि[2] ए साँसए।
वर गुरुभत्तिएँ चित्त पबोही। तहि फल लेहु अणुत्तरबोही।।३।।
गेल्लिअहुं गिरिसिहर रि जात्ते[3] । तहिं झपाविल्लि कलिके अन्ते ।।ध्रु०।।
हल कि करमि सहिएँ एकेल्लि। बिसरे राउ लेल्लइ लिसु पेल्ली।
तहि झंपइ ट्ठे[4]ल्लि हेरुअ मेले। बिसअ बिसइल्लि मा छाडिय हेले।
भणइ विनयश्री वरगुरु बएणे। नाह न मेल्लप रे गमणे।।४।।

(२)

राहुअेँ चान्दा गरसिअ जावे। गरुअ सवेअण हल सहि तावे।।ध्रु०।।
भणइ विनयश्री नोख विनाणा। रवि साँजोएँ बान्ह गहणा ।
बान्द गरसिल्ले आन्न न दिशइ। सएल विएक रूअ पडिहारइ।।
साव् गरासिउ आध राती। न तहि इन्दी बिसअ विआती।।
कइसो आपु व गहणा भइल्ला[2]। सम गरासे अथवण गइल्ला।।५।।

(३)

गिरिवर सिहरेहि लाला लाम्बए। तहिं सो[3] केवटिणि रिभर जागए।।
अरे भलि केवटिणि जाण विचारअ। माआ माच्छ निरन्तरे मारअ।।

---

१. तालपत्र का फोटो-प्लेट मिला था।

द्वंतिग नाला साव्व निरुन्धी[1] । मारम्र माच्छा निसर वान्दी ।।
माम्रा माच्छा म्रागे म विभाक्खी । म्राछइ चउमुह जाला राक्खी ।।
म्रइसि केवटिणि सो पडिहा ।

(४)

4a खाने पाने जो कोइ राता । सरुम्रर हिम्र वट भमइ उमता ।।ध्रु०।।
भन्तिएँ रे भन्तिएँ जग म्रइसे वहिउ । म्रापणु रचि रचि वानुण लाइउ[1] ।।
चउकोडि रहिम्राए सुखसाला । तथत रहिम्र मूढ भमन्ति ते काला ।।
मान छडिम्रा सदगुरु से कह । जे सो तथता सरूम्रे पावह ।।
चउक खलभलि म्रा[2] एल विवहिउ । सदगुरु पुछिया म्रापाण न चाहिउ ।।०।।

राग—वनाडी

जिम म्रन्धारे रज सो माया । तिम सो मुणहु रे सएलवि म्रापा[3] ।।ध्रु०।।
परम विरम माझे जो कोइ लागा । म्राहवा णिम्र जिम वोहिते भागा ।।
जिम नउ भासइ विविर पसि उदधि । तिम लोम्र भासइ तथता रिद्धि ।।
चउ खगमु हलहु रे ठाए एक वि ठाणा । तावे जइ पावहु सिरि माहाजा[3]णा।।
सरुम्र भणइ हसु मुम्रइसे नाइ ।
पण्डिम्र वएणे हत्थुम्र हमे थाक ।
किसे .भेम्र भावाभाव । पडिवख रहिम्रा सहज सहाव ।।

4b चउ धाउ पाञ्च काञ्ध छम्रे विसया । मम्रेल वि म्रमणेसि करि रे माया।।ध्रु०।।
गाह्य गाहक रहिअ तिहुण विलसइ । सहज मुणेन्त पडिवख नासइ ।।
गुनासुन भणिव न जाइ । सहज सहावे म्रो पडिहाइ ।।
गाह्य गाहक जइ म्रेक न ठाणा । सावग कइसे[2] जिणवर राणा ।।
म्रवधू भणइ म्रइस माण्डल चाका । ए जग सएल विसह जनि विता ।।
तिहु ण फारिउ एवउ चाके । पडिवख कम्म[3] मुणि सहज रे जाके ।।ध्रु०।।
म्रइसि चडाली तिहुणे दिट्ठ । म्रहनिसि करुणा पीवइ वइट्ठ ।।
ज्ञान समरोग निवाणे म्रतिनि । सएल माहारे[1] सहज भतिनि ।।
जाव सो गएणे दाढा । पडिवखधाम तवे सएन वि भागा ।।

अइसि चण्डालिहि जइ हिअहि पसइ। पखापख सए हेल विनासइ[5] ।।
सरुअ भणइ दे बहु विह भाङगे। सदगुरु पुच्छि जाणहु चागे।।

(५)

6a खमणा खमणिअे बाला बाली। खमणएँ खमण्डल भागअ हाली।।
विरही खमणी अइसु पमाणे। खुधी पइसइ घोर मसाणे।
भणइ विनयश्री खमणि दिठी। खमणा च्छाडि न खणवि सतुट्ठी।।
सिहर तलाम्बीचउ मुह घाटा। तहि नइ वोधिए पडिल पाटा।।
भणए विनयश्री धोविणि सेठी। सरुअ[2] पक्खाले सम्भोअे पइठी।।ध्रु०।।

(६)

भैरम्भेहे पीउ सोहइ चौरस। पाञ्चै वान्ने पखालइ समरस।।
धोअे असेसवि नालइ मूल[3] । थूल सरुअ निखारअ तुल्य।।
गाल्लें अ च्छाडी अस मुह बोलअ। जान्तहि डीअ विसेमे गालअ।।१९।।
उल्हसी घोर मसाण वि[3] साजअ। अणह घणहण कीविउ वाजअ।।
अ` भल्ल विनयश्री साम्भोअे नाचअ। जिण गुण सुन्दरि काण्ठे न मूचअ।
धीरवीरसरि गोन्दल वाटअ। साम्वइ नि भर चाक पएटअ।।
6b निहर रमहु सो गुञ्ज न तुटअ। तहि वल खाजइ नि[0] रॉगुअ रजिअ।।
सुद्ध कलिजर दुदुर वजिअ।।२०।।

(७)

आलि कालि जे करिआ दवडी। माथे गोआलिणि वेनिअ जोडी।।ध्रु०।।
दुट्ठ गोआलिणि[1] देइ न विकए। भणइ विनयश्री आपणे भखए।।
ए घोल पाणी करिआ आसार। लेइ सिणेहा एकाकार।।
आपु वस हठाणे[2] गोआलिणि डोलअ। विवरिअ करणे णवणी तोलअ।।
आन से मान्थअ भेद् दे नाली। अहन्निशि ससहर बहुअे खणान्नी।।२१।।

(८)

नअरवाहरे ताम्वोलिणी पाडा। चउपह माझे ताव पनागा।।ध्रु०।।
वइठी पसारए देइ न विकए। भणइ विन(य)श्री आपणे[1] भाग्नअ।।

सहिअे ताम्वोली ताम्वोल विलइआ। घरवि पोशइ पगरा दइआ।।
सएँ विकए सएँ आपणे कीणअ। सएँ कु आपान सो सएँ समाणअ।।
विशअे र माँझे मे पवराण।। सदगुरु वोहे तामाम्भेएँ[5] जाण।।

(९)

7a मेहलि चण्डाली घरवि वाम्हण। जग विटालन्ती ते दुइ लाम्वल।।ध्रु०।।
हल सहि का मञ्चिअचा भुअ दिट्ठा। वाह्मण मणुस चण्डालिएँ तुट्ठा।
अइसिनि राजक माणल दिगइ। माउग चण्डाली वाह्मणे पइसइ।।
देखु चण्डाली र वाह्मण जार। पञ्चि वान नेल्ल एकाकार।।२३।।
ते दुइ नासन्ति सम साँजोअे। भणइ विनयश्री मदगुरु वोहे।।

(१०)

हे हेरु न जाणमिलाज्ज। गुनने अच्छिल्लाएँ किम काज्ज।।ध्रु०।।
उठ राउल माण्डल राज। ताडिच वि[3]णु हेर न सिज्झए काज्ज।।
पञ्चअ डाकिनी जे पञ्चअ संचोएँ। अलल आहे हेरुअ वोहए।।
विश डाकिणि[4] जे विशएँ राती। हेरुअ वोहए ले विआती।।
वेन्नि डाकिणि मीले करन्ती सो। ठार उठहु भव हीहाकार।।
भणइ विनयश्री हेरु[5]अ लाङका। धणु पर हाथ कवाल खडङ्का।।३४।।

(११)

देव राग

आड् ना वेरी खाणि णिवाणी। होल वाहइ उज्झाइ पाणी।।ध्रु०।।
अणहा घणहण वाजइ तूर। पइसइ खाण्ठणी पर च कपूर[6]।।
भजर भेलो सहि सासे वडिल्ली। समुद माझे खेल[1]इ नावा हेल्ली।।
काञ्छि कण्हिला करि आउ घाडा। जिणि आपइ ट्ठोलि चउमुह डाडा।।
भणइ विनयश्री खाण्डिणि[2] लइआ। सुह भुञ्जहु निराल होइआ।।३५।।

(१२)

हल सहि घोर मसाणविहारी। नहि पडसि नाचए नै[3]रामणि दारी।।ध्रु०।।
भणए विनयश्री पेख रे पेखुण। लाख ख लाख कनो ख विलासण।।

नावए दारी करण विसेसे। इन्दी पाञ्च भूअ सम तोसे ।।
सुह वस लोली ना लेन्ते सोहअ। विसअ विसइण्णा समर सवोहअे ।।
सोन्ने रूपे बिभू[5]सिअ नारी। नाचए बिहारे से कुल दारी ।।३६।।
चन्दा आदित जे समसरस जोए।

(१३)

मल्लार राग :

हउ वाह्मण गिरिकुंज निवासी। दुठ चण्डाल।[1] ए लइल्लाहु पइसी।।ध्रु०।।
भणइ विनयश्री एकली काले। समरस भइल्लाहु वाह्मचण्डाले ।।
वहिलि समिर[2]णे कुंजअ पइसअ। से आच्छे पिणे मो कुल नासअ ।।
सहल सहिआ पुव पेखु इन्दि आली। हउ[3] वाह्मण से मे हलि चण्डाली ।।
से आणुराती चण्डाली रे देख। वेनि संजोअे असेस वि एक ।।२०।।

(१४)

गवरी राग 'शबरी[4]

एके ता मैं नावग दिल्ला। पाँच जण वाहिवा कएल्ला ।।ध्रु०।।
भणइ विनयश्री हमु कण्णाहर। जिण आ जाए थम चउमु[5]ह पार।
ललना रसना वे।न पाताका' णेहा घाल्ल लाइल चउचाका ।।।
खर सो आणहि नरु बढिअ। अलि कलि दुइ गुणे[1] कढिअ ।।
हमु कण्डा हरण भिडि नलाधम। पाञ्चन वाहि तिण आवा हम ।।
सोन रुपे ह भरल्लि नाव। कुञ्ज तवइ णिअ[2] रूप म लाव ।।३।।

(१५)

वाहडी राग

सर साजोइअ विन्धहु लाख । तुट उपाए पाखापाख ।।ध्रु०।।
भणइ[3] विनयश्री पखवि लाखण। वेह नवेह क समनुह लाखण ।।
नीचण विनाणी लाख तवे जाए। गरुअ सवेअण आन कि निजुअए ।।
अइस विनाणी सो पडिहासअ। हल ख विन्धी अप्प नवि तोसअ।

(१६)

२ सुमङ्गीत[1]–

अखड पयड मोह दण्ड खण्ड मज्जिले । काण्ड कोदण्ड नीलोप्पल सज्जिले ।।
जयपि देव मज वज्जवीरा[1] । रापि जणु अण्ण दिण दीप सवोही ।। ध्रु०।।
चंद चदन मलिणे कुकुम कत्थूरि णाणा वल लिणें[2] ।।ध्रु०।।
भणयि सुमयि मयि तुह्म पय सरणा ।
दहयि मोह महु तिण जिम दहणा ।।ध्रु०।।
रमणिजण मण रम[3]ण मजरव वीरा ।
गयण सम जरामरण समर हर वधीरा ।।
अवनिनिहित जानु सव्यहस्ते क्खड्गतदितर कर मुष्टौ तर्जनीसक्तपाश
निविड धन शरीर श्चण्डरुक्चण्डचक्पु शमयतु तव विघ्नं विघ्नहर्ताऽचलोय
जयि मुणिराजदेव मजहु मारा ।
रयिजणु[4] अणुराप्प चम्मं गभीरा ।।ध्रु०।।
गयि शरण सयल भय हरिह किअ बोही ।
उरु करुण गुरुचरण[5] णीमय गुण सोही ।।ध्रु०।।

३ लुइ गीति[2]–

[तालपत्र सवा ८ इच लवा, पौने दो इच चौडा, एक ओर प्राग्-मैथिली (मागधी) मे]

गुजरी राग

ए वथु वाथु वस जन रे जाहा, णिअे सञाण न होइ ।
तवे से पञ्चहु आअ चेवर होइ वाए[1] र गण्ठि जड पाइ ।।
अच्छि, वञ्चु रे बसन्तव खाण्डी चाही, पास पडे सिह मे वसन्ते न देखल ।
जचुजा[2] न मोडि मोडि खाइ ।।ध्रु०।।
अचल कुल दल समुद साएर अचले दश दिशि धाइ ।
एहे वाअे[3] विलसइ सिद्धा पाडगु धरिआ वुलाइ ।।ध्रु०।।

---

१. कागज के एक पृष्ठ पर। २. ताल-पत्र फोटो-प्लेट

बावे उपजइ बावें निम्रजइ चाउखण्डी डोलिआ लगाड
बा[4] वेर बणिजारा बावे व सझाइआ बावे से मूदिल जाइ ।।
निअम बरत हर हरे लोउ पूस्ट जमे रे[5] आही।
लूइ बोलन्ति अम्हे बाव खण्डे भूसहु सङग जाअ से पुलिन वशेइ ।

४. कण्हपा गीति[3]–

वेञ्चि भव पांजर तोडिअ हेले। सो करुण वेलमाठइ लीले।
डमरुहि हुकारे वाजड। वज्र योगिनि लेइ हेरुअ नाचइ ।।ध्रु०।।
फाडिअ गण चाम पसाहिउ। भैरव कालराततिणे पाडिउ ।।
वामे खटाङग दहिण करे डमरु। नाचइ हेरुअ आलम्वइ कमलू ।।
टरिअ मेरु तरन्तरु मम ताकिउ। आठ मसाण पअ भ[2] चापिउ ।।
यासु पयभार मेदिनि कापइ। हेरुअरअ धरि कान्हिल नाचड ।।४।।
सन बसहि रे तथता पाहारी। बोह भण्डारि लइ स ॱ राअ फगी[3] ।।
घूमइ नाचइ बइस परविभाग । सहज निदालू मोर कान्हिल लाग ।।
चेबइ न बेवइ भन निदा गेला। सअ न मूकल करि सुह सूतला[4] ।।
सोअणे देखिलहु चू तिहुअण सूनो। घोरि पडइ अवागमने विहूणो ।।
साखि करहु गुरु जालन्धरि वाज। मोहे न बुझइ प॰ण्डिअ अ। (ज) ।
सद्गुरु वएणा। मूल सुन्न बाप्प स एल वासणा ।।२९।।

---

२. ताम्र-पत्र फोटो-प्लेट

परिशिष्ट २

सरह दोहाकोश-गीतिदोहार्धानुक्रमणी

(ह हरप्रसादशास्त्रीके 'वौद्ध गान ओ दोहा'का पृष्ठांक), अन्यत्र दोहांक

परिशिष्ट ३

अपभ्रंशभोट--शब्दानुक्रमणी

त तिब्बती अनुवाद। स. सस्क्य हस्तलेख। व वागची सपादित दोहाकोश। श शहीदुल्ला।

अ∠च (श्र. ७२,७८,८०) न के अर्थमे मि (श. ६८), म.यिन् प. (श ७६), मेद् (श ८४, १०६)
अइरि ∠आचार्य (श वग्र) स. ३
अइसे ∠ईदृश, द ल्तर् (त ८१, ब ६७) देल्तर् (त ६२, व ७६)
अक्कट ∠आश्चर्य, ख्ृल् प शिग् प. (त ६३, ब. ७६)
अक्खर ∠अक्षर, यि गे. (त ७१, १२८, स. ६४, २५)
अक्खि ∠अक्षि, मिग् (त ३, व २)
अग्ग ∠अग्र, म्दुन् (त. २६, स ५२)
अग्गि ∠अग्नि, मे (त २; व १)
अच्छइ ∠अस्ति, ग्नस् (श ६४,६६)
अच्छन्त ∠सन्, दुग्. गयुर् (त १००, ब ८१) ग्नस्-शिङ (त २५, स. २३)
अच्छहु ∠अस्तु, छुल् दु (त ७०, स ६२ यिन् प (त ६४. स ६२)
अणवर ∠अनवरत, ग्दोद् नस् (त ७४; स ६७, श ६३)
अणु–ड्ुल् ∠त ७४, स ६७)
अणुअर ∠अनन्तर, ङेस् पर् मेद् दे (त ४१, व ४०)
अणुत्तर ∠अनुत्तर, व्ल मेद् (त ७३, स ६६)
अण्ण, अण्णु ∠अन्य, ग्शन् (व ५, त ६, ६६, स ६७), ख चिग् (त. ११, स १०)
अण्णे ∠अन्यै, छिग् गिस् (त ३६; स ३४)
अत्थमणु जाइ ∠अस्त याति, ञो वर् ऽगग्स् ग्युर् (त ५६, स ६४)
अत्थ गउ ∠अस्तगतो, नुब् प (त ११८, व ६८), गग्स् (ग ४८)
अत्थि ∠अस्ति, ग्नस् (त ८१, व ७, ६७)
अत्थी ∠अर्थी, दोद् प चन् पो (त १३४, व १११)
अत्थी अण ∠अर्थी जन, ० न्पये न्ो (त १३४ व. १११)
अदअ∠अद्वय, ग्ञिस् मेद् (ग १००)

अन्धार ∠अन्धकार, मुन् नग्. (त ११७; व ६७, मुन् प (त २१, स. १६)

अँधार ∠अधकार, ल्कोग् तु ग्युर् (त. २१, स. १६)

अन्त–म्थऽ ∠त. २४; स. ५१)

अप्पउँ ∠आत्मापि, व्दग् ञिद् (त. ७८, स ७१)

अप्पउ अप्पा ∠आत्मनि आत्मना, रङ गिम् रङ ल (त ७४, स. ६७)

अप्पण ∠आत्मन., व्दग् (त. ७; व. ६)

अप्पणु∠आत्मन॰, व्दग्.ञिद्.(त ६६; स. १२१)

अप्प सहाव ∠आत्मन. स्वभाव, रङ. गि. ङो. वो. (त. ३०; स. २६)

अप्पा ∠आत्मा (आप), व्दग् ञिद्. (त. ७६; स. ६६)

अप्पाण ∠आत्मनः (आपन), रङ. ञिद् (त. २६,५४; स. ५१,८०)

अ-पुव्व ∠अ-पूर्व, स्ङ. न. ` . (त. १०१; व. ८२)

अव्भन्तरु∠अभ्यन्तर, नङ (त. ११०; व ८६)

अभिण्ण-मइ∠अभिन्न-मति, (श. ८६)

अमण ∠आगमन, ऽोङ. (श. ७०)

अमिअ-रस ∠अमृत-रस, व्दुद्. चिऽ. छु (त ६६, स ४४)

अरे—अे म हो. (त ५५; व. ४४ क्ये. हो (त. ८६; व. ७१)

अरे पुत्त∠अरे पुत्र, क्ये हो. वु. (त ६१ व. ५१)

अवचेअण ∠अवचेतन, तोंग्स् प. (श. १८)

अवस्स ∠अवश्य, नम्स्. क्यङ (त. ६२, व. ७५)

अ-वाअ ∠अ-वाच्य, व्र्जोद् दु मेद्. (त. २३, स. २२)

अ-वाच्चे ∠अ-वाच्ये, व्र्जोद्. दु मिन् (त. ३५; स. ८६)

अ-विआर ∠अ-विकार, स्ग्यद्.पर्. व्य. ∠त. १०३; व ६४)

अ विकल–मि तोंग्. प (त. १२८, व. १०४)

अ-वेज्ज ∠अ-विद्या, मि.शेस्. प. (त ६१; त ६१; व ५१, श. ५३)

अ-समल–दग्.प. (त २५; व २३)

अ-सेस ∠अ-शेष, म.लुस्. (त २८; स. ५०)

अह ∠अथ, गल्. ते. (श. २२)

अहवा ∠अथवा, ऽोन्.ते. (त. १६; स. १७) यङ न. (त. ११५, व ६५)

अहिमाण ∠अभिमान, मृङोन्. पऽि ङ. र्ग्यल्. (त. ६३, स ६०)

आअतन ∠आयतन, (श ६४)
आआसवि ∠आयस्तव्य, गोस्.पर् ग्युर् (त ३६, स ३४)
आअर ∠आकर, म्ञास् ल्दन् (त ६०, स ७६)
आइ ∠आदि, थोग् (त २४, स. ५१)
आएस ∠आदेश, मन् ङग् (त. ३८, स. २८)
आच्छ-अ (है), (स ६६)
आणन्द ∠आनन्द, द्गऽ (त ११६, व ६६)
आहास∠आभास, रङ व्शिन्.(त ७६, व ७२)
आयत्त–ग्नस्.न (त. ११६; व. ६६)
आयत्तः—द्वङ.गिस् (त. ११६, व. ६६)
आलमाल–प्रलाप, चल् चोल्. ग्तम् (त. ६५, स ६३)
आलमाल करह–द्मिग्स् पर्.व्येद् प. (त १३२, व. १०६)
आले ∠अलम्, ख्ुल् प. (श. २०) मिङ. (श. ३५), म्य डन्.ग्यि (श. ५१)
आलिउल ∠आलिकुल, र्तग् तु (त २५, स ४८)
आवइ जाइ ∠आयाति याति, ओट ऽोङ (त. १०२; व. ८२)
आवइ ∠आगमति (आगच्छति), ऽोङ्म् (त ८४)
आवनन्त ∠आयान्त, ऽोङस् (त १००, व ८१)
आस ∠आशा, रे.व (त ११४, व ६४)
आसत्ति ∠आसक्ति, शेन् प (त ८६, व ७१)
आसन—स्क्यिल् (त ५, व ४)
इ ∠हि, (श ३७, ७६)
इअ ∠इति, (श ८६)
इच्छा–ऽदोद् प (त. ४३, स २३, ६८, व ७६)
इति—शेस् (त २०)
इंदि ∠इन्द्रिय, द्वङ पो (श ६४)
इन्दिय ∠इन्द्रिय, द्वङ पो (त ३०, स २६ त १२१, व १०१)
उ ∠च, (श २०)
उअ-पिट्ठ ∠उपपीठ, ञो ञि ग्नस (त ५८, स ६६)
उअल ∠उत्पल, पद्म (त ७७, न ६६)
उआर ∠उपकार, फन् प. (त १०३ व १०७)
उएस ∠उपदेश, मन् ङग् (त ३० म ४६) व्स्नन् प (त ३, व ३)
उज्जोअ ∠उद्योत, ऽछद् पर् योद् प (त. ५१, व ६७)

एहिं <अत्र, अधिकरणप्रत्यय), वर् (त. ५; व ४)

एहु <अय, ऽदि (त १३५; व ११२) दि ल (त २६, स ५१)

ऐसे<ईदृश, दे ल्त वु ञ्चिद् (त ३६, व ३४)

ओ <औ (द्विवचन) दग् (त २, व १)

कज्ज <कार्य, दोन् (त ३, व २)

कट्ठ <काष्ठ, शिङ (त ५४, स ४४)

कड्ढिअ <कर्षित, म्थोन् पोस्. (त २३; स. १६)

कण्ण <कर्ण, र्न वर् (त ५, व. ४)

कप्प <कल्प, तोग् (त ६२, व ५२)

कवडिआर <कवडिकार. (हाथीवान) ग्लङ पो स्क्योङ (त. १२१, व १०१)

कमल <पद्म (त ११४, व ६४)

कम्म <कर्म, लम् (त ४१, स २४)

कर–लग् (त १२१, व ११)

करइ<करोति, व्येद् पर् सद् (त ६२, व ७५)

(करतल)–म्थिन् (त १६, स १५)

करहा <करभ, ङ मो. (त. ५३, स ४३)

करहु <कुरु, व्येद् चिग् (त ३३; स ४४)

करि—ग्लङ छेन् (त ६, ८७, ६३, व ८, ७१, ७६)

करिज्जअ <क्रियते, व्य. (त. ७८, स ७१) व्येद् ऽग्युर् न. (त ६४; व ७७)

करिज्जइ <क्रियते, व्येद् पर् ऽग्युर् (त ६३, व ७७)

करु <कुरु, व्येद् चिङ (त ८६, व ७१) व्याद् पर् (त. २७, न ५०)

करुण–स्ञिङ जे. (त. १५, स. १६)

कल <कला, रङ व्शिन् (श ५५)

कलङ–ञोग् प (त. १००, व ८१)

कवण <कोनु, गङ यन्. ते. १३५, व. ११२)

कहइ<कथयति, व्स्तन् चिङ. (त ७६, स. ६६)

कहाण सक्कइ<कथितु शक्नोति, व्स्तन् पर् नुस् प (त ६२, व ५०)

कहमि <कथयामि, (श ६५)

कहाणा <कथानक, ग्तम् (त ४७, ६५, स १२७)

कहि <कुत्र, गङ यङ (त १०१, व ८२)

कहिं <कुत्र, गङ दु (त ३८, स ३७) <कथ, चि शिग् (त ६४, स ६१)

केवल–ख्वऽ गि ((त. १६, स १७) (त १०, ८४, व ६, ७०) च ((त १०, वर्व ६)

केस ∠केश, स्क (त ६, व ५)

केसर–गे सर् (त ५६, स ६७)

को ∠क, चि स्ले (त ११८, व ६८)

कोइ ∠कोपि, गड गिग् (त ८४, व ६६) चिग् क्यड् (त १०८, स २५)

कोणहि ∠कोणे, स्छम्ग् सु (त ५, व ४)

कोल–वड् दु (त ३४, व ८६)

कोवि∠कोपि, मु ल (त ३०, स ५२) ल ल (त ११, स १०)

कोश—म्ज ोद्

(वत्वा–शिड (त २, व १),

खज्जइ ∠खाद्यते, न शिड (त १०५) व. ८६ त १०३, व ८४)

खण (क्षण, स्कद् चिग् स (त ११५, व ६५), दुम्(त ११६, व ६६) फ्यि गोर् वोर् व (त १३४, व. १११)

खनग्र ∠क्षणक, स्कद् चिग् न (श. ६७)

खवण ∠क्षपण (जैनसाधु), नन् म्राऽि यिन् चन् (त. ७, व ६)

खरटह–प्स्ल (त १५)

खलु–डेस्. (श १०४)

खसन–नग्.म्वऽि रड व्रिन् (न ८८; व ७२) ग्न्ऽ ग्राम् (न ६३, ६८, व ७०)

खाभन्ने ∠नाडन्न, न निड (त २५, स ४८)

खाऽ ∠खादित्वा, सो (प यिन् (न ४०, व ६०)

खाद्दु ∠खाद, न (त ६५, व ५५)

खीणु ∠क्षीण, नलग् नु नेद् (न १०६ स ४१)

खुनखुसान–(कुसकुमाना), गुव् गुव् (त ५, व ४)

खेत्त ∠क्षेत्र, निड (त ५८, स ६६)

गइ ∠गत्वा सोड नरा् (त ६८, व ८०)

गउ ∠गतो, ज्युर् (न ३०, स २६, त ८६, व ७३)

गइन्द ∠गजेन्द्र, ग्नड पो (त १२१, व १०१

गगासायर ∠गगासागर, गड गडि र्न नो (त ५७, स ६५)

गति–ग्नगन् (त ३३, स ८८)

गय–द्रि (त ६७, व ५६), रन र्गर् (त ५५, स ४८)

गम्भीन ∠गम्भीन, न्द् प (त ११६ व ८६)

गहण ∠ग्रहण, (त ८, ८ ७)

गहिअ ∠गृहीत्वा, व्लड्स्. नस् (त १२१; व.११)
गहिउ ∠गृहीतो, जिन्. (त ७७; स. ६६)
गही ∠गृहे, ख्यिम् न (त.२०; स १८)
गाडव ∠गात्वा, ग्लु लेन् ते (त ४१ स. ३६)
गाम ∠ग्राम, ग्रोड (त ८०; स. ६७, व. ६७)
गाहइ ∠गहते, शेस्. प. (त ११३; व. ६१)
गाहिइ ∠गाहितो, स्यव् ग्रुय् प. (त. ४८, स. १२७)
गाहिव ∠गाहित, म्थोड. डो. (त ४१, स. ३६)
गिरि–रि (त.१२०; व.१००)
गिहवास ∠गृहवास, स्ख्यिम्.थव्. (त १३५; व ११)
गुण–योन् तन् (त. ४०, ७१, ६०, स. ५,३६,६४,७८)
गुणिज्जइ ∠गुण्यते, ऽजिन्. दड स्गोम्.प (त १८; स १४)
स्गोम् प (त. १८; स. १४)
गुरु–व्ल म. (त.६४; स.६२, व ५४ त. ८४, स. ६६ , स्लोव् द्पोन्. (त. ३१; स. ३४)
गुरुपाअ ∠गुरुपाद, व्ल.मऽि शल्.) (त १६, ३१; स. १५, २६)
गुरु वर–व्ल म दम् प. (त. ३५; स.८६)
गुहिर ∠गभीर, म्थोन् प. (श. २३)
घण्टा–द्रिल्.वु. (त ५, व ४)
घर ∠गृह, ख्यिम् (त. २; व. १)
घरहि ∠गृहे, ख्यिम् दु. (त ५; व. ४)
घरिणि ∠गृहिणी, ख्यिम्. व्दग् मो) (त १०३; व. ८४)
घरे ∠गृहे, ख्यिम्. (त ४७; व.१२७)
घरे अच्छइ ∠गृहे सति, ख्यिम्. न. ग्नम् (त ७५, व. ६२)
घरे घरे ∠गृहे गृहे, ख्यिम्. दड ख्यिम् न. त ६५, स.१२७; व ७८)
घोरान्धारे ∠घोरान्धकारे, मुन् नग्. छेन् पो. (त ११७; व ६७)
घोलिअइ ∠घूर्णित, रव् तु गेस्. (त. १०८, स २५)
(च)–दड (त.२, व.१)
चउजह ∠चतुर्दश, (श. ६१)
चउत्थ ∠चतुर्थ, व्शि. प. (त.११६; व. ६६)
चक्क ∠चक्र, ऽखोर्. लो. (त. २५; स ४८), ऽखोर्. लो. दम्. प (त. ११८; व ६८)
चंग–चारु, मि सून् (त. ५५, स ४५)
चंचल–मि सून् (त.५५; स ४५)

चदहभुवणें ∠चतुर्दश भुवने, व्चु वृशि प यि. स. ल. (त ११०, ब. ८९)

चन्द्रमणि ∠चन्द्रमणि, स्लव नोर् वु (त ११७, व ६७)

चमर—ग्यग, त ८, व ७)

चरेइ∠चरेत्, स्पद् पर् वृय (त ८४, व. ७०)

चल—ग्यो (त ८०; ब. ६६)

चलउ∠चलत, स्क्योद्. (त ६५;स. ६३)

चान्द∠चन्द्र, स्ल व (त. ५८, स ६६)

चार∠चत्वारि, वृशि (त. २, ब. १)

चाली∠चलित्वा, ऽन्नोल्. (त ५, व ४)

चाहन्ते ∠इच्छन्त, पश्यन्त, वृल्तम् शिङ (त ३५, स ३४)

चाहिअ ∠दृष्टो मृथोङ (श ४१)

चाहिअ∠दृष्टो, मृथोङ ङो (त ४१, व. ३९)

चित्त—वृसम् (त ७०, स ६४, त ४८; स. १२८)
सेम्स् (त ३७,७४,६०, स २७, ६७,७८, त १३२;व १०८)

चित्तआ—वृसम् ग्यिस् मि स्यव् (त. ४८; स. १२८)

चित्तह∠चित्तस्य, सेम्प् स्क्ये (त ५४; स ४४)

चित्ताचित्त—वृस्गोम् दङ मि वृस्गोम् (त ६६, स. १२३)

चित्तेक रूअ ∠चित्तैकरूप, सेमेस् क्यि छुल् ःजिन् (त ११,स १०)

चिन्तइ ∠चिन्तयति, सेम्स् प (त ३८, स २८)

चिन्तामणि—यिड् वृशिन् नोर् वु (त ४३, स २३, त ९३, व ७६)

चेल्लु—श्रामणेर (चेला), दगे छुल् (त १०, स ९, व ९)

च्छड्डइ—दोर् रो (त १०१, व ८२)

च्छड्डहु—वोर् (त १७, स १३)

च्छाडी—व्रल् (त १३, स ११)

च्छारे ∠क्षारेण, थल् वस् (त ४; व. ३)

च्छुप्पइ ∠स्पृशति, रेग् वृशिन् (त ७७, स ६९)

छिण्ण∠छिन्न वृचद् प (त ७२, स ६५)

जइ ∠यदि, गङ छे (त ७९, स ६९)

जइ ∠यदि, गल् ते (त ७, व ६)
ग्लर् यङ (त ११६, व ६५)

जजं∠यंय, गङ गङ (त २९, स. ५२)

जग ∠जगत्, ऽग्रो (त ४८, स १२८) ऽग्रो कुन्त् (त ६५, स. १२८), ऽग्रो नॅम्स् (त ४१, स २४, ऽग्रो व (त ४, २४, १०८, स ३, २२, २५)

जड—व्लुन् पो (त. ४४, ६८, स ६१)

जडा (जटा, रल् प (त. ४, व ३)

जण ∠जन, स्क्ये वो (त. ३६, स ३५, त ५, व ४)

जत ∠यद्, गङ.जिग् (श. २३)

जत्थ ∠यत्र, गङ.दु (त. ३०; स. २६)

जन्त ∠यान्त, फ्यिन्. (त १००; व ८१)

जव्वे ∠यदा, गङ छे (त ४१, स. ३६, व. ३६)

जरइ ∠जरति, नॅम् पर् (श ७१)

जलेहि जल ∠जले जल, छु.ल छु (त ३४; न ८८)

जस् ∠यस्य, गङ. ल. त १४, स. १२)

जहि ∠यत्र, गङ (त. १२५; व. १०३ गङ दु (त. २६; स. ४६) गङ. ल (त. ८१; व. ६७)

जा ∠जात, (श ७५)

जाउ ∠यावत्, जि.स्रिद् (त ८०, स. ६७)

जाइ ∠याति, ऽग्रो. (त १५; स. १३)

जाण ∠जानाति, म्योङ बर्.शेस् (त ११६, व ६ व ६६ शेस् पर् व्य (त १०७, व ८७)

जाणअ ∠जानीत, तोग्स् सो (त ८२, स. ७४)

जाणइ ∠जानाति, शेस् पर् ग्युर् (त. ११५, ब ६५)

जाणमि ∠जानामि, शेस् सो (त १११ ब. ६०)

जाणहु ∠जानीहि, शेस्. पर्. ब्योस् (त. ७६, स. ६६, त. ३६, व ३७)

जाणिअ ∠ज्ञात्वा, शेस्. पर्. शिङ (त. ४; व ३)

जाणिउ ∠जानीतो ज्ञातो, शेस् पर् नुस्. (त. ६१, स. ५१)

जाणी ∠ज्ञात्वा, शेस् ब्यम् (त ७६, स. ६६)

जानन्ती ∠शेस्. (त. २, व १)

जाया ?—व्लस्. व्र्जोद् (त ७६, स. ६६)

जाल—ऽद्र. ब. (श. ३५)

जाव ∠यावत्, गङ छे (त. ७३, स. ६६)

जाली ∠ज्वालयित्वा, व्तङ नस् (त ५, व ४)

जाहि ∠याहि, ऽग्रो (त १२५, ब. १०३)

जिग्घउ ∠जिग्घ, स्नोम् स्यम्. (त. ६५, स ६२)
जिम ∠यथा, जि. ल्तर् (त ६३, १०१, ११७, व ७६, ८६, ६७,)
जुत्त ∠यूथ, (श ७३)
जुवइ ∠युवती, वुद् मेद्. (त ८, व. ७)
जे ∠य (श १६, ६१, ७६, ८६, ६३)
जेण ∠येन, गड गिस् (त ४४,१२३, स ६१)
जेत्तइ ∠याव्, जि ल्तर् (त ८६६ स ७७)
जो ∠य, गड (त १५, स १६)
गड यिन् (त १२६, व १०२)
गड शिग्. (त १४,२०, स १२, २०, त ८१, ८३, व ७६, ७३)
चि. स्ले (त ११४, व ६८)
जोअण ∠योजन, स्व्योर्. व (श १७)
जोअमि–∠जोहू, म्थोड व (त २६ स. ५२)
जोइ ∠योगी, र्नल् ड्व्योर् (त. ५४, स ४४)
जोइणिचार ∠योगिनिचार, र्नल् ड्व्योर्. स्प्योद् प. (त १०४, व ८४)
जोइणि माअ ∠योगिनी माया, स्ग्यु मजि र्नल्. ड्व्योर्. (त १०६) व ८६)
जोइ ∠योगी, र्नल्. ड्व्योर्. (त. ३४, १०५, स. ८८)
जोडण ∠योजन, स्व्योर् नर् (त १६, स १७)
जो पुण ∠य पुन, गड यङ (त १६, स १७)
जोहि–रिग् व्योद् (त ११२, व ६१)
झगड–झगडो, ग्दुड व्येद् चिग् (त २५, व. २३)
झाण ∠ध्यान, व्सम् ग्तन् (त १४ ३४, ६३, स १२, ४१, ६१)
ठविअ∠स्थापित, ग्तेर् (त १६ स १५)
ठविअउ ∠स्थापित-तो, ग्नस् पजि (त १६, स १५)
ठाइ ∠स्थापि, वर्तन्. पर् ग्नग् (त. ५२; स ४३)
ठाण ∠स्थान, ग्नम् (त ६५, स १०७ त ४७, स १२७)
ठाणु वर ∠स्थान वर, ग्नस् म्छोग्. (त ६२; व ५२)
ठिअअ ∠स्थितक, ग्नम्. (त १२७, व १०३)
ठिअउ ∠स्थितको, ग्नम् (त ११०, व ८६)
ठिउ ∠स्थितो, ग्नम् प (त. १२८, व. १०४ ञमम्. पर्. ग्गुर् (त. ३०; स. २६)

ठीअउ ∠स्थितो, ओड्स्. पऽि. छ्रे. (त. १३४; व. १११)

ढ्हाविअ ∠दग्ध्वा, ग्नोद्.प (त. ३; व २)

णई ∠नदी, छ्रू (त १२०; व.१००)

णउ∠न च, म यिन् ते. (त.२२, स.१९ त. ११६; व ९६) मि. (त. १७; स. १७)

णख ∠नख, सोन्. मो. (त. ६; व ५)

णण्गल ∠नग्नल, गोस्. दङ. व्रल्. शिङ (त. ६, व ५)

णण्गाविअ ∠नग्नत्व, ग्चेर्. वु. (त. ७, व. ६)

ण वाअ्रे ∠न वाच्ये, व्र्जोद् मित्. (त. ६७; स. ७७)

णाउ∠नाम, मिङ (त १३१, व.१०७)

णाम∠नाम, मिङ. (त.१११; व.९०)

णाल∠नाल, र्नल् म. (त.५९; स ९७)

णासइ ∠नाशयति, ऽगग्स्. (त. ६३; स. ६०)

णासग्ग∠नासाग्र, स्न. चॅर्. (त.५४; स. ४४)

णाह ∠नाथ, म्गोन्. पो. (त. ३०; स ५२, त. ८७; स. ७५, त. ९०, व. ७२)

णाहि ∠नहि, मेद्. (त. २६; स.४९)

णि ∠निस्, मेद्. (श. ७०)

णिअ ∠निज, गञ्ग्.मऽि. (त. १९, स. १६)

णिउण ∠निपुण, ग्चिग्. तु. स्दोद्. (श. ३४)

णिक्करुण∠निष्करुण, दम्. पऽि स्ञिङ. र्जे. (त. १३१; व. १०९)

णिक्कलंक ∠निष्कलक, र्तोग्. प. (त. १००; व ८१)

णिक्कोली–निर्मल, मि. लुम्. द्रि मेद् (श. ६३) व्लुन्. पो. (त.७६; स. ६८)

णिच्चल ∠निश्चल, व्र्तन् पर्. ग्युर् प (त. ५५; व. ४५)

मि. ग्यो (त. ५२,७३,६९,७७; स. ६६ व. ८३)

णिवेसी ∠निवेश्य, व्चुम्स्.ते. (त ५, व ४.)

णिव्वाण ∠निर्वाण, म्य ङन्.ऽदस् (त. १३,१७, स. ११, १७)

परम–म्य.ङन् ऽदस्. (त ४२, स. २४)

णिम्मल∠निर्मल, द्रि. म. मेद्. (त.१२२, व.१०२)

णिम्मिअउ ∠निर्मितो, स्प्रुल्. वर्. स्प्रुल्. (त. ११८; व. ९८)

णिमिस ∠निमिष, ऽजम्स् (त. ७९, व. ६६)

णिर् ∠निर्. मेद्. (श. ९०)

णिरक्खर ∠निरक्षर, यि गे.मेद्. (त १०८, स. २५)
णिरबन्ध ∠निर्बंध, मि गोग्स्. (त ७९, स. ६४)
णिरन्तर ∠निरन्तर, तंग् पर्. (त.१२५ व १०३) गंयुन् दु. (त १२३, व. १०३ त. ११०; व. ८९) गंयुन् दु. ग्नस्. प. (त. १२९, व .१०६)
णिरास ∠निराश, रे.व.मेद्. (त. १३४; व १२१)
णिरुद्ध ∠निरुद्ध, गग्स् पर् ऽग्युर् (त ३५, स. ३४)
णिलज्ज ∠निर्लज्ज, ङो छ.मेद् (त ८३, स. ७५)
णिस्सरि जाइ ∠निस्सृत्य याति, ल्दोग्. पर् ऽग्युर्.प (त.१२१, व १०१)
णिस्सर ∠निस्सर, ल्दोग्. प. (त.१३१, व १०१)
णिहाल ∠निभालय, ब्र्तग्स् न (त ११९, व. ९९)
णेवज्ज ∠नैवेद्य, ल्ह ब्शस्. (त १४, स १२)
णहुश्रे–ग्चिग् तु. (त. ३४; व ८८)
तइलोग्र (ण) ∠त्रिलोचन, मिग् ग्सुम् (त. ६०; स. ९९)
तड ∠तट, ग्रम् दु. (त १२०, व १००)
तण ∠तनु, लुस् (त ३१, स २९)
तत्त, तात्त ∠तत्त्व, दे ञिद् (त ३९, व. ३५ त ३८, स. २८)
तत्तइ ∠तावत्, दे मिद् (त ८७, म ७२)
तत्तरहिग्र ∠तत्त्वरहित, दे ञिद् ग्रल् ऽग्युर् (त १०; व ९)
तन्त ∠तन्त्र, ग्युद्. (त. २८, व ७३)
तप–दक्ऽ, थुब् (स १३)
तब्बे ∠तदा, दे छे. (त.४०, स ३९
तरंग–दब्. ऽलेब्स् (त १००, म ८१ र्लब्स् दग् (त. ८८, म ७६, व ७२)
तरुग्रर ∠तरुवर, स्दोङ.पो (त १३०, व. १ व. १०७), स्दोङ पो दम्. प (त. १३१; व. १०८)
तहवि ∠तथापि, दे.ऽद्रस् (त ७९, न. ७२) दे बस् (त. १३५, व. १११)
तहा ∠तथा, दे ञिद्. नस् (त. १२१, द १०१)
तेहि ∠तदा. दे छे (त ९३, व.७७) ∠तत्र. देर् (त २८, स ५१) दे ल (त. ११. व. १०, त १३०. व १०९)
ता–ञिद् (त ७२, न ७०)
तारा–स्कर् म (त ११८ व ९८)
ताव ∠तावत् जि स्निद् (त १०८ न ८५) दे द्द (त ७३, न ९९ न. १०० व ८३)

तावइ ∠तावत्, दे सिृद् (त ८०, स ६७)

तिण्णवि ∠त्रीण्यपि, र्नम्.ग्सुम् ग्यि. (त ३७, स. २७)

तित्थ ∠तीर्थ, मु ग् नस् (त ५६, स. ६७)

वव् स्तेग्स् (त १५, स १३)

तिम ∠तथा, दे व्शिन् (त ११०, व. ८६)

तिल—तिल् (त ६२)

तिसिअ ∠तृपित, स्कोम् प (त. ६६, स. ८८)

तिसिओ ∠तृपित, स्कोम् नस्. (त ११३, व ६१), स्गोम् पस् (त. ११३, व ६१)

तिसित्तन ∠तृषितत्व, स्कोम्. (श. ६३)

तिहुअण ∠त्रिभुवन, खम्स् ग्सुम् (त २४, स ५०, व १३०, व १०७) स ग्सुम् (त १०६, ११४, व व ८७, ६४)

तुट्टइ ∠त्रुट्यति, छ्द् ते (त. ७६, स ७२) र्नम् पर् ऽछ्द् पर् ग्युर्. (त ५६, स ६४)

तुरग—र्त ∠त ६, व ८)

तुल्ले ∠तुल्ये, म्ज्म् (त. ४, व ३)

तुस ∠तुप, गुन् प (त ६२, व ७५)

त्थविर ∠स्थविर, ग्नस् व्र्तन्. (त १०, ६)

त्रिदडी—द्वयुग् ग्सुम्.लग्स् ल्दन् (त. ३, व २)

थक्कु ∠तिष्ठ, ऽद्रुग्, (त १२५, व १०३

थल ∠स्थल, थङ (त ६६, स. ४४)

थाक्कइ ∠तिप्ठति, ग्नस् व्र्तन् प (त. ७३; स ६६)

थाक्कु ∠तिष्ठ, ऽद्रुग् (श १०५)

दक्खिणा ∠दक्षिणा, व्ल मऽि. योन् (त ६, व ५)

दडी—द्ब्यु गु. (त. ३, व. २)

दत्त ∠दैत्य, व्यिन् चिङ. (त. ३६; स. ३५)

दलु ∠दत्त, स्तोङ. पो (त. ५६, स ६७)

दस ∠दश, ब्चु. (त २६, स. ५२)

दाण ∠दान, स्ब्यिन् प (त. १३५; व. ११२)

दिक्खिज्जइ ∠दीक्ष्यते, द्वङ नम्स. व्स्कुर् शिङ (त ६, व ५

दिज्जअ ∠दत्त्वा, व्यनि् नस्. (त ७८, स ७१)

दिट्ठउ ∠दृष्टो, यङ दग् म्थोङ (त ५६, स ६७)

दिट्ठि ∠दृष्टि, ल्त व (त ११६, व ६६ ल्त वु (त.१८, स १५, म्थोङ व (त ३५, स ३४)

दिट्ठो ∠दृष्टो, म्योङ (त ११, व. १०)

दिवाग्रर ∠दिवाकर, स्नङ व्येद् (त ११८, ब ९८), व्सल् ब्येद् (त. ५८, स ६६)
दिस∠दिशा, फ्योग्स् (त २९, स ५२)
दीग्रउ ∠दत्तो, स्तेर् व (त १३५, व ११२)
दीप–मर् मे (त १४, स १२)
दीवा ∠दीप, मर् मे (त ५, व ४)
दीस्सइ ∠दृश्यते, म्थोङ (त १००, व. ८१)
दीसइ ∠दृश्यते, म्थोङ ऽद्र (त १९, स. १५), म्थोङ. स्ते (त ८१, स ६७)
दीह ∠दीर्घ, रिङ (त ६, व. ५)
दु ∠दुर्, मेद् (श. ८८)
दुक्ख ∠दुःख, स्दुग् व्स्डल. (त ११८, ब ९८)
दुट्ठ ∠दुष्ट, ञि. सेर् (त ८९, व. ७३)
दुरिग्र ∠दुरित, स्दिग् प. (त ११७, व. ९७)
दुल्लक्ख ∠दुर्लक्ष्य, म्छोन् मेद (त १०६; व ८६)
देइ ∠ददाति, (दाति, स्तेर् वर् व्येद् प. यि. (त ४३, स २३)
देक्खइ ∠ देक्खति, प्रेक्षते, ल्तोम् (त. १९, स १५
देक्खउ ∠प्रेक्षस्व, म्थोङ (त ६५, स. ६२)
देव—ल्ह, (त ७८, स ७१)
देस ∠देश, युल् (त ७७, स ७०)
देह–लुस् (त ४, व ३, त ७३, स ६६)
देहहि∠देहे, लुस् ल (त ८२, स ७४)
देहा सरिस ∠देह सदृश, लुस् दङ ऽद्र (त ५९, स ९७)
दोस ∠दोष, स्क्योन् (त ९०, स ७८, व. १०३) ञोस् प (त ४०, स ९०)
ग्ञोन् पो (त. ९०)
दोसे ∠दोषेण, स्क्योन् ग्यिस्. (त ३९, व ३४
दोहा ∠दोधक, (श ६४)
धण्णो ∠धन्यो, ग्तेर् यिन् (त. ८८, व ६९)
धवा∠द्वन्द्व, ग्रुल् प (त ३३, स स ६४) शेन् प (त १७, स १३)
धवी–ञु वर् व्येद् (त ५, व ४)
धम्म ∠धर्म, छोस् (त ४, व. ३)
धम्म, अ- ∠अधर्म, छोस् मिन्. (त. ४, व ३)
धरिज्जइ ∠धार्यते, ऽजिन् प यिन् (त ९८, व ७७)
धरहि∠धारयित्वा, ञोन्‌न् गर् (त ३३ स. ४४)

धाग्ण–व्स्र् ग्नन्. (त २४, ७६, व.६९,२३)

धावइ∠धावति, ञ्रो व चोम्. (त ५२, स ४३) ञ्ोग्स् व्गिन्. (त ११३, स.९१)

धाविउ ∠धावितो, गँ्युग् व्येट् चिड (त ११ स १०)

वाहिज्जइ∠ध्यायेत, व्रमम्.ग्नन् ञ्युर्. (त १००, व ८१)

वेअ ∠व्येय, व्रमम्.व्य (त २४,७६, स ७३ ६९)

न—मि. (त.२, व. १)

न्हाइ ∠स्नात्वा, ग्ुग्स् प (त १५, स १३)

पअगम ∠पतगम, स्फिय. लेव् (त.७५, स. ७६; व.७१)

पआग ∠प्रयाग, प्र.य.घ. (त. ५८; स. ९६)

पइ ∠पति, ख्यिम्. व्दग्. (त ७५, स. ६८)

पइसइ ∠प्रविशति, ग्ुग्स् प. (त. १९ स १५) ञ्जुग् (त. ८१, व. ६७) ञ्जुग् पर् ञ्युर् (त. ४०; स. ३६)

पईसइ ∠प्रविशति, ग्ुग्स् प (त. १९; स. १५)

पउम ∠पढम ∠प्रथम, (ग ३६)

पच्चक्ख ∠प्रत्यक्प, म्ड ोन्.ड्ु ग्युर् (त २१; स. १९)

पच्छे ∠पश्चात् (पाछे), गँ्यव्. (त २९. स ५०)

पडि ∠प्रति, यङ दग् (त ५५, स ४४) रव्. तु (त १२२, व. १०२)

पडिपज्जइ ∠प्रतिपद्यस्व, यङ दग् स्पङ (त ५५; स ४४)

पडिवण्ण ∠प्रतिपन्न, रव्.तु तोग्स् (त १२२, व १०२), व्स्तेन्.प. (त. १२५, व. १०२)

पडिवेसी ∠प्रतिवेशी, ख्यिम्छेस् (त ७५; स ६८)

पडिहाइ ∠प्रतिभाति, स्नङ व (त १०५, व. ८७)

पडिहाउ ∠प्रतिभातु, स्नङवर्. ञ्युर् (त १२१, व १०१)

पडिहासइ ∠प्रतिभासते, ग्सल्.वर्. स्नङ (त. ९८; व ७९)

पडेइ ∠पतेत्, वव् (त. ८५; व ७०)

पढमे ∠प्रथमे, दङ. पो. (त १११, व ९०) ग्दोङ. नस् (त. ३५, व. ३४)

पढिअउ ∠पठितो, स्तोन्. (त १११, व. ९०)

पढिज्जइ ∠पठ्येत, व्ल्कोग्.प. (त १८, स. १४)

पढे ∠पठेत्, दोन् (त २; व. १)

पणमह ∠प्रणमत, फ्यग् ऽछल् लो (त ४३, स २३)

पण्डिअ ∠पण्डित, मुखस् प (त ४२, स. ७४, त. ६३, व ७६)

पत्तिजइ ∠प्रतीयते (पतियाइ), यिद्. छेस्. पर् (त ३५, स ८६)

पव्वज्जा ∠प्रव्रज्या, रब् तु ऽब्युङ ब (त २०, स १८)

पव्वजिजउ ∠प्रव्रजितो, रब् ब्युङ नस् (त ९ ; ब १०)

पर–म् छोग्. तु (त.६४; स. ६७ त ११७; ब. ७७) दम्. प (श. ६०, ७८) ऽोन् क्यङ (श १६ दे (त. १०५; व. ८४), ग् शन् (त २९, स. ५९)

परउआर ∠परउपकार, ग् शन् ल फन्. प (त. १०३, व १०७)

परत्त ∠परत्र, पिय. म (त १३१, व १०८)

परमकल–म् छोग्. तु तोग्स् (त ६३, ब ५३)

परमत्थ ∠परमार्थ, दोन् दम् (त १३, स ११)

परमपउ ∠परमपद, दम् प सेम् स (त १०९, स ४१), परमपद, गो ऽफङ

परममहासुह ∠परममहासुख, म् छोग् तु ब्दे व छेन् पो (त ११९, ब ९९)

परमेसर ∠परमेश्वर, द्वङ फ्युग् दम् प. (त ७२, व ६५)

परमेसुरु ∠परमेश्वर, द्वङ फ्युग् म् छोग् (त.१००, व ८१)

परलोक–जिग् र्तेन् फ रोल् (त २६, स ८८)

परि—योङस् सु (त ७२, स ६५ रब् तु (त ७०, स ६४)

परिआण ∠परिज्ञान, शेस् प (त २१, स १८), योङस् सु शेस् (त २५, स. १०३)

परिआणसि ∠परिजानासि, योङस्. सु शेस् (त ७३, स ६६)

परिआणहु ∠परिजानीहि, र्तोग्स् पर् ग्युर् (त १७, स १४)

परिआणिअ ∠परिज्ञाय, योङस् सु शेस् (त ६५, स १२७)

परिभावइ ∠परिभावयति, योङस् सु ब्स्गोम् (त १२८, व १०५)

परिमुचति–म्युर् दु ग्रोल् (त ४४, स ६१)

परिहरहु ∠परिहरत, रब् तु स्पङ्स् (त ७०, स ६४)

परिसउ ∠स्पृश, रेग् स्योम् (त ६५, व ५५)

पल्लुट्टिअ ∠पर्यस्य, ल्कोर् गिङ ल्कर् (श. ७२)

पवण ∠पवन, लुंङ (त. २६, ३१, ४५, ५५, स. ४६, ३०, ४५, ७६; व. ६६)

पविट्ठ ∠प्रविष्ट, ग्नस्. प (व १४, स १२)

पवेस ∠प्रवेश, जुग्. पर् ऽग्युर् व (त २७, स ४६)

पसु ∠पशु, व्योल् स्रोस्. (त २३, स २०)

पसाअ ∠प्रसाद, द्रिन् (त ११५; व ६६)

पसाअें ∠प्रसादे, द्रिन् (त ११५; व ६५)

पाणी ∠पानीय, छु यिस् (त ७७, स ६६), छु (त २, व १

पाव∠पाप, स्दिग् प (त ७७, स ६६)

पावअ ∠प्राप्नोति, थोव् ऽग्युर् (त १६, स १७)

पावइ ∠प्राप्नोति, ञोद्. दम्. (त १०, स. ६६), ञोद् प (त. १६, स १६) ञोद् प यिन् ते (त. १६, स. १६)

पावसि ∠प्राप्नोसि, थोव् पर् ग्युर्. (त ७३; स ६६)

पावहु ∠प्राप्नुहि, ऽफद् (त. १०, व ८०)

पास ∠पार्श्व, (ग. ८७)

पिअउ ∠पित्र, ऽयुङ (त १२०, व १००

पिच्छी ∠पिच्छ, म्जुग्स्. स्पु (त ८ व. ७)

पिज्जइ ∠पीयेत, थुङ (त १०५, व ८६)

पिवन्ते ∠पिवन्त, थुङस् प त १११, व. ६०)

पीठ—कुन् गूनस्. (त ५८ स ६६)

पीवन्त ∠पिवन्त, थुङ (त २५, स ४८)

पुच्छ ∠पृच्छ, द्रिस् ल (त. १२०, व १००)

पुच्छअ ∠पृच्छन, द्रि त ७५, स ६८)

पुच्छइ ∠पृच्छति, ऽछोल्. (त ७५, स ६२)

पुच्छमि ∠पृच्छामि, द्रि वर् व्यऽो (त ३०; स ५२)

पुज्जिअ ∠पूज्यते, म्छोद् प (त ७८; स ७१)

पुडअणि—∠पुरइन, पद्मिनी, दव् ल्दन्. (त ५६; स ६७)

पुणु ∠पुन, फ्यि नस् (त ६४, स ६१)

पुण्ण ∠पुण्य, द्गे य.ल (त ११५; व ६५)

पुव्व ∠पूर्व, सङ न (त १०१, व ८२)

पूरइ ∠पूरयति, र्जोग्स् पर् ऽग्युर् (त ११४; व ६४)

पुराण—स्ञिङ (त १८, ७७, स १४, ६५)

परिअ ∠पूर्ण, जोग्स् पर् ऽग्युर् (श ९६)
पेक्खइ ∠प्रेक्षते, ल्तोस् (त १९, स १५)
पेक्खु ∠प्रेक्षस्व, ल्तोस् (त ५३, स ४३)
पेक्खह ∠प्रेक्षस्व, ल्त बर् ब्योस् (त ८७, व ७१)
फरन्ते ∠स्फरन्त, गेङ्प् (त २५, ५९, स ४८, ९७)
फल—ब्रस् बु (त ४३, स २३, त १३३, व ११०)
फुड ∠स्फुट, यङ पो (त ९८, व ७९) ग्सल् बर् (त ३१, ३८, स २९, २७)
फुल्ल ∠पुष्प, मे तोग् (त १३०, ब १०७)
फुल्लिअउ ∠फुल्लितो, (त १३, स १०)
व ∠एव, ञिद् (श ७५)
वइट्ठ ∠विष्ट, ग्रुग्स् (त ११, व १०)
वइसी ∠विष्ट्वा, ऽद्रुग् नस् (त ५, व ग्नस् (त ५, व ४), ग्नस् शिङ (त २, व १)
वईसउ ∠विश, ऽदुग् प (त ६५, स ६२)
वक्खाण ∠व्याख्यान, छद् पर् ब्येद् (त ११, व १०)
वक्खाणअ ∠व्याख्यायने, ऽ छद् प यिस् (त ८२, स ७८)
वक्खाणिज्जइ ∠व्याख्यायते, ऽछद् प (त १८, व १४)
वज्जइ ∠वर्जयति, द्गोस् प (त. ९३, व ७६)
वज्झइ ∠वध्यते, व्चिङस् ऽग्युर् ते (त ४१, स २४), ऽछिङस् ग्युर् (त ४३, स ९१), छिङ व (त ६३, स ६१)
वज्झन्ति ∠वध्यन्ते, छिङ ऽग्युर् (त ८८, स ६१)
वज्झे ∠वद्धेन, व्चिङस् पस् (त ४३, व ४२)
वढ—मूढ, मि शेस् प (त २७, स ४९), मोंङस् प (त ३९, स ३७, त ८६, ११९, व ७१, ९९)
वण ∠वन, नग्स् (त १२८, व. १०४)
वण्ण ∠वर्ण, यि गे)
वद्ध ∠व्चिङस् प (त ५२, स ८३)
वदह् ∠वन्दस्व, ऽदुग् निग् (त ५८; स ४४)
वन्देहिअ ∠वन्द्या, वन्दे नंगस् नि (त १० व ९)
वन्ध—छिङ व स्ते (त ३३ स ८८)
वन्ध करु ∠वन्धन कुरु, छिङ्स् बर् ब्येद् चिग (त ८६ व ७१)

वन्धण ∠वन्धन, ऽच्छिड व (त. ५६, स ६४)

वन्धी ∠वधूवा, कुड.बूचस्.नस्. (त ५, व. ४)

वग्वाणे ∠व्याख्यायते, बूशद्.दु योद्. (त. २३, स. २२)

वरु ∠वर, रुड (त. १३५, व. ११२), बूम्दद् प. रुड (त १३५; व. १११)

ववहार ∠व्यवहार, लन् (त. ६५; स ६३)

वस ∠वसत, गूनस्-ऽग्.युर् (त. ३८; स २७)

वसउ ∠वसतु, गोग्. चिग् (त १२०; व १००)

वसन्त—(रहते), योद् प. (त. ८२; स ७४)

वसिअउ ∠वास्तव्य, गूनस्. (श. ३८)

वहइ ∠वहति, गंयुद् दे (त ८०; व. ३६)

वहुलहु ∠वहुलो, यड दग् यड.दु. (त २५; स ४८)

वाअ ∠वाक्, डग् (त १०२, व. ८३)

वाज्जइ ∠वाद्यते शि. ग्युर् (त २२; स २०)

वाज्झइ ∠वाध्यते, छुग्स्. (त. ७८; स ७१)

वाम्ह ∠ब्रह्मा, छड्स्.प. (त. ६०, स. ६६)

वाम्हण ∠ब्राह्मण, ब्रम्. से (त ५७, स ६५)

वाराणसी ∠वाराणसी (त ५८, स ६६)

वाल—बूयिस् प (त. १६; स. १६), वु. छुड (त ७०, स ६४)

वासिअ ∠वासित, वग् छग्स् ग्सुग्स् (त ६३, व ७६)

वाहिअ ∠वाहित, स्लु (त ७; व ६) बूस्लुस् (त २०,२४, स १६,२२) ऽब्रल् वस् (त २३; व. २२)

वाहिउ ∠वाहितो, सुन् बूयिन् (त ४८, व १२८), खूल्. खुर् व त ६५, स १२८)

वाहिअ ∠वाहित, खुर् वर् बूयेद्. (त. ४, व ३)

वाहिर ∠वाह्य, फ्यि रोल् (त ७५, स ६२; त ६०,११०; व ८०, ८६)

वि. ∠अपि, ऽोन्. क्यड (त १६, स १५)

विट्ठु ∠विष्णु, ख्यब्. ऽजुग् (त ६०, स ६६)

विडम्विअ ∠विडवित, गूनोद् बूयेद् लम् (त ७, व ६)

विणु ∠विना, म तोग्स् (त ६७, स. ७२)

विण्णि ∠द्वयं, गूदोद् (त ६४; व ५४)

विणु ∠विना, म तोग्स् (त १७, स. ७२)

विणुअ ∠विज्ञक, (श. ३)
विरला ∠विरल, ऽगऽ. यिस् (श्र. ११५; व. ६५)
बिस ∠विष, दुग्. (त. ७८; स ७१)
विसअ ∠विश्रय, युल् (त. २०, स. १८, त ८०, व ६७)
विसम ∠विषम, शिन् तु ऽकऽ ब (श ६६)
बिसरश ∠विस्मर, व्र्जोद् पर् ग्युर् (त. १११)
विसरिस ∠विसदृश, द्पे दङ अल्. (त १०४, १०६; व ८४, ८६)
विसाम कर ∠विश्राम कुरु, गुग्स् फ्युङ चिग्. (त २७, स ४६)
वीअ ∠बीज, स बोन् (त ४२, स २३)
बुज्झइ ∠बुध्यति, गो. (त. २३; स २०) ब्स्लुस् पर् शेस् ब्य (त ७४, स ६७), गो ब (त ६७, स ७७), र्जेद् प (त ७७, स ६६)
बुधा ∠वुधा, म्खस् नेम्स्. (त. ४४, स. ६१)
वुद्धि—ब्लो. (त ६३, स ६०)
वेअणु ∠वेदना, स्दुग् ब्स्ङल् (त ६२; व ७५)
वेइ ∠द्वैत, गोद् (त. ६४; स ६२)
वेणिम ∠द्विधा, व्ये ब्रग् (श. ५१)
वेण्णवि ∠द्वावपि, ग्ञिस् सु ऽग्युर् व. (त. ११५; व ६५)
वेण्णि ∠द्वैत, व्ये ग्रग्. (त ६० स. ६७)
वेपे ∠वेपे, ग्योग्स् (त ६, व. ५) स्तोन् (त ६; व ५), ग्सुग्स् (त ७; व. ६)
बोह ∠बोध, र्तोग्स् (त. ७६, ६६, व ६६)
बोहि ∠बोधि, व्यङ छुब् (त. १२७, व १०३)
बोहिअ ∠बोहित, ग्रुसिङग्. (त. ८५, व. ७०)
भअ ∠भय, र्मोङस् प (श. २६)
भत्ति ∠भक्ति, वुस्त्रिम्न् ते (त ७१, स. ५७), रव् ऽवद् (त ७१, स ६५)
भट्ठी ?—ऽग्रोग्स् मो. (त. १०५)
भणइ ∠भणति, न रे (त ६; व ८), स्म्र. (त २०, स. १६)
भणइ ण जाणइ ∠भणितु न जानाति, स्म्र रु मि व्तङ, मणु (त. ७७. स ६४)
भत्तार ∠भर्ता, स्यिम् वृदग्. (त ८६, व. ८०)
भन्तिअ ∠भ्रान्ति, ड्रो. म्ध्रर् (त ८३, स. ७६)
भमइ ∠भ्राम्यति, व्ग्रोद् चिङ (त. ८८, स ६६)
भमउ ∠भ्रमत, ऽखो. (त. ६५; स ६३)

भमर ∠भ्रमर, वुड्.ष. (त. ८७; व ७१)
भमिश्र ∠भ्रान्त्वा, फि्यन्.ते (त ५८; स ६६)
भव—स्खोर्.व (त १२२, व १०२) सि्द् प (त.२८, स.५१)
भवहि ∠भवे, द्ङोस्. पो (त ६४, स ६१)
भाज्जा ∠भार्या, छुङ.म (त २०, स. १८)
भान्ति ∠भ्रान्ति (त ७४, १२६, स ६७, फ १०६)
भार—खुर् वु. (त.४; व.३
भाव—द्ङोस् पो (त.२२, स. १६)
भावइ ∠भावयति, योङ्. प (त ६; व ८)
भावाभाव—दङोस्. दङ. दङोम्. मेद् (त ३३,७२; स ८८,६५)
भाविउ ∠भावित, स्गोम्.व्येद् त.१३; स ११)
भावे—व्स्तन्. (त १५, स.१२)
भिक्खु ∠भिक्षु, द्गे स्लोङ. (त.१०; व.६)
भिज्जइ∠भिद्यन, द्व्येर्. प. (त १०२, व.८३)
भिडि ∠दृढ, (स २१)
भिण्ण ∠भिन्न, द्व्येर् (त.१३३, व.११०)

भुल्ले—(भूल), गोल्. (त ४, व ३)
भोअण ∠भोजन, स व (त.६; व ८)
म ∠मा, (त.१२५; व १०३)
मइ ∠मया, ङयिस्. (त १२२; व. १०२), व्दग्. गिस्. (त. ५३, ७१; स. ४३,६४)
मग्ग ∠मार्ग, लम्. (त.१६; स.१६)
मज्झ ∠मध्य, वर्. (त ११४, व ६४) द्वुस्. (त २८; स ५१, द्वुस्. न. (त.५६; स ६७)
मट्टि ∠मृत्ति, स. (त.२; व १)
मण ∠मन, यिद्. (त ३४; स. ८८, त.३१; स.३०), (त.६४; व.७७,) रङ ग्युद्. (त ४२; स २४), सेम्स्. (त २६; स.४६)
मणहु∠मन्यता, गेस्-पर्.व्योस् (त.३४; स ८५,)
मणु ∠मन., सेम्स्. (त.१०६; व ८६;)
मण्ड—ग्वु व. (त. १११; व. ६०)
मण्डल—द्क्यिल् ख्खोर् (त ११८; व.६८)
मण्णहु ∠मन्यस्व, ङेम्. (त १२२, व. १०२)
मति—व्लो ग्रोस् (त. ८४; स. ६६)
मत्त—चम्. (त. ६२; व.७५)
मन्त ∠मन्त्र, स्ङग्स्. (त. २४; स. २३) ग्सङ.स्ङग्स् (त. १५; स १२)

मवीग्रइ ∠मीयते, ऽजन् (श. २२)

मरइ ∠म्रियते, (त ३१, स ३०), छि यङ (त ११३, व ६०)

मरिव्बो ∠मर्तब्यो, छि बर्.सद् (त ८६, स ४४, व ५६)

मरुत्थलहि ∠मरुस्थले, मङ म्य ङ म् ग्यि (त ६६, स ४४)

मरेइ ∠म्रियेत, फम् ग्युर् प (त ६३, स. ६०)

मलिणे ∠मलिने, ऽद्रि मस् (त. ६, व. ५)

मसि—स्नग् छ (त १०३, स ४१)

महाजाण ∠महायान, थेग् छेन् (त ११, व १०)

मा—मि (त १७, स १७)

माग्राजाल ∠मायाजाल, (त. ३४; स ८६)

माग्रामग्र ∠मायामय, स्ग्यु मऽि रङ व्शिन् (त ६३, स ६०)

मारइ∠मारयति, ग्सोद् प (त १२१, व १०१)

मारी ∠मारयित्वा, छिङ ऽग्युर् (त ७८, स ७१)

माइ ये ∠मात, हे, ग्र. म (त १०४, व ८४)

मिग्रतिसणा∠मृगतृष्णा, स्मिग्. गं्युऽि. छु (त ११३; व ६१)

मिच्छेहि ∠मिथ्या, ग्र्जुन् प ञ्िद् (त ४, व ३)

मिलन्ते—व्गग् (त. ८६; स ७८, व ७७)

मीण ∠मीन, ञ् (त ८७, व ७१)

मुक्कइ∠मुच्यते, ग्रोन् ग्युर् (त ७३, स ६६)

मुक्को ∠मुक्तो, ग्रोल् वर् ऽग्युर् (त ११०, व ८६)

मुञ्चग्र ∠मुच्यते, ग्रोल् (त २०, स १८)

मुच्चहु ∠मुचन, थोङ (त १७, स १३)

मुणइ ∠मनुते, मेम्स् प (त १३३, व ६०)

मुणि ∠मत्वा, तोग्स् नस् श ४१)

मुणिज्जइ ∠मन्यते, ङो शेस् (त १०० व. ८१)

मुणेवि ∠मत्वा, तोंग्स नस् (त ४१, ८३; स ३६)

मुण्डी—स्क्र.मेद् (त ६; व ५)

मुत्ति ∠मुक्ति, ग्रोल् (त ७, व ६)

मुद्दा ∠मुद्रा, फ्यग् गं्यम् (त २४. व. २२)

मुसारिउ ∠मिश्रित, म्ञम् प (त. १०६, स ४१)

मूल—चं व (त. ३७. ७८, स ७७, ७१ त १३०; व १०६)

विभ्रम—खू़ल् पर्व्यु़ेद्प. (त. ७४· स. २३)
विमल—द्रि. मेद्. (त. ६४; व. ६६)
विमुक्क ∠विमुक्त. नँम् ग्रोल्. (त. १३४: व. ११०)
विमुक्कउ ∠विमुक्तो, नँम्. पर्. ग्रोल्. (त. १२६· व. १०५)
विमुक्केण∠विमुक्तेन, ग्रोल्.न. (त.४१ स २४)
विमुञ्च ∠विमुक्त रङ ग्रोल् ऽग्युर् (त ४२, स.२४ त.११६, व.६६)
विरहिअ ∠विरहित, नँम् पर् स्पङस्. (त. १२२, व १०२) मेद्. (त.३· व. २)
विरुद्ध—नँम्. ऽगल्. (त ६६, स.१२१)
विलग्र गउ ∠विलयं गतो, नुव् ग्युर्. चिङ (त ३०,८६; स.२६ व. ७३)
विलग्र जाइ∠विलय याति, नुव्. (त. ३८,१०६, स २७,४१)
विलास—नँम्.पर्.रोल्.प. (त ११४. व ६४)
विलासिणि ∠विलासिनी, स्रोग्.मो. दङ फद्. (त.१०१; व. ८२)
विलीण ∠विलीन. ग्ब्. तु. थिम्. पर्. ऽग्युर्. (त.७२; स. ६५)
विलीणउ ∠विलीनो, गुगिर् ऽग्युर्. त.६०; स.६६)
विवज्जिअ ∠विवर्जित, मेद् (त ६४; स.६७)
विसम ∠विषम, गिन्. तु. द्कऽ (त ८१, व ६७)
विसल्लता ∠विशल्यता, मुग् ङुस् (त.६२. व ७५)
विसुद्ध ∠विशुद्ध, दग्.प (त.३५ स.३४,) नँम् पर् दग् (त ८४, व.७०)
विसेस ∠विशेष ब्ये.ब्रग्. (त. ७७. ६८ स ५०)
वुत्त∠उक्त, स्म्रस् प (त १६, स.१५)
वेद—रिग्स्. व्येद्. (त २, व १)
स ∠स्व रङ (त १२० व १००) —दे. ञिद्. (त.१०७ व ८७)
सअ ∠स्वक, रङ. (ग. ७८)
सअल ∠सकल, कुन्. ग्यिम् (त ४२ स. २३) कुन् (त ४२: स २३) थम्स्. चद् (त.२४,८२; स.५०, ७४) म लुस्. (त.३७,६८, स. ३४,२५, त ७२,११३,१२५, व. २२,१०३,६१)
सइ ∠स्वय, रङ (श.४६)
सइच्छ ∠स्वेच्छ, रङ.द्गऽ वर्. (त १२०; व.१००)
सएसविति ∠स्वकसंवित्ति रङ रिग् (त.३३, स.४८)

सक्कइ ∠शक्नोति, नुस् प (त ६२, स ५२)

सचरइ ∠सचरति, गंय् शिङ.(त ७६, स ४६)

सत्थ ∠शास्त्र, वृस्तन् चोस्. (त. ११, १८, व १०, स १४)

सत्थत्थ ∠शास्त्रार्थ, ब्स्तन् ब्चोस्. दोन् (त ६६, स.४४)

सन्तुट्ठ ∠सन्तुष्ठ, मोस् प (त १४, स १२)

सन्देह—थे छोम् (त ४३, स ६१)

सन्धि—गोङस् प (त ८१, व. ६७, त १३०, व. १०६)

सव्व ∠सर्व, कुन् रङ (त. २४; व २३), थम्स्. चद्. (त १७; स. १४)

सव्ववि ∠सर्व अपि, थम्स् चद्. क्यङ. (त. ७६, स. ६६)

सम—म्ञ्म् (त ५७, ८६; स ६५, ७७)

समरसु ∠समरस, रो नम्ञ्म् (त ५७, ८६, स ६५, ७७)

समिट्ठउ ∠समिष्टो, व्रतस् पडि र्तोग्स् प. (त ५८, स ६६)

सरन्त∠श्रयन्त, स्क्यब्स् सु.ऽग्रो (त ७८, स ७१

सरह—म्दऽ ब्स्मुन् (त ६, व ८ श २०, २२, २३, ३८, ३६, ४१, ६३)

सराव ∠शराव, ग्वम् फोग् ब्लग्म् (त १३४, व १११)

सरि ∠सरित्, गं्य मृछो (श ४६)

सरिस ∠सदृश, दङ ऽद्र (त. ५६, स. ६७) द्पे (त १०४, १०६ व ८४, ८६)

सरीसो ∠सदृशो, ब्शिन् (त ६३, व. ७६)

सरुग्र ∠सरूप, रङ ब्शिन् (त ८७, ८८, स ७५, ७३)

सलत्त सल्लत, ∠शल्यता, सुग्. ड्ुम्. (श ७७)

सवर ∠सवर, स्दोन्. प (त. १०७, व ८७)

सवित्ति—रिग् (त. ३३, स ४४), (त. ३३, ६५, स. ४४, ६२)

सवेग्रण ∠सवेदन, ञम्स् (त. ११६, स. ६८)

ससार—ऽखोर् व (त १७, ७६, स १७, ७२)

ससि ∠शशी, ज़्ल व (त ७६ स. ४६)

सहज—रङ ब्शिन् (त १०४ व. ८४) ल्हन् निग् स्क्येग् (त १३, २१, ३७, स ११, १६, २२ न. ६४, व. ७७)

सुद्द ∠शूद्र, द्मन्.पडि.रिग्स् (त. ५७, स. ६५)
सुद्ध ∠शुद्ध, दग्. प. (त. १२६; व. १०६)
सुरश्र ∠सुरत, स्प्रोद्. क्यि. (त. २५, स. ४८)
सुरुंगा—ल्कुग्स्. प. (त. ८६, व. ७२)
सुसण्ठिश्र ∠सुसंस्थित, यङ.दग्.
सुह ∠सुख, ब्दे. (त. २२, २५, ११५, ११७; स. २०, २३; व. ९५, ६७)
सुह, परम-∠परममहासुख, ब्दे. व छेन्. म्छोग्. (त. २२; स २०), ब्दे. व छेन्. पो. मछोग्. (त २६, स ५१)
सूर—ञ्जि. म. (श. ४६)
से ∠स, ऽदि (त. ५७, स. ६५)
सेउ ∠सेव, ब्तेन्, तर्. ङस् (त. १२८; व. १०६), ञोस् (त. १२८ व. १६५)
सो—दे. (त. ३०; स. २६), दे (त. ६६; स. १२८), दे. यिस्. (त. ११०; व. ८६), देस्. नि (त. १६, स. १६)
सोजुझ ∠शुद्ध, (श. ८०)
सोवणाह ∠सोमनाथ, स्ल. व. गं्य. म्छो. (त. ५७; स ६५)
सोवि ∠सोपि, दे यिन् ते. (त. १७; स १४), दे. ञिद् (त २६; स. ५२)
सोहिश्र ∠शोभित, स्त्यङस् ग्युर् प. (त ४०, स. ३६)
हउ ∠भूतो, चिङ (त ११; म १०)
हत्थ ∠हस्त, म्थिल्. (त १६, स १५)
हत्थे ∠हस्ते, लग् पडि. म्थिल् दु. (त. १६; स. १५)
हव—∠शीघ्र, ग्दुङ.सेल्.ब्सिल् व (श. ५८)
हव्वास ∠अभ्यास, ग्दुङ.बस्. (त ७७, स. ६६)
हरन्त—ऽदव्. म ? (त. ७७, स. ६६)
हरिण—रि. दग्स्. (त. ८७, व ७१)
हरेइ ∠हरेत्., फन.पर् व्येद् प (त ११७ व. ६)
हले—ग्रोग्स्.पो. (त ६२)
हि—दु. (त. ५; व. ४, ञिद् (त. २; व. १)
हिअहि ∠हृदये, स्ञि् ङ ल. (त. १६, ४०, ८६, स. १५, ३६, व ७२)
हु—अपि, (श ६०, ८५)
हुणन्त ∠होमन्त, व्स्रेग् (त २, व १)
हे—(श. ३८)
होइ ∠भवति, ग्युर् (त. १४, ८३, स. १२, व. ६६ त. ७, व ६), ऽव्युङ वर् (त. ७१, स. ५७)
होम—ग्त्र्यिन् स्रेग्. (त ३ व. २)

परिशिष्ट ४

दोहाकोश भोट-शब्दानुक्रमणी

तिब्वती	अपभ्रंश	तिब्वती दोहांक	तालपत्र दोहाक	वागची दोहाक
क.ल.कु.ट		६४		७७
ब्कङ.ब.		५०		
द्कऽ.थुब्	तप	१५	१३	
द्कऽ.थुब् ऽवऽ. शिग्	साहइ	१०		८
व्कऽ यिस्.	बग्रण	३५	८६	
स्कद्.चिग्.	खणे	११७		६७
स्कद् चिग् म	खण	११५		६५
स्कव्स् सु	खणहि	११३		६१
स्कर् म.	तारा	११८		६८
ल्कुग्स्.प.	सुरंगा	८६		७२
कुन्	सम्रल	४२		
कुन् ग्नस्	पीठ	५८	६६	
कुन्.ग्यिस्	सम्रल	४२	२३	
कुन्.दु.ख्यब्	वित्थार	१३०		१०७
कु.न्दु.रु.	कुन्दुरु (मैथुन)	११३		६१
कुन्.रङ.	सब्ब	२४		२३
कु.श.	कुस	२		१
ल्कोग्.तु.ग्युर्.	अन्धारे	२१	१६	
स्कोम्.नस्.	तिसिम्रो	११३		६१
स्कोम्.पस्.	तिसिम्र	६६	८८	
स्कोर् शिङ स्कोर् गिङ.	पलुट्टिम्र	८५		७०

तिब्वती	अपभ्रंश	तिब्वती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
स्क्यब्स्.सु.ऽग्रो.	सरन्तो	७८	७१	
स्क्यिल्	आसन	५		४
द्क्यिल्.ऽखोर्.	मडल	११८		९८
क्ये.लग्स्.	रे	१७,५३	१३	
क्ये.हो	रे	३३	८८	
		५०		
		८६		७१
		११९		९९
	अरे	८६		७१
क्ये.हो.बु	अरे पुत्त	६१	५१	
स्क्येस्	उवज्जइ	१०४		८४
क्येन् गि_यस्		१०६		
क्येन्. ब्रल्. ग्सुग्		११२		
स्क्ये.प	उवज्जइ	२२	२०	
	उवरइ	१०४		८४
स्क्ये.वो	जाण (?), जणु	३६	३५	
	जण	५		४
स्क्ये.वो दम् प		८६		
स्क्येस्.	उवज्जइ	३८	२७	
स्क्येस्.प	उअज्जइ	६४	६१	५४
स्क्योद्	चलउ	६५	६३	
स्क्योन्	दोस	९०,१२३	७८	१०३
स्क्योन्.ग्यिस्.	दोसें	३६		३४
स्क्योल् व.		८८		
स्क्र	केस	६		५
स्क्र मेद्	मुंडी	६		५

तिब्वती	अपभ्रंश	तिब्वती दोहाक	तालपत्र दोहाक	बागची दोहाक
ऋुङ् ब्चस्.नस्	वन्धी	५		४
ख.चिग्	अण्णु	११	१०	
	कोइ	११	१०	
ख दोग्	वण्ण	७१		६८
		५६	६७	
ख. दोग्. स्ग्युर् चिग्	रञ्जिया	२८	५०	
खम्. फोर्		६६		
खम्. फोर्. ब्लग्स्	सरावे	१३४		१११
खम्स् सु		४७		
खम्स्. ग्सुम्	तिहुअण	२४	५०	
ख सङ		४६		
म्खऽ ञम्	ख-सम	६३, ६४		७७
खम्स्. ग्सुम्	तिहुवणे	१३०		१०७
म्खऽि. ल्तर्		६४		
म्खऽ. ऽद्र		४५		
म्खस् नंम्स	बुधा	४४	६१	
म्खस् प	पंडिअ	४२	७४	
	,,	६३		७६
खु ब.	मण्ड	१११		६०
खुर्. बर्. ब्येद्	वाहिय	४		३
खुर्. बु	भार	४		३
ऽखोर्. व	ससार	१७, ७६	१७, ७२	
	भव	१२२		१०२
ऽखोर्. लो	चक्क	२५	४८	
ऽखोर्. लो. दम् प	चक्क	११८		६८
स्यब्. ग्रुव्. प	गाढ़िठ	४८	१२७	

तिब्बती	अपभ्रंग	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
ख्यब्. ऽजुग्	विद्ठु	६०	६६	
ख्यि	सुणह	७		६
ख्यिम्	घरे	४७	१२७	
ख्यिम्. छेस्. दग्	पडिबेसी	७५	६८	
ख्यिम्. थब्	गिहवास	१३५		१११
ख्यिम्. ब्दग्	पइ	७५	६८	
	भत्तार	६६		८०
ख्यिम् ब्दग् मो	घरिणि	१०३		८४
ख्यिम्. दङ ख्यिम्. न	घरें घरे	६५	१२७	७८
ख्यिम्. दु	घरहि	५		४
ख्यिम्. न	घर	२		१
	गही	२०	१८	
ख्यिम् न. ग्नस्	घरे अच्छइ	७५		६२
ऽख्युद्		३४		
ख्येद्. चग्		८१		
ख्यो. मेद्	रंडी	६		५
ख्रल् ख्रुर्. व	वाहिउ	६५	१२८	
ख्रि. फग्	लक्ख	७८	७१	
ख्रुल्. प	धंधा	३३	४४	
ऽख्रुल		२०	१६	
	भान्ति	७४, १२६	६७	१०६
	आले	१३०		१०७
ख्रुल्. प गिग्. प	अक्कड	६३		७६
ख्रुल्. पस		२०		
ख्रुलपर् ब्येद् प	विब्भम	२४	२३	
ख्रो.वऽि रङ व्शिन्		३६		

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
ङ्खु ोल्	चाली	५		८
गङ	जो	१५	१६	
गङ.गङ	ज ज	२९	५२	
गङ गङि.गं.य.म्छो	गंगासाअरु	५७	९५	
गङ.गिस्	जेण	४४,१२३	९१	
गङ ल्तर्	एमइ	७८		७१
गङ.दु	जहि	२६	४९	
	जत्थ	३०	२९	
	कहिं	३८	२७	
गङ दुऽङ		८३		
गङ छे	जव्वे	४०	३६	३६
	जाव	७३	६६	
	जइ	७६,१०२	६९,०	
गङ शिग्	जो	१४,२०,५१, ८१,८३	१२,२०,०, ६७,७३	
	कोइ	८४		६९
	कासु	८८		७३
गङ.सुग्स्		१०३		
गङ यङ	जो पुण	१६	१७	
	कहि	१०१		८२
	जहि	१२५		१०३
गङ.यिन्	जो	१२६		१०२
	कवण	१३५		११२
गङ ल	जसु	१८	१२	
	जहि	८१		६०
गङ लस्	कहि	३८	२७	
गर्	जहि	३१		३०

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहाक
गल्.ते	अइ	७		६
ऽगग्स्. पर्.ऽग्युर्	णिरुद्धो	३५	३४	
ऽगग्स्.प		४६,६६		
र्गल्.नस्.	निसार	७६	७२	
द्गऽ.बस्	रमन्ते	२०	१८	
द्गऽ वऽि.सेम्स्		१०४		
ऽगऽ.यङ		४८		
ऽगऽ यिस्	विरला	११५		६५
द्गऽ शिङ	रमन्ते	२५	४८	
ऽर्गल्.नुस्	निसार	७६	७२	
गुग्स.फ्युङ.चिग्	विसाम कर	२७	४६	
गेङस्	आवन्त	१००		८१
	फरन्ते	२५	४८	
द्गे.व.		५६	६७	
द्गे.छु.ल्	चेल्लु	१०	६	६
द्गे स्लोङ	भिक्खु	१०		६
गे.सर्	केसर	५६	६७	
गो.	वुज्झइ	२३	२३	
स्गोग्.मो.दङ.फ्द्.	विलासिणि	१०१		८२
गोग्स्, मि.	णिरवंवे	७६	६४	
गोङस्. प	सन्धि	८१		६७
	सन्धि	१३०		१०६
गो. ऽफङ	परम पउ			
गो. व	वुज्झइ	६७	७७	
गो. वस्लोग्	एमइ(?)	५३	४३	
मृगोन्. पो	णाह	३०	५२	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहाक	तालपत्र दोहाक	बागची दोहाक
	णाहु	८७, ९०	७५	७२
म्गोन् पो ब्दग् ञिद्	अप्पणु णाहो	९९	१२१	
म्गो. ल	सीससु	४		३
ऽगोल्.	भुल्ले	४		३
गोस् दङ. ब्रल् शिङ	णग्गल	६		५
गोस् पो	लिप्पइ	७७	६९	
ऽगोस् पर् ऽग्युर्	आआसवि	३६	३४	
स्गोम् प	गुणिज्जइ	१८	१४	
स्गोम् प मिन्		१२३		
स्गोम् (? स्कोम्.) पस्	तिसिओ	११३		९१
स्गोम् ब्येद्	भाविउ	१३	११	
ब्स्गोम् दङ मि. ब्स्गोम्	चित्ताचित्त	९६	१२३	
ब्स्गोम्स्	साहअ	१६	१७	
ब्स्गोम्स्. न	साघअ	,,	,,	
द्गोस् प.	वज्जइ	९३		७६
गोस् सो	लिप्पइ	७७	६९	
र्ग्य छे ब	उआहरणे	६८		
र्ग्यब्	पच्छे	२९	५२	
ब्र्ग्य ल	पुण्ण	११५		९५
र्ग्य शिङ	सचरइ	२६	४९	
र्ग्यन्. स्रिद्		१०७		
र्ग्यम्	फुल्लिअउ	१३	१०	
ग्यि न.	एवहि	२		१
ग्यिन् म्छोन्	कहिअउ	७१	६४	
र्ग्यु	कारण	२४	२३	
र्ग्युद्	तन्त	७८, ८०		७३

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहाक	वागची दोहाक
र्ग्युद् दे	वहइ	८०		३६
स्ग्यु मऽि नंल्. ऽब्योर्	जोइणि मात्र	८०		३६
		११६		८६
स्ग्यु मऽि रङ व्शिन्.	मात्रामत्र	६३	६०	
र्गयु म्छन्	कारणे	११३		११०
र्ग्युग्. व्येद् चिङ	धाविउ	११	१०	
र्ग्युन् दु	णिरन्तर	११०, (?) १२३		८९, १०३
ग्युन् दु ग्नस्. प	णिरन्तर	१२९	०	१०६
ग्युर्	होइ	१४	१२	
ऽग्युर्	होइ	७		६
		४३		६९
	अत्थि	८		७
स्ग्यु. लुस्. ऽद्र व	मात्राजाल	३४	८९	
ऽग्रम्. दु	तड	१२०		१००
व्स्ग्रिम्स्. ते	भक्ति (?)	७१	५७	
ग्रुव्	सिज्झइ	२२	२०	
ग्रुव् ऽग्युर् ते	सिद्धि जाइ	२६	४८	
ग्रुव् म्थऽ	सिद्धान्त	९९	१२८	
स्ग्रुव् पऽि नंल्. ऽव्योर्	सिद्ध जोइणि	१०७		८७
स्ग्रुव् प	साहइ	११३		९१
स्ग्रुव्. यिग्.	सिद्धिरत्थु	१११		९०
ऽग्रो	जाइ	१५	१३	
	जग	४८	१२८	
	भमउ	६५	६३	
ग्रोग्स्. दग्	हले	३१	२९	
		११६	९६	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहाक	तालपत्र दोहाक	बागची दोहाक
ग्रोग्स् पो		६२		
ग्रोग्स्. मो	भट्ठी (?)	१०५		
ग्रोङ	गाम	८०	६७	
ग्रो. ऽोङ	आवइ जाइ	१०१		८२
ग्रोल्	मुत्ति	७		६
	सिद्धि	८		७
	मुच्चग्र	२०	१८	
ग्रोल् ऽग्युर्	मुक्कइ	७३	६६	
ग्रोल् वर्. ऽग्युर्	मुक्को	११०		८९
व्ग्रोद्. चिङ	भमइ	७७	६९	
ऽग्रो मि		४, ८८२		
ऽग्रो कुन्	जग	९५	१२८	
ऽग्रो र्नम्स्	जण	४१	२४	
ऽग्रो व	जग	४, २४, १०८	३, २२, २५	
ऽग्रो व च्'ोम्	धावइ	५२	४३	०
ङ मो	करहा	५३	४३	
ङ यिस्	मई	१२२		१०२
ङल्. व		८२		
ङस्	लग्र जाइ	३१	३०	
ङस् नि व ग्तोग्स्		५३		
स्ङग्स्	मन्त	२४	२३	
ङुल्	अणु	७४	६७	
ङुल् ग्रल्		७४	६७	
ङेस्	मणहु	१२२		१०२
ङेस् पर् तोंगम्		५०		
ङेस्. पर्. ग्शन्. मेद् दे	अणुग्र, अणूण	४१	३१	४०

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहाक	तालपत्र दोहाक	बागची दोहाक
म्ङोन् दु ग्युर्	पच्चक्ख	२१	१९	
म्ङोन्. पऽि ङ. र्ग्यल्	अहिमाण	६३	६०	
ऽङोन् ल सोग्स्		६१	५१	
ङो. छ मेद्	णिलज्ज	८३	७५	
ङो म्छर्. छे	भन्तिअ ?	९३	७६	
ङो. वो. ञ्जिद् क्यिस् दग्. प	सहावे सुद्ध	१२९		१०६
ङो ग्स्	मुणिअइ	१००		८१
द्ङोस् ग्रुव् दम्. प	सिद्धि	११९		९९
द्ङोस् दङ द्ङोस्.मेद्	भावाभाव	३३,७२	८८,६५	
द्ङोस् पो	भाव	२२	१९	
द्ङोस् पो नंम् स्पङ्स्	भावरहिअ	६४	६१	
द्ङोस् पो मेद्	अभाव	२२	१९	
द्ङोस् पोर्	भवहि	६४	६१	
चल्. चोल्. ग्तम्	आलमाल	६५	६३	
ग्चद्. पर्. व्योस्		५४		
व्चस्		१२४		
चि	कि	१४		१२
चि. द्गोस्	कि	१४		१२
चिग्. तु. व्य ब. स्ते	अेक्क करु	२७	५०	
चिग्. ग्नोस्		१०१		४१
चिग्. सोग्स्	अेक्कवि	१४		११
चिङ	हुउ (भूत)	११		१०
चि व्येद्	कि	६३	६१	
चि व्यर्		६९		
चि. शिग्	कहि (क्यों)	६४	६१	

तिव्बती	अपभ्रश	तिव्वती दोहाक	तालपत्र दोहाक	वागची दोहाक
चि. रुङ		६४		७७
चि. स्ले	जो, को	११४		६८
चिस्		७		
ग्चिग् क्यङ	अेक्कवि,	४१	३६	
	कोइ	१०८	२५	
ग्चिग. गि. नंम्. प	अेकाआरे	६५	६३	
ग्चिग् तु	णेहुअे ?	३४	८८	
ग्चिग्. पु		६६	१२१	
ग्चिग्. सोस्	अेक्कु खाइ	६६		८०
व्चिङ वर्. ग्युर्		८६		
व्चिङस्. ग्युर्. ते	बज्झइ	४१	२४	
व्चिङस् प	वद्धो	५२	४३	
व्चिङस्. पस्	वज्झे	४३		४२
व्चुम्स् ते	णिवेसी	५		४
व्चु. व्शि. प यि. स. ल	चद्दहभुवणे	११०		८६
ग्चेर् बुस्	णग्गाविअ	७		६
ग्चेस्. पर् व्यस्		६१		
छग्. दङ. छग्. ब्रल्	राअ–विराअ	१०५		८५
छग्स्. प	राग ?	१०४		८४
छग्स्. ब्योस्	रज्जह	५५	४४	
छद्		१०३		
छद् नस्		८२		
छद्. पर्. व्येद्	वक्खाण	११		१०
छद् चिङ		६१		
ऽछद्. ते	तुट्टइ	७६	७२	
ऽछद्. प	वक्खाणिज्जइ	१८		१४

तिव्वती	अपभ्रंग	तिव्वती दोहाक	तालपत्र दोहाक	वागची दोहाक
ऽछद् प. यिस्	वक्खाणअ	८२	७४	
ऽछद्. पर्. व्येद्. प ब्शिन्	उज्जोअ करेइ	११७		९७
ऽछद् पर् योद् प		५१		
ऽछिङ	मरइ	३१	३०	
छिङ. ऽग्युर्	मारी	७८	७१	
	वज्झति	८८	६१	
छिङ. दङ ग्रोल्. व		५०		
छिङ दङ ग्रल्	विवन्धे	१२८		१०५
ऽछिङ व	वन्धण	५६	६४	
	काल करेइ	८०		६६
	वज्झइ	६३	६१	
ऽछिङ व स्ते	वन्धा	३३	८८	
ऽछिङ वर् व्येद् चिङ	वन्ध करु	८६		७१
ऽछिङस्		५२		
ऽछिङस् ग्युर्	वज्झइ	४३	६१	
ऽछि यङ	मरइ	११३		९०
ऽछि वर् सद्	मरिव्वो	८६	४४	५६
छु	पाणि	२		१
छुग्स्	वाज्झइ	७८	७१	
छुङ पस्		८२		
छुङ म दग् दङ	भाज्जे (भार्या) सहिअउ	२०	१८	
छुद् पस्		८२		
छु वुर्		१२७		१०३
छु. ऽजग्		१०७		

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	नालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
छु यिस्	पाणी	७७	६६	
छु ल छु	जलेहि जल	३४	८८	
छेद् दु	उवेसे	७		६
म्छेद् पऽि		६०		
छोस्	धम्म	४		३
छोस् मिन्	अधम्म	४		३
म्छोग्	उत्तिम	१६	१६	
म्छोग् तु	पर	६४, ११७	६७	७७
म्छोग् तु तोग्स्	परम कलु	६३		५३
म्छोग् तु व्दे व छेन् पो	परममहासुहे	११६		६६
म्छोङ्		६१		
म्छोद् प	पुडिउजअ ?	७८	७१	
ऽजिग् तेन्	लोअ	२३,३७	२०, ३४	
ऽजिग्. तेन् फरोल्	परलोअ	२६	४८	
जि ल्तर्	की	२३	२०	
	जेत्तइ	८६	७७	
	जिम	६३, १०१, ११७	७६,८६,६७	
जि. स्रिद्	जाउ	८०	६७	
	ताव	१०८	६५	
ऽजुग्		४६		
	पइसइ	८१		६८
ऽजुग् प मेद्		१२६		
ऽजुग् पर् ऽग्युर्	पइसइ	४०	३६	
ऽजुग् पर् ऽग्युर्. व	पवेस	२६	३६	
ऽजुर्. वुस्		५१		
व्जोद् वयङ्	कहिअउ	३६	३८	

तिब्वती	अपभ्रंश	तिब्वती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहाक
व्र्जोद्. दु. मेद्	अवाअ	२३	२२	
व्र्जोद्. दु योद्. मिन्	अवाच्चैं	३५	८९	
व्र्जोद् पर्. ग्युर्	विसरअ	१११		९०
व्र्जोद् मिन्	ण वाअे	६७	७७	
व्र्जोद् यिन्. ते	कहिअअ	९५	१२७	
ञ	मीण	८७		७१
ञम्स्		५०,१०९	४१	
ञम्स्. पर् ग्युर्	ठिउ	३०	२९	
म्ञम्	तुल्ले	४,४९		३
म्ञम्. ञि द्		३३,४५		
म्ञम्. ल्दन्	आअर	९०	७९	
म्ञम्. पर्. म्थोङ		९८		
स्ञम् पऽि. सेम्स्		९१		
ञल्. व		१०१		
ञिद्	हि	२		१
ञि म	रवि	२६	४९	
ञि सेर्	दुट्ठ	८९		७३
ग्ञिस्. पो	वेण्णवि	१६	१७	
ग्ञिस्. मेद्	अद्दअ	१३०		१०७
ग्ञिस् सुर्. ग्युर्. ब	वेण्णवि	११५		९५
स्ञिङ	हिअहि	१९,८९	१५	७२
	पुराण	१८,७२	१४,६५	
स्ञिङ जे	करुणा	१५	१६	
स्ञिङ ल	हिअहि	४०	३६	
स्ञम्. प		५०		
ग्ञ ग्. मऽि	णिअ	१९	१६	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
ग्ञाग् मडि ञाम्स्	णिअ सवेअण	११६	९६	
ग्ञ ग् मडि यिद्	णिअ मण	३४	८८	
ग्ञाग् मडि रङ ब्शिन्	आभासे ?	७९	७२	
ञोंद्. दम्	पावइ	१६,११३	९६	९१
ञोंद् प.	,,	१६	१६	
	बुज्झइ	७७,८६		६९
ञोन्. ब्यस्	लइउ	७७	६९	
ञो. बडि ग्नस्	उअपिट्ठ	५८	९६	
ञो बर् स्क्ये ब	उवज्जइ	६२	५२	
ञो. वर् ऽगग्स् ऽग्युर्		५६	९४	
	अत्थमणु जाइ	५६	९४	
ञोस् प	दोसअ	४०	९०	
ग्ञोस् पो		९०		
म्ञोस् प	मुसारिउ	१०९	४१	
ञोंद् प. यिन् ते	पावइ	१६	१६	
ञोंग् प मेद् प	णिक्कलक	१००		८१
ञोंग्स् ब्शिन्.	धावइ ?	११३	९१	
ञोन् चोंद् प.	रसण	६१	५१	
स्ञोम्स्		६९		
तं .	तुरंग	९		८
व्तङ नस्	जाली ?	५४		
तंग् तु	आलिउल ?	२५	४८	
तंग् पर्	णिरन्तर	१२५		१०३
व्तंग्स् न	णिहालु	११९		९९
ग्तङ		७०		
व्तङ.		६९		

तिब्वती	अपभ्रंश	तिब्वती दोहाक	तालपत्र दोहाक	वागची दोहाक
ब्र्तन् पर् ग्नस्	ठाइ	५२,६७	४३	
ल्त चिग्		१०२		
ल्त व इन् प	कुदिट्ठि	११६		६६
ल्त बु	दिट्ठि	१८	१५	
ल्त. वर्. व्योस्	पेक्खह	८७		७१
ग्तम्.	कहाणो	४७,६५	१२७	
व्ल्तस्. पऽि र्तोग्स् प	समिट्ठउ	५८	६६	
व्ल्तस्. ग्झि. व्ल्तस्. ग्झि	चाहन्ते चाहन्ते	३५	३४	
व्स्तन्.	भावे	१५	१२	
व्स्तन् प.	उएसे	३		२
ब्स्तन्. चिझ	कहइ	७६	६६	
व्स्तन् व्चोस्.	सत्थ	१८	१४	
व्स्तन् चोस्	(शास्त्र)	११		१०
व्स्तन् व्चोस्. दोन्	सत्थत्थ	६६	४४	
व्स्तन् ते	कहिज्जइ	८८		७३
व्स्तन् नम् ग्रो.	कहिहउ जाइ	३२	३०	
व्स्तन् नुस्	कहिज्जइ	७२	६५	
व्स्तन्. प.	उवएसे	८४	६६	
व्स्तन् पर्. नुस्. प.	कहण सक्कइ	६२		५०
ब्स्तन्. पस्. र्तोग्स्	कहिज्जइ	६४	६२	
व्स्तन् व्य	रमइ	८४		७०
तिल्	तिल	६२		
ग्ति. मुग्.		३२		
व्र्तन्		१०१		
व्र्तन्. पर् ग्युर् प	णिच्चल	५५		४५
व्र्तन् पर् ऽोस्.	सेउ	१२८		१०५

तिव्वती	अपभ्रंश	तिव्वती दोहाक	तालपत्र दोहाक	बागर्चा दोहाक
व्स्तेन्. पर्. व्य		६७	७७	
व्स्तेन् पस्	रमन्ते	७७	६६	
	पडिवण्ण	१२५		१०२
ग्तेर्.	ठविअ	१६	१५	
	धण्णो	८४		६६
स्तेर् व	दीअउ	१३५		११२
स्तेर् वर् व्येद्. प यि.	देइ	४३	२३	
तोंग्. स्पङ ते	कप्परहिअ	६२		५२
व्तोग्स् पस्	उपाडणे	८		७
ग्तोद्				
ग्तोद् प		१०२		
तोंग्स्	वोहे	७६,६६		६६
तोंग्स्, म	विणु	६७	७२	
तोंग्स् नस्	मुणेवि	४१,८३	३६	
तोंग्स् प		४८		
तोंग्स् पर् ग्युर् न	परिआणहु	१७	१४	
तोंग्स् सो	जाणअ	८२	७५	
ल्तोस्	पेक्खु	५३	४३	
	पेक्खइ	१६	१५	
स्तोङ प		८४		७०
स्तोङ प ञि.द्	सुण्णहि	१५,६१,१२३	१६,०,०	
स्तोन्	वेसे	६		५
	पडिअउ	१११		६०
ल्तोस्	पेक्खइ	१६	१५	
थग्		५८		
थग् प. नग् पो		८५		

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्वती दोहाक	तालपत्र दोहांक	वागची दोहाक
थङ्.	थल	६६	४४	
थ.स्ञ द्.		१२४		१०४?
थ दद्.		३३, १०२		
थब्स्.		१०७		
थब्स्. क्यि. ब्दे. ब्.	उवाउसुह	११५		९५
थम्स्. चद्.	सब्वइ	१७	१४	
	सअल	२४, ८२	५०, ७४	
	सब्वरूअ	९३, ९९		७७, ८०
थम्स् चद् क्यङ	सब्ववि	७६	६९	
म्थऽ	अन्त	२८	५१	
म्थऽ यि. छोग्स्.		६१		
थर्. प.	मोक्ख	७, ९ १४, ४१	१२, २४	६, ८
थल् बस्	च्छारे	४		३
थिम्. ऽग्युर्		९७		
थिम् पर् ऽग्युर्.		१२७		१०४
थिम् पर् ल्तर्		९७		
म्थिल् दु.	हत्थो	१९	१५	
थुङ	पीवन्ते	२५	४८	
ऽथुङ	पिज्जइ	१०५		८६
	पिअउ	१२०		१००
ऽथुङ ब	पिविअउ	६६	४४	
ऽथुङस्. पस्.	पिवन्ते	१११		९०
थेग् छेन् ल.	महाजाणे	११		१०
थे छोम्.	सन्देह	४३, ५१	९१, ०	
थोग्	आइ (आदि)	२४	५१	
थोङ.	मुच्चहु	१७	१३	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहाक	तालपत्र दोहाक	बागची दोहाक
थोब्.	लब्भइ	१४	१२	
थोब् ऽग्युर्.	पावअ	१६	१७	
थोब् पर् ऽग्युर्.	पाविसि	७३	६६	
म्थोङ.	देक्खउ	६५	६२	
	दीसइ	१००		८१
म्थोङ ऽग्युर्		६०		
म्थोङ ङो.	गाहिब	४१	३६	
	चाहिउ	४१		३६
म्थोङ.स्ते		१०३		८४?
म्थोङ ऽद्र	दीसइ	१६	१५	
म्थोङ ब	जोअमि	२६	५२	
	दिट्ठि	३५	३४	
	विअत्त	३८	२८	
म्थोङ व चम्.		८५		
म्थोङ वर्.	लक्खिअ	१६	१६	
म्थोङ वर् ऽग्युर्	विअत्त	३६	३७	
म्थोङ स्ते	दीसइ	८१	६७	
म्थोन् पोस्	कड्ढिअ ?	२३	१६	
थोस्.	सुणउ	६५	६२	
थोस्. प	सुणइ	८८		७३
दग्.	(वहुवचन प्रत्यय)	२		१
	सुद्ध	१२६		१०६
दग् दङ. ल्हन्. चिग्	सहिअउ	२०	१८	
दग् प.	असमल	२५		२३
	सुद्ध	१२६		१०६
	विसुद्ध	३५	३४	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहाक	तालपत्र दोहाक	बागची दोहाक
ब्दग्.	अप्पण	७		६
	अप्पाण	२६	५१	
ब्दग् गिस्	मइ	५३, ७१	४३, ६४	
ब्दग्. ञिद्.	अप्पा	७६	६६	
	अप्पउं	७८	७१	
ब्दग्. दङ. ब्शन्.		६८		
दङ.	(च)	२		१
दङ. ऽद्र.	सरिस	५६	६७	
दङ पो.	पढमे	१११		६०
दङ वर्.		१२६		
ग्दङ ब्सिल् ब.		६६		
दङ ब्रल्.	रहिअ	१०, १५		६, १६
स्दङ ब.		८५		
द. ल्तर्.	अइसे	८१		६७
ब्स्दद्. प रुङ	वरु	१३५		१११
ऽदब् ल्दन्.	पुडअणि	५६	६७	
ऽदब् म.	हरन्त ?	७७	६६	
दब्. ऽर्लब्स् मेद्	णित्तरग	१००	८१	
दम् प सेम्स्	परमपउ ?	१०६	४१	
दम् पऽि. स्ञिङ	णिक्करुण	१३१		१०६
ऽदि.	से	५७	६५	
	अेहु	१३५		११२
स्दिग्. प.	पावँ	७७	६६	
	दुरिअ	११७		६७
ऽदि ल्त. बुस्	एवहि	२६	४८	
ऽदि. ल्तर्	एवँ	४१, ८३, ११८	३६, ०, ००, ०, ६८	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
ऽदि ऽद्र.		६		५
ऽदि ल	एहु ।	२६	५१	
दु	हि (में)	५		४
दुग्	विसअ (? विस)	७८	७१	
दुग् गि स्डग्स् चन्	विसअ रमन्तो	७८	७१	
दुग् ब्रल्		८५		
स्दुग् ब्स्डल्	वेअणु (वेदना)	९२		७५
स्दुग् ब्स्डल् स्नङ ब्येद्	दुक्खदिवाअर	११८		९८
ऽदुग् नस्	वइसी	५		४
ऽदुग् प	वईसउ	६५	६२	
ऽदुग् पर् ग्युर्.	अच्छन्त	१००		८१
ग्दुङ वर् ब्येद् चिग्	झगड	२५		२३
ग्दुङ वस्.	हव्वासे	७७	६६	
ग्दुङस् पऽि ऽग्रस् बु		६०		
ब्दुद् र्चि		४६		
ब्दुद् र्चिऽि. छु	अमिअरस	६६	४४	
म्दुन्.	अग्गे	२९	५२	
दु ब.	धूम	३		२
दु मर्. ल्दन्	विचित्त	१३१		१०७
र्दुल्.	धूलि	८६		७३
र्दुल् चम्	,,	४०		
दुस्	खण ?	११६		९६
दुस्. थब्स्		१२५		
दुस्.सु.	कालो	३६	३८	
ऽदुस् प ल		५५		४५
ऽदुस्. सु		४६		

तिव्बती	अपभ्रंश	तिव्बती दोहाक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
दे.	सो	३०	२६	
दे. खो. न. ञि्द्.	तत्त्व			
दे. ञि्द्.	ता	२२	२०	
	तत्त, तात्त	३६,३८	०,२८	३५,०
	स	१०७		८७
		१२३		
दे ञि्द्. नस्	तहा	१२१		१०१
दे. ञि्द्. अल्. ऽग्युर्.	तत्तरहिअ	१०		६
दे. ल्त.बु. ञि्द्.	ऐसे	३६		३४
दे. ल्तर्.	एमइ	७४	६७	
	अइसे	६२		७६
दे. दे. ञि्द्	मोवि	२६	५२	
दे. ऽद्रस्.	तहवि	७६	७२	
दे वस्.		१३५		१११
दे चम्.	एत्तवि	७८	६८	
दे. छ्.	तव्वें	४०	३६	
	ताव	७३,१०२	६६,०	०,८३
	तहि	६३? १६८		७७?
दे व्गिन्.	तिम	४६,११०		०,८६
दे. यिन्.	सोवि	१८	१४	
दे. यिन् ते.	सोवि	१७	१४	
दे यिस्.	सा	५५		४५
	सो	११०		८६
दे. रिङ.		४६		
दे. रु		८१		
देर्.	तहि	२८	५१	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिव्वती दोहाक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहाक
दे. ल	तहि	११,१३२		१०,१०६
दे स् नि	सो	१६	१६	
दे स्निद्	तावइ	८०	६७	
	तत्तइ	८७	७२	
व्दे	सुह	२५	२३	
व्दे. छेन्	महासुह	११७		६७
व्दे छेन् म्छोग्	परममहासुह	२२,४७	२०, ०	
व्दे छेन्. ग्नस्	महासुहट्ठाणे	६५	१२७	
व्दे न नुस्		११४		६४
व्दे व छेन् पो म्छोग्	परममहासुह	२६	५१	
व्दे वऽि ग्नस् म्छोग्.	सुहठाणुवर	६२		५२
व्दे वर्	साच्चे	३५	८६	
व्दे वर् ग्शेग्स् प.	सुगति	३३	८८	
व्दे ग्सङ्		६६ ?		
दो.	सो	६६	१२८	
ल्दोग् पर् ऽग्युर्. प	णिस्सरि जाइ	१२१		१०१
ग्दोङ वव् प		६१		
ग्दोङ नस्.	पढमे	३५		३४
स्दोङ पो	तरुअरह	१३०, १३१	१०७, १०८?	
स्दोङ पो दम् प.	तरुवर	१३१		१०८
म्दो. दे	सुत्तन्त	११		११
ग्दोद् नस्	अणवर ?	७४	६७	
ग्दोद् नस् स्क्ये मेद्	वेइविवज्जिअ	६४	६२	
	विण्णिविवज्जिअ	६४		५८
ऽदोद्		४६		
ऽदोद्. छग्स्.	राग	२८	५०	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहाक
ऽदोद्. प.	इच्छे	६८		७६
ऽदोद्. प. चन् ग्यि.	अत्थी अण स्क्ये. वो.	१३४		१११
ऽदोद्. प. पो.	अत्थी	१३५?		११२?
ऽदोद्. पऽि. ऽब्रस्. बु.	इच्छाफल	४३	२३	
दोन्.	कज्ज	३		२
दोन्. दम्	परमत्थ	१३	११	
दोन् दम् पऽि यि. गे.	परमत्थ वण्ण	?		
दोन्.	पढे	२		१
दोन् पस्.		१०६		
स्दोन्. प	सवर	१०७		८७
दोम्स्. पर्	धवहि	६६	४४	
ऽदोर् रो.	च्छड्डइ	१०१		८२?
ऽग्दोल् व.	रुअणे	११२		६१
दोल्. पऽि ख्यिम्		६८		
दो. ह म्ज़ोद्	दोहाकोश			
ऽद्र.	रूअ	४३	२३	
द्रन् प.		६५	६२	
द्रि.	गंध	५७	५६	
	पुच्छअ	७५	६८	
द्रिन्.	पसाअे	११५		६५
द्रि. व्रर्. व्य. ऽो.	पुच्छमि	३०	५२	
द्रि. म.		६८		
द्रि म दग्.		१२६		१०६?
द्रि. मस्	मलिणे	६		५
द्रि मेद्.	विमल	६४		६६
द्रि. मेद्. दोन्. दम्.		७४		—

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
द्रि. म मेद्	णिम्मल	१२२		१०२
द्रिल् बु	घटा	५		४
द्रि स.		८३		
द्रिस्. ल	पुच्छ	१२०		१००
द्रुङ. दु.		५४		
स्नग् छ्.	मसि	१०३	४१	
नग्स्	वणे	१२८,९०		१०४,०
नग्स्. सु. म. ऽग्रो.	म जाहि वणे	१२५		१०३
नङ	अब्भन्तरु	११०		८९
स्नङ व	पडिहाइ	९१,१०५		०,८७
नद् ग्शन् दग्.		७०.		
नम् म्खऽ ऽद्र व		४४		
नम्. म्खऽि यिद् चन्.	खबणेहि	७		७
	खवणाण	९		८
नम्. म्खऽि रङ ब्शिन्	ख-सम	८८	७६.	७२
नं वर्	कण्णेहि	५		४
नंम् गग्स्.	विणासइ	६३	६०	
नंम् ग्रोल्.	विमुक्क	१३४		११०
नम् तोंग्.		१६७		
नंम् पऽि. रङ. ब्शिन्.		१२४		१०४
नंम्. पर् ग्युर्. प		८३		
नंम् पर् ग्रोल्. व	विमुक्कउ	१२९		१०५
नंम् पर्. ऽछद् पर्. ऽग्युर्	तुट्टइ	१५६	९४	
नंम् पर् ऽछिङ.		४५		
नंम् पर् स्पङस्.	विरहिअ	१२२		१०२
नंम्. पर् स्पङ्स्. नस्.		१६६		

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
नॅम्. पर्. रोल् प.	विलास	११४		९४
नॅम्. ऽफ्रोस्. प.	विप्फुरइ	८७	७५	७२
नम् यङ.	किम्पि	९		८
		४६		
नॅम्. गसुम्. गि्य.	तिण्णवि	३७	२७	
नम्स्. क्यङ.	अवस्स	९२		७५
स्न. म्र्.	णासग्ग	५४	४४	
स्न. छोग्स्.	विचित्त	०२	६२	
	विविह	१३१		९०
न. रे.	भणइ	९		८
नॅल्. डु. म्छोन्. प.				
नॅल्. ऽब्योर्.	जोई	३४,५१,१०५	८८,०	
नॅल्. ऽब्योर्. स्प्योद्. प.	जोडणिचार	१०४		८४
नॅल्. म.	णाल	५९	६७	
ग्नस्.	ठाणो	४७	१२७	
	वइसी	५		४
	ठिअउ	११०		८९
ग्नस्. मि–,		१०६		
ग्नस्. ऽग्युर्.	वसअ	३८	२७	
ग्नस्. ब्र्तन्	त्थविर	१०		९
ग्नस्. ब्र्तन्. प.	थाक्कइ	७३	६६	६१
ग्नस्. न.	आयत्ता ?	११९		९९
ग्नस्. प.	पविट्ठ	१४	१२	
	अत्थि	८१		६७
ग्नस्. प मेद्.	णउ ठिउ	१२८		१०४
ग्नस्. पऽि ग्तेर्.	ठविअउ	१९	१५	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
ग्नस्. शिङ.	वइसी	२		१
	वसन्ते	२०	१८	
	अच्छन्त	२५	२३	
नुब्.	विलग्ग जाइ	३८,१०९	२७,४१	
नुब्. ग्युर् चिङ.	विलग्ग गउ	३०,८९	२९,०	०,७३
नुब् प.	अत्थ गउ	११८		९८
नुस्. ल्दन्.		४६		
नुस्. प.	साक्कअ	१६	१७	
	सक्कइ	६२	५२	
ग्नोद्.	डहाविअ	३		२
ग्नोद् ब्येद् लम्	विडम्बिअ	७		६
स्नोम् ख्यम्	जिग्घउ	६५	६२	
	परीसउ	६५		५५
नोर्. बु.		१०७		
पद्म.	कमल	११४		९४
पद्मऽि. स्तोङ. पो.	दलु कमल	५९	६७	
द्पल्	सिरि (श्री)	७९		६६
द्पल्. ल्दन्.	सिरि	७९		६६
द्पल् ल्दन्. ब्ल. म.	सिरिगुरुणाहे	६४	६२	५४
स्पु	लोम	८		७
द्पे दङ ब्रल् प.	विसरिस	१०४,१०९?		८४,८९?
पोङ्स्. स्प्यर्.		१०३		९४?
स्प्यद् पर्. व्य.	चरेइ	८४		७०
स्प्यर् पर् व्य.	अविआर?	१०३		८४
स्प्योद्		९९,१०४		
स्प्योद् दे		९९		

तिब्बती	अपभ्रंग	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
स्प्रव् दि. ल.		१०६	..	
प्र य घ.	पआग	५८	६६	
स्प्रल् वर्. स्प्रुल्.	णिम्मिअउ	११८		६८
स्प्रोद्. क्यि.	सुरअ	२५	४८	
फग्..		६३		७६?
फन्. पर्. व्येद्. प.	हरेइ	११७		६७
फम् ग्युर्. प.	मरेइ	६३	६०	
फुन् सुम्. म्छोग्स्.		४६		
ऽफुर्. वऽि	उड्डी	८५		७०
फोर्. ग्यिस्.		६६		
फ्यग् ग्यस्	मुद्दे	२४		२२
फ्यग् ऽछल्. लो	पणमह	४३	२३	
फ्यि गोर् वोर् व	खणु ?	१३४		१११?
फ्यिन्.	जन्त	१००		८१
फ्यिन् ते.	भमिअ	५८	६६.	
फ्यि. नस्.	पुणु	६४	६१	
फ्यि. म.	परत्त	१३१		१०८
फ्यि. रोल्.	वाहिरे	७५,६	६२,०	०,८०
	वाहिर	११०		८६
फ्यि. रोल्. से. म्स् ल.	मणु वाहिरे	१०६		८६
फ्यि. लेव्.	पअङ्गम	८७	७६	७१
फ्योग्स्. ब्चु. रु	दस दिसे	२६	५२	
फ्द्.	पावहु	१०१		८२
फ्रोव्.	विफुरति	४२	२३	
वग्. छग्स्. ग्सुग्स्.	वासिअ	६२		७६
द्वक.		६८		

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
द्‌बङ गिस्	आयत्ता	११६		६६
द्‌बङ व्स्ग्युर्. ब		१०७		
द्‌बङ. छेन्		४६		
बङ दु	कोले	३४		८६
द्‌बङ नंम्स्. व्स्कुर् शिङ.	दिक्खिजइ	६		५
द्‌बङ पो	इन्दिअ	३०,१२१	२६,०	०,१०१
द्‌बङ. पो ल्तोस् शिग्.		५३		
द्‌बङ पो. युल् ग्यि ग्रोङ.	इन्दिविसअगाम	८०		६७
द्‌बङ फ्युग् मछोग्	परमेसुरु	१००		८१
द्‌बङ फ्युग् दम् प	परमेसर	७२		६५
ऽबद्		६८		
वन्दे नंम्स् नि.	वन्देहिअ	१०		६
ऽबब्	पडेइ	८५		७०
ऽबब् स्तेग्स्	तित्थ	१५	१३	
बब् प		६१		
ऽबऽ शिग्	केवल	१०,१६,८४	०,१७,०	६,०,७०
बर्.	एहि (सप्तमी)	५		४
	मज्झ	११४		६४
ऽबर्		१०६		
वा. रा ण सी	वाराणसी	५८	६६	
बल्. व ब्येद्	उपाडिअ	६		५
स्बस्. प.	लुक्को	११०		८६
ब् ब्येद् नंम्स्		५३		
बुङ. ब	भमर	८७		७१
बु. छुङ.	बाल	७०	६४	
बु. दे.	पर ?	१०४		८४

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
द्बु. मर्. शुग्स्.		१०५		
वुद् मेद्	जुबइ	८		७
द्वुस्.	मज्झ	२८	५१	
द्बुस्. न.		५६	६७?	
द्वुस्. न. ल्ह.		११२		
वुस्. प. र्नम्स्.		१०३		
ऽबोद्. पर्. ब्येद्.	कड्ढिअ राव	२२	१६	
वोर्.	च्छड्डहु	१७	१३	
वोर्. नस्.	च्छड्डहु	१३५		१११
वोर्. व.	(त्यक्त)	१३४?		१११?
वोर्. वर् व्यस् न	च्छड्डहु	१३५		११२
ब्य.	करिज्जअ	७८	७१	
	किज्जइ	१५	१२	
ब्यग्.	चमरह	८		७
ब्यङ. छुब्. ग्नस्.	वोहि ठिअ	१२७		१०३
स्ब्यङस्. ग्युर्. प.	सोहिअ	४०	३६	
ब्य. व. ब्येद्.		५०		
ब्य. रोग्	काउ	८५		७०
ब्यर्. योद्	कीअइ	२३	२२	
ब्यस्	(भूतकालिक सहायक क्रिया)	३		२
ब्यस् प.		१०३		
ब्यिन्. नस्	दिज्जअ	७८		७१
ऽब्यिन्. चिङ	दत्त	३६	३५	
स्ब्यिन् प.	दाण	१३५		११२
स्ब्यिन् स्त्रेग्	होम	३		२

तिव्वती	अपभ्रंश	तिव्वती दोहाक	तालपत्र दोहाक	बागची दोहाक
व्यिस्. प.	बाले	१६	१६	
द्व्यु गु.	(एक) दडी	३		२
द्व्युग् ग्सुम् लग्स् ल्दन्.	त्रिदडी	३		२
व्युग्स्. नस्.	उद्दूलिअ	४		३
ऽव्युङ. व.		१२४		१०४
ऽव्युङ. वर्.	होइ	७१	५७	
व्ये ग्रग्	बिशेषा, वेण्णि	६०	६७	
व्येद्.		३		
व्येद्. ऽग्युर् न	करिज्जअ	६४		७७
व्येद्. चिग्.	करहु	३३	४४	
व्येद्. चिङ	करु	८६		७१
ऽव्येद्. पर्	करु	२७	५०	
व्येद्. पर् ऽग्युर्	करिज्जड	६३		७७
व्येद्. पर्: सद्	करइ	६२		७५
द्व्ये: व.		६६,१२२		०,१०२
	वेट्ठिअउ ?	१२८		१०५
व्ये. व्रग्	विसेस	२७,६८	५०,०	
द्व्युर्. प.	भिज्जइ	१०२		८३
द्व्येर्. मेद्.	अभिण्ण	१३३		११०
स्व्योर्. व्शि		४७		
स्व्योर्. वर्.	जोडण	१६	१७?	
स्व्योर्. वर्. नुस्.	जोडण साक्कअ	१७	१७	
व्योल् स्रोग्.	पशु ?	२३	३०	
ब्रम्. म.	बाम्हण	५७	६५	
ब्रल्.	च्छाडी	१३	११	
ब्रल्. व.	रहिअउ	७१	६४	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
ब्रल् बस्	बाहिअ	२३		२२
ऽब्रस्. बु	फल	१२३		११०
मं.	मोरह	८		७
मङ म्य. ङम्. ग्यि	मरुत्थलहिं	६६	४४	
म ऽदुग्. चिग्.	म वदह	५४	४४?	
म. ऽदुग्. प.	म थक्कु	१२५		१०३
मन् डग्	उअेस	२७	४६	
	आअेसह	३८	२८	
	वअण	६६	४४	
मग् ङग्	वअण	६६	४४	
	उवअेसे	६६		५६?
द्मन् पऽि रिगस्	सुद्द	५७	६५	
स्मन्		७०		
म यिन् ते	णउ	२२,११६	१६,०	०,६६
मर्. मे	दीवा	५		४
	दीपे	१४	१२	
मर्. मे छु दङ		१०१		
म. लुस्	सअल	२२		२२
	असेस	२८	५०	
	सअलवि	३७,६८,१०८ ११३,१२५	३४,२५,०,०, ०,०,	६११०३
म. लुस्. द्रि मेद्.	णिक्कोली	७५	६१	
मि	न	२		१
	णउ	१७	१७	
	मा	२७	५०	
मिगस्. शिङ ऽछि. बर्		८३		६६

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
मिग्.	अक्खि	३		२
	लोअण	७६		६६
मिग् ग्सुम्	तइलोअ	६०	६६	
स्मिग् गं्युडि छु	मिअतिसणे	११३		६१
द्मिग्स्. दङ व्चस्	(सालवण)	१२३		१०३?
द्मिग्स्. व्चस् द्मिग्स् मेद्		१२४		१०४?
द्मिग्स् पर् व्येद् प	आलमाल करह	१३२		१०६
मिङ	णाम	१११		६०
	णाउ	१३१		१०७
मि र्तग्		४६		
मि र्तोग् प	अविकल	१२८		१०८
मि म्थुन् फ्योग्स्		१२६		१०६
मिऽ व्युङ		१०६		
मि ग्यो.	णिच्चल	५२,७३,६६,७७	०,६६	८३,०
मि शेस् प	गाहइ ?	११३		६१
मि शेस् प दग्	वढ	२७	४६	
मु ग्नस्.	तित्थ	५६	६७	
मुन् नग् छेन् पो	घोरान्धारे	११७		६७
मुन् प.	अंधार	२१	१६	
मे	अग्गि	२, १०६		१,०
मे ल्चे.		६०		
मे.तोग्	फुल्ल	१३०		१०७
मेद्	विरहिअ	३		२
	णाहि	२६	८६	
मोंङस् ज्युर्	मोहिअ	३७	३४	
मोंङस्. नंमृस्.	वढ	३६	३७	

तिब्वती	अपभ्रंश	तिब्वती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
मोंङस्. प.		३२,५२,६०		
	वड	८६,११९		७१,९९
मोस्. प.	सन्तुट्ठ	१४	१२	
स्मोस्. सु.		९४		७७
म्य.-ङन्. ऽदस्.	णिव्वाणे	१३,१७	११,१७	
	परमणिव्वाण	४२	२४	
	०	७०		
म्युर्. दु. ग्रोल्.	परिमुचन्ति	४४	९१	
म्युर्. दु. स्पोङ व.		४६ ?		
म्योङ.	दिट्ठो	११		१०
म्योङ वर् ग्येस्.	जाण	११६		९६
स्म्र.	भणइ	२०	१६	
स्म्र रु. मि. व्तङ.	भणइ ण जाइ	७२	६४	
स्म्रस्. प.	वुत्त	१९	१५	
र्च.व.	मूल	२७,७८,१३२	२७,७१,०	१०९
र्च.व.ब्रल्	मूलरहिअ	३८	२८	
र्चम्.	केवल	१०		९
	मत्त	९२		७५
र्चेद्. मो. व्य.		१०३		
छ्गस्		८२		
छ्ङस्. प.	वाम्ह (ब्रह्मा)	६०	९९	
छद्. म.	(प्रमाण)	११		१०
म्छद्. मर्. ऽजिन्. प.		६८		
म्छम्स् सु.	कोणहि ?	५,३२		४,०
छिग्. गिस्.	अणे	३९	३८	
छु.ल्. दु.	अच्छहु	७०	६२	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहाक	तालपत्र दोहाक	बागची दोहाक
म्छोन्		५१		
म्छोन् ते.	लक्खिअइ	३७	२७	
म्छोन्.दु ऽग्रो.		९७		
म्छोन्.नुस्	लक्खिअउ	३६	३५	
	लक्खिअ	३७	३४	
म्छोन्.प	लक्खइ	१८,९६	१५,०	
म्छोन् प मिन्.	ण लक्खइ	१८	१५	
म्छोन् मेद्.	दुल्लक्ख	१०६		८६
म्छोर्.रो.		५०		
छोल्.	पुच्छइ	७५	६२	
	लोडइ	९९		८०
ऽजग्.		१०१		
ऽजग्स् प.		५०		
म्जद् प				
ऽजिन्.	गहिउ	७७	६९	
ऽजिन् दङ स्गोम्.पइ.	गुणिज्जइ	१८	१४	
ऽज़िन्.प यिन	धरिज्जइ	९४		७७
म्जुग्स्.स्पु	पिच्छी	८		७
र्जुन्	अलीका	१७	१३	
ग्र्जुन्.प ञिद्	मिच्छेहि	४		३
ऽजम्स्.	णिमिस	७९		६६
म्जेस्.	रज्जइ	९४,१०२,१०८		७८,८३,८४
ज्रोग्स् पर्.ऽग्युर्.	पूरइ	११४		९८
व.सोग्स्.	सिआल	७		६
व्शग्	मिलन्ते	३४	८८	
व्शग्.न.	पइसइ	८९	७८	७२

तिव्वती	अपभ्रंश	तिव्वती दोहाक	तालपत्र दोहांक	वागची दोहांक
व्शग्. नस्.		१०४		८४
ग्शन्.	अण्ण	६,५६,६६	०,६७,०	५
	पर	२६	५६	
ग्शन्. नंम्स्. ऽगल्.	परविरुद्धो	६६	१२१	
	अण्ण०	६६		८०
ग्शन्. प.	अण्ण	१८	१४	
ग्शन्. पऽि सेम्स्.	परचित्त	१३२		१०८
ग्शन्. मेद्.	णउ पर	११६		६६
ग्शन्. ल फन्. प.	परउआर	१०३		१०७
शल्.	(मुख)	१६		
ग्शि		१०१		
व्शि.	चार	२		१
व्शि. प.	चउट्ठ	११६		६६
शिङ.	खेत्त	५८	६६	
व्शिन्.	सरीसो	६३		७६
ग्शिर्. ऽग्युर्.	विलीणउ	६०	६६	
ग्शुग्स्.	वइट्ठ	११		१०
ग्शुग्स्.	लग्गा	१५	१६	
ग्शुग्स् प.	न्हाइ	१५	१३	
	पईसइ	१६	१५	
ग्शुङ्स् लुग्.		११		
ग्शेन् प.	वन्धा	१७,७४	१३,०	
	आसत्ति	८६		७१
ग्शेन् पर् व्शिन्.		७२	६५	
ग्सेस्.	(इति)	२०		
ग्शेग् चिग्.	वसउ	१२०		१००

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहाक	तालपत्र दोहाक	बागची दोहाक
ग्शोन्.नु म	कुमारी	७२	६५?	
स.	खाहु	६५		५५
सग्.प.'		११२		
सग् मेद् ग्सुम्.		११२		
स.बस्.	भोग्रणे	६		८
सब् प .	गम्भीरइ	११६		६६
ग्सऽ दङ. म्ञ्म् दु.		११८		६८
स.शिङ.	खाग्रन्ते	२५	४८	
	खज्जइ	१०५		८६
ग्सिङस्	वोहिग्र	८५		७०
सुग् ङुस्	विसल्लता	६२		७५
ग्सुग्स्	वेसें	७		६
ग्सुग्स्, रङ गि–,		१०२		
सोस् नस्	खज्जइ	१०३		८४
सोस प यिस्	खाइ	४०		६०
स्.ल व	ससि	२६	४६	
	चान्द	५८,१०७	६६,०	
स्ल.व र्ग्य म्छो	सोवणाहु	५७	६५	
स्.ल व नोर् वु.	चन्दमणि	११७		६७
ब्स्.लस् ब्र्जोद्	जाया ?	७६	६६	
ऽोङ		८२,६१		
ऽोङस् पऽि छे.	ठीग्रउ ?	१३४		१११
ऽोङस् शिङ		६०	६३	
ऽोन् क्यङ	वि	१६,६८	१५,०	
ऽोन्.ते	ग्रहवा	१६	१७	
ऽोस्.	सेउ ?	१२८		१०५

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
ठ्यग्.	चमर	८		७
यङ दग् म्थोङ.	दिट्ठउ	५९	?	
यङ. दग् ग्नस्.	सुसंण्ठिअ	६१	५१	
यङ. दग्. सद् पर् ऽग्युर्		६१		
यङ दङ यङ. दु.	वहलहु	२५	४८	
यङ दङ स्पङ.	पडिपज्जह	५५	४४	
यङ न.	अहवा	११५		९५
यङ. पो.	फुड	९८		७९
यन् दु. छुग्.	विअप्प	१२०		१००
यन् लग्.		३१,९६		
यि. गे.	अक्खर	७१,१२८	६४,२५?	
यि. गे. ग्चिग्.	अक्खरमेक्क	१११		
यि गे मेद्	णिरक्खर	५१,१०८	०,२५	
यिद्.	मण	३१,९४	३०	७७
यिद्. क्यिस्.		१२३		
यिद्. छेस्. पर्.	पत्तिजइ	३५	८९	
यिद्. दु. ऽोङ		९१		
यिद्. म. यिन् प	अमणु	९४		७७
यिद्. वृगिन्. नोर् वु	चिन्तामणि	४३,९३	२३	७६
यिन्. प.	अच्छहु	६४	६२	
युल्.	विसअ	२०	१८	
	देस	७७	७०	
युल्. ग्ञि्स्.		८६		
युल्. ग्यि. मुछोन्. पस्.		९६		
युल्. ग्यि. गूलङ पो	विसअगअेन्दे	१२१		१०१
युल्. न.	देसहि	१०३		८४

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहाक	तालपत्र दोहाक	ब.गची दोहाक
युल् नंम् पर् दग् स्ते	विसअविसुद्धे	८४		७०
युल् नंम्स्	विसअ	७७	६६	
युल् ल शेन्. प.	विसआसत्ति	८६		७१
ग्यो	चल	८०		६६
ग्यो , मि–,	णिच्चल	८०		६६
ग्योग्स्	वेसे	६		५
योङस् सु. ब्चद् प	परिच्छिण्णउ	७२	६५	
योङस् सु. ब्र्तग्स्.	वाणी ?	७६	६६	।
योङस् सु स्पङस् प		६६		
योङस् सु शेस्	परिआणसि	४५,७३	०,६६	..
	परिआण	२५	१०३	
	परिआणिअ	६५	१२७	
योङस् सु शेस् ब्य		३२		
योङस् सु ब्स्गोम्	परिभावइ	१२८		१०५
योद् दे		४८		
योद् प	वसन्त (रहते)	८२	७४	
योद् प म यिन्	न भावइ	६		८
योन्. तन्	गुण	७१,६०	६४,७८	
योन् ग्तन्	गुण	४०	३६	
ग्यो व		४६		
रङ. द्गऽ वर्	सइच्छे	१२०	१००	
रङ गिस् रङ ल	अप्पउ अप्पा	७४	६७	
रङ गि ङो वो	अप्प सहाव	३०	२६	
रङ गं्युद् ग्रोल् न	मणमोक्खेण	४२	३४	
रङ ग्रोल् ऽग्युर्	विमुच्च	११६		६६
रङ ञिद्	अप्पाण	५४,८०		

तिव्वती	अपभ्रश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहाक	बागची दोहांक
रङ्. द्बङ्. स्नङ. वर्. ञ्युर्	पडिहाइ	१२१		१०१
रङ. द्बङ्. मेद्		१०७		
रङ. ब्शिन्	सहाव	१९	१६	
	सरूअ	८७,८८	७५,७३	७२
	सहजे	१०४		८४
रङ व्शिन् चिग् स्क्येस.प	सहजसहावे	९४		७७
रङ. रिग्.	सएसवित्ति	३३	४४	
रङ ल. छेद्. ते		५३		
रङ ल. रङ् रिग्.		९३		७६
रङ ग्सल्.		१०१		
रव् तु. गॅ्यस्	विफुरइ	८०	६७	
रव् तु. ग्रोग्स्.	पडिवण्ण	१२२		१०२
रव्. तु थिम्		४५		
रव् तु थिम्. पर् ञ्युर्	विलीणउ	७२	६५	
?थिम् प.	लीण	७२	६५	
रव्. तु स्पङ्स्	परिहरहु	७०	६४	
रव् व्युङ नस्.	पव्वज्जिउ	१०		९
रव् तु ऽव्युङ. व. मेद्	पव्वज्जेंहि रहिअउ	२०	१८	
रव्. तु. व्ल. मेद्		१२४		१०४
रव्. तु. ग्सेस्	घोलिअइ	१०८	२५	
रव्. ऽव्रद्	भक्ति	७१	६४	
रल्. प.	जडा	४		३
रिग्	सवित्ति	३३	४४	
		६५	६२	
रिग् व्येद्.	जोहि ?	११२		९१
रिग्स्. व्येद्	वेद	२		१

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
रिग्स्. मेद्		६१		
रिङ	दीह	६		
रि दग्स्	हरिणह	८७		७१
रि बो छु	गिरिणई	१२०		१००
रुङ	वरु	१३५		११२
रेग्. ब्शिन्	च्छुप्पइ	७७	६९	
रे ब	आस	११४		९४
रे ब मेद्	णिरास	१३४		१११
रो	रस	४६,६१	०,५१	
रो म्ञम्	समरसु	५७,८६	६५,७७	
रोल्		६८		
ल	(२ विभक्ति)	२		१
लग् तु.		१०२		
लग् पऽि म्थिल् दु	हत्थे	१९	१५	
लग् पस्	करे	१२१		१०१
क्लग् तु मेद्	खीणु	१०६	४१	
ब्लग्स्		१३४		१११
ब्लंग्		८६		७३
ग्लङ छेन्	करि	८७,७६		७१,७८
ग्लङ पो	करिह	६		८
ग्लङ पो स्क्योङ	कवडिआर	१२१		१०१
ब्स्लङ बस्	गहणे	८		७
लङस्. ते	उछ	६		८
ब्लङस् नस्	लइ	२२	२०	
	गहिअ	१२१		१०१
ब्लङस् प	साहिउ	२८	२२	

तिव्वती	अपभ्रंश	तिव्वती दोहांक	त.लपत्र दोहांक	वागची दोहांक
व्स्लद्. दे.	खरडह	२५	२३	
लन्.	ववहारे?	६५	६३	
लन्. छब्.		६७		
लंव्स्.	तुरंग (? तरंग)	५५	४५	
लंव्स्. दग्.	तरंग	८८	७६	७२
व्ल. म.	गुरु	८४	६९	
व्ल. म. दम्. प.	वरगुरु	३५	८९	
व्ल. मऽि. द्रिन्.	गुरुपसाए	१३५		९६
?द्रिन्.	पसाअे	११५		९६
व्ल मऽि. गल्.	गुरुपाअ	१९,३१	१५,२९	
व्ल. मऽि योन्.	दक्खिणा	६		५
व्ल. मऽि लुङ	गुरुअण	७१	५७	
व्ल. मऽि व्स्नन्. प.		८४	६९	
व्ल. मेद्.		४५,४९		
व्ल. मेद् लुस्.	दोहाणुत्तर	७३	६६	
लम्.	मग्ग	१६	१६	
लम्. म्छोग्	उत्तिम मग्ग	१६	१६	
स्लर् यङ.		६९,८५		०,७०
	जइ	११५		९५
ल ल.	कोवि	११	१०	
लस्.	कम्प	४१	२४	
लस् ‍त्रिग्म्.	कम्मेण	४१	२४	४०
लस् मेद्.	अ-काम	८०	६७	
लम् सिन् प		५४		
लस् लस् ग्रोल्. न.	कम्मविमुक्केण	४१	२४	
ल्नु	वाहिअ	७		६

तिब्वती	अपभ्रंश	तिब्वती दोहाक	ताम्रपत्र दोहाक	वागची दोहाक
लुंङ	पवण	२६,३१,४५	४९,३०	०,९९
		५५,७९	०,४५	
लुङ नंम्स्		९८		
लुंङ व्चिङ्स् प.		५४		
व्लुन् पो.	जड	४४,६८	९१,०	
	णिक्कोली ?	७६	९८	
स्लु वर् व्येद्	धधी	५		४
ग्लु लेन्.ते	गाइब	४?	३६	
लुस्	देह	४		३
	काआ	१०		९
	तणु	३१	२९	
लुस् दङ ङग् यिद्	काअवाअमणु	१०२		८३
लुस् दङ ऽद्र	देहासरिस	५९	९७	
लुस् मेद्	असरीर	११०		८९
लुस् ल	देहहि	८२	७४	
व्स्लुस्	वाहिअ	२०,२४	१६,१२	
	वुज्झइ	३६	३४	
लेग्स् पर् ग स् व्य	वुज्झइ	७४	६०	
लेन्		१०१		८२
व्लो.	वुद्धि	६३	६०	
वलोग् प	पढिज्जइ	१८	१४	
व्लो. ग्रोस्.	मति	८४		६९
स्लोङ न.		९९		
लो. ऽदव् मेद्	साह	१३२		१०८
ग्लोद्		५१		
स्लोव्. द्पोन्	गुरु	३१	३८	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहाक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहाक
स्लोव्. म.	सीस	६७	७७	
लोब्स्. नस्.		८२		
ल्ह.	देव	७८	७१	
ल्हुन्. गि्यस्. ग्रुब्.		६६, १३१		१०८
ल्हुङ.		८०		
ल्हुङ. बस्.		१३३		१०६
ल्ह. व्रग्स्.	णेवज्जे	१४	१२	
ल्हन्. चिग्.	सहिश्र	२०	१८	
ल्हन् चिग्. स्क्येस्.	सहज	१३, २१, ३७	११, १६, २७	
ल्हन्. चिग्. स्क्येस्. द्गऽ.	सहजाणन्द	११६		६६
ल्हन्. चिग् क्येस् प वृदुद्. चिऽ. रो.	सहजअमिअरस	६७	७७	
ल्हन्. चिग् व्योस्.		६१		
ल्हन्. चिग्. ल.		६८		
व्गद्. दु. योद्.	वखाणे	२३	२२	
शर्.	उवइ	११८		६८
शर्. चिङ.		१०६	४१	
शि. ग्युर्	वाज्जइ	२२	२०	
शिङ	(क्त्वार्थे)	२		१
	(वदर्थे)	६		५
शिङ.	कट्ठ	५४	४४	
शिङ. गि नंल् स्व्योर्.	कट्ठजोड	५४	४४	
शिङ तु. द्कऽ.	विसम	८१		६७
शिन्. तु. फ व. नंल्. म	वर-णाले	५६	६७	
शिन् तु. मि त्सुन्.	मुचंचल	५५	४५	
? मि. त्सुन्	चंचल			

तिब्वती	अपभ्रंश	तिव्वती दोहाक	त.नपत्र दोहांक	दागची दोहांक
श ुग्स्.		१०५		
शुग्स् प.	पइसइ	१६,४७	१५,०	
शुन् प.	तुस	६२		७५
शुब्. श ुब्.	खुसखुसाइ	५		४
शेस्	जानन्त	२		१
शेस्. प.	परिग्राण	२१	१८	
	अवेज्ज	६१		५१
शेस्. पर्. ऽग्युर्.	जाणइ	११५		६५
शेस् पर् नुस्	जाणिउ	६१	५१	
शेस् पर् ब्ग्र	जाण	१०७		८१
शेस् पर् व्योस्.	मणहु	३४	८५	
	जाणहु	३६,७६	०,६६	३७,०
शेस् पर्शिङ.	जाणिअ	४		३
शेस् व्यस्	जाणी	७६	६६	
शेस् सोइ.	जाणमि	१११		६०
शोङ		१०१		
शोङ ङो.		४७		
स	मट्टि	२		१
ग्सङ. स्ङग्स्.	मन्तह	१५	१२	
सङ. दङ. ग्शन्.		४६		
सङ न मेद्.	अपुव्व	१०१		८२
सङ न	पुव्व	१०१		८२
व्सङस्		५०		
सङस्. र्ग्यस्.		१०२		?
स स्तेङ.		३१		
स वोन्.	वीअ	४२	२३	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
स बोन्. ग्चिग्.	एक्केम्वीए	१३३		११०
सम्. दङ. क्ये		८१		६७
ब्सम्	चित्त	७०	६४	
व्सम्. ग्यिस् मि ख्यब्.	अचित्त	४८	१२८	
ब्सम् ग्तन्	झाण	१४,३४,६३,	१२,४१,६१	
	धारण	२४,७६		२३,६६
ब्सम् ग्तन् ऽग्युर्.	धाहिज्जइ	१००		८१
व्सम् ग्तन् व्यस् प.		९८		
व्सम्. ग्तन् मेद् चिङ.	झाणहीण	२०	१८	
व्सम् दु ग्युर्	विचिन्तेज्जइ	१०५		८६
ब्सम् प		४६,११७		९७
व्सम् पर् व्येद्		९६		
व्सम् पस्	चित्ते	४८	१२८	
व्सम् व्य	धेअ	२४,७६	२३,६६	
	(चेतसिक)	७०	६४	
व्सम्. मेद्.	अ-चित्त	९५	१२८	
स रह् (म्दऽ व्स्मुन्)		९		८
ग्सल् वर्	फुड	३१,३८	२९,२७	
ग्सल्. वर् स्नङ	पडिहासइ	९८		७९
व्सल् व्येद्.	दिवाअर	५८	९६	
स. ग्सुम्	तिहुअण	१०६,११४		८७,९४
ग्सुङ व्य		४४		
सुन् व्यिन्	वाहिउ	४८		१२८
सु ल	कोवि	३०	५२	
	कासु	७२	६५	
सुस्. क्यङ	केणवि	२४,९५	२२,१२८	

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहाक	तालपत्र दोहाक	बागची दोहाक
	कोवि	३७,६०	३४,०	
सेम्स्.	मण	२६	४६	
	चित्त	३७,६०,१०७,०	२७,७८	८७
	चित्तउ	७४	६७	
सेँम्स् क्यि ङो बो	चित्तरूअ	३६	३७	
सेम्स् क्यि चँ व		६१		
सेम्स् क्यि छुल् ऽजिन्	चित्तेकरुअ	११	१०	
सेम्स् क्यि ग्लङ पो	चित्तगअेन्द	१२०	१००	
सेम्स् स्क्ये	चित्तह	५४	४४	
सेम्स् ञ्म्स् प		१०५		
सेम्स् ज्दि् ग्चिग् पु	चित्तेकं	४२	२३	
सेम्स् प	चिन्तइ	३८	२८	
	मुणइ	१३३		६०?
सेम्स् ल	चित्ते	१०५	६५	
सोङ नस्	गड	६६		८०
ग्सोद् प	मारइ	१२१		१०१
ग्सन् प		८३		
सोन्. मो	णख	६		५
स्	(तृतीया)	३,४		२,३
स्रङ. खऽि		६६		
स्रिद्	भव	२६	५१	
स्रिद् दङ. म्ञम् शिङ	भवसम	८८	७६	७२
स्रिद् प	भव	२४,७०	२२०	
स्रिद् पऽि स्न चॅर्	भवगन्व	५५	४८	
व्स्लेग्	हुणन्त	२		१
स्रोग् छग्स्.		४८		

तिब्बती	अपभ्रंश	तिब्बती दोहांक	तालपत्र दोहांक	बागची दोहांक
अ. थङ.		१०३		
अ. म.	माइये	१०४		८४
उत्पल	उअल	७७	६६	
ए. म. हो.	अरे	५५	४४	
ए. र.	अइरि	४		३

परिशिष्ट ५

दोहों की तुलना

स.स्क्य विहार से मिली हमारी तालपोथी यही नही, कि अब तक मिले हस्तलेखो मे सबसे पुरानी है, बल्कि इसमे दोहा की सख्या सबसे अधिक–१६५ है, जिनमें आधे से ऊपर न भोट अनुवाद में मिलते है, न डा० प्रबोधचन्द्र बागची और महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री की पुस्तको में ही। इसके लिए निम्नस्थ तालिका को देखिए–

स.स्क्य तालपोथी से तुलना

स.स्क्य तालपोथी	भोट-अनुवाद	बागची	हरप्रसाद शास्त्री	विशेष
०	१	०	०	
०	२	१	२	
०	३	२	३	
०	४	३	४	
०	५	४	५	
०	६	५	६	
०	७	६	७	
०	८	७	८	
८ घ	९	८	९	
९	१०	९	१०	
१०	११	१०	११	
१२	१४	१४	१४	
१३	१५ १७ क ख	१५	१५ ख ग १७ ख ग	
१४	१७ ग घ १८ क ख	१६ ग घ १७ क ख	१७ घ १८ ख ग	
१५	१८ ग घ १९ क ख	१७ ग घ १८ क ख	१९ क ख ग	

सं स्कय तालपोथी	भोट-अनुवाद	वागची	हरप्रसाद शास्त्री	विशेष
१६	१९ ग घ १५ ग घ	१८ ग घ ००	१९ घ १५घ १६क	
१७	१६	०	१६ ख ग घ १७क	
१८	२०		२० ख ग घ २१क	
१९	२१		२१ ख ग घ २२क	
२०	२२		२२ ग घ २३ क ख	
२१			२३ ग घ ००	
२२				
२३	४१ ग घ ४२ क ख	४१		
२४	४२ ग घ ४१ क ख	४०		
२५	१०७	८८		
२६				
२७	३६ ग घ ३७ क ख	३६		
२८	३७ ग घ ३८ क ख	३७		
२९	३०	२९		
३०	३१	३०		
३१-३२				
३३	३४ ग घ ३५ क ख	३४		
३४	३५ ग घ ३६ क ख	३५		
३५				
३६	३९ ग घ ४० क ख	३९		
३७-४०				
४१	१०८		१०९	
४२	२३	२२	२४	
४३	२४	२३	२५	
४४-४७				
४८	२५	२४	२५ ग घ २६ क ख	
४९	२६	२५	२६ ग घ २७ क ख	

स.स्कृत तालपोथी	भोट-अनुवाद	बागची	हरप्रसाद शास्त्री	विशेष
५०	२७	२६	२७ ग घ २८ क ख	
५१	२८	२७	२८ ग घ २९ क ख	
५२	२९	२८	२९ ग घ ३० क ख	
५३			३० ग घ ००	
५४-५५				
५६	६० ग घ ६१ क ख		६२	
५७-६०				
६१	६२ ग घ ६३ क ख	५३ ग घ ५४ क ख	६३	
६२	६३ ग घ ७४ क ख	५४ ग घ ५५ क ख		
६३	६४ ग घ ६५ क ख	५५ ग घ ५७ क ख		
६४	७०	५७ ग घ ५८ क ख		
६५	७१	५८ ग घ ५९ क ख		
६६	७२	५९ ग घ ६० क ख		
६७	७३	६० ग घ ००		
६८	७४	६१ ग घ ६२ क ख		
६९	७५	६२ ग घ ६३ क ख		
७०	७६	६३ ग घ ००		
७१	७७	६४ ग घ ००		
७२	७८	६५ ग घ ००		
७३			७३	
७४		०० ६८ क ख	७४ क ख ००	
७५	८१ ग घ ८२ क ख	६८ ग घ ७२ क ख		
७६	८७	७२ ग घ ००		
७७	६६ ग घ ००	०० ७४ क ख		
७८	८९	७४ ग घ ००		
७९-८७				
८८	३२ क ख ००	३२		

स.स्क्य तालपोथी	भोट-अनुवाद	वागची	हरप्रसाद शास्त्री	विशेष
८९	३३	३३		
९०	३४ क ख ००			
९१	३९ क ख ४२ ग घ	४२		
९२	४३ क ख ५१ ग घ	४३		
९३	५२ क ख ५३ ग घ	४४		
९४	५४	४५ ? ४६ क ख		
९५	५५ ग घ ५६ क ख	४६ ग घ ४७ क ख		
९६	५६ ग घ ५७ क ख	४७ ग घ ४८ क ख		
९७	५७ ग घ ५८ क ख	४८ ग घ ४९ क ख		
९८	५८ ग घ ५९ क ख	४९ ग घ ५० क ख		
९९	५९ ग घ ६० क ख	५० ग घ ००		
१००-१०२				
१०३	६२	०० ५२ क ख		
१०४	६१ ग घ ००	५२ ग घ ५३ क ख		
१०५-१२०				
१२१	९७ ग घ ९८ क ख	८०		
१२२-२६				
१२७		०० ७८ क ख		
१२८	४६ ग घ ४७ क ख	७८ ग घ ००		
१२९-१६४				

इस तालिका से मालूम होता है, कि स.स्क्य के निम्नांकित दोहों का न अनुवाद है, और न दूसरी पोथियो में पता है—

२१ ग घ २२, २९, ३१, ३२, ३५, ३७-४१, ४४-४७, ४३-६०, ७६ ग घ, ७७, ७८ ग घ, ७९-८७, ८८ ग घ, ९०, ९९ ग घ, १००-१०२, १०३ क ख, १०५-१२०, १२१ ग घ, १२२-१२६, १२७ क ख, १२८ ग घ, १२९-१६४.

भोट अनुवाद मे १३४ दोहे मिलते है। यद्यपि डा० वागची के सस्करण मे ११२ ही दोहे है, लेकिन दोनो का क्रम एक जैसा है, जिससे मालूम होता है,

कि दोनों किसी पुरानी एक जैसी प्रति के विस्तृत और सक्षिप्त रूप हैं। तुलना के लिए यहां हम भोट-अनुवाद, बागची और स.स्क्य की प्रतियों के दोहों को देते हैं—

भोट	बागची	स.स्क्य
१	०	[illegible]
२	१	
३	२	
४	३	
५	४	
६	५	
७	६	
८	७	
९	८	८
१०	९	९
११	११	१०
१२	११	
१३	१२	११
१४	१३	१२
१५	१४	१३,१६
१६	१५	१७
१७	१६	१७,१३,१४
१८	१८	१४,१५
१९	१९	१५,१६
२०	२०	१२७
२१	२१	१८,१९
२२	२२	१९,२०
२३	२३	[illegible] ४२
२४	२४	४२,४३

भोट	त्रागची	स.स्वय
२५	२५	४३,४८
२६	२६	४८,४९
२७	२७	४९-५०
२८	२८	५०,५१
२९	२९	५१,५२
३०	३०	५२,२९
३१	३१	२९,३०
३२	३२	३०,८८
३३	३३	८८
३४	३४	८९
३५	३५	३३
३६	३६	३३
३७	३७	३४,२७
३८	३८	२७,२८
३९	३९	२८,९
४०	४०	९१,३६
४१	४१	३६,२४
४२	४२	२४,२३
४३	४३	२३,९१
४४	४४	९२
४५-४६		
४७	१२८	१२८
४८		१२८
४९-५१		
५२	४३	९२
५३	४४	९३
५४	४५	९३

भोट	वागची	स.स्वय
५५	४६	९४
५६	४६,४७	९५
५७	४७,४८	९५,९६
५८	४८,४९	९६,९७
५९	४९,५०	९७,९८
६०	५१	९९
६१	५२	
६२	५२,५३	५६
६३	५३,५४	६१
६४	५४,५५	६२
६५	५५,५६	६३
६६	५६	४४
६७		७७
६८-६९		
७०	५७	४६
७१	५८	६४,६५
७२	५९	६५
७३	६०	६६
७४	६१	६७,६८
७५	६२	६८
७६	६३	६९
७७	६४	७०
७८	६५	७१
७९	६६	७२
८०	६७	
८१	६७,६८	
८२	६८	७५

भोट	बागची	स.स्वय
८३	६६	
८४	७०	
८५		
८६	७१	
८७	७२	७६
८८	७३	७६,७५
८६	७४	७८
६०		७८
६१	७५	
६२	७६	
६३	७७	
६४	७८	
६५		१२८
६६	४६	
६७	४६	१२०
६८	८०	
६६	८१	
१००	८२	
१०१	८३	
१०२	८४	
१०३	८४,८५	
१०४	८५,८६	
१०५	८६,८७	
१०६	८७,८८	
१०७	८८	
१०८	४१	४१
१०६	६८	

भोट	बागची	स.स्कय
११०	९०	
१११		
११२-१२१	९१-१०२	
	९४	
१२२-१२३		
१२४	१०३	
१२५		
१२६-१३४	१०४-११२	
१२८	१०४-१०५	
१२९	१०५,१०६	
१३०	१०६,१०७	
१३१	१०७,१०८	
१३२	१०८,१०९	
१३३	१०९,११०	
१३४	११०,१११	
१३५	१११,११२	

परिशिष्ट ६

पण्डित अद्वयवज्र

सिद्धो के ग्रन्थो के टीकाकारो और पजिकाकारो में अद्वयवज्र का प्रमुख स्थान है। सिद्धो की सरल भाषा अपने रहस्यवादी रूप के कारण दुरूह हो जाती है, जिसको खोल कर रखने मे अद्वयवज्र बहुत ही सिद्धहस्त है। सौभाग्य से सरहपाद के सर्वप्रसिद्ध ग्रन्थ 'दोहाकोशगीति' की अद्वयवज्रकृत पजिका मूल सस्कृत में मिल चुकी है, और नागरी अक्षरो मे डॉक्टर पी० सी० वागची द्वारा सपादित होकर छप भी चुकी है। अद्वयवज्र विद्वान् ही नही थे, बल्कि वह सिद्धो के सपर्क मे आकर सिद्धचर्या के अभ्यासी भी थे। पर, वह सिद्ध नही बन सके, यद्यपि अभी (ग्यारहवी सदी के प्रथम पाद में) सिद्धो की चोरासी की सूची पूरी नही हुई थी। वह दीपकर श्रीज्ञान के विद्या-गुरु थे, जो ग्यारहवी सदी के मध्य मे तिब्बत गये और वहाँ से फिर भारत नही लौटे। दसवी सदी के अन्त मे वह मौजूद थे, सभव है ग्यारहवी सदी के प्रथम पाद मे भी जीवित रहे हो।

उस समय जीवनियो के लिखने की परिपाटी थी, जो अद्वयवज्र की इस अत्यन्त सक्षिप्त जीवनी से मालूम होगा। यह जीवनी नेपाल मे सन् १९३४ या १९३६ ई० की यात्रा में मुझे मिली थी। मूल पुस्तक किसके पास है, यह स्मरण नही। पुस्तक मे दो पन्ने थे। किस लिपि मे थी, यह भी नही कह सकता। मैने किसी नेपाली मित्र को उतारने के लिए कह दिया, जिनकी लिखी प्रति मेरे पास मौजूद है। भाषा अशुद्ध है, जो शायद लिपिकरो के प्रमाद के कारण हो। मैने उसके शुद्ध पाठ को देने की कोशिश नही की, क्योकि उससे समझने मे कठिनाई नही है। स्थानो के नाम कुछ जाने जा सकते है, पर उनका जन्म-स्थान कपिलवस्तु के पास जिस गाँव मे था, वह बहुत समय तक घोर जगल बन गया था, इसलिए उसके नाम का कोई गाँव शायद ही मिल सके। जीवनी इस प्रकार है—

"नम श्री सवरेश्वराय। इह खलु मध्यदेशे पदम (!) कपिलवस्तुमहानगर-

समीपे झोतकरणी नाम पल्लिकाऽस्ति (।) तस्मिस्थाने ब्राह्मणजातिर्नानूको नाम ब्राह्मणी च साविती नाम प्रतिवसति स्म। तदा च कालान्तरेण दामोदरो नाम तत्पुत्रो बभूव। स चैकादशवर्षदेशीय. कुमार: सामार्द्धवेदको गृहान्निष्क्रम्य मर्तवोधो नामैकदण्डोभूत् । ततः पश्चाल्लीकटी-सत्रे पाणिनिव्याकरणं श्रुतं, श्रुत्वा सप्तवर्षपर्य्यन्तेन सर्वशास्त्रमधिगम्य विंशतिवर्षपर्य्यन्तं नारोपाद-समीपे प्रमाणमाध्यमिकपारमितादिशास्त्रं श्रुतं। तदनु मन्त्रनयशास्त्रज्ञेन रागवज्रेण सहावस्थित: पञ्चवर्षपर्यन्तं। पश्चात् महापण्डित-रत्नाकरशान्ति-गुरुभट्टारक-पादाना पार्श्वे निराकारव्यवस्थां वर्षमेकं यावत्। पश्चाद् विक्रमशील (!) विक्रमशिलां गत्वा महापण्डितज्ञानश्रीमित्रपादानां पार्श्वे तत्प्रकरणं (तेन) श्रुत वर्षद्वयं यावद्।

ततो विक्रमपुरं (विक्रमशिलां) गत्वा संमतंतीय (?सम्मिती) निकाये (प्रव्रज्य) मैत्रीगुप्त नाम भिक्षुर्बभूव। सूत्राभिधर्मविनयञ्च श्रुत्वा वर्षमेकं यावत् (अतिष्ठत्।) पञ्चक्रम तारास्नायेन मन्त्रजापं कृत्वा कोटिमेकं चतुर्मुद्राऽर्थसहितेन। भट्टारके(न) स्वप्ने गदितं-'गच्छ त्वं खसर्प्पणं'। तत्र (ततः) विहारं परित्यज्य खसर्प्पण गत्वा वर्षमेकं यावन्निषीदति। पुनरपि गदितं–'गच्छ त्वं कुलपुत्र दक्षि-णापथे मनभङ्गचित्तविश्रामौ पर्वतौ तत्र सवरेश्वरस्तिष्ठति। स तत्रा (? तवा) नुग्राहको भविष्यतीति। तत्र च सागरनामा मिलिष्यति। स च राढदेशवासी राजपुत्रस्तेन सार्द्धं गच्छ''। पश्चाद् गते सति सागरेण मिलितं।

उड्डेशपर्यन्तेन (? न्तं) मनभंगचित्तविश्रामयोर्वार्ता न श्रुतवान्। श्री धान्य ०धान्यकटकं) वर्षमेकं स्थितः पश्चाद् वाकुत्पडु (?) देशे स्वाधिष्ठानतारा साधयितुमारब्धवान्। मासैकेन स्वप्नोऽभूत्–"गच्छ त्वं कुलपुत्र वायव्यां दिशि पर्वतौ तिष्ठन्तौ। पञ्चदशदिनेन प्राप्येते''। भट्टारिकाया वाक्येण वायव्यां दिशे संघातैः सार्द्ध गच्छति प्राप्तिपर्यन्तं पुरुषेणौकेनोक्त(म्)। "परम् (? पर) दिने नभङ्गचित्तविश्रामौ प्राप्येते लग्नौ। तत्र सुखेन वस्तव्यं''।

इति श्रुत्वा पडितपादो हृष्टोऽभूत्। अपरदिने प्राप्त (? प्राप्तौ) तत्र पर्वते (? पर्वतौ)। दिने-दिने दश-दश मण्डलानि कृतवान्। कन्दमूलफलाहार कृत्वा दिनदश-पर्य्यन्तं शिलातलपर्य्यङ्कमारुह्य एकाग्रचित्तेन उपवासं कर्तु-

मारब्ध:। सप्तमे दिवसे स्वप्नदर्शन भवति। दशमे दिवसे ग्रीवा छेत्तुमा(र)ब्ध। तत्क्षणात् साक्षाद् दर्शन भवति सेकन्ददाति अद्वयवज्रना (मा)ऽभूत्। पचक्रम-चतुर्मुद्रादिव्याख्यान कृत द्वादशदिनपर्य्यन्त। पुनरप्युपदेशेन पञ्चदिन यावत्। सर्वधर्मदृष्टान्तेन वीणा वादयति तत्र पद्मावली ज्ञानावली। सवरेश्वरेण आज्ञा दत्वा (? दत्ता) 'प्राणातिपातादिमाया दर्शय त्व'। तदनन्तर सागर कायव्यूह दर्शयते। पण्डितपादेनोक्त—"भगवन् किमप्यह कायव्यूह निर्मयितुमशक्त।" सवरेश्वर आह—"विकल्पभूतत्वात्।" पण्डित आह—"तर्हि कि कर्त्तव्य, मम ज्ञापयतु पादा।" सवराधिप आह—"तवेह जन्मनि सिद्धिर्नास्ति देशना-प्रकाशना कुरु"। अद्वयवज्र आह—'अशक्तोऽह भगवन् कर्तु कथ करिष्याम्यह'।" आह—"इह वज्रयोगिनि-उपदेशात् करिष्यसि त्व फल च फलिष्यतीति" इहोपदेश (? इममुपदेश) मित्यु (? अय उपदेश इत्यु) क्त्वा भट्टारकपादोऽन्तर्द्धानोऽभूत्।

"नेदन्धनुर्न च मृगो न वराहपोत
सपूर्णचन्द्रवदना न च सुन्दरीय।
निर्म्माणनिर्मिततयार्थिजनस्य हेतो
सन्तिष्ठते गिरितले सवराधिराज।"
अमनसिकारे यथाश्रुतक्रम समाप्त।

सक्षेप मे अद्वयवज्र की जीवनी निम्न प्रकार है—

कपिलवस्तु (वर्त्तमान तिलौराकोट, तौलिहवा, नेपाल पश्चिमी तराई) के पास झोतकरणी नाम का एक गाँव था। जहाँ ब्राह्मण नानूक और उनकी पत्नी साविती (सावित्री) रहते थे। उनको एक पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम इन्होने दामोदर रखा। वालक दामोदर ने अपने वेद साम का आधा पढ लिया था, जव कि वह ग्यारह वर्ष की आयु मे किसी एकदडी का शिष्य हुआ और उसका नाम मर्तबोध (अमृतबोध) रखा गया। इसके वाद अपने पण्डितों के लिए प्रसिद्ध लीकटी नामक गाँव मे जा मर्तबोध ने पाणिनि व्याकरण का अध्ययन किया और वहाँ सात वर्ष तक रह १८ वर्ष की आयु मे तरुण ने (ब्राह्मणों के) सभी शास्त्रो को पढ लिया। (वुद्ध की जन्मभूमि मे रहनेवाले तरुण का बौद्ध

धर्म और भिक्षुओं के सम्पर्क में आना स्वाभाविक था। इस प्रकार) वह बौद्ध शास्त्रों के अध्ययन के लिए नारोपाद के पास (सभवतः विक्रमशिला पहुँचे। दो वर्ष तक सिद्ध पडित से उसने दिङ्नाग, धर्मकीर्त्ति के प्रमाण (न्याय) शास्त्र, नागार्जुन के माध्यमिक शास्त्र और प्रज्ञापारमिता-सबंधी शास्त्र को पढा। फिर (वहीं के कलिकालसर्वज्ञ) महापडित सिद्ध रत्नाकर शान्ति के पास साल भर तक निराकारव्यवस्था (विज्ञानवाद ?) पढी। फिर विक्रमशिला गये। उक्त दोनों पंडित विक्रमशिला के थे, पर नारोपा फुलहरी विहार में भी रहा करते थे, इसी प्रकार रत्नाकर शान्ति सिंहल द्वीप तक का चक्कर मारते थे, इसलिए हो सकता है, तरुण विद्यार्थी ने इन दोनों विद्वानों से विक्रमशिला से बाहर शिक्षा प्राप्त की हो।) विक्रमशिला में दो वर्ष रहकर प्रसिद्ध प्रमाणशास्त्री (नैयायिक) ज्ञानश्री मित्र से उनके प्रकरण-ग्रन्थ पढे।

नारोपा के पास पढते समय तरुण के हृदय में मन्त्रशास्त्र की जिज्ञासा उत्पन्न हुई और वह पाँच वर्ष तक पढ़ते रहे। वह पच्चीस वर्ष के हो गये थे, जब वह कलिकालसर्वज्ञ सिद्ध महापंडित रत्नाकर शान्ति के पास जा साल भर तक निराकारव्यवस्था (विज्ञानवाद ?) पढते रहे। प्रमाणशास्त्र (न्याय) में अपने समय के अद्वितीय विद्वान् ज्ञानश्री मित्र उस समय विक्रमशिला में रहते थे। उनके अपने लिखे अनेक प्रमाणशास्त्र-संबंधी (क्षणभंगाध्याय आदि) प्रकरण-ग्रन्थों को पढ़ने के लिए वह ज्ञानश्री के पास गये। (ये प्रकरण-ग्रंथ इन पक्तियों के लेखक को तिब्बत में मिल गये हैं, जिन्हें पटना का जायसवाल इंस्टीट्यूट प्रकाशित करने जा रहा है।) अब वह सत्ताईस वर्ष के हो गये थे। अभी तक वह नियमपूर्वक उपसंपन्न भिक्षु नहीं बने थे। अब विक्रमशिला में जा वे सम्मितीयनिकाय (संप्रदाय) की परिपाटी के अनुसार भिक्षु बने; नाम मिला मैत्रीगुप्त। एक साल तक वह इस निकाय के सूत्रपिटक, अभिधर्मपिटक और विनयपिटक का अध्ययन करते रहे। २८ वर्ष के हो जाने पर मैत्रीगुप्त की इच्छा सिद्धों का पदानुसरण करते हुए सिद्धि लाभ करने की हुई। पचक्रम तारापद्धति के अनुसार 'चतुर्मुद्रा' सहित एक करोड़ जप किया, तब भट्टारक (सभवतः अमर सिद्ध शबरपाद) ने स्वप्न में कहा—"जाओ खसर्पण (अवलोकितेश्वर) के पुनीत स्थान में।" एक साल तक वह खसर्पण में रह अनुष्ठान करते

रहे। फिर स्वप्न हुआ—"जाओ दक्षिणपथ (दक्षिण भारत) मे। वहाँ मनभग और चित्तविश्राम नाम के दो पर्वत है, जहाँ शबरेश्वर रहते है, वह तुम पर कृपा करेगे, रास्ते मे राढ (पश्चिमी बगाल) देश का राजपुत्र सागरदत्त नाम का साथी तुम्हे मिलेगा।"

दक्षिणापथ जाते समय राढ (पश्चिमी बगाल) देश म ही शायद सागरदत्त मैत्रीगुप्त को मिले। दोनो आगे बढे। उडीसा तक उन्हे दोनो पर्वतो का पता नही लगा। वह धान्यकोटक (धरनीकोट, जिला गुन्तूर, आन्ध्र) जा एक साल तक रहे। अब मैत्रीगुप्त ३० वर्ष से अधिक के हो गये थे। उन्होने वहाँ से वाकुलगड्ड (?) देश मे जा तारा की साधना आरभ की। महीने भर बाद स्वप्न मे कहा गया, कि यहाँ से पश्चिमोत्तर (वायव्य) दिशा मे मनभग और चित्तविश्राम पर्वत है। एक यात्रीसमूह के साथ पन्द्रह दिन जाने पर एक आदमी ने कहा, कि अगले दिन पर्वत-युगल मिलेगे। अगले दिन पण्डित मैत्रीपाद लक्ष्य स्थान पर पहुँच कर हर्षित हुए। प्रतिदिन दस-दस मडल (मिट्टी के स्तूप या धर्मवाक्याकित मुद्राएँ) अर्पित करते शिला के ऊपर आसन मार एकाग्रचित्त हो, कन्द-मूल-फल मात्र का आहार करते उपवासव्रत करने लगे। सातवे दिन स्वप्न मे (शवर) का दर्शन हुआ। पर, उतने मे साधक को सन्तोष नही हुआ। जब दसवे दिन मैत्रीगुप्त ने गला काट आत्महत्या करनी चाही, तो जाग्रत अवस्था मे शवरपाद का साक्षात् दर्शन हुआ। उन्होने स्वयं साधक को अभिषेक दे अद्वयवज्र नाम रखा और बारह दिन तक 'पचक्रम' और 'चतुर्मुद्रा' का व्याख्यान किया। फिर और पाँच दिन तक उपदेश दिया। इस समय पद्मावली और ज्ञानावली नामक योगिनियाँ सभी धर्मो के दृष्टान्त के साथ वीणा बजाती थी। महासिद्ध शवर ने कायव्यूह नामक सिद्धि प्रदर्शित करने लिए कहा। सागरदत्त ने कर दिखलाया पर अद्वयवज्र असमर्थ रहे। उन्होने सिद्ध से अपनी असमर्थता का कारण पूछा, तो जवाब मिला—"तुम्हारा मन (सकल्प-)विकल्पमय है। इस जन्म मे तुम्हे सिद्धि नही मिलेगी। सिद्धो की देशना को स्पष्ट करो प्रकाशित करो। इसमे वज्रयोगिनी तुम्हे रास्ता बतलायगी।" यह कह कर शवर ([illegible]) पाद अन्तर्धान हो गये।

शवराधिराज (सिद्ध सरहपाद के प्रधान-शिष्य शवरपाद) [illegible]

पर साधको (हित) के लिए रहते हैं। (शवर=शिकारी होने पर भी) न (वहाँ) धनुष है न हरिन न शूकर-शावक, एवं न (उनके पास) सम्पूर्ण-चन्द्रानना सुन्दरी (उनकी शवरी) ही है। वह सिद्धि-निर्मित रूप मे वहाँ रहते हैं।

अज्ञात लेखक के इस आख्यान मे हमे अद्वयवज्र के ३० वर्ष के जीवन की कुछ बाते मालूम होती है। अद्वयवज्र राजगृह (मगध) मे एकान्तवास कर रहे थे, जब कि तरुण दीपकर श्रीज्ञान उनके पास विद्याध्ययन के लिये गये थे। दीपकर का जन्म ९८२ ई० मे हुआ था और वह १०४२ ई० मे तिब्बत मे जा वही १०५७ ई० मे मरे। तिब्बती परम्परा के अनुसार नारोपा का देहान्त १०३९ ई० मे हुआ। अद्वयवज्र ग्यारहवी सदी के प्रथम पाद मे मौजूद रहे होगे। उन्होने कितने ही ग्रन्थो की टीकाएँ लिखी, साथ ही सिद्धचर्या के पक्षपाती होने से कितनी ही कविताएँ देशभाषा (अपभ्रंश) मे भी की थी, जिनमे मे निम्नलिखित तिब्बती महान् संग्रह स्तन्-ग्युर मे तिब्बती अनुवाद के रूप मे मौजूद है—

'अबोध बोधक	स्तन्	तत्र	४७-३९
'गुरुमैत्रीगीतिका'	,,	,,	४८-१३
'चतुर्मुद्रोपदेश'	,,	,	४७-३७
'चित्तमात्र दृष्टि'	,,	,,	४९-४५
'दोहातत्त्वनिधितत्त्वोपदेश'	,,	,,	४९-३३
'चतुर्वज्रगीतिका'	,,	,,	४८-१२

परिशिष्ट ७

पारिभाषिक शब्द

अवधूती—योगिनी, सुषुम्ना

एवकार—शून्यता-करुणाभिन्न महामुद्रा

करी—चित्त, चित्त-गजेन्द्र

करुणा—दया

कुन्दुरु—द्वीन्द्रियसमापत्ति, मैथुन

गिरि—पर्वत, नितम्ब

गृहिणी—पत्नी, महामुद्रा, दिव्यमुद्रा, ज्ञानमुद्रा

चक्र—मेरुर्वाह्यप्रदेशे शशि-मिहिरशिरे सव्य-पक्षे निषण्ण ।
मध्ये नाडी सुषुम्ना त्रितयगणमयी चन्द्रसूर्या निरूपा ॥—षट्चक्र-निरूपण १

तरुणी—युवति, महामुद्रा

निरजन—निर्मल, सहजकाय

पद्म—भग, कमल

बुद्धत्व—चन्द्रसूर्योपरागेषु प्रज्ञावज्रप्रयोगत ।
विलीन अद्वय ज्ञान बुद्धत्वमिह जन्मनि ॥

—कुद्दालिपाद

बोधिचित्त—शुक्र, बोधिमन

रवि—रज, पिगला

रसना—जिह्वा, पिगला

ललना—स्त्री, इडा,

ललना प्रज्ञा स्वभावेन रमनोपायनन्दिना ।
अवधूती मध्यदेशे ते ग्राह्यग्राहकवर्जिता ॥

—हे वज्रतं ।

ललना-रसना नाडी प्रज्ञोपायञ्च मेलक'।
आधारावधूती स्यात् समरस यत्र तत्रग ॥
—बौद्धगान

वज्र—शून्यता—
दृढ सार अशौपीर्य अच्छेद्याभेद्यलक्षणम्।
अदाही अविनाशी च शून्यता वज्र उच्यते।
—योगरत्नमाला

वज्रधर—काय-वाक्-चित्त, स्वामी, लिगशून्य
नरावज्रधराकारा योपितो वज्रयोपित.।

वज्रयान—मत्रयान
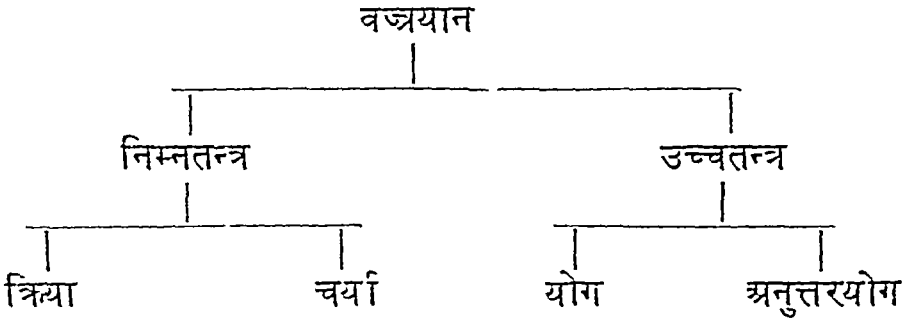
विन्दु—पुरुप, अनाहत, वज्रधर
विन्दु परुप इत्युक्तो विसर्ग प्रकृति. स्मृत।
पु प्रकृत्यात्मको हसस्तदात्मकमिद जगत् ॥

शशी—शुक्र, चद्र, इडा, पिंगला, वामनासापुट,

समरस—चित्तनिरोध, मैथुन

सूर्य—रज, पिगला, दक्षिणनासापुट

हुकार—वज्रधर

पुस्तक-सूची

१ 'बौद्ध गान ओ दोहा' (म. म. हरप्रसाद शास्त्री),

२ चर्यापद (श्री मणीन्द्रमोहन वसु, कमला बुक डिपो, १५ बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता)

३ 'दोहाकोश' (डाक्टर प्रबोधचन्द्र बागची, कलकत्ता-सस्कृत-सिरीज, १९३८ ई०)

४ प्राकृतपैंगलम् (बिब्लिओथिका इण्डिका, कलकत्ता, १९०२ ई०)

५ उक्तिव्यक्तिप्रकरण (सपादक, मुनि जिनविजय जी, भारतीय विद्या भवन, बबई १९५३ ई०)

६ 'पउमचरिउ' (कविराज स्वयभू, भारतीय विद्या-भवन, बबई; १९५३ ई०)

७ 'पउमसिरिचरिउ' (धाहिल कवि, भारतीय विद्या-भवन, बबई १९४८ ई०)

८ 'हिन्दीकाव्यधारा' (राहुल साकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, १९४५ ई०)

९ 'पुरातत्त्वनिबन्धावलि' (राहुल साकृत्यायन, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, १९३७ ई०)

१०. 'Les Chants Mystiques.. 'Les Dohakosa et les Carya, par Dr M Shahidullaha Adrien Maisonneuve, Paris

३. म.रत्न गीता-कोश (७ a-९ a), पृष्ठ १८—२८

५. सरह दोहा-कोश (10 a-12 a), पृष्ठ ३०-३४

. मत्स्य दोरा-कोज (10 b-11 b), ३०—३४

७. विनयश्री के गीत (a), पृष्ठ ३६३

८. चिनयश्री के गीत (b) पृष्ठ ३६६,

१०. म.स्त्यविचित्र तालपत्र (विभूतिचंद्र)

२२. म.ल्ला के लिखित तालपत्र ।

१२. सरहकृत दोहा-कोश की वर्णमाला।

१२. स.स्क्य दोहा-कोश की वर्णमाला।